बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल 1891 परिनिर्वाण : 6 दिसंबर 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 7

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 7
क्रांति तथा प्रतिक्रांति, बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स आदि

पहला संस्करण : 1995
दूसरा संस्करण : 1998
तीसरा संस्करण : 2013

ISBN : **978-93-5109-007-6**

आवरण परिकल्पना : विनय कुमार पॉल
पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

मूल्य : सामान्य (पेपरबैक) : ₹ 40

प्रकाशक :
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571, 23320576, 23320589
फैक्स : 23320582
वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in

मुद्रक : अरिहंत ऑफसेट, जनकपुरी, नई दिल्ली

जिस प्रकार अपने जीवन का खतरा उठाते हुए मां अपने शिशु की देख-भाल करती है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्राणियों के प्रति अपार प्रेम प्रदान करने के लिए मन बनाना चाहिए। उसे संपूर्ण विश्व के प्रति सद्‌भावना रखनी चाहिए, ऊपर-नीचे और उस पार, सभी के लिए उसके मन में घृणाहीन और शत्रुतारहित अबाध प्रेम होना चाहिए। ऐसी जीवन-पद्धति विश्व में सर्वोत्तम है।

- भगवान बुद्ध

परामर्श सहयोगः

माननीय सीताराम केसरी
कल्याण मंत्री
भारत सरकार

माननीय के.वी. थंगाबालू
कल्याण राज्य मंत्री
भारत सरकार

श्री माता प्रसाद, आई.ए.एस.
सचिव
कल्याण मंत्रालय

श्री गंगा दास, आई.ए.एस.
संयुक्त सचिव
कल्याण मंत्रालय
सदस्य सचिव
डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री कन्हैयालाल चंचरीक
प्रबंध संपादक

संपादक

श्री कैलाश चन्द्र सेठ
श्री मोहनदास नैमिशराय

अंग्रेजी में संकलन

श्री वसंत मून

हिंदी अनुवादक तथा पुनरीक्षक

श्री के. एन. गोस्वामी

श्री हरीश चन्द्र पाठक

डा. अफला सिंह वर्मा

डा. नरेन्द्र व्यास

श्री कृष्ण गोपाल

श्री सीताराम खोड़ावाल

डा. देवेश चन्द्र

द्वितीय संस्करण के पुनरीक्षक

श्री उमराव सिंह

विक्रय प्रवंधक

श्री जसवंत सिंह

उत्पादन प्रवंधक

श्री वी. हरिहरन

आमुख

विश्व में समय-समय पर ऐसे महापुरुषों का जन्म हुआ है, जिनकी चेतना, व्यक्तित्व एवं विचारधारा से समाज को नई दिशा मिलती है। भारतीय संविधान के निर्माता एवं भारत-रत्न बाबा साहेब डा. भीमराव अम्बेडकर एक प्रबुद्ध विचारक, समाजशास्त्री एवं सर्वहारा समाज के लिए नई दिशा प्रदान करने वाले ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्हें भारतीय समाज में दलितों का मसीहा कहा जाता है। पीड़ित मानवता का उद्धार करने एवं दलित वर्गों को सामाजिक व आर्थिक न्याय दिलाने में बाबा साहेब के अथक प्रयत्नों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिल रही है।

डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा बाबा साहेब के विचारों को हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसके लिए सभी सहयोगी विद्वान तथा अधिकारी बधाई के पात्र हैं। इसी अनुक्रम में बाबा साहेब डा. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय के इस सातवें खंड को प्रस्तुत करते हुए मैं इसकी सफलता की हार्दिक कामना करता हूं। इन प्रयासों से निश्चित रूप से समाज में जनजागृति उत्पन्न होगी ओर शोषणमूलक सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त करने में हमें मदद मिलेगी, जो आज भी भारतीय समाज को खोखला बना रही है।

सीताराम केसरी

(सीताराम केसरी)
कल्याण मंत्री
भारत सरकार

संदेश

बाबा साहेब हिंदू समाज के सभी दमनकारी स्वरूपों के विरूद्व विद्रोह के प्रतीक मात्र नहीं थे, अपितु बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। एक राजनीतिज्ञ तथा राष्ट्रीय नेता के नाते उन्होंने अपने पीछे संविधान के रूप में एक मूल्यवान विरासत छोड़ी है। उनका यह दृढ़ मत था कि शिक्षा के बिना प्रगति संभव नहीं है। उन्होंने दलितों तक शिक्षा पहुंचाने के लिए अनेक स्कूलों और कालिजों की स्थापना की। शोषितों के उद्धार के लिए उन्होंने जीवन-भर जो संघर्ष किया, उससे उन्हें सामाजिक और आर्थिक अन्याय से पीड़ित मानवता के उद्धारक के रूप में अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई।

मुझे प्रसन्नता है कि उनके विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में उनके भाषणों को खंडबद्ध रूप में प्रकाशित कर रहा है।

मैं इस प्रायोजना की सफलता की कामना करता हूं।

थंगाबालू
कल्याण राज्य मंत्री
भारत सरकार

कुमारी सैलजा
KUMARI SELJA

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
तथा
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के लेखों एवं भाषणों के खंड संख्या 7 का पुनः संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

भारत रत्न डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के ऐसे पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने जीवनपर्यन्त समाज के आखिरी पायदान पर संघर्षरत् व्यक्तियों की बेहतरी के लिए कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इसीलिए उनके लेखों में विषय की दार्शनिक मीमांसा प्रस्फुटित होती है। बाबासाहेब का चिंतन एवं कार्य समाज को बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समृद्धि की ओर ले जाने वाला तो है ही, साथ ही मनुष्य को जागरूक मानवीय गरिमा की आध्यात्मिकता से सुसंस्कृत भी करता है।

बाबासाहेब का संपूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध अनवरत क्रांति की शौर्य–गाथा है। वे एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व व मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई गुंजाइश न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति कृतसंकल्प बाबासाहेब का लेखन प्रबुद्ध मेधा का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था, जिसके तहत मानव–मानव में भेद किया जाता था, से डॉ. अम्बेडकर कई बार टकराए। इस टकराहट से डॉ. अम्बेडकर में ऐसा जज़्बा पैदा हुआ, जिसके कारण उन्होंने समतावादी समाज की संरचना को अपने जीवन का मिशन बना लिया। समतावादी समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता के कारण डॉ. अम्बेडकर ने विभिन्न धर्मों की सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन व तुलनात्मक चिंतन–मनन किया।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अन्य खंडों को भी शीघ्र प्रकाशित करने में प्रयासरत है। मुझे पूरी आशा है कि पाठकों को शीघ्र ही अप्रकाशित अन्य खंड भी पुस्तकों के आकार में प्राप्त हो जाएंगे।

आशा है, पाठकगण इस खंड के बारे में अपने अमूल्य विचार एवं सुझाव उपलब्ध करवाएं जिससे कि इन अनूदित खंडों की गुणवत्ता एवं साज–सज्जा को आगामी खंडों में आने वाले समय में बेहतर बनाया जा सके।

सैलजा

(कुमारी सैलजा)

परामर्श सहयोग

कुमारी सैलजा
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री डी. नैपोलियन
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री पी. बलराम नाईक
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्र

श्री अनिल गोस्वामी
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

श्री संजीव कुमार
संयुक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री विनय कुमार पॉल
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री कुमार अनुपम
विशेष कार्याधिकारी

डॉ. शशि भारद्वाज
सम्पादक

श्री जगदीश प्रसाद 'भारती'
व्यापार प्रबंधक

प्रकाशकीय

युगपुरुष भारतरत्न बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सामाजिक नव जागरण के अग्रदूत थे। उनका संपूर्ण जीवन सदियों से शोषित-दलित मानवता के सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षिक उत्थान के लिए समर्पित था। उन्होंने समाज में विद्यमान रूढ़िगत मान्यताओं और विषमताओं को समूल नष्ट करने और सामाजिक न्याय और दलितों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष किया।

बाबा साहेब के सामाजिक नवचेतना और नव-आर्थिक संरचना के स्वप्न को मूर्तरूप देने के लिए भारत सरकार ने डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान की स्थापना की है। यह प्रतिष्ठान निम्न मुख्य गतिविधियों और योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए कृत संकल्प है :-

1. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुस्तकालय, 2. डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार, 3. डॉ. अम्बेडकर विदेश छात्रवृत्ति, 4. डॉ. अम्बेडकर पीठिकाओं (चेअर्स) की स्थापना, और 5. डॉ. अम्बेडकर वाङ्मय का भारतीय भाषाओं में प्रकाशन।

इन योजनाओं को साकार रूप देने में सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध माननीय श्री सीताराम केसरी, कल्याण मंत्री, माननीय थंगा बालू, राज्य कल्याण मंत्री एवं माताप्रसाद, सचिव, कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के प्रति, जिनसे समय-समय पर अमूल्य परामर्श और मार्गदर्शन तथा प्रेरणा मिलती रहती है, प्रतिष्ठान की ओर से मैं आभार प्रकट करता हूं।

बाबा साहेब के संपूर्ण वाङ्मय को हिन्दी और अन्य दस भारतीय भाषाओं में अनूदित कराने और प्रकाशित करने की इस राष्ट्रीय महत्व की प्रायोजना में संबंधित भारतीय भाषाओं के अनुवादकों, पुनरीक्षकों, प्रबंध संपादकों और मुद्रकों के चयन की लंबी प्रक्रिया की व्यावहारिक कठिनाई के कारण कुछ खंडों के प्रकाशन में विलंब होने से हमें खेद है।

प्रस्तुत हिंदी खंड सात, के समय पर प्रकाशित होने पर प्रतिष्ठान को अत्यन्त खुशी है और इसके लिए संपादक श्री कैलाश चंद्र सेठ एवं श्री मोहनदास नैमिशराय, प्रबंध संपादक श्री कन्हैयालाल चंचरीक तथा प्रतिष्ठान के विशेष कार्य अधिकारी और इस योजना के समन्वयक श्री जगन्नाथप्रसाद बधाई के पात्र हैं। साथ ही, हम अनुवादकों-पुनरीक्षकों को साधुवाद देते हैं, जिन्होंने इस कार्य में सहयोग प्रदान किया।

हमें खुशी है कि प्रतिष्ठान के द्वारा प्रकाशित किए जा रहे बाबा साहेब डा. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय का सर्वत्र स्वागत हुआ है। इससे हमें भारी प्रोत्साहन और बल मिला है। अंत में, हम इस संबंध में अपने सुधी पाठकों के सुझावों का स्वागत करेंगे।

गंगादास

8 अप्रैल 1995

सदस्य सचिव
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
25, अशोक रोड, नई दिल्ली-110001

संपादकीय

बाबा साहेब डा. अम्बेडकर की गिनती उन युग-पुरुषों में की जाती है, जो समय के आगे के स्वप्न देखते हैं। बाबा साहेब ने अपने जीवन-काल में जो स्वप्न संजोया था, वह भारतीय समाज में आज आ रही नव-चेतना और जागृति के रूप में कमोबेश साकार होता सा दिखाई दे रहा है। सच तो यह है कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का मूल्यांकन वही कर सकता है, जिसने उनके कालयजी लेखों और भाषणों को सही रूप में आत्मसात् किया है। बाबा साहेब का यह पक्का विश्वास था कि शिक्षा के बिना देश की प्रगति नहीं हो सकती। शिक्षा से उपेक्षित और शोषित वर्ग, जो कि देश का एक महत्वपूर्ण अंग है, जागरूक बन सकता है और देश की प्रगति और उन्नति में अपना योगदान दे सकता है। इसी वर्ग में चेतना जगाने के लिए उन्होंने आजीवन अपने चिंतन, लेखन तथा भाषणों के माध्यम से क्रांति का शंख फूंका।

हम महाराष्ट्र सरकार के विशेष रूप से आभारी हैं, जिसने बाबा साहेब के संपूर्ण वाङ्मय को अंग्रेजी भाषा में कई खंडों में प्रकाशित करके भारतीय भाषाओं के माध्यम से उनके चिंतन को जन-जन तक सुलभ कराने के लिए हमारा मार्ग प्रशस्त किया है।

अनुवाद कार्य बहुत जटिल कार्य होता है। प्रस्तुत खंड के अनुवादकों तथा पुनरीक्षकों ने इस कार्य को अल्प समय में पूरा किया है, हम उनके आभारी हैं। विद्वान अनुवादकों, पुनरीक्षकों, डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान और कल्याण मंत्रालय के अपने साथियों के सहयोग से इस महत्वपूर्ण प्रायोजना को पूरा करने हेतु हम प्रयासरत् हैं। हमें सभी से पूर्ववत् सहयोग एवं स्नेह मिलता रहेगा, इसी आशा के साथ प्रस्तुत खंड 7 (अंगेजी खंड 3 का उत्तरार्द्ध) आपको समर्पित है। बाबा साहेब के व्यक्तित्व की छाप आप पर अपना प्रभाव डालेगी, ऐसा विश्वास है।

संपादक

विषय-सूची

भाग I

प्राचीन भारत में क्रांति तथा प्रतिक्रांति

डा. भीमराव अम्बेडकर ने 'रिवोल्यूशन एंड काउंटर-रिवोल्यूशन इन एनसिएंट इंडिया' पुस्तक लिखने का इरादा किया था। विषय-सूची को अध्याय की तालिका में छापा गया है। इस मुख्य शीर्षक के अंतर्गत मूल रूप से उन्होंने सात पुस्तकें लिखने की योजना बनाई थी। डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी उनके संग्रह में से कुछ पृष्ठ तथा कुछ अध्याय प्राप्त करने में सफल हो गई थी। इसलिए अध्याय अधूरे भी हैं। जांच करने के बाद कमेटी ने यह निर्णय किया कि अधूरी होने के बावजूद भी 'रिवोल्यूशन एंड काउंटर रिवोल्यूशन इन एनसिएंट इंडिया' (प्राचीन भारत में क्रांति तथा प्रतिक्रांति) की उपलब्ध सामग्री को इस खंड में प्रस्तुत किया जाए। डा. अम्बेडकर बौद्ध धर्म के उदय को क्रांति मानते थे। ब्राह्मणों ने प्रतिक्रांति का मार्ग प्रशस्त किया। फलस्वरूप बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन हुआ।

अतः इस शीर्षक के अंतर्गत निम्नलिखित अध्याय शामिल किए गए हैं :

1. प्राचीन भारत के इतिहास पर प्रकाश
2. प्राचीन शासन प्रणाली—आर्यों की सामाजिक स्थिति
3. गर्त में डूबा पुरोहितवाद
4. सुधारक और उनकी नियति
5. बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन
6. ब्राह्मण साहित्य
7. ब्राह्मणवाद की विजय
8. हिंदू समाज के आचार-विचार—मनुस्मृति या प्रतिक्रांति का सिद्धांत
9. प्रतिक्रांति की दार्शनिक पुष्टि (कृष्ण और उनकी गीता)
10. विराट पर्व और उद्योग पर्व का विश्लेषण
11. ब्राह्मण बनाम क्षत्रिय
12. शूद्र और प्रतिक्रांति
13. नारी और प्रतिक्रांति

पाठक इन अध्यायों की तुलना अंतिम अध्यायों की स्कीम में दी गई प्रस्तावित योजना से कर सकते हैं —संपादक

भाग I

प्राचीन भारत में क्रांति तथा प्रतिक्रांति

डा. भीमराव अम्बेडकर ने 'रिवोल्यूशन एंड काउंटर-रिवोल्यूशन इन एनसिएंट इंडिया' पुस्तक लिखने का इरादा किया था। विषय-सूची को अध्याय की तालिका में छापा गया है। इस मुख्य शीर्षक के अंतर्गत मूल रूप से उन्होंने सात पुस्तकें लिखने की योजना बनाई थी। डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी उनके संग्रह में से कुछ पृष्ठ तथा कुछ अध्याय प्राप्त करने में सफल हो गई थी। इसलिए अध्याय अधूरे भी हैं। जांच करने के बाद कमेटी ने यह निर्णय किया कि अधूरी होने के बावजूद भी 'रिवोल्यूशन एंड काउंटर रिवोल्यूशन इन एनसिएंट इंडिया' (प्राचीन भारत में क्रांति तथा प्रतिक्रांति) की उपलब्ध सामग्री को इस खंड में प्रस्तुत किया जाए। डा. अम्बेडकर बौद्ध धर्म के उदय को क्रांति मानते थे। ब्राह्मणों ने प्रतिक्रांति का मार्ग प्रशस्त किया। फलस्वरूप बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन हुआ।

अतः इस शीर्षक के अंतर्गत निम्नलिखित अध्याय शामिल किए गए हैं :

1. *प्राचीन भारत के इतिहास पर प्रकाश*
2. *प्राचीन शासन प्रणाली—आर्यों की सामाजिक स्थिति*
3. *गर्त में डूबा पुरोहितवाद*
4. *सुधारक और उनकी नियति*
5. *बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन*
6. *ब्राह्मण साहित्य*
7. *ब्राह्मणवाद की विजय*
8. *हिंदूसमाज के आचार-विचार—मनुस्मृति या प्रतिक्रांति का सिद्धांत*
9. *प्रतिक्रांति की दार्शनिक पुष्टि (कृष्ण और उनकी गीता)*
10. *विराट पर्व और उद्योग पर्व का विश्लेषण*
11. *ब्राह्मण बनाम क्षत्रिय*
12. *शूद्र और प्रतिक्रांति*
13. *नारी और प्रतिक्रांति*

पाठक इन अध्यायों की तुलना अंतिम अध्यायों की स्कीम में दी गई प्रस्तावित योजना से कर सकते हैं —संपादक

1

प्राचीन भारत के इतिहास पर प्रकाश

प्रस्तुत अध्याय की मूल अंग्रेजी में टाइप की हुई दो प्रतिलिपियां हैं। दोनों प्रतिलिपियों में बाबा साहेब की लिखावट में कुछ वृद्धि तथा संशोधन किया गया है। विचार करने के बाद निर्णय लिया गया कि बाद की प्रतिलिपि को छापा जाए। यह निबंध जो मात्र तीन पृष्ठ का है, किसी अधिक बड़े विषय की प्रस्तावना प्रतीत होता है, जो संभवतः डा. अम्बेडकर के मस्तिष्क में था —संपादक

प्राचीन भारत के इतिहास का काफी हिस्सा बिल्कुल भी इतिहास नहीं है। ऐसा नहीं है कि प्राचीन भारत बिना इतिहास के है। प्राचीन भारत का बहुत सारा इतिहास है। लेकिन वह अपना स्वरूप खो चुका है। महिलाओं और बच्चों का मनोरंजन करने के लिए इसे पौराणिक आख्यान बना दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणवादी लेखकों ने जान-बूझकर ऐसा किया है। 'देव' शब्द को लीजिए। इसका क्या अर्थ है? क्या 'जन-विशेष' शब्द मानव परिवार के एक सदस्य का निरूपण करने के लिए प्रयुक्त हुआ है? यह महामानव वर्ग के निरूपण के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार इतिहास का सार दबा दिया गया है।

'देव' शब्द के साथ-साथ यक्ष, गण, गंधर्व, किन्नर नामों का भी उल्लेख है। वे कौन थे? *महाभारत* और *रामायण* पढ़ने के बाद समझ में आता है कि ये काल्पनिक मानव थे, जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं था।

लेकिन यक्ष, गण, गंधर्व, किन्नर भी मानव परिवार के सदस्य थे। वे देवों की सेवा में थे। यक्ष महलों की पहरेदारी करते थे। गण देवों की रक्षा करते थे। गंधर्व संगीत और नृत्य द्वारा देवों का मनोरंजन किया करते थे। किन्नर भी देवताओं की सेवा में थे। किन्नरों के वंशज़ आज भी हिमाचल प्रदेश में रहते हैं।

'असुर' नाम को लीजिए। असुर का वर्णन *महाभारत* और *रामायण* में जिस प्रकार किया गया है, उससे समझ में आता है कि जैसे ये मानव-रहित दुनिया में रहते हैं। असुर

का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि वे दस बैलगाड़ी-भर भोजन करते हैं। वे दैत्य के आकार के हैं। वे छह माह तक सोते हैं। उनके दस मुख हैं। राक्षस कौन हैं? उन्हें भी अमानवीय प्राणी बताया गया है। आकार में, भोजन करने की क्षमता में, जीवन की आदतों में वे असुरों के समान थे।

नागों का उल्लेख बहुत बार मिलता है। लेकिन नाग कौन हैं? नाग को सर्प या सांप के रूप में बताया गया है। क्या यह सच हो सकता है? चाहे यह सच हो या नहीं, यह ऐसा ही है, तथा हिंदू इसमें विश्वास करते हैं। प्राचीन भारत के इतिहास से पर्दा हटाया जाना चाहिए। इस उद्घाटन के बिना प्राचीन भारत इतिहास-विहीन रह जाएगा। सौभाग्य से बौद्ध साहित्य की मदद से प्राचीन इतिहास को उस मलबे से खोदकर निकाला जा सकता है, जिस मलबे के नीचे ब्राह्मण लेखकों ने पागलपन में उसे दबाकर रख दिया है।

बौद्ध साहित्य से बहुत हद तक मलबा हटाने व उसके नीचे छिपे तत्व बिल्कुल स्पष्ट रूप से देखने में मदद मिलती है।

बौद्ध साहित्य बताता है कि 'देव' मानव समुदाय से थे। बहुत से देव बुद्ध के पास अपनी शंकाओं के समाधान तथा कठिनाइयां दूर करने के लिए आते थे। यदि देव मानव नहीं होते तो ऐसा कैसे हो सकता था? इसके अलावा बौद्धों का प्रामाणिक साहित्य नागों से संबंधित जटिल प्रश्न पर समुचित प्रकाश डालता है। यह कोख से पैदा हुए नाग और अंडे से पैदा हुए नाग में भेद बताता है, और इस प्रकार यह स्पष्ट करता है कि 'नाग' शब्द के दो अर्थ होते हैं। इस शब्द का मूल अर्थ मानव समुदाय के लिए प्रयुक्त हुआ है।

इसके अलावा, असुर भी राक्षस नहीं हैं। वे भी जन-विशेष मानव ही हैं। *शतपथ ब्राह्मण* के अनुसार, असुर सृष्टि के निर्माता प्रजापति के वंशज थे। वे नरक-दूत कैसे बन गए, यह पता ही नहीं है। लेकिन यह तथ्य लिपिबद्ध है कि वे पृथ्वी पर आधिपत्य करने के लिए देवों से लड़े, जिन्हें देवों ने जीत लिया और जिन्हें अंततः समर्पण करना पड़ा। यह बात स्पष्ट है कि असुर दैत्य नहीं, बल्कि मानव परिवार के सदस्य थे।

मलबे के इस उत्खनन से हम प्राचीन भारतीय इतिहास को एक नव प्रकाश में देख सकते हैं।

2

प्राचीन शासन प्रणाली : आर्यों की सामाजिक स्थिति

मूल अंग्रेजी में इस अध्याय के टाइप किए हुए ग्यारह पृष्ठ एक फाइल में बंधे हुए थे। अंतिम पृष्ठ से पता चलता है कि यह अध्याय अपूर्ण है–संपादक

बौद्ध धर्म एक क्रांति थी। यह उतनी ही महान क्रांति थी, जितनी फ्रांस की क्रांति। यद्यपि यह धार्मिक क्रांति के रूप में प्रारंभ हुई, तथापि यह धार्मिक क्रांति से बढ़कर थी। यह सामाजिक और राजनैतिक क्रांति बन गई थी। यह समझने के लिए कि इस क्रांति का चरित्र कितना गूढ़ है, यह जानना आवश्यक है कि क्रांति के आरंभ होने से पहले समाज की स्थिति कैसी थी। फ्रांस की क्रांति की भाषा में कहा जाए तो भारत की प्राचीन शासन प्रणाली का चित्रण आवश्यक है।

बुद्ध के उपदेशों से आए महान सुधार को समझने के लिए यह आवश्यक है कि बुद्ध द्वारा अपने जीवन का मिशन शुरू करते समय आर्यों की सभ्यता की विकृत स्थिति पर विचार किया जाए।

उनके समय का आर्य समुदाय सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक रूप से सबसे निकृष्ट विलासिता में डूबा हुआ था।

कुछ सामाजिक बुराइयों का उल्लेख करने के लिए जुए की ओर ध्यान दिलाया जा सकता है। आर्यों में सुरा पान के अलावा जुआ भी व्यापक रूप से खेला जाता था।

प्रत्येक राजा के यहां जुआ खेलने के लिए महल के साथ ही एक मंडप हुआ करता था। हर राजा जुए के विशेषज्ञ को नौकरी पर रखता था, जो खेल के समय राजा का सहायक हुआ करता था। सम्राट विराट की सेवा में कंक जैसा जुआ विशेषज्ञ नौकरी करता था। जुआ राजाओं का केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं था। वे बड़े-बड़े दांव लगाकर खेलते थे। वे राज्यों, आश्रितों, रिश्तेदारों, गुलामों आदि को दांव पर लगा देते थे।[1] राजा नल जुए में पुष्कर के साथ खेलते हुए हर चीज को दांव पर लगाकर हार गए। केवल स्वयं को और अपनी पत्नी दमयंती को दांव पर नहीं लगाया। नल को जंगल में जाकर एक भिखारी के रूप में रहना पड़ा। कुछ ऐसे राजा भी थे, जो नल से भी आगे बढ़ गए थे। *महाभारत*[2] से पता चलता है कि पांडवों के सबसे बड़े भाई धर्मराज

1. *महाभारत*, वन पर्व
2. *वही*, सभा पर्व

युधिष्ठिर ने जुए में अपने छोटे भाइयों और पत्नी द्रौपदी सहित सब कुछ दांव पर लगा दिया था। जुआ आर्यों के लिए सम्मान का प्रतीक था, और जुए का कोई आमंत्रण सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए चुनौती माना जाता था। धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा जुआ खेलने के अनर्थकारी परिणाम हुए, यद्यपि उन्हें ऐसे परिणाम की पहले ही चेतावनी दी जा चुकी थी। उनका बहाना यह था कि उन्हें जुए का आमंत्रण मिला था, और एक सम्माननीय व्यक्ति होने के नाते वह ऐसा आमंत्रण ठुकरा नहीं सकते थे।

जुए का दुर्गुण सिर्फ राजाओं तक सीमित नहीं था। यहां तक कि आम आदमी भी इससे ग्रसित था। *ऋग्वेद* में जुए से बर्बाद हुए आर्य के विलाप का विवरण मिलता है। कौटिल्य के समय में जुआ खेलना इतनी आम बात हो गई थी कि जुआघरों को राजा द्वारा अनुमति-पत्र दिए जाते थे, जिससे राजा को यथेष्ट राजस्व मिलता था।

शराब पीना दूसरी बुराई थी, जो आर्यों में प्रचंड रूप से फैली हुई थी। शराब दो प्रकार की हुआ करती थी—सोम और सुरा। सोम यज्ञीय शराब थी। प्रारंभ में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को सोम पीने की अनुमति थी। बाद में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को इसके पीने की अनुमति दी गई। वैश्यों को इसे पीना वर्जित कर दिया गया था, और शूद्रों को तो इसका स्वाद चखने की भी अनुमति नहीं थी। इसका बनाना एक गुप्त प्रक्रिया थी, जिसकी जानकारी केवल ब्राह्मणों को थी। सुरा पीने की अनुमति सभी को थी तथा इसे सभी पीते थे। ब्राह्मण सुरा भी पीते थे। असुरों के पुरोहित शुक्राचार्य ने इतनी अधिक पी ली थी कि नशे की स्थिति में उन्होंने मृत संजीवनी मंत्र ही बता दिया, जो केवल वही जानते थे, तथा जिसका वह देवों द्वारा मारे गए असुरों को जीवित करने के लिए प्रयोग करते थे। यह मंत्र उन्होंने देवों के पुरोहित बृहस्पति के पुत्र कच को बताया था। *महाभारत* में एक प्रसंग है कि एक बार कृष्ण और अर्जुन ने अत्यधिक सोमरस पी लिया था। यह दर्शाता है कि आर्यों के समाज में सर्वश्रेष्ठ न सिर्फ शराब पीने के आदी थे, बल्कि वे बहुत अधिक शराब पीते थे। सबसे शर्मनाक बात तो यह है कि आर्य महिलाएं भी शराब पीने की आदी थीं। उदाहरण के लिए, राजा विराट की पत्नी सुदेशना[1] ने अपनी चेरी सैरंध्री को कहा कि कीचक के महल से सुरा ले आओ, क्योंकि वह पीने के लिए मरी जा रही है। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि केवल रानियां ही शराब पीती थीं। शराब पीने की आदत हर वर्ग की महिलाओं में सामान्य बात थी, और यहां तक कि ब्राह्मण महिलाएं भी इस आदत से बची हुई नहीं थीं। आर्य महिलाएं शराब पीती थीं और नाचती थीं, यह *कौसीतकी गृह्य* सूत्र (1. 11-12) से स्पष्ट हो जाता है। सूत्र कहता है: 'चार या आठ सधवा महिलाएं शराब और भोजन का सेवन कर लेने के बाद वैवाहिक समारोह से पहले की रात में चार बार नाचेंगी। निम्न वर्ग की महिलाओं की क्या कहें, सातवीं और आठवीं शताब्दी में आर्यावर्त के मध्य क्षेत्र में ब्राह्मण महिलाएं शराब

1. *महाभारत*, वन पर्व अध्याय 15·10

पीया करती थीं, जो कुमारिल भट्ट की तंत्र वर्तिका (1.3-4) से स्पष्ट है जिसमें कहा गया है, 'आधुनिक दिनों के लोगों में हम पाते हैं कि अहिछत्र तथा मथुरा देश की ब्राह्मण महिलाएं शराब पीने की आदी हैं।' कुमारिल ने केवल ब्राह्मणों की पीने की आदत की ही निंदा की है। लेकिन क्षत्रियों और वैश्यों की पीने की आदत की निंदा नहीं की है, यदि शराब फल या फूलों से (अर्थात माधवी) और शीरे (गुड़) की हो, न कि अनाजों से बनी सुरा।

आर्यों के समाज़ की यौन अनैतिकता जानकर उनके वर्तमान वंशजों को सदमा पहुंचेगा। बुद्ध से पहले के दिनों में आर्यों में यौन तथा वैवाहिक संबंध को संचालित करने के लिए आज की प्रतिबंधित श्रेणियों जैसा नियम नहीं था।

आर्य धर्मग्रंथों के अनुसार, ब्रह्मा सृष्टि का रचयिता है। ब्रह्मा के तीन पुत्र और एक पुत्री थी। उसके एक पुत्र दक्ष ने अपनी बहन से विवाह किया। इस भाई-बहन के विवाह से जो पुत्रियां पैदा हुईं, उनमें से कुछ ने ब्रह्मा के पुत्र मारीचि के पुत्र कश्यप से विवाह कर लिया और कुछ ने ब्रह्मा के तीसरे पुत्र धर्म से विवाह कर लिया।[1]

ऋग्वेद में एक प्रसंग है कि यम और यमी भाई-बहन थे। इस प्रसंग के अनुसार, यमी अपने भाई यम को सहवास के लिए आमंत्रित करती है और उसके ऐसा करने से इंकार करने पर क्रोधित हो जाती है।[2]

पिता अपनी पुत्री से विवाह कर सकता था। वशिष्ठ ने अपनी पुत्री शतरूपा के वयस्क हो जाने पर उससे विवाह किया था।[3] मनु ने अपनी पुत्री इला से विवाह किया था।[4] जह्नु ने अपनी पुत्री जाह्नवी से विवाह किया।[5] सूर्य ने अपनी पुत्री उषा से विवाह किया था।[6]

बहुपति-प्रथा प्रचलित थी, जो साधारण किस्म की नहीं थी। आर्यों में जो बहुपति-प्रथा पाई जाती थी, उसमें एक ही परिवार के कई लोग एक ही औरत से सहवास करते थे। धहाप्रचेतनी और उसके पुत्र सोम ने मरीशा (सोम की पुत्री) से सहवास किया।[7]

दादा द्वारा अपनी पौत्री से विवाह रचाने के उदाहरण कम नहीं हैं। दक्ष ने अपनी पुत्री पिता ब्रह्मा[8] के साथ ब्याह रचाने के लिए दे दी थी, और इस ब्याह से प्रसिद्ध नारद का जन्म हुआ था। दौहित्र ने अपनी 27 पुत्रियों को अपने पिता सोम को सहवास और

---

1. *महाभारत*, आदि पर्व, अध्याय 66
2. *ऋग्वेद*
3. *हरिवंश*, अध्याय 2
4. वही, अध्याय 10
5. वही, अध्याय 27
6. यास्क निरुक्त, अध्याय 5, खंड 6
7. *हरिवंश*, अध्याय 2
8. वही, अध्याय 3

प्रजनन के लिए दे दिया था।[1]

"आर्यों को औरत के साथ खुले आम लोगों की आंखों के सामने सहवास करने में कोई आपत्ति नहीं थी। ऋषि एक धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे, जिसे वामदेव्या व्रत कहते थे। यह अनुष्ठान यज्ञ-भूमि पर किया जाता था। यदि कोई औरत वहां आकर सहवास की इच्छा व्यक्त करती थी और ऋषि से अपनी संतुष्टि के लिए कहती थी, तो ऋषि उसी समय वहीं खुले में यज्ञ-भूमि पर उसके साथ सहवास किया करते थे। इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऋषि पराशर को ही लीजिए। उन्होंने सत्यवती के साथ इसी प्रकार सहवास किया था। ऋषि दीर्घतप ने भी ऐसा किया था। 'अयोनि' शब्द के अस्तित्व से पता चलता है कि यह रिवाज एक सामान्य बात थी। 'अयोनि' शब्द का अर्थ निष्पाप गर्भधारण समझा जाता है। लेकिन इस शब्द का मूल अर्थ यह नहीं है। 'योनि' शब्द का मूल अर्थ 'घर' होता है। 'अयोनि' शब्द का अर्थ घर के बाहर, अर्थात खुले स्थान पर गर्भधारण करना होता है। सीता और द्रौपदी, दोनों अयोनिजा थीं। इस तथ्य से पता चलता है कि इसे गलत नहीं माना जाता था। इस प्रथा को रोकने के लिए धार्मिक निषेधादेश जारी करना पड़ा था।[2] इससे भी स्पष्ट है कि यह एक सामान्य बात थी।

आर्यों में अपनी औरतों को कुछ अवधि के लिए भाड़े पर देने की प्रथा भी थी। उदाहरण के लिए, माधवी[3] की कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। राजा ययाति ने अपने गुरु गालव को अपनी पुत्री माधवी भेंट में दे दी थी। गालव ने माधवी को तीन राजाओं को अलग-अलग अवधि के लिए भाड़े पर दे दिया। उसके बाद उसने उसे विवाह रचाने के लिए विश्वामित्र को दे दिया। वह पुत्र उत्पन्न होने तक उनके साथ रही। उसके बाद गालव ने लड़की को वापस लेकर पुनः उसके पिता ययाति को लौटा दिया।

अस्थाई तौर पर स्त्रियों को भाड़े पर देने की प्रथा के अलावा, आर्यों में एक अन्य प्रथा प्रचलित थी, अर्थात उनमें से सर्वोत्तम पुरुषों को संतानोत्पत्ति की अनुमति देना। वे परिवार वृद्धि को ऐसा मानते थे, मानो वह प्रजनन अथवा वंश संवर्धन हो। आर्यों में लोगों का एक ऐसा वर्ग होता था, जिसे देव कहते थे, जो पद और पराक्रम में श्रेष्ठ माने जाते थे। अच्छी संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से आर्य लोग देव वर्ग के किसी भी पुरुष के साथ अपनी स्त्रियों को संभोग करने की अनुमति देते थे। यह प्रथा इतने व्यापक रूप से प्रचलित थी कि देव लोग आर्य स्त्रियों के साथ पूर्वास्वादन को अपना आदेशात्मक अधिकार समझने लगे। किसी भी आर्य स्त्री का उस समय तक विवाह नहीं हो सकता था, जब तक कि वह पूर्वास्वादन के अधिकार से तथा देवों के नियंत्रण से मुक्त नहीं

1. हरीवंश, अध्याय 3
2. *महाभारत*, आदि पर्व, अध्याय 193
3. वही, उद्योग पर्व, अध्याय 106-123

कर दी जाती थी। तकनीकी भाषा में इसे 'अवदान' कहते थे। 'लाज होम' अनुष्ठान प्रत्येक हिंदू विवाह में किया जाता है, जिसका विवरण *आश्वलायन गृह्य सूत्र* में मिलता है। 'लाज होम' देवों द्वारा आर्य स्त्री को पूर्वास्वादन के अधिकार से मुक्त किए जाने का स्मृति चिन्ह है। 'लाज होम' में 'अवदान' एक ऐसा अनुष्ठान है, जो देवों के वधू के ऊपर अधिकार के समापन की कीमत करता है। सप्तपदी सभी हिंदू विवाहों का सबसे अनिवार्य धर्मानुष्ठान है, जिसके बिना हिंदू विवाह को कानूनी मान्यता नहीं मिलती। सप्तपदी का देवों के पूर्वास्वादन के अधिकार से अंगभूत संबंध है। सप्तपदी का अर्थ है, वर का वधू के साथ सात कदम चलना। यह क्यों अनिवार्य है? इसका उत्तर यह है कि यदि देव क्षतिपूर्ति से असंतुष्ट हों तो वे सातवें कदम से पहले दुल्हन पर अपना अधिकार जता सकते थे। सातवां फेरा लेने के बाद देवों का अधिकार समाप्त हो जाता था और वर, वधू को ले जाकर, दोनों पति और पत्नी की तरह रह सकते थे। इसके बाद देव न कोई अड़चन डाल सकते थे और न ही कोई छेड़खानी कर सकते थे।

कुमारी के लिए कौमार्य का कोई नियम नहीं था। कोई भी लड़की बिना विवाह किए किसी भी पुरुष के साथ संभोग कर सकती थी, और उससे संतान भी उत्पन्न कर सकती थी। 'कन्या' शब्द के मूल अर्थ से यह स्पष्ट है। 'कन्या' शब्द के मूल में 'काम' शब्द है, जिसका अर्थ है कि लड़की स्वयं को किसी भी पुरुष के समक्ष अर्पित करने के लिए स्वतंत्र है। कुंती और मत्स्यगंधा के उदाहरण हैं कि विधिवत विवाह किए बिना उन्होंने अपने-आपको किसी अन्य पुरुष को अर्पित किया और बच्चे भी उत्पन्न किए। कुंती ने पांडु से विवाह रचाने से पहले अलग-अलग कई आदमियों के साथ संभोग किया और बच्चे पैदा किए। मत्स्यगंधा ने भीष्म के पिता शांतनु से विवाह रचाने से पहले ऋषि पराशर के साथ संभोग किया।

पशुओं के साथ यौनाचार करना भी आर्यों में प्रचलित था। ऋषि किंदम द्वारा हिरणी के साथ मैथुन किए जाने की कहानी सर्वविदित है। एक दूसरा उदाहरण सूर्य द्वारा घोड़ी के साथ मैथुन किए जाने का है। लेकिन सबसे वीभत्स उदाहरण अश्वमेघ यज्ञ में स्त्री द्वारा घोड़े के साथ मैथुन किए जाने का है।

(मूल अंग्रेजी में इस अध्याय के ग्यारह टाइप किए हुए पृष्ठ एक फाइल में बंधे हुए थे। अंतिम पृष्ठ से पता चलता है कि यह अध्याय अपूर्ण है—संपादक)

3

गर्त में डूबा पुरोहितवाद

प्राचीन आर्यों के समाज में पुरोहिताई के व्यवसाय पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था। ब्राह्मणों को छोड़कर कोई अन्य पुरोहित नहीं बन सकता था। धर्म के अभिरक्षक के रूप में ब्राह्मण नैतिक और आध्यात्मिक मामलों में मार्गदर्शक हुआ करते थे। उनको ऐसे मानक स्थापित करने थे, जिनका लोग अनुसरण करते। क्या ब्राह्मणों ने वह मानक स्थापित किए थे? दुर्भाग्यवश जो प्रमाण हमारे पास हैं, वह दर्शाते हैं कि ब्राह्मण नैतिक रूप से अधोगति के सबसे गहरे गर्त में गिर चुके थे।

एक श्रोत्रिय ब्राह्मण से अपेक्षा की जाती थी कि वह खाद्य सामग्री का भंडार केवल एक सप्ताह तक के लिए रखे। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने इस नियम की धज्जियां उड़ा दी। उन्हें संग्रह की लत लग गई थी, भंडारित की गई वस्तुएं, भोजन, पेय सामग्री, कपड़े, सज्जा सामग्री, बिस्तर, सुगंधित द्रव्य इत्यादि थीं।

ब्राह्मणों को मनोरंजक तमाशे देखने का व्यसन हो गया था, जैसे :

1. नर्तकी का नाच (नक्काम),
2. गीत-गायन (गीतम)
3. वाद्य-यंत्रों का संगीत (वदितम)
4. मेलों के तमाशे (पेखम)
5. गाथा का सस्वर पाठ (अक्खानम)
6. हस्त संगीत (पणिसरम)
7. भाटों के गीत (वेताल)
8. टम-टम वाद्य (कुंभथुनम)
9. सुंदर दृश्य (सोभानगरकम)
10. चांडालों द्वारा नटीय करतब (चांडाल-वमस-धोपनम)
11. हाथियों, घोड़ों, भैसों, बैलों, बकरियों, भेड़ों, मुर्गों और बटेरों की लड़ाई,
12. लठैती, मुक्केबाजी, मल्ल में बल परीक्षण, और

13-16. दिखावटी लड़ाई, हाजरी लेना, युद्धाभ्यास, समीक्षा।

उन्हें विभिन्न खेलों को खेलने तथा अन्य मनोरंजन करने का व्यसन था, जैसे :

1. आठ या दस चौखानों से बनी बिसात (चौपड़),
2. हवा में ऐसी बिसात की कल्पना करते हुए उसी प्रकार के खेलों का खेला जाना,
3. जमीन पर खींची गई लकीरों के ऊपर चलते रहना, जिससे प्रत्येक अपने अपेक्षित निशान पर कदम रख सके,
4. एक ढेरी में से नाखूनों के बल पर बिना हिलाए मोहरों अथवा मनुष्यों को हटाना अथवा उन्हें ढेरी में रखना। जिससे ढेरी हिल जाती है वह हार जाता है,
5. पासा फेंकना,
6. लंबी छड़ी से छोटी छड़ी पर प्रहार करना,
7. लाख अथवा लाल रंग अथवा गीले आटे में सनी अंगुलियों वाले हाथ को पानी में डुबाना और गीले हाथ को जमीन पर मारना, पुकारकर कहना कि 'यह क्या होगा', और दिखाना कि यह शक्ल हाथी, घोड़ों आदि की होनी चाहिए,
8. गेंदों से खेल खेलना,
9. पत्तों की बनी हुई खिलौने की बांसुरी बजाना,
10. खिलौने के हल से हल चलाना,
11. कलाबाजियां दिखाना,
12. ताड़ के पत्तों की खिलौना पवन चक्की बनाकर खेलना,
13. ताड़ के पत्तों का खिलौना माप बनाकर खेलना,

14-15. खिलौना गाड़ियों अथवा खिलौना धनुषों से खेलना,

16. हवा में अथवा साथी खिलाड़ी की पीठ पर लिखे अक्षरों का पूर्वानुमान लगाना,
17. साथी खिलाड़ी के विचारों का पूर्वानुमान लगाना, और
18. बहुरूपियापन।

उन्हें ऊंचे और बड़े आसनों को प्रयोग करने का व्यसन था, जैसे :

1. सचल पीठिकाएं, ऊंची और छह फुट लंबी (आसंदी),
2. तख्त जिसकी पीठ पर पशु आकृतियां खुदी हों (पल्लंको),
3. बकरी के लोमों वाली लंबी चादर (गोनाको),
4. रंगीन थेपली से बनाए गए पलंगपोश (कित्तका),
5. सफेद कंबल (पट्टिका),
6. फूलों की कढ़ाई युक्त ऊनी शैयावरण (पट्टालिका),
7. रूई से भरी हुई रजाइंया (तुलिका),

8. तोशक जिनमें शेर, बाघ आदि की आकृतियों की कढ़ाई की गई हो (विकाटिका),
9. दोनों तरफ पशु लोम लगे हुए गलीचे (उद्दालोम),
10. एक तरफ पशु लोम लगे हुए गलीचे (इकंतालोमी),
11. रत्नजड़ित शैयावरण (कत्थीसम),
12. रेशमी शैयावरण (कोसीयम),
13. सोलह नर्तकियों के लिए पर्याप्त कालीनें (कुट्टाकम),
14-16. हाथी, घोड़े और रथ के नमदे,
17. हिरण की खालों को सिलकर बनाए गए नमदे (अगिनापवेनी),
18. . दरियां, जिनके ऊपर तिरपाल लगे हों (सौटाराखदाम), और
20. पीठिकाएं, जिनमें सिर और पैरों के लिए लाल तकिए हों।

ब्राह्मणों को सजने-संवरने तथा अपने-आपको सुंदर बनाने का व्यसन था, जैसे:

अपने शरीर पर सुगंधित चूर्ण मलना, उससे बाल धोना, और स्नान करना, पहलवान की तरह अंगों को गदाओं से थपथपाना, मालिश करना, दर्पण, आंखों में काजल आदि, पुष्पहारों, कुंकुमी, सौंदर्य प्रसाधनों, कंगन, कंठहारों, छड़ियों, औषधियों के लिए सरकंडे के खोलों, कटारों, सायेबान, कशीदाकारी की हुई चप्पलों, पगड़ियों, पुष्प किरीटों, याक की पूंछ की चंवरों और लंबी सफेद झालरदार पोशाकों का इस्तेमाल करना।

ब्राह्मणों को निम्न स्तर का वार्तालाप करने का व्यसन था, जैसे:

राजाओं, डाकुओं और राज्य के मंत्रियों के किस्से, युद्ध, आतंक और लड़ाइयों के वृतांत, खाद्य और पेय पदार्थों, वस्त्रों, बिस्तरों, फूलमालाओं, इत्रों के बारे में बातें करना, संबंध-संपर्कों, साज-सामान, गांवों, नगरों, शहरों और देशों के बारे में बातें करना, स्त्रियों और सूरमाओं की कहानियां सुनाना, गली के नुक्कड़ों अथवा पनघट की गपशप करना, भूतों की कहानियां सुनाना, बेढंगी बातें करना, पृथ्वी अथवा समुद्र के उद्भव के बारे में अथवा अस्तित्व व अनस्तित्व के बारे में अटकलबाजी करना।

ब्राह्मण विवादपूर्ण शब्दावली के प्रयोग के अभ्यस्त थे, जैसे :

तुम इस सिद्धांत और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूं।
तुम इस सिद्धांत और विषय को कैसे जान पाओगे।
तुम गलत विचारों में फंस गए हो। मैं ही केवल सही हूं।
मैं सही बात बोल रहा हूं, तुम नहीं।
तुम पहले को बाद में रख रहे हो, और जो बाद में रखना चाहिए, वह पहले रख

रहे हो।
तुमने उपाय निकालने में इतनी देर कर दी, इससे सब कुछ गड़बड़ हो गया है।
तुम्हारी चुनौती स्वीकार कर ली गई है।
तुम गलत सिद्ध हुए हो।
अपने विचारों को स्पष्ट बताओ।
अगर कर सकते हो तो अपने-आपको मुक्त करो।

ब्राह्मण संदेश ले जाने, दौत्य कार्य करने और राजाओं, राज्य के मंत्रियों, क्षत्रियों, ब्राह्मणों, अथवा युवा मनुष्यों के बीच यह कहते हुए मध्यस्थता करने के अभ्यस्त थे, 'वहां जाओ, यहां आओ, यह अपने साथ ले ज़ाओ, वहां से वह ले आओ।'

ब्राह्मण जो अपने लाभ की लालसा से प्रवंचक, प्रमादी (देने वालों के लिए पवित्र शब्दों के प्रयोग करने वाले), शगुनियां और ओझा का काम करते थे।

ब्राह्मण अपनी जीविका कमाने के लिए गलत साधन अपनाते थे और निम्न स्तर की कलाएं दिखाते थे, जैसे :

1. हस्तरेखा विज्ञान—बच्चे के हाथों, पैरों आदि के निशान से दीर्घ जीवन, समृद्धि आदि (अथवा उसके विपरीत) की भविष्यवाणी करना,
2. शकुनों अथवा लक्षणों से भविष्यवाणी करना,
3. बिजली की कड़क और खगोलीय स्थितियां देखकर शकुन-अपशकुन बताना,
4. स्वप्न की व्याख्या कर भविष्यवाणी करना,
5. शरीर के निशानों को देखकर भविष्यवाणी करना,
6. चूहों के कुतरे हुए कपड़ों के निशानों के आधार पर शकुन-अपशकुन बताना,
7. अग्नि को बलि चढ़ाना,
8. चम्मच से आहुति देना,

9-13. देवताओं को भूसी; भूसी और अनाज का आटा, उबालने योग्य भूसीयुक्त अनाज, घी और तेल की भेंट चढ़ाना,

14. सरसों मुंह से उगलकर अग्नि में डालना,
15. देवताओं के लिए भेंट स्वरूप दाहिने घुटने से खून निकालना,
16. अंगुली की गांठें आदि देखकर मंत्र गुनगुनाने के बाद यह बताना कि अमुक आदमी जन्म से भाग्यशाली है या नहीं,
17. यह बताना कि जिस स्थान पर मकान अथवा क्रीडा-स्थल बनना है, वह शुभ है या नहीं,
18. रीति-रिवाजों के नियमों के बारे में सलाह देना,
19. दुष्ट आत्माओं को समाधि-क्षेत्र में गिरा देना,

20. भूतों को भगाना,
21. मिट्टी के घर में निवास करते समय तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना,
22. सांपों के तंत्र-मंत्र बोलना,
23. जहर की तंत्र विद्या दिखाना,
24. बिच्छू की तंत्र विद्या दिखाना,
25. चुहिया की तंत्र विद्या दिखाना,
26. पक्षी की तंत्र विद्या दिखाना,
27. कौए की तंत्र विद्या दिखाना,
28. यह भविष्यवाणी करना कि आदमी कितने वर्ष और जिएगा,
29. मुसीबत से बचने के लिए तंत्र-मंत्र देना, और
30. जानवरों को नियंत्रण में रखना।

ब्राह्मण निम्न स्तर की कला दिखाकर अपनी आजीविका कमाने के लिए गलत साधन अपनाते थे।

निम्नलिखित चीजों और प्राणियों में अच्छे और बुरे गुण बताते थे तथा उनके निशान देखकर उसके मालिक को शुभ या अशुभ बताते थे :

रत्न, तख्ता, पोशाक, तलवारें, बाण, धनुष, अन्य हथियार, स्त्री-पुरुष, लड़के, लड़कियां, दास-दासियां, हाथी, घोड़े, भैंस, सांड, बैल, बकरियां, भेड़, मुर्गा-मुर्गी, बटेर, गोह, हिलसा, कछुए और अन्य प्राणी।

ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा अपनी आजीविका कमाने के लिए अनुचित साधन अपनाते थे, जैसे कि इस प्रकार की भविष्यवाणी करना :

प्रमुख महोदय कूच करेंगे।
गृह प्रमुख आक्रमण करेंगे और शत्रु पीछे हट जाएंगे।
शत्रु प्रमुख आक्रमण करेंगे और हमारे प्रमुख हार जाएंगे।
गृह प्रमुख विजयी होंगे और हमारे प्रमुख हार जाएंगे।
विदेशी प्रमुख इस ओर विजयी होंगे और हमारे हार जाएंगे।
इस प्रकार यह पक्ष विजयी होगा, वह पक्ष हारेगा।

निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा अपनी आजीविका कमाने के लिए गलत साधन अपनाते थे, जैसे यह भविष्यवाणी करना :

1. चंद्र ग्रहण होगा,
2. सूर्य ग्रहण होगा,
3. नक्षत्रों का ग्रहण होगा,

4. सूर्य अथवा चंद्रमा का विपथन होगा,
5. सूर्य अथवा चंद्रमा अपने सामान्य पथ पर आ जाएंगे,
6. नक्षत्रों का विपथन होगा,
7. नक्षत्र अपने सामान्य पथ पर आ जाएंगे,
8. जंगल में अग्निकांड होगा,
9. उल्कापात होगा,
10. भूचाल आएगा,
11. भगवान वज्रपात करेंगे, और

12-15. सूर्य अथवा चंद्रमा अथवा नक्षत्रों का उदय और अस्त, उनके प्रकाश में तीव्रता अथवा धुंधलापन, अथवा पंद्रह प्रकार की भविष्यवाणी करना कि इनके ऐसे परिणाम होंगे—

ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा अपनी आजीविका कमाने के लिए अनुचित साधन अपनाते थे, जैसे :

1. भारी वर्षा की भविष्यवाणी,
2. कम वर्षा की भविष्यवाणी,
3. अच्छी फसल की भविष्यवाणी,
4. अनाज की कमी होने की भविष्यवाणी,
5. शांति की भविष्यवाणी,
6. अशांति की भविष्यवाणी,
7. महामारी की भविष्यवाणी,
8. अच्छी ऋतु की भविष्यवाणी,
9. अंगुलियों पर गणना,
10. अंगुलियों का इस्तेमाल किए बिना गणना,
11. बड़ी संख्याओं का योग करना,
12. गाथा और कवित्त की रचना करना, और
13. वाक्छल दिखाना, कुतर्क करना।

निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा अपनी आजीविका कमाने के लिए अनुचित साधन अपनाते थे, जैसे :

1. विवाहों के लिए शुभ दिन निश्चित करना, जिसमें वधू अथवा वर को घर लाया जाता है,
2. विवाहों के लिए शुभ दिन निश्चित करना, जिसमें वधू अथवा वर को भेजा

3. शांति की संधियों को संपन्न करने के लिए शुभ समय निश्चित करना (अथवा सद्‌भावना प्राप्त करने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना),
4. युद्ध आरंभ करने के लिए शुभ समय निश्चित करना (अथवा विद्वेष उत्पन्न करने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना),
5. ऋण लेने के लिए शुभ समय निश्चित करना (अथवा पासा फेंकने में सफलता के लिए मंत्रों का जाप करना),
6. धन व्यय करने के लिए शुभ समय निश्चित करना, (अथवा पासा फेंकने वाले प्रतिद्वंद्वी के दुर्भाग्य के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना),
7. लोगों को भाग्यशाली बनाने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना,
8. लोगों को दुर्भाग्यशाली बनाने के लिए मंत्रों का जाप करना,
9. गर्भ गिराने के लिए मंत्रों का जाप करना,
10. किसी व्यक्ति की बत्तीसी जकड़ने के लिए जादू-टोना करना,
11. गूंगापन लाने के लिए जादू-टोना करना,
12. किसी व्यक्ति से हार स्वीकार करवाने के लिए जादू-टोना करना,
13. बहरापन लाने के लिए जादू-टोना करना,
14. मायावी आइने से भविष्य-सूचक उत्तर प्राप्त करना,
15. किसी भूत-ग्रस्त लड़की के माध्यम से भविष्य-सूचक उत्तर प्राप्त करना,
16. देवता से भविष्य-सूचक उत्तर प्राप्त करना,
17. सूर्य की पूजा करना,
18. श्रेष्ठतम की पूजा करना,
19. अपने मुंह से आग की लपटें निकालना, और
20. भाग्य की श्रीदेवी को उत्प्रेरित करना।

ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाएं दिखाकर अपनी आजीविका कमाने के लिए गलत साधन अपनाते थे, जैसे :

1. निश्चित लाभ हो जाने पर किसी देवता को भेंट अर्पित करने की प्रतिज्ञा करना,
2. ऐसी प्रतिज्ञाओं के लिए प्रार्थना करना,
3. मिट्टी के मकान में रहते हुए तंत्र-मंत्र का जाप करना,
4. पुंसत्व उत्पन्न करना,
5. किसी आदमी को नपुंसक बनाना,
6. आवासों के लिए शुभ स्थानों का निर्धारण करना,
7. स्थानों को पवित्र बनाना,
8. मुंह धोने का अनुष्ठान करना,
9. नहाने का अनुष्ठान करना,

10. बलि चढ़ाना,

11-14. वमनकारी और रेचक दवाएं देना,

15. लोगों को सिर दर्द से राहत दिलाने के लिए संस्कारित करना (अर्थात छींकने के लिए दवाई देना),

16. लोगों के कान में तेल डालना (या तो कान बड़े करने के लिए अथवा कान के अंदर के घाव को ठीक करने के लिए),

17. लोगों की आंखें ठीक करना (उनमें दवायुक्त तेल डालकर ठंडक पहुंचाना),

18. नाक के जरिए दवाएं डालना,

19. आंखों में सुरमा लगाना,

20. आंखों के लिए मरहम देना,

21. नेत्र-चिकित्सक के रूप में कार्य करना,

22. शल्य-चिकित्सक के रूप में कार्य करना,

23. बाल-चिकित्सक के रूप में कार्य करना,

24. जड़ी-बूटियां देना, और

25. बारी-बारी से दवाइयां देना।

(अपूर्ण)

4

सुधारक और उनकी नियति

यह जिल्द बद्ध लेख टाईप किए हुए 87 पृष्ठ का है। अम्बट्ठ सुत्त पाण्डुलिपि के पृष्ठ संख्या 69 से आरम्भ होता है और पृष्ठ 70 के पश्चात के पृष्ठों को 'ए' से 'जैड' तक संख्याबद्ध किया हुआ है। लोहिक्क सुत्त पृष्ठ 71 से आरम्भ हुआ है– सम्पादक

I. आर्य समाज II. बुद्ध और सुधार III

सर टी. माधव राव ने अपने समय के हिंदू समाज के बारे में कहा था : जितना अधिक कोई जीवित रहता है, देखता है और सोचता है, उतनी अधिक गहराई से वह महसूस करता है कि हिंदू समाज को छोड़कर पृथ्वी पर अन्य कोई समाज नहीं है, जो राजनैतिक बुराइयों से कम और स्वयं पर थोपी गई या स्वयं स्वीकार की गई या स्वयं पैदा की गई बुराइयों से अधिक ग्रस्त है और इसलिए इन बुराइयों को दूर किया जा सकता है।

ये विचार बिल्कुल सही रूप से और बिना अतिशयोक्ति के हिंदू समाज में सुधार की आवश्यकता बताते हैं।

प्रथम समाज सुधारक और उनमें सबसे महानतम गौतम बुद्ध थे। समाज सुधार का इतिहास ही बुद्ध से शुरू होता है और कोई भी इतिहास उनकी उपलब्धियां बताए बिना अधूरा रहेगा।

सिद्धार्थ का जन्म शाक्य वंश में उत्तर भारत में नेपाल की सीमा के पास कपिलवस्तु नगर में ईसा पूर्व 563 में हुआ था। उनका कुलनाम गौतम था। वह एक राजकुमार थे। उनकी शिक्षा एक राजकुमार के रूप में हुई थी। उनका विवाह हुआ और उनके एक पुत्र भी था। आर्यों के समाज में बुराइयों और दुखों से पीड़ित लोगों को देखकर उन्होंने सच्चाई और मुक्ति की खोज के लिए उनतीस वर्ष की उम्र में सांसारिक जीवन त्याग दिया था। उन्होंने चिंतन-मनन किया तथा दो जाने-माने शिक्षकों से शिक्षा ग्रहण की। लेकिन उनकी शिक्षा से संतुष्ट न होने पर, वे शिक्षकों को छोड़कर श्रमण बन गए। इसे भी व्यर्थ समझकर उन्होंने छोड़ दिया। गहराई से सोचने पर उन्हें बोध हुआ। इस अंतर्ज्ञान के आधार पर उन्होंने अपना धम्म (धर्म) प्रतिपादित किया। यह उन्होंने पैंतीस वर्ष की अवस्था में किया। जीवन के अस्सी वर्षों में से बचे हुए समय में उन्होंने अपने धम्म को फैलाया और बौद्ध मठों की नींव रखी तथा भिक्षुओं का संघ बनाकर उसे चलाया। लगभग ईसा पूर्व 483 में अपने प्रतिबद्ध अनुयायिओं के बीच कुसीनारा में उनकी मृत्यु हो गई।

बोध होने के बाद बुद्ध ने अपना सारा जीवन अपने धम्म चक्र के प्रचार के लिए समर्पित कर दिया। आध्यात्मिक जीवन की ज्ञान-ज्योति प्रज्जवलित रखने के लिए एकांत में समाधि लगाने-ठीक उसी प्रकार जैसे ईसामसीह एकांत में घंटों प्रार्थना करते थे—बौद्ध भिक्षुओं की बड़ी संख्या को जीवंत उपदेश देने, उनमें से ज्यादा विकसित अनुयायियों को आंतरिक विकास की सूक्ष्म बातें बताने, संघ के कार्य के लिए निर्देश देने, अनुशासन तोड़ने वालों को फटकारने, विश्वासपात्रों के गुणों की पुष्टि करने, शिष्टमंडल का स्वागत करने, विद्वान विरोधियों से बहस करने, दुखी को सांत्वना देने, राजा और किसान से, ब्राह्मण और अछूत से, अमीर और गरीब से मिलने के कार्यों में उनका समय बंटा हुआ था। वे इजारेदार और पापियों पर भी कृपालु थे और कई वेश्याओं ने समझ आने, अर्न्तमन को समझने और दया मिलने से गलत मार्ग त्याग दिया और बुद्ध की शरण में आ गईं। इस प्रकार के जीवन के लिए कई प्रकार के नैतिक गुणों तथा सामाजिक प्रतिमानों और अन्य चीजों के अलावा वैभवशाली व्यवहार, कुशलता के साथ प्रजातांत्रिक भावनाओं की आवश्यकता होती है जो कि बहुधा दुर्लभ होती है। वार्तालाप पढ़कर कोई यह नहीं भूल सकता कि गौतम का जन्म और पालन-पोषण एक अभिजात के रूप में हुआ था। वह न केवल ब्राह्मणों और पंडितों से बातचीत करते थे, बल्कि राजकुमारों, मंत्रियों और राजाओं से आसानी व समान रूप से बात करते थे। 'वह एक अच्छे अतिथि हैं और जिनमें परिहास भाव भी है तथा प्रत्येक द्वार उनके स्वागत को उद्यत होता है।' उन्हें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ऐसे चित्रित किया है :

> "पूज्य गौतम दोनों ओर से कुलीन, विशुद्ध वंश के आकर्षक, दिखने में मनोहर, विश्वास जगाने वाले, रंग-रूप में सुंदर, गौर वर्ण, देखने में प्रभावशाली, अर्हत के सद्‌गुणों से सदाचारी, अच्छाई और सद्‌गुण से भरपूर, मधुर और विनम्र स्वर, शांत और स्थिर हैं। वह सबका स्वागत करते हैं, मैत्रीपूर्ण और शांतिकारक हैं, घमंडी नहीं हैं, सब उनसे मिल सकते हैं, और वे बातचीत में रूढ़िवादी नहीं हैं।"

लेकिन उस समय के भारतवासियों को जिस चीज ने आकर्षित किया और जो चीज युगों से आकर्षित करती आई है, उसे उक्त ब्राह्मण ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया :

> "गौतम अपने महान वंशजों को त्यागकर, धन और स्वर्ण, जमीन के दबे हुए और जमीन के ऊपर के खजाने को त्यागकर संन्यासी बने और उन्होंने धार्मिक जीवन अपनाया। वास्तव में जब वे युवक थे, सिर पर एक भी सफेद बाल नहीं था, सुंदर व्यक्ति थे, तब उन्होंने घरबार छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया।"
>
> "उनके ऐसे जीवन से न केवल प्रीतिकर आचरण, सहानुभूति और दयालुता की आशा की जाती है, बल्कि दृढ़ता और साहस भी आवश्यक है।

जब भी समय के अनुसार आवश्यक हुआ, उन्होंने उन लोगों से शांतिपूर्वक संबंध विच्छेद कर लिया, जो संघ का अहित करते थे। उन्होंने शारीरिक कष्ट धैर्य से सहा, लेकिन फिर भी आंतरिक सुख में कमी नहीं हुई। साहस की आवश्यकता थी जो उनमें पाया गया, उदाहरण के लिए, देवदत्त के द्वारा उनकी हत्या के कई प्रयासों और हत्या की धमकियों के बावजूद, वे शांतचित्त बने रहे। कौशल राज्य के प्रसिद्ध डाकू का राज्य के गांवों में आतंक था। उस डाकू से बुद्ध अकेले और बिना अस्त्र के मिलने गए तथा उसका हृदय परिवर्तन किया और इस प्रकार लोक-कंटक से बदलकर उसे संघ का शांतिप्रिय सदस्य बना लिया। कष्ट, खतरे और अनादर उनकी आध्यात्मिक शांति को भंग नहीं कर पाए। जब उन्हें गाली दी गई, तो उन्होंने जवाब में गाली नहीं दी। जिनको सांत्वना व सहयोग की आवश्यकता थी, उनके लिए उनकी तरफ से कोमल सह्रदयता की कमी नहीं थी।"

वह सबको प्रिय थे। बार-बार उनका वर्णन किया जाता है या वह स्वयं वर्णन करते हैं कि उन्होंने लोगों की भलाई के लिए, लोगों की खुशी के लिए, लोगों के लाभ के लिए, भगवान और इंसान की अच्छाई और खुशी और समग्र विश्व से सहानुभूति के लिए जन्म लिया है।

उन्होंने आर्यों के समाज पर अमिट छाप छोड़ी है। यद्यपि उनका नाम भारत के बाहर फैला है, उनकी शिक्षा का प्रभाव अभी तक यहां बना हुआ है।

उनका धर्म बड़ी तेजी से फैला। जल्दी ही यह सारे भारत का धर्म बन गया। लेकिन यह भारत तक ही सीमित नहीं रहा। यह तत्कालीन विश्व के कोने-कोने तक पहुंच गया। हर नस्ल के लोगों ने इसे स्वीकार किया। यहां तक कि एक समय अफगान लोग भी बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। यह एशिया तक ही सीमित नहीं रहा। इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि बौद्ध धर्म ब्रिटेन तक फैला हुआ था।[1]

बौद्ध धर्म के इतनी तेजी से फैलने के क्या कारण थे?

इस बारे में प्रोफेसर होपकिन्स का कथन उद्धृत करने योग्य है। उन्होंने कहा है :

"प्रारंभ से बौद्ध धर्म के तेजी से प्रसार का कारण उसकी शिक्षा तथा उसकी नींव डालने वाले के प्रभावोत्पादकता और प्रश्रय में निहित है। बुद्ध ने लोगों को मोहित कर दिया, उनकी शिक्षा ने उत्साह जगाया, अभिजात के रूप में उनकी जो स्थिति थी, उसने उन्हें अभिजात वर्ग में सम्मानित बनाया, उनमें विद्यमान चुंबकीय आकर्षण ने उन्हें लोगों का भक्ति-भाजन बनाया। इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ से इस शिक्षक और हृदय जीतने वाले का तेजस्वी और

---

1. बुद्धिज्म इन प्री-क्रिश्चियन ब्रिटेन, डा. डोनाल्ड ए. मेकेन्जी, ब्लेकी एंड सन, लंदन, 1928

आकर्षक व्यक्तित्व उभरता है। कोई भी व्यक्ति उनकी तरह भगवान न होते हुए भी भगवान जैसा ही रहा। देवता होने का झूठा दावा नहीं किया, भविष्य के सुख से निस्पृह, अनासक्त, वैराग्य, विचारों में युगांतरकारी लेकिन संसार की मूर्खता की प्यार से उपेक्षा करते हुए, उच्च लेकिन बहुत पसंद किए जाते थे, विश्व-बंधुत्व भाव से संपन्न वह लोगों में साधारण और शांत रूप से घूमते थे, मधुर से मधुरतम वाणी, सभी के आदर्श, सभी से मित्र भाव। उनका स्वर सम्मोहक और पटु था, उनकी आवाज श्रोता को उनका कायल बना देती थी, उनका दर्शन प्रेरणादायक था। परंपरा से ऐसा लगता है कि वे उनमें से एक होंगे, जिनका व्यक्तित्व ही आदमी को न केवल नेता, बल्कि साथियों के हृदय में भगवान बना देने के लिए काफी था। जब ऐसा कोई बोलता है, तो वह श्रोता को वश में कर लेता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह क्या कहते हैं, क्योंकि वह गति को प्रभावित करते हैं और जो भी उनको सुनता है, वह नत-मस्तक हो जाता है। इस व्यक्तित्व के अलावा, दूसरों के मन में यह भावना आती है कि जो भी शिक्षा वह देता है, वह सामान्य नहीं है, बल्कि लोगों की मुक्ति की एक आशा की किरण है, पहली बार उनके शब्दों में सच्चाई पाते हैं जिससे गुलाम एक स्वतंत्र आदमी बन जाता है, वर्गों में भाईचारा पैदा होता है। तब ये देखना मुश्किल नहीं है कि बिजली जैसी स्फूर्ति कहां से उपजती और कैसे एक हृदय से दूसरे हृदय में प्रवाहित होती है। ऐसे आदमी थे बुद्ध, ऐसी उनकी शिक्षाएं थीं, और ऐसी ही अपरिहार्य तीव्रता से बौद्ध धर्म फैला और इस नए मत ने लोगों की नैतिक चेतना पर गहरा प्रभाव डाला।"

बुद्ध ने जब अपना अभियान शुरू किया और उनकी शिक्षा से जो महान सुधार आया, उसको समझने से पहले तत्कालीन आर्य सभ्यता की विकृत स्थिति को जानना आवश्यक है।

तत्कालीन आर्य समुदाय सबसे घृणित सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक व्यभिचार में फंसा हुआ था।

कुछ सामाजिक बुराइयां बताने का एक उदाहरण है, जुआ खेलना। आर्यों में शराब पीने की आदत की तरह जुआ भी समाज में व्यापक रूप से फैला हुआ था।

प्रत्येक राजा के यहां जुआ खेलने के लिए महल के साथ ही एक मंडप हुआ करता था। हर एक राजा जुए के विशेषज्ञ को नौकरी पर रखते, जो खेल के समय राजा का सहायक हुआ करता था। सम्राट विराट की सेवा में कंक जैसा जुआ विशेषज्ञ नौकरी करता था। जुआ राजाओं के केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं था। वे बड़े दांव लगाकर

खेलते थे। वे राज्यों, आश्रितों, रिश्तेदारों, गुलामों आदि को दांव पर लगा देते थे।[1] राजा नल जुए में पुष्कर के साथ खेलते हुये हर चीज को दांव पर लगाकर हार गए। केवल स्वयं को और अपनी पत्नी दमयंती को दांव पर नहीं लगाया। नल को जंगल में जाकर एक भिखारी के रूप में रहना पड़ा। कुछ ऐसे राजा भी थे, जो नल से भी आगे बढ़ गए। *महाभारत*[2] से पता चलता है कि पांडवों के सबसे बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर ने जुए में अपने छोटे भाइयों और पत्नी द्रौपदी सहित सब कुछ दांव पर लगा दिया था। जुआ आर्यों के लिए सम्मान का प्रतीक था और जुए का कोई भी आमंत्रण सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए चुनौती माना जाता था। धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा जुआ खेलने के अनर्थकारी परिणाम हुए। यद्यपि उन्हें ऐसे परिणाम की पहले ही चेतावनी दी जा चुकी थी, उनका बहाना यह था कि उन्हें जुए का आमंत्रण मिला था, और एक सम्माननीय व्यक्ति होने के नाते वह ऐसा आमंत्रण ठुकरा नहीं सकते थे।

जुए का दुर्गुण सिर्फ राजाओं तक सीमित नहीं था। यहां तक कि आम आदमी भी इससे ग्रसित था। ऋग्वेद में जुए से बर्बाद हुए निर्धन आर्य लोगों के विलाप का विवरण मिलता है। कौटिल्य के समय में जुआ खेलना इतनी आम बात हो गई थी कि जुआघरों को राजा द्वारा अनुमति-पत्र दिए जाते थे, जिससे राजा को यथेष्ट राजस्व प्राप्त होता था।

शराब पीना दूसरी बुराई थी, जो आर्यों में प्रचंड रूप से फैली हुई थी। शराब दो प्रकार की हुआ करती थी। सोम और सुरा। सोम यज्ञीय शराब थी। प्रारंभ में ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को इसे पीने की अनुमति थी, बाद में ब्राह्मणों और क्षत्रियों को इसे पीने की अनुमति दी गई। वैश्यों को इसे पीना वर्जित कर दिया गया था और शूद्रों को तो इसका स्वाद चखने की भी अनुमति नहीं थी। इसका बनाना एक गुप्त प्रक्रिया थी, जिसकी जानकारी केवल ब्राह्मणों को थी। सुरा पीने की अनुमति सभी को थी तथा इसे सभी पीते थे। ब्राह्मण सुरा भी पीते थे। असुरों के पुरोहित शुक्राचार्य[3] ने इतनी अधिक पी ली थी कि नशे की स्थिति में उन्होंने मृतसंजीवनी मंत्र बता दिया जो केवल वहीं जानते थे तथा जिसका वह देवों द्वारा मारे गए असुरों को जीवित करने के लिए प्रयोग करते थे। यह मंत्र उन्होंने देवों के पुरोहित बृहस्पति के पुत्र कच को बताया था। *महाभारत* में एक प्रसंग है कि एक बार कृष्ण और अर्जुन ने अत्यधिक सोमरस पी लिया था। यह दर्शाता है कि आर्यों के समाज में सर्वश्रेष्ठ न सिर्फ शराब पीने के ही आदी थे, बल्कि वे बहुत अधिक शराब पीते थे। सबसे शर्मनाक बात तो यह है कि आर्य महिलाएं भी शराब पीने की आदी थीं। उदाहरण के लिए राजा विराट की पत्नी सुदेशना[4] ने अपनी चेरी सैरंध्री को कहा कि कीचक के महल से सुरा ले आओ, क्योंकि वह पीने के लिए मरी

1. *महाभारत,* वन पर्व
2. *वही,* सभा पर्व
3. वही,
4. वही, विराट पर्व, अध्याय 15

जा रही है। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि केवल रानियां ही शराब पीती थीं। शराब पीने की आदत हर वर्ग की महिलाओं में सामान्य बात थी और यहां तक कि ब्राह्मण महिलाएं भी इस आदत से बची हुई नहीं थीं।[1] आर्य महिलाएं शराब पीती थीं और नृत्य करती थीं, यह *कौसीतकी गृह्य सूत्र* (1.11-12) से स्पष्ट है, जिसमें कहा गया है, 'चार या आठ सधवा महिलाएं शराब और भोजन का सेवन कर लेने के बाद वैवाहिक समारोह से पहले की रात में चार बार नाचेंगी'।

अब आर्यों के समाज की बात करें जो कि वर्ग-संघर्ष और वर्ग अप्रतिष्ठा का शिकार था। आर्यों का समाज चार वर्गों को मान्यता देता है। वे हैं— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें विभेद केवल धरातल का नहीं था, सामाजिक संबंधों में ये एक-दूसरे के बराबर थे। ये विभेद ऊंच-नीच का था, एक वर्ग दूसरे के ऊपर था। एक-दूसरे के ऊपर या नीचे होने के कारण चारों वर्णों में ईर्ष्या और विद्वेष था। इस ईर्ष्या और विद्वेष से शत्रुता पैदा हुई। यह शत्रुता दो सर्वोच्च वर्गों, अर्थात ब्राह्मण और क्षत्रियों में अधिक थी। इन दोनों में सतत् वर्ग-संघर्ष चलता रहता था। यह इतना तीव्र था, जिसका विवरण पढ़कर मार्क्सवादी प्रसन्न हो जाएंगे। दुर्भाग्य से ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच के वर्ग-संघर्ष का विस्तृत इतिहास नहीं मिलता है। केवल कुछ उदाहरण लिखे गए हैं। वेन, पुरुरवा, नहुष, सुदास, सुमुख और निमि ऐसे क्षत्रिय राजा थे, जिनका ब्राह्मणों से संघर्ष हुआ था। इन संघर्षों के मुद्दे अलग-अलग थे।

वेन और ब्राह्मणों के बीच मुद्दा यह था कि क्या राजा का प्रभुत्व रहेगा और ब्राह्मण उसकी पूजा करेगा और भगवान को बलि चढ़ाने की बजाय वह राजा को बलि चढ़ाएगा। पुरुरवा और ब्राह्मणों के बीच मुद्दा यह था कि क्या राजा ब्राह्मणों की संपत्ति जब्त कर सकता है या नहीं। नहुष और ब्राह्मणों के बीच मुद्दा यह था कि क्या क्षत्रिय राजा ब्राह्मण से गुलामों जैसा कार्य करवा सकता है। निमि और ब्राह्मणों के बीच मुद्दा यह था कि क्या बलि समारोह के लिए वह परिवार के पुरोहित की सेवाएं लेने को बाध्य था। सुदास और ब्राह्मणों के बीच मुद्दा यह था कि क्या पुरोहित के पद के लिए वह केवल ब्राह्मण की सेवाएं लेने को बाध्य था।

इससे ज्ञात होता है कि इन दोनों वर्गों के बीच कितने बड़े मुद्दे थे। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इनके बीच संघर्ष सबसे अधिक कटु था। इनके बीच संघर्ष केवल

1. निम्न वर्ग की महिलाओं की क्या कहें, सातवीं और आठवीं शताब्दी में आर्यावृत के मध्य क्षेत्र में ब्राह्मण महिलाएं शराब पिया करती थीं, जो कुमारिल भट्ट की तंत्र-वर्तिका (1.3-4) से स्पष्ट है, जिसमें कहा गया है कि 'आधुनिक दिनों के लोगों में हम पाते हैं कि अहिछत्र तथा मथुरा देश की ब्राह्मण महिलाएं शराब पीने की आदी हैं।' कुमारिल ने केवल ब्राह्मणों की पीने की आदत की निंदा की है। लेकिन क्षत्रियों और वैश्यों की पीने की निंदा नहीं की है, यदि शराब फल या फूलों से अर्थात माधवी और शीरे की हो, न कि अनाजों से बनी सुरा।

यदाकदा होने वाले दंगे नहीं थे। यह संघर्ष एक-दूसरे को मिटा देने के संघर्ष थे। परशुराम, जो एक ब्राह्मण थे, क्षत्रियों से इक्कीस बार लड़े और प्रत्येक क्षत्रिय को उन्होंने मार डाला।

वैसे ये दोनों वर्ग सर्वश्रेष्ठता के लिए आपस में लड़ रहे थे, फिर भी दोनों वैश्यों और शूद्रों को वश में रखने के लिए एक थे। वैश्य दूध देने वाली गाय के समान थे। उनका कार्य केवल कर चुकाना था। आमतौर पर शूद्र भार-स्वरूप जानवर थे। इन दो वर्गों का एकमात्र उद्देश्य ब्राह्मण व क्षत्रियों को गौरवमय बनाना और खुशहाल रखना था। इन्हें अपने जीने के कोई अधिकार नहीं थे। ये लोग अपने से श्रेष्ठ लोगों के जीवन के लिए ही जी रहे थे।

इन दोनों वर्गों के नीचे भी अन्य लोग थे। ये चांडाल और श्वपाक थे। ये लोग मात्र अछूत ही नहीं थे, बल्कि नीच माने जाते थे। ये लोग समाज और कानून की परिधि के बाहर थे। इनके न तो कोई अधिकार थे, और न इन्हें कोई अवसर थे। ये आर्यों के समाज से बहिष्कृत थे।

आर्यों के समाज की यौन अनैतिकता जानकर उनके आज के वंशजों को सदमा पहुंचेगा। बुद्ध पूर्व के आर्यों पर यौन या वैवाहिक संबंधों के लिए आज की प्रतिबंधित श्रेणियों जैसा नियम नहीं था।

आर्य धर्मग्रंथों के अनुसार ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता हैं। ब्रह्मा के तीन पुत्र और एक पुत्री थी। उसके एक पुत्र दक्ष ने अपनी बहन से विवाह किया। इस भाई-बहन के विवाह से जो पुत्रियां पैदा हुईं, उनमें से कुछ ने ब्रह्मा के पुत्र मारीचि के पुत्र कश्यप से विवाह कर लिया और कुछ ने ब्रह्मा के तीसरे पुत्र धर्म से विवाह कर लिया।

ऋग्वेद में एक प्रसंग है कि यम और यमी भाई-बहन थे। इस प्रसंग के अनुसार यमी अपने भाई यम को सहवास के लिए आमंत्रित करती है और उसके ऐसा करने से इंकार करने पर क्रोधित हो जाती है।[2]

पिता अपनी पुत्री से विवाह कर सकता था। वशिष्ठ ने अपनी पुत्री शतरूपा के वयस्क हो जाने पर उससे विवाह किया था।[3] मनु ने अपनी पुत्री इला से विवाह किया था।[4] जह्नु ने अपनी पुत्री जाह्नवी से विवाह किया था।[5] सूर्य ने अपनी पुत्री उषा से विवाह किया था।[6] बहुपति-प्रथा प्रचलित थी, जो साधारण किस्म की नहीं थी। आर्यों में जो

---

1. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 66
2. ऋग्वेद,
3. हरिवंश, अध्याय 2
4. वही, अध्याय 10
5. वही, अध्याय 27
6. यास्क निरूक्त, अध्याय 5, खंड 6

बहुपति-प्रथा पाई जाती थी, उसमें एक ही परिवार के कई लोग एक ही औरत से सहवास करते थे। धहाप्रचेतनी और उसके पुत्र सोम ने मरीशा (सोम की पुत्री) से सहवास किया।[1]

दादा द्वारा अपनी पौत्री से विवाह रचाने के उदाहरण कम नहीं हैं। दक्ष ने अपनी पुत्री अपने पिता ब्रह्मा[2] के साथ ब्याह रचाने के लिए दे दी थी और इस ब्याह से प्रसिद्ध नारद का जन्म हुआ था। दौहित्र ने अपनी 27 पुत्रियों को अपने पिता सोम को सहवास और प्रजनन के लिए दे दिया था।[3]

आर्यों को औरत के साथ खुलेआम लोगों की आंखों के सामने सहवास करने में कोई आपत्ति नहीं थी। ऋषिगण एक धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे, जिसे वामदेव्या व्रत कहते थे। यह अनुष्ठान यज्ञ-भूमि पर किया जाता था। यदि कोई औरत वहां आकर सहवास की इच्छा व्यक्त करती थी और ऋषि से अपनी संतुष्टि के लिए कहती थी, तो ऋषि उस समय वहीं खुलेआम यज्ञ-भूमि पर उसके साथ सहवास किया करते थे। इसके कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। ऋषि पराशर को ही लीजिए। उन्होंने सत्यवती के साथ इस प्रकार सहवास किया था। ऋषि दीर्घतप ने भी ऐसा ही किया था। 'अयोनि' शब्द के अस्तित्व से पता चलता है कि यह रिवाज एक सामान्य बात थी। 'अयोनि' शब्द का अर्थ निष्पाप गर्भ धारण समझा जाता है। लेकिन इस शब्द का मूल अर्थ यह नहीं है। 'योनि' शब्द का मूल अर्थ घर होता है। अयोनि शब्द का अर्थ घर से बाहर, अर्थात खुले स्थान पर गर्भ धारण करना होता है। सीता और द्रौपदी, दोनों अयोनिजा थीं। इस तथ्य से पता चलता है कि इसे गलत नहीं माना जाता था। इस प्रथा को रोकने के लिए धार्मिक निषेधादेश जारी करना पड़ा था।[4] इससे भी स्पष्ट है कि यह एक सामान्य बात थी।

आर्यों में अपनी स्त्रियों को कुछ समय के लिए दूसरों को भाड़े पर देने की प्रथा भी थी। उदाहरण के तौर पर माधवी[5] की कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। राजा ययाति ने अपने गुरु गालव को अपनी पुत्री माधवी भेंट स्वरूप दे दी थी। गालव ने माधवी को तीन राजाओं को अलग-अलग अवधि के लिए भाड़े पर दिया था। उसके बाद उसने उसे विवाह रचाने के लिए विश्वामित्र को दे दिया। पुत्र उत्पन्न होने तक वह उनके साथ रही। उसके बाद गालव ने उस लड़की को पुनः उसके पिता ययाति को लौटा दिया।

अस्थाई तौर पर स्त्रियों को दूसरों को भाड़े पर देने की प्रथा के अलावा आर्यों में एक अन्य प्रथा प्रचलित थी, उनमें से सर्वोत्तम पुरुषों को संतानोत्पत्ति की अनुमति देना।

1. हरिवंश, अध्याय 2
2. वही, अध्याय 3
3. हरिवंश, अध्याय 3
4. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 193
5. वही, उद्योग पर्व, अध्याय 106-23

वे परिवार वृद्धि को ऐसा मानते थे, मानो वह प्रजनन अथवा वंश संवर्धन मात्र हो। आर्यों में लोगों का एक ऐसा वर्ग था, जिन्हें देव कहा जाता था, जो पद और पराक्रम में श्रेष्ठ माने जाते थे। अच्छी संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से आर्य लोग देव वर्ग के किसी भी पुरुष के साथ अपनी स्त्रियों को संभोग करने की अनुमति दे देते थे। यह प्रथा इतने व्यापक रूप से प्रचलित थी कि देव लोग आर्य स्त्रियों के साथ पूर्वास्वादन को अपना आदेशात्मक अधिकार समझने लगे। किसी भी आर्य स्त्री का उस समय तक विवाह नहीं हो सकता था, जब तक वह पूर्वास्वादन के अधिकार से तथा देवों के नियंत्रण से मुक्त नहीं कर दी जाती थी। तकनीकी भाषा में इसे 'अवदान' कहते थे। 'लाज होम' अनुष्ठान प्रत्येक हिंदू विवाह में किया जाता है, जिसका विवरण *आश्वलायन गृह्य सूत्र* में मिलता है। 'लाज होम' देवों द्वारा आर्य स्त्री को पूर्वास्वादन के अधिकर से मुक्त किए जाने का स्मृति चिन्ह है। 'लाज होम' में अवदान एक ऐसा अनुष्ठान है, जो देवों के वधू के ऊपर अधिकार का समापन करता है। सप्तपदी सभी हिंदू विवाहों का सबसे अनिवार्य धर्मानुष्ठान है, जिसके बिना हिंदू विवाह को कानूनी मान्यता नहीं मिलती। सप्तपदी का देवों के पूर्वास्वादन के अधिकार से अंगभूत संबंध है। सप्तपदी का अर्थ है, वर का वधू के साथ सात कदम चलना। यह क्यों अनिवार्य है? इसका उत्तर यह है कि यदि देव क्षतिपूर्ति से असंतुष्ट हों तो वे सातवें कदम से पहले दुल्हन पर अपना अधिकार जता सकते थे। सातवां फेरा लेने के बाद देवों का अधिकार समाप्त हो जाता था और वर, वधू को ले जाकर, दोनों पति और पत्नी की तरह रह सकते थे। इसके बाद देव कोई अड़चन नहीं डाल सकते थे और न ही छेड़खानी कर सकते थे। कुमारी के कौमार्य का कोई नियम नहीं था। कोई भी लड़की विवाह किए बिना किसी भी पुरुष के साथ संभोग कर सकती थी और उससे संतान भी उत्पन्न कर सकती थी। 'कन्या' शब्द के मूल अर्थ से यह स्पष्ट है। 'कन्या' शब्द के मूल में 'काम' शब्द है, जिसका अर्थ है कि लड़की स्वयं को किसी भी पुरुष के समक्ष अर्पित करने के लिए स्वतंत्र है। कुंती और मत्स्यगंधा इस बात के उदाहरण हैं कि विधिवत् विवाह किए बिना उन्होंने अपने-आपको अन्य पुरुष को अर्पित किया और बच्चे भी उत्पन्न किए। कुंती ने पांडु के साथ विवाह रचाने से पहले अलग-अलग पुरुषों के साथ संभोग किया और बच्चे पैदा किए। मत्स्यगंधा ने भीष्म के पिता शांतनु से विवाह रचाने से पहले पराशर ऋषि के साथ संभोग किया।

पशुओं के साथ यौन संबंध आर्यों में प्रचलित था। ऋषि किंदम द्वारा हिरनी के साथ मैथुन किए जाने की कहानी सुविदित है।[1] एक दूसरा उदाहरण सूर्य द्वारा घोड़ी के साथ मैथुन किए जाने का है।[2] लेकिन सबसे वीभत्स उदाहरण स्त्री द्वारा अश्वमेध यज्ञ में घोड़े के साथ मैथुन किए जाने का है।

1. महाभारत, अध्याय 1-118
2. वही, 66

आर्यों के धर्म में यज्ञ या बलि का समावेश है। यज्ञ देवताओं के देवत्व में प्रवेश और उन्हें काबू में करने का माध्यम भी था। पारंपरिक यज्ञों की संख्या इक्कीस थी, जिन्हें सात-सात के तीन वर्गों में विभक्त किया गया था। पहले वर्ग के यज्ञों में मक्खन, दूध, अनाज आदि की आहुतियां दी जाती थीं। दूसरे वर्ग में सोम की आहुति और तीसरे में जीव की बलि चढ़ाई जाती थी। यज्ञ अल्पावधि अथवा एक वर्ष या उससे अधिक समय तक चलने वाले दीर्घकालिक हो सकते थे। दीर्घकालिक को सत्र कहा जाता था। यज्ञ के पक्ष में तर्क यह है कि इसे करने वाला शाश्वत पुण्य का भागी बनता है। यज्ञ के माध्यम से स्वयं उस मनुष्य का ही नहीं, अपितु उसके पितरों का भी उद्धार हो जाता है। अपनी भेंट द्वारा वह पितरों को सुख तो प्रदान करता ही है, साथ ही उनका वैभव बढ़ाता है और उन्हें स्वर्गलोक में रहने के लिए भेजता है।[1]

यज्ञ का प्रयोजन मात्र स्वर्गीय आनंद की प्राप्ति में सहायक बनना कदापि नहीं था। अधिकतर बड़े यज्ञ पृथ्वी पर उत्तम वस्तुओं की प्राप्ति के लिए किए जाते थे। भविष्य के किसी लाभ के बिना किसी ने यज्ञ किया हो, इसकी जानकारी नहीं मिलती। ब्राह्मण-प्रधान भारत आभार प्रकट करना नहीं जानता था। सामान्य रूप से किसी व्यक्ति को यह लाभ उस देवता से मुआवजे के रूप में प्राप्त उपहार होता, जिसको आहुति दी जाती। यज्ञ का प्रारंभ इन शब्दों के उच्चारण के साथ होता हैः 'वह इस मंत्र पाठ के साथ देवता को आहुति देता हैः 'तू मुझे दे और मैं तुझे दूंगा; तू मुझे अर्पित कर और मैं तुझे अर्पित करूंगा।'

यज्ञ का अनुष्ठान विस्मय जागृत करता था। हर शब्द परिणाम-गर्भित होता था, यहां तक कि शब्द का उच्चारण अथवा लहजा भी महत्वपूर्ण होता था। तथापि ऐसे संकेत मिलते हैं कि स्वयं पुरोहित भी यह समझते थे कि अधिकांश अनुष्ठान छलावा मात्र हैं और उनका उतना महत्व नहीं है, जितना कि बताया गया है।

प्रत्येक यज्ञ का अर्थ होता था, पुरोहित को दक्षिणा देना। जहां तक दक्षिणा का संबंध है, उसके नियम स्पष्ट थे और उनके प्रतिपादक निर्लज्ज थे। पुरोहित मात्र दक्षिणा के लिए यज्ञ कराता था और उसमें मूल्यवान वस्त्र, गाय, घोड़े अथवा स्वर्ण होता था। कब क्या दिया जाना है, इसका बड़ी सावधानी से उल्लेख किया गया था। पुरोहितों ने कर्मकांड का एक ऐसा जाल बिछाया था कि हर अनुष्ठान पर वे दक्षिणा की मांग करते थे। संपूर्ण व्यय का भार, जो बहुत ही विपुल होता था, उस एक व्यक्ति पर पड़ता था, जिसके लाभ के लिए यज्ञ कराया जाता था। संपूर्ण अनुष्ठान कितना व्ययसाध्य होता था, इसे इस बात से देखा जा सकता है कि एक जगह पर यज्ञ के लिए दी जाने वाली दक्षिणा एक हजार गायों के रूप में बताई गई है। इतने बड़े लोभ के लिए वह यह घोषणा करता

---

1. यह होपकिन्स की पुस्तक *दि रिलीजन आफ इंडिया* से लिया गया है।

था कि जो एक हजार गायों का दान करता है, उसे स्वर्ग की सभी वस्तुएं प्राप्त हो जाती हैं। पुरोहित के पास प्रस्तुत करने के लिए अच्छा पूर्वोदाहरण यह था कि स्वर्ग के देवताओं के बारे में प्रचलित कथाओं में कहा गया है कि वे जब पड़ोसी देवताओं की मदद करते हैं, तो सदैव एक-दूसरे से पुरस्कार की मांग करते हैं। जब देवता पुरस्कार चाहते हैं, तो पुरोहित को भी वैसा करने का अधिकार है।

जीव की बलि चढ़ाई जाने वाला यज्ञ प्रमुख यज्ञ होता था। यह खर्चीला और नृशंस होता था। आर्यों के धर्म में बलि के लिए पांच जीवों का वर्णन है। बलि के लिए जीवों की इस सूची में पहला स्थान मनुष्य का था। नर-बलि सबसे महंगी होती थी। इस बलि के नियमों के अनुसार यह आवश्यक था कि वध किया जाने वाला व्यक्ति न तो पुरोहित हो और न ही दास हो। उसे क्षत्रिय अथवा वैश्य होना चाहिए। उस समय के सामान्य मूल्यांकन के अनुसार बलि के लिए खरीदे जाने वाले मनुष्य का मूल्य एक हजार गायें था। खर्चीला और नृशंस होने के अलावा यह अत्यंत वीभत्स होता होगा, क्योंकि बलि चढ़ाने वालों को केवल मनुष्य का वध ही नहीं करना होता था, बल्कि उसे खाना भी पड़ता था। मनुष्य के बाद दूसरा स्थान घोड़े का था। वह भी काफी खर्चीली बलि होती थी, क्योंकि घोड़ा आर्यों के लिए उनकी भारत विजय में एक दुर्लभ और आवश्यक पशु था। सैन्य शासन के इतने सक्षम साधन को बलि की भेंट चढ़ाना आर्यों के लिए रुचिकर नहीं था। यह बलि इसलिए भी वीभत्स होती होगी, क्योंकि अश्व-बलि चढ़ाने के एक अनुष्ठान में वध किए जाने से पूर्व घोड़े की बलि चढ़ाने वाले की पत्नी के साथ मैथुन कराया जाता था।

आमतौर पर बलि के लिए भेंट किए जाने वाले ऐसे पशु होते थे, जिनका उपयोग लोग अपने कृषि-प्रयोजनों के लिए किया करते थे। उनमें अधिकतर गाय और बैल होते थे।

यज्ञ खर्चीले होते थे और उन पर होने वाले व्यय के विचार से यह प्रथा समाप्त हो सकती थी। लेकिन वह समाप्त नहीं हुई। कारण यह है कि यज्ञ के रुकने से ब्राह्मण को होने वाली दक्षिणा की हानि का प्रश्न इससे जुड़ा हुआ है। यदि यज्ञ कराना रुक जाता तो कोई दक्षिणा भी नहीं रह पाती और ब्राह्मण भूखों मर जाता। इसलिए ब्राह्मण ने खर्चीली जीव-बलि का विकल्प खोज लिया। नर-बलि के लिए ब्राह्मण ने जीवित मनुष्य के स्थान पर घास-फूस अथवा धातु अथवा मिट्टी के बने मनुष्य को प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी। लेकिन उन्होंने इस भय से नर-बलि का पूर्णरूप से त्याग नहीं किया कि कहीं यज्ञों का कराना बंद हो गया तो उन्हें अपनी दक्षिणा से हाथ धोना पड़ेगा। जब नर-बलि बहुत कम हो गई तो उसके विकल्प के रूप में पशु-बलि शुरू हो गई। आम लोगों के लिए पशु-बलि भी खर्चीली थी। यहां भी इस आशंका से कि कहीं इस बलि का प्रचलन ही बंद न हो जाए, ब्राह्मण बड़े पशु के स्थान पर छोटे पशु का सुझाव लेकर

आगे आया, जैसे कि पहले मनुष्य और घोड़े के स्थान पर पशु-बलि की अनुमति दी गई थी। यह सब यज्ञ को जारी रखने के प्रयोजन के लिए किया गया, ताकि ब्राह्मण को दक्षिणा का नुकसान न उठाना पड़े, जो कि उसकी आजीविका थी। ब्राह्मण यज्ञ को जारी रखने के लिए इतने कटिबद्ध थे कि वे भेंट-स्वरूप मात्र चावल प्राप्त करके संतुष्ट हो जाते थे।

तथापि इससे यह नहीं माना जाना चाहिए कि प्रस्तुत विकल्प से आर्यों के यज्ञों की भयावहता में कमी आ गई थी। विकल्पों को अपनाने के बावजूद अधिक खर्चीली और नृशंस बलि का स्थान अपेक्षाकृत कम खर्चीली और निर्दोष बलि ने पूर्ण रूप से नहीं लिया। इससे यही निष्कर्ष निकला कि भेंट बलि कराने वाले की क्षमता के अनुसार हो सकती है। अगर वह गरीब हो तो भेंट चावल की हो सकती है। अगर वह संपन्न हो तो भेंट बकरी की हो सकती है। अगर वह अमीर हो तो भेंट मनुष्य, गाय, घोड़े अथवा सांड की हो सकती है। विकल्पों का प्रभाव यह हुआ कि यज्ञ को सभी की सामर्थ्य के भीतर लाया गया, ताकि कुल-मिलाकर ब्राह्मण अपेक्षाकृत अधिक लाभ अर्जित कर सके। इसके प्रभाव से पशु-बलि नहीं रुक सकी। वास्तव में असंख्य लोगों द्वारा पशु-बलि जारी रखी गई।

यज्ञ में बहुधा नियमित रूप से पशुओं की हत्या होती थी, जिसमें ब्राह्मण बधिकों का काम करते थे। किस सीमा तक इन निर्दोष पशुओं की हत्या होती थी, इसकी कुछ जानकारी बौद्ध साहित्य में निहित यज्ञों के उल्लेख से प्राप्त होती है। *सुत्तनिपात* में एक ऐसे यज्ञ का वर्णन किया गया है, जिसे कौशल-नरेश प्रसेनजित द्वारा संपन्न किए जाने की व्यवस्था की गई थी। यह बताया जाता है कि यज्ञ में वध के लिए खंभों से पांच सौ बैल, पांच सौ सांड, पांच सौ गाएं, पांच सौ बकरियां और पांच सौ मेंमने बांधे गए थे और यज्ञ करने वाले पुरोहितों के आदेशानुसार राजा के सेवकों को जो कार्य सौंपे गए थे, वे अपने कर्तव्यों का पालन अश्रुपूरित नेत्रों से कर रहे थे।

यज्ञ में जहां एक ओर भयंकर हत्या-कांड होता था, वहां वह वास्तव में एक प्रकार का उत्सव बन जाता था। भुने हुए मांस के अलावा, मादक पेय भी सुलभ होते थे। ब्राह्मणों के लिए सोम और सुरा, दोनों ही उपलब्ध होती थी। अन्य लोगों को काफी मात्रा में सुरा सुलभ होती थी। लगभग प्रत्येक यज्ञ के बाद जुआ खेला जाता था और सबसे असाधारण बात यह है कि इसके साथ-साथ खुले में संभोग भी चलता रहता था। यज्ञ अय्याशीपूर्ण बन गए थे और उनमें कोई धर्म शेष नहीं रह गया था।

आर्य धर्म अनुष्ठानों की श्रृंखला मात्र था। इन अनुष्ठानों के पीछे अच्छे और सदाचारी जीवन के लिए कोई ललक नहीं होती थी। पवित्रता के लिए कोई कामना या पिपासा नहीं थी। उनके धर्म में कोई आध्यात्मिक तत्व नहीं था। *ऋग्वेद* के देवगीत आर्य धर्म में आध्यात्मिक आधार की अनुपस्थिति का बहुत ही अच्छा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। देवगीत

आर्यों द्वारा अपने देवताओं के लिए की गई प्रार्थनाएं हैं। इन प्रार्थनाओं में वे क्या कामना करते हैं? क्या वे यह प्रार्थना करते हैं कि उन्हें लोभ से दूर रखा जाए? क्या वे बुराई से छुटकारा पाने की प्रार्थना करते हैं? क्या वे अपने पापों के लिए क्षमादान की प्रार्थना करते हैं? अधिसंख्य देवगीतों में इंद्र की स्तुति की गई है। वे उसकी स्तुति इसलिए करते हैं, क्योंकि उसने आर्यों के शत्रुओं का विनाश किया। वे सभी गुणगान करते हैं, क्योंकि उसने कृष्ण नामक एक असुर की सभी गर्भवती पत्नियों को मार डाला। वे उसकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उसने असुरों के सैकड़ों गांवों को नष्ट कर दिया। वे उसकी सराहना करते हैं, क्योंकि उसने लाखों दस्युओं को मार डाला। वे इस आशा में इंद्र की प्रार्थना करते हैं, ताकि वह अनार्यों का और भी विनाश कर सके, जिससे वे अनार्यों की खाद्य-आपूर्ति के साधन और संपदा प्राप्त कर सकें। ऋग्वेद के देवगीत आध्यात्मिक तथा उन्नायक होने की बजाय, कुत्सित विचारों तथा कुत्सित प्रयोजनों से परिपूर्ण है। आर्य धर्म का सरोकार कभी भी ऐसे जीवन से नहीं रहा, जिसे सदाचारी जीवन कहा जाता है।

II

बुद्ध के अवतरित होने के समय आर्यों के समाज की ऐसी ही स्थिति थी। सुधारक के रूप में आर्यों के समाज को सुधारने के लिए श्रम करने वाले बुद्ध के संबंध में दो संगत प्रश्न हैं। उनके सुधार में मुख्य आधार-स्तंभ क्या थे? अपने सुधार-आंदोलन में वह किस हद तक सफल हुए हैं?

पहले प्रश्न को लें। बुद्ध ने यह अनुभव किया कि अच्छे और विशुद्ध जीवन का बोध कराने के लिए आदेश की अपेक्षा उदाहरण बेहतर है। एक अच्छा और विशुद्ध जीवन बिताकर उन्होंने सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य किया, जिससे कि वह सभी के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर सके। उन्होंने कितना निष्कलंक जीवनयापन किया, इसका परिचय हमें *ब्रह्म जाल सुत्त* से प्राप्त हो सकता है। इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है, क्योंकि इसमें हमें केवल यही जानकारी नहीं मिलती कि बुद्ध ने कितना विशुद्ध जीवनयापन किया, अपितु यह हमें इस बारे में भी जानकारी देता है कि आर्यों में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण कितना अस्वच्छ जीवनयापन करते थे।

ब्रह्म जाल सुत्त

1. ऐसा मैंने सुना है। एक बार महाभाग लगभग पांच सौ बांधवों के साथ राजगृह और नालंदा के बीच मुख्य पथ से होकर गुजर रहे थे। और भिक्षु सुप्पिया भी अपने युवा शिष्य ब्रह्मदत्त के साथ राजगृह और नालंदा के बीच मुख्य पथ से होकर गुजर रहे थे। भिक्षु सुप्पिया, बुद्ध और उनके सिद्धांत एवं संघ की निंदा करते चले जा रहे थे। लेकिन उनके युवा शिष्य ब्रह्मदत्त बुद्ध की प्रशंसा में, सिद्धांत की प्रशंसा में, संघ की प्रशंसा में कई प्रकार से विचार व्यक्त कर रहा था। इस प्रकार परस्पर विरोधी मत रखने वाले गुरु

और शिष्य, दोनों महाभाग और उनके साथी बांधवों के पीछे-पीछे चल रहे थे।

2. अब महाभाग अपने साथी बांधवों के साथ रात गुजारने के लिए अम्बलत्तिका विहारोद्यान के राजकीय विश्रामगृह में रुके। भिक्षु सुप्पिया और उनके साथ उनके युवा शिष्य ब्रह्मदत्त भी वहीं ठहरे और विश्रामगृह में भी वे दोनों उसी विषय पर चर्चा करते रहे।

3. और तड़के बहुत से बांधव जागकर मंडप में एकत्र हुए और आसन ग्रहण करने के पश्चात बातें करने लगे। उनकी वार्ता का रुख इस प्रकार था, 'बंधुओ, यह कितनी आश्चर्यजनक बात है और विचित्र भी कि महाभाग, अर्हत, महान् बुद्ध जो सब-कुछ जानते और देखते हैं, उन्होंने स्पष्ट रूप से यह समझ लिया होगा कि मनुष्यों की प्रवृतियां कितनी भिन्न होती हैं। क्योंकि देखने की बात यह है कि जबकि भिक्षु सुप्पिया बुद्ध, सिद्धांत और संघ की निंदा करते हैं, उनका ही युवा शिष्य ब्रह्मदत्त कई प्रकार से उनकी प्रशंसा में बोलता है। इस प्रकार गुरु और शिष्य, दोनों परस्पर विरोधी विचारों को व्यक्त करते हुए महाभाग और उनके बांधवों के पीछे-पीछे चलते हैं।

4. अब उनकी वार्ता के रुख को समझते हुए महाभाग मंडप में गए और उन्होंने उस आसन पर स्थान ग्रहण किया, जो उनके लिए बिछाया गया था। बैठने के बाद उन्होंने कहा, 'आप यहां बैठे क्या बातें कर रहे हैं, और आपके बीच बातचीत का क्या विषय है? और उन्होंने उन्हें सब-कुछ बता दिया। और उन्होंने कहा :

5. 'बंधुओ, अगर बाहर के लोग मेरे विरुद्ध अथवा संघ के विरुद्ध अथवा सिद्धांत के विरुद्ध बोलते हैं, तो आपको उस आधार पर न तो विद्वेष रखना चाहिए, न ईर्ष्या से पीड़ित होना चाहिए और न दुर्भावना-ग्रस्त होना चाहिए। अगर आप उस आधार पर क्रोध करेंगे अथवा आहत होंगे, तो उससे आपकी अपनी आत्म-विजय में बाधा पहुंचेगी। अगर, दूसरों के हमारे विरुद्ध बोलने पर आप क्रोध करेंगे और दुखी होंगे, तो क्या ऐसी स्थिति में आप यह निर्णय कर सकेंगे कि उनके भाषण में कौन-सी अच्छी या बुरी बात कही गई थी?'

'श्रीमन्, यह नहीं होगा।'

'लेकिन जब बाहर वाले मेरे अथवा सिद्धांत अथवा संघ के विरुद्ध बोलते हैं, तो आपको यह कहकर झूठ का उद्घाटन करना चाहिए और बताना चाहिए कि यह मिथ्या है, क्योंकि इस या उस कारण से यह तथ्य नहीं है, यह ऐसा नहीं है। ऐसी चीज हमारे बीच नहीं होती, न हममें होती है।

6. 'लेकिन बंधुओ, अगर बाहर वाले मेरी, सिद्धांत की और संघ की सराहना में बोलते हैं, तो उस आधार पर आपको आनंदित अथवा हर्षित अथवा गर्वित नहीं होना चाहिए।

यदि आप ऐसा करेंगे, तो इससे भी आपकी आत्म-विजय में बाधा पहुंचेगी। जब बाहर वाले मेरी अथवा सिद्धांत की अथवा संघ की सराहना करते हैं, तो आपको जो तथ्य है, उसे यह कहकर स्वीकार करना चाहिए: इस अथवा उस कारण से यह तथ्य है। यह ऐसा ही है। ऐसी चीज हमारे बीच पाई जाती है, हममें विद्यमान है।'

7. एक गैर-धर्मांतरित व्यक्ति तथागत की सराहना करते हुए केवल छोटी-छोटी चीजों, महत्वहीन बातों और मात्र नैतिकता के बारे में बोलेगा। ऐसी छोटी-छोटी चीजें और मात्र नैतिकता के अल्प ब्यौरे क्या हैं, जिनकी वह सराहना करेगा?

(4)(नैतिकता, भाग I)

8. 'प्राणियों की हत्या को अस्वीकार करते हुए, परिव्राजक गौतम जीवन के विनाश से अलग रहते हैं। उन्होंने गदा और तलवार अलग रख दी है, और कठोरता से लज्जित तथा दया से परिपूर्ण, वह सभी जीवनधारियों के प्रति संवेदनशील एवं दयालु रहते हैं।' तथागत की सराहना में बोलते हुए, गैर-धर्मांतरित व्यक्ति इसी प्रकार बोल सकता है।

अथवा वह कह सकता है : 'जो नहीं दिया गया है, उसको अस्वीकार करते हुए परिव्राजक गौतम उसे ग्रहण करने से अलग रहे जो उनका अपना नहीं है। वह केवल वही लेते हैं जो दिया जाता है, और इस आशा में कि भेंट और आएगी, वह अपना जीवन ईमानदारी तथा हृदय की पवित्रता के साथ व्यतीत करते हैं।'

अथवा वह कह सकता है, 'अशुचिता का परित्याग करते हुए परिव्राजक गौतम ब्रह्मचारी हैं। वह यौनाचार की अश्लील प्रथा से स्वयं को अलग और कोसों दूर रखते हैं।'

9. अथवा वह कह सकता है: 'मिथ्याभाषण का परित्याग करते हुए परिव्राजक गौतम अपने आपको झूठ से अलग रखते हैं। वह सत्य बोलते हैं और सत्य से कभी डिगते नहीं। वह निष्ठावान और विश्वास योग्य हैं तथा विश्व को दिया गया अपना वचन भंग नहीं करते।'

अथवा वह कह सकता है : 'निंदापूर्ण बातों को अस्वीकार करते हुए परिव्राजक गौतम पर-निंदा से दूर रहते हैं। वह जो-कुछ यहां सुनते हैं, उसे यहां से लोगों के बीच विवाद उत्पन्न करने के लिए अन्यत्र दोहराते नहीं हैं, वह अन्यत्र जो-कुछ सुनते हैं, उसे वहां के लोगों के विरुद्ध विवाद उठाने के लिए नहीं दोहराते हैं। इस तरह वह बंटे हुए लोगों को एकजुट करने के लिए जीवनयापन करते हैं, वह मित्रों को प्रोत्साहन देने वाले, शांति स्थापित करने वाले, शांति प्रेमी, शांति के लिए भावपूर्ण और शांतिवर्धक शब्दों के वक्ता हैं।'

अथवा वह कह सकता है : 'अविनयपूर्ण वाणी का परित्याग करते हुए, परिव्राजक गौतम कठोर भाषा का प्रयोग नहीं करते। वह ऐसे शब्द बोलते हैं, जो निर्दोष, कर्ण-प्रिय

मधुर, हृदय-स्पर्शी, सुसंस्कृत, आनंददायक और लोकप्रिय हों।'

अथवा वह कह सकता है : निरर्थक बातों का परित्याग करते हुए परिव्राजक गौतम व्यर्थ की बातचीत नहीं करते। विशेष अवसर पर वह धर्म तथा संघ के अनुशासन के विषय पर तथ्यानुसार बोलते हैं, उनके शब्द सार्थक होते हैं। वह सही समय पर ऐसे शब्द बोलते हैं, जो उपयुक्त उदाहरणों से युक्त, सुस्पष्ट और प्रासंगिक किसी के भी हृदय में बस जाने योग्य होते हैं।'

10. अथवा वह कह सकता है : 'परिव्राजक गौतम बीजों अथवा पौधों को नुकसान नहीं पहुंचाते।'

'वह दिन में केवल एक बार भोजन करते हैं, रात्रि को भोजन नहीं करते, दोपहर के बाद भोजन ग्रहण नहीं करते।

वह नाच, गानों और संगीत से भरपूर खेल-तमाशों और मेलों को देखने नहीं जाते।

वह पुष्पहार पहनने, इत्र तथा अनुलेपन से स्वयं को सुसज्जित करने से दूर रखते हैं।

वह विशाल एवं भव्य शय्या के उपयोग का परिवर्जन करते हैं।

वह चांदी अथवा स्वर्ण ग्रहण करने से दूर रहते हैं।

वह बिना पकाए हुए अन्न को ग्रहण करने से दूर रहते हैं।

वह कच्चा मांस ग्रहण करने से दूर रहते हैं।

वह स्त्रियों अथवा लड़कियों को स्वीकारने से दूर रहते हैं।

वह बंधुआ पुरुषों और बंधुआ स्त्रियों को स्वीकारने से दूर रहते हैं।

वह भेड़ों अथवा बकरियों को लेने से दूर रहते हैं।

वह कुक्कुटों और शूकरों को लेने से दूर रहते हैं।

वह हाथियों, पशुओं, घोड़ों और घोड़ियों को लेने से दूर रहते हैं।

वह जुते हुए खेतों अथवा बंजर भूमि को लेने से दूर रहते हैं।

वह बिचौलिए अथवा संदेशवाहक के रूप में कार्य करने से दूर रहते हैं।

वह क्रय-विक्रय से दूर रहते हैं।

वह तुलाओं, कांस्य तथा मापकों के जरिए धोखा देने से दूर रहते हैं।

वह उत्कोच, ठगी और धोखाधड़ी के कुटिल तरीके से दूर रहते हैं।

वह विकलांग बनाने, हत्या करने, दास बनाने, मुख्य पथों पर लूट, डकैती और हिंसा से दूर रहते हैं।'

बंधुओ, इसी प्रकार की बातें गैर-धर्मांतरित व्यक्ति तथागत की सराहना करते हुए कह सकता है।

*****

कुलशील (आचरण के बारे में छोटा पैरा) यहां पर समाप्त होता है।

*****

11. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण ऐसे नवपादपों और बढ़ते हुए पौधों को हानि पहुंचाने के अभ्यस्त हो जाते हैं, जिनका प्रसार जड़ों अथवा कटाई से अथवा ग्रंथियों अथवा कोपलों अथवा बीजों से होता है, परिव्राजक गौतम नवपादपों और बढ़ते हुए पौधों को इस प्रकार की हानि पहुंचाने से दूर रहते हैं।'

12. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण जिस प्रकार खाद्य, पेय, वस्त्र, साज-सामान, बिस्तरे, इत्र और कढ़ी हुई सामग्री जैसी एकत्रित वस्तुओं के उपयोग के अभ्यस्त हो जाते हैं, परिव्राजक गौतम एकत्रित की गई ऐसी वस्तुओं के उपयोग से दूर रहते हैं।

13. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले परिव्राजक और ब्राह्मण ऐसे तमाशों में जाने के अभ्यस्त हो जाते हैं, जैसे :

1. नाच-नृत्य (नक्कम),
2. गीत गायन (गीतम),
3. वाद्य संगीत (वादितम),
4. मेलों में तमाशे (पेखम),
5. गाथाओं का पाठ (आक्खानम),
6. कर संगीत (पाणिसरम),
7. चारणों का गान (वेताल),
8. टम-टम वाद्य (कुंभाथुनम)
9. सुंदर दृश्य (शोभा नगरकम्),
10. चंडालों द्वारा नटीय करतब (चांडाल वमसा-धोपनम),
11. हाथियों, घोड़ों, भैंसों-सांडों, बकरियों, भेड़ों, मुर्गों और बटेरों की लड़ाई,
12. लठैती, मुक्केबाजी, मल्ल में शक्ति परीक्षण,
13-16. दिखावटी लड़ाई, हाजिरी लेना, युद्धाभ्यास, समीक्षा।

परिव्राजक गौतम ऐसे तमाशों में जाने से स्वयं को दूर रखते हैं।'

14. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले

भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक अथवा ब्राह्मण ऐसे खेलों और मनोरंजनों के अभ्यस्त हो जाते हैं, जैसे :

(1) आठ या दस चौखानों से बनी बिसात (चौपड़),
(2) हवा में ऐसी बिसात की कल्पना करते हुए उसी प्रकार के खेलों का खेला जाना,
(3) जमीन पर खींची गई लकीरों के ऊपर चलते रहना जिससे प्रत्येक अपने अपेक्षित स्थान पर कदम रख सके,
(4) एक ढेरी में से नाखूनों के बल पर बिना हिलाए मोहरों अथवा मनुष्यों को हटाना, अथवा उन्हें ढेरी में रखना जिससे ढेरी हिल जाती है, वह हार जाता है,
(5) पांसा फेंकना,
(6) लंबी छड़ी से छोटी छड़ी पर प्रहार करना,
(7) लाख अथवा लाल रंग अथवा आटे के पानी में सनी, अंगुलियों वाले हाथ को पानी में डुबोना और गीले हाथ को जमीन अथवा दीवार पर मारना, पुकार कर कहना कि 'यह क्या होगा?' और दिखाना कि यह शक्ल हाथी, घोड़ों आदि की होनी चाहिए,
(8) गेंद से खेल खेलना,
(9) पत्तों की बनी हुई खिलौने की बांसुरी बजाना,
(10) खिलौने के हलों से हल चलाना,
(11) कलाबाजियां दिखाना,
(12) ताड़ के पत्तों की खिलौना चक्की बनाकर खेलना,
(13) ताड़ के पत्तों का खिलौना माप बनाकर खेलना,
(14-15) खिलौना गाड़ियों अथवा खिलौना धनुषों से खेलना,
(16) हवा में अथवा साथी खिलाड़ी की पीठ पर लिखे अक्षरों का पूर्वानुमान लगाना,
(17) साथी खिलाड़ी के विचारों का पूर्वानुमान लगाना, और
(18) बहरूपियापन।

'परिव्राजक गौतम इस प्रकार के खेलों और मनोरंजनों से अलग रहते हैं।'

15. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए गए भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण उंचे और विशाल पलंगो के उपयोग के अभ्यस्त हो जाते हैं, जैसे :-

(1) सचल पीठिकाएं, ऊंची और छह फुट लंबी (असंदी),
(2) तख्त जिसकी पीठ पर पशु आकृतियां खुदी हों (पल्लंको),
(3) बकरी के लोमो वाली लंबी चादर (गोनाको),
(4) रंगीन थेगली से बनाए गए पलंगपोश (कित्तका),

(5) सफेद कंबल (पट्टिका),
(6) ऊनी शैयावरण जिनमें फूलों की कढ़ाई की गई हो (पटालिका),
(7) रूई से भरी हुई रजाइयां (तुलिका),
(8) तोशक, जिनमें शेर, बाघ आदि की आकृतियों की कढ़ाई की गई हो। (विकाटिका)
(9) दोनों तरफ पशु लोम लगे हुए गलीचे (उददालोम),
(10) एक तरफ पशु लोक लगे हुए गलीचे (इकांतलोमी),
(11) रत्नजड़ित शैयावरण (कथ्थीसम),
(12) रेशमी शैयावरण (कोसीयम),
(13) सोलह नर्तकियों के लिए पर्याप्त कालीनें (कट्टाकम),
(14-16) हाथी, घोड़े और रथ के नमदे,
(17) हिरन की खालों को सिलकर बनाए गए नमदे (अगीनापवेनी),
(18) जंगली हिरन की खालों से निर्मित नमदे,
(19) कालीन जिनके ऊपर चांदनी हों (सौटारखदाम), और
(20) पीठिकाएं, जिनमें सिर और पैरों के लिए लाल तकिए हों।'
परिव्राजक गौतम ऐसी वस्तुओं के उपयोग से दूर रहते हैं।

16. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण सजने-संवरने और सौंदर्य के साधनों का उपयोग करने के अभ्यस्त हो जाते हैं, जैसे :

अपने शरीर पर सुगंधित चूर्ण मलना, उससे बाल धोना और स्नान करना, पहलवानों की तरह अंगों को गदाओं से थपथपाना, दर्पणों, आंखों का काजल आदि, पुष्पहारों, कुंकुम, सौंदर्य प्रसाधनों, कंगन, कंठहारों, छड़ियों, औषधियों के लिए सरकंडे के खोलों, कटारों, सायबान कशीदाकारी की हुई चप्पलों, पगड़ियों, पुष्प, किरीटों, याक की पूंछ की चंवरों और लंबी झालरदार पोशाकों का इस्तेमाल करना।

'परिव्राजक गौतम शरीर को सज्जित करने, सजने-संवरने के साधनों के उपयोग से दूर रहते हैं।'

17. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण इस तरह के क्षुद्र वार्तालाप के अभ्यस्त हो जाते हैं, जैसे :

राजाओं, डाकुओं, राज्य के मंत्रियों के किस्से, युद्ध, आतंक और लड़ाइयों के वृतांत, खाद्य और पेय पदार्थों, वस्त्र, बिस्तरों, फूल मालाओं, इत्रों के बारे में बातें करना, संबंध-संपर्कों, साज-सामान, गांवों-नगरों, शहरों और देशों के बारे में बातें करना, स्त्रियों और सूरमाओं की कहानियां सुनाना, गली के नुक्कड़ों अथवा पनघट की गपशप करना, भूतों की कहानियां सुनाना, बेढंगी बातें करना, पृथ्वी अथवा समुद्र के उद्भव के बारे

में अथवा अस्तित्व और अनस्तित्व के बारे में अटकलबाजी करना।

'परिव्राजक गौतम ऐसे क्षुद्र वार्तालाप से अलग रहते हैं।'

18. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्ति द्वारा दिए गए भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण ऐसी विवादपूर्ण शब्दावली के प्रयोग से अभ्यस्त हो जाते हैं, जैसे :

तुम इस सिद्धांत और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूं।
तुम इस सिद्धांत और अनुशासन को कैसे जान पाओगे?
तुम गलत विचारों में फंस गए हो। मैं ही केवल सही हूं।
मैं सही बात बोल रहा हूं, तुम नहीं।
तुम पहले को बाद में रख रहे हो और जो बाद में रखना चाहिए, वह पहले रख रहे हो।
तुमने उपाय निकालने में इतनी देर कर दी, इससे सब-कुछ गड़बड़ हो गया है।
तुम्हारी चुनौती स्वीकार कर ली गई है।
तुम गलत साबित हुए हो।
अपने विचारों को स्पष्ट बताओ।
अगर कर सकते हो, तो अपने आपको मुक्त करो।

'परिव्राजक गौतम ऐसी विवादपूर्ण शब्दावली से अलग रहते हैं।'

19. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए गए भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण संदेश ले जाने, दौत्य कार्य करने और राजाओं, राज्य के मंत्रियों, क्षत्रियों, ब्राह्मणों अथवा युवा मनुष्यों के बीच यह कहते हुए मध्यस्थता करने के अभ्यस्त हो जाते हैं : वहां जाओ, यहां आओ, यह अपने साथ ले जाओ, वहां से वे ले आओ।

'परिव्राजक गौतम ऐसे दासोचित कार्यों से अलग रहते हैं।'

20. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए गए भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण जो अपने लाभ की लालसा से प्रवंचक, प्रमादी (देने वालों के लिए पवित्र शब्दों का प्रयोग करने वाले) शगुनिया, ओझा का काम करते हैं।

'परिव्राजक गौतम इस प्रकार की ठगी और गूढ़ भाषा से दूर रहते हैं।'

*****

(मज्झिम शील (आचरण पर लंबा अनुच्छेद) यहां पर समाप्त होता है)

*****

21. अथवा वह कह सकता है: 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए गए भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण अपनी आजीविका कमाने के गलत साधन अपनाते थे और निम्न स्तर की कलाएं दिखाते हैं, जैसे :

(1) हस्तरेखा विज्ञान– एक बच्चे के हाथों, पैरों आदि के निशानों से दीर्घ जीवन, समृद्धि आदि (अथवा उसके विपरीत) की भविष्यवाणी करना,
(2) शकुनों अथवा लक्षणों से भविष्यवाणी करना,
(3) बिजली की कड़क और खगोलीय स्थितियां देखकर शकुन-अपशकुन बताना,
(4) स्वप्नों की व्याख्या कर भविष्यवाणी करना,
(5) शरीर के निशानों के आधार पर भविष्यवाणी करना,
(6) चूहों के कुतरे हुए कपड़ों के निशानों के आधार पर शकुन-अपशकुन बताना,
(7) अग्नि को बलि चढ़ाना,
(8) चम्मच से चढ़ावा चढ़ाना,
(9-13) देवताओं को भूसी; भूसी और अनाज का आटा, उबालने योग्य भूसी निकाला हुआ अनाज, घी और तेल की भेंट चढ़ाना,
(14) सरसों मुंह से उगलकर अग्नि में डालना,
(15) देवताओं के लिए भेंट स्वरूप दाहिने घुटने से खून निकालना,
(16) अंगुलियों की गांठे आदि देखकर मंत्र गुनगुनाने के बाद यह बताना कि अमुक आदमी जन्म से भाग्यशाली है अथवा नहीं,
(17) यह बताना कि जिस स्थान पर मकान अथवा क्रीड़ा-स्थल बनना है, वह शुभ है अथवा नहीं,
(18) रीति-रिवाजों कै नियमों के बारे में सलाह देना,
(19) दुष्ट आत्माओं को समाधि-क्षेत्र में गिरा देना,
(20) भूतों को भगाना,
(21) मिट्टी के घर में निवास करते समय तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना,
(22) सांपों के तंत्र-मंत्र बोलना,
(23) जहर की तंत्र विद्या दिखाना,
(24) बिच्छू की तंत्र विद्या दिखाना,
(25) चुहिया की तंत्र विद्या दिखाना,
(26) पक्षी की तंत्र विद्या दिखाना,

(27) कौए की तंत्र विद्या दिखाना,
(28) यह भविष्यवाणी करना कि आदमी कितने वर्ष और जिएगा,
(29) मुसीबत से बचने के लिए तंत्र-मंत्र देना, और
(30) जानवरों को नियंत्रण में रखना।

'परिव्राजक गौतम ऐसी तुच्छ कलाओं से दूर रहते हैं।'

22. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण क्षुद्र स्तर की कलाएं दिखाकर अपनी आजीविका कमाने के लिए गलत साधन अपनाते थे। निम्नलिखित चीजों और प्राणियों में अच्छे और बुरे गुण बताते थे तथा उनके निशान देखकर उसके मालिक को शुभ या अशुभ बताते थे, जैसे:

> रत्न, तख्ता, पोशाक, तलवारें, बाण, धनुष, अन्य शस्त्र, पुरुष, स्त्रियां, लड़कियां, दास, दासियां, हाथी, घोड़े, भैंसें, सांड, बैल, बकरियां, भेड़, मुर्गा, मुर्गी, बटर, गोह, हिलसा, कछुए और अन्य प्राणी।

'परिव्राजक गौतम ऐसी क्षुद्र कलाओं से दूर रहते हैं।'

23. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा अपनी आजीविका कमाने के लिए अनुचित साधन अपनाते हैं, जैसे कि इस प्रकार की भविष्यवाणी करना :

> प्रमुख महोदय कूच करेंगे, गृह-प्रमुख आक्रमण करेंगे और शत्रु पीछे हट जाएंगे,
> शत्रुओं के प्रमुख आक्रमण करेंगे और हमारे प्रमुख पीछे हट जाएंगे,
> गृह प्रमुख विजयी होंगे, और हमारे प्रमुख हार जाएंगे,
> विदेशी प्रमुख इस पक्ष से विजयी होंगे और हमारे प्रमुख हार जाएंगे,

इस प्रकार यह पक्ष विजयी होगा, वह पक्ष हारेगा।

'परिव्राजक गौतम इस प्रकार की क्षुद्र कलाओं से दूर रहते हैं।'

24. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा अपनी आजीविका कमाने के लिए अनुचित साधन अपनाते हैं, जैसे कि यह भविष्यवाणी करना :

(1) चंद्र ग्रहण होगा,
(2) सूर्य ग्रहण होगा,
(3) नक्षत्रों का ग्रहण होगा,

(4) सूर्य अथवा चंद्रमा का विपथन होगा,
(5) सूर्य अथवा चंद्रमा अपने सामान्य पथ पर आ जाएंगे,
(6) नक्षत्रों का विपथन होगा,
(7) नक्षत्र अपने सामान्य पथ पर आ जाएंगे,
(8) उल्कापात होगा,
(9) जंगल में अग्निकांड होगा,
(10) भूचाल आएगा,
(11) देवता गर्जन करेंगे, और

(12-15) सूर्य अथवा चंद्रमा अथवा तारों का उदय और अस्त, उनके प्रकाश में तीव्रता अथवा धुंधलापन अथवा पंद्रह प्रकार की भविष्यवाणी करना कि इनके ऐसे-ऐसे परिणाम होंगे।

'परिव्राजक गौतम ऐसी क्षुद्र कलाओं से दूर रहते हैं।'

25. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा अपनी आजीविका कमाने के अनुचित साधन अपनाते हैं, जैसे :

(1) भारी वर्षा की भविष्यवाणी,
(2) कम वर्षा की भविष्यवाणी,
(3) अच्छी फसल की भविष्यवाणी,
(4) अनाज की कमी होने की भविष्यवाणी,
(5) शांति की भविष्यवाणी,
(6) अशांति की भविष्यवाणी,
(7) महामारी की भविष्यवाणी,
(8) अच्छी ऋतु की भविष्यवाणी,
(9) अंगुलियों पर गणना,
(10) अंगुलियों का इस्तेमाल किए बिना गणना,
(11) बड़ी संख्याओं का योग करना,
(12) गाथा और कवित्त की रचना करना, और
(13) वाक्छल दिखाना, कुतर्क करना।

'परिव्राजक गौतम इस प्रकार की क्षुद्र कलाओं से दूर रहते हैं।'

26. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा

अपनी आजीविका कमाने के लिए अनुचित साधन अपनाते हैं, जैसे :

(1) विवाहों के लिए शुभ दिन निश्चित करना जिसमें वधू और वर को घर लाया जाता है,

(2) विवाहों के लिए शुभ दिन निश्चित करना जिसमें वधू और वर को भेजा जाता है,

(3) शांति की संधियों को संपन्न करने के लिए शुभ समय निश्चित करना (अथवा सद्भावना प्राप्त करने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना),

(4) विद्वेष आरंभ करने के लिए शुभ समय निश्चित करना (अथवा विद्वेष उत्पन्न करने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना),

(5) ऋण लेने के लिए शुभ समय निश्चित करना (अथवा पांसा फेंकने में सफलता के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना),

(6) धन व्यय करने के लिए शुभ समय निश्चित करना (अथवा पांसा फेंकने वाले प्रतिद्वंद्वी के दुर्भाग्य के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना),

(7) लोगों को भाग्यशाली बनाने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना,

(8) लोगों को भाग्यहीन बनाने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना,

(9) गर्भपात कराने के लिए तंत्र-मंत्र का प्रयोग करना,

(10) किसी व्यक्ति की बत्तीसी जकड़ने के लिए जादू-टोना करना,

(11) गूंगापन लाने के लिए जादू-टोना करना,

(12) किसी व्यक्ति से हार स्वीकार करने के लिए जादू-टोना करना,

(13) बहरापन लाने के लिए जादू-टोना करना,

(14) मायावी आईने से भविष्य-सूचक उत्तर प्राप्त करना,

(15) किसी भूत ग्रस्त लड़की के माध्यम से भविष्य-सूचक उत्तर प्राप्त करना,

(16) देवता से भविष्य-सूचक उत्तर प्राप्त करना,

(17) सूर्य की पूजा करना,

(18) श्रेष्ठतम की पूजा करना,

(19) अपने मुंह से आग की लपटें निकालना, और

(20) भाग्य की देवी श्री को उत्प्रेरित करना।

'परिव्राजक गौतम इस प्रकार की क्षुद्र कलाओं से दूर रहते हैं।'

27. अथवा वह कह सकता है : 'जब कि निष्ठावान व्यक्तियों द्वारा दिए जाने वाले भोजन पर निर्वाह करने वाले कुछ परिव्राजक और ब्राह्मण निम्न स्तर की कलाओं द्वारा

अपनी आजीविका कमाने के लिए अनुचित साधन अपनाते हैं, जैसे :

(1) निश्चित लाभ प्राप्त हो जाने पर किसी देवता को भेंट अर्पित करने की प्रतिज्ञा करना,

(2) ऐसी प्रतिज्ञाओं के लिए प्रार्थना करना,

(3) मिट्टी के मकान में रहते हुए तंत्र-मंत्र का जाप करना,

(4) पुंसत्व उत्पन्न करना,

(5) किसी आदमी को नपुंसक बनाना,

(6) आवासों के लिए शुभ स्थानों का निर्धारण करना,

(7) स्थानों को पवित्र बनाना,

(8) मुंह धोने का अनुष्ठान करना,

(9) नहाने का अनुष्ठान करना,

(10) बलि चढ़ाना,

(11-14) वमनकारी तथा रेचक दवाएं देना,

(15) लोगों को सिरदर्द से राहत दिलाने के लिए संस्कारित करना (अर्थात् छींकने के लिए दवाई देना),

(16) लोगों के कानों में तेल डालना (या तो कान बड़े करने के लिए अथवा कान के अंदर के घाव ठीक करने के लिए),

(17) लोगों की आंखें ठीक करना (उनमें दवायुक्त तेल की बूंदें डालकर ठंडक पहुंचाना),

(18) नाक के जरिए दवाएं डालना,

(19) आंखों में सुरमा लगाना,

(20) आंखों के लिए मरहम देना,

(21) नेत्र-चिकित्सक के रूप में कार्य करना,

(22) शल्य-चिकित्सक के रूप में कार्य करना,

(23) बाल-चिकित्सक के रूप में कार्य करना,

(24) जड़ी-बूटियां देना, और

(25) बारी-बारी से दवाएं देना।

'परिव्राजक गौतम इस प्रकार की तुच्छ कलाओं से दूर रहते हैं।'

'बंधुओ, ये छोटी-छोटी बातें हैं, नैतिकता के अल्प ब्यौरे हैं, जिनके बारे में गैर-धर्मांतरित व्यक्ति तथागत की सराहना करते हुए बोल सकता है।'

*****

(आचरण पर लंबे परिच्छेद यहां पर समाप्त होते हैं)

III

वास्तव में यह किसी भी व्यक्ति द्वारा अनुसरण करने के लिए नैतिक जीवन का सर्वोच्च मानदंड था। गौतम बुद्ध के समय के आर्यों के समाज के लिए नैतिक जीवन का इतना ऊंचा मानदंड बिल्कुल अविदित था।

वह पवित्र जीवन व्यतीत करने का उदाहरण प्रस्तुत करके ही नहीं रुक गए। वह समाज में सामान्य पुरुषों और स्त्रियों के चरित्र को भी बनाना चाहते थे। उनके मार्ग-दर्शन के लिए उन्होंने दीक्षा का एक ऐसा स्वरूप विकसित किया, जिसके बारे में आर्यों का समाज बिल्कुल अनभिज्ञ था। दीक्षा में यह व्यवस्था थी कि बौद्ध धर्म को अंगीकार करने वाले व्यक्ति को बुद्ध द्वारा निर्धारित कुछ नैतिक सिद्धांतों का पालन करने के लिए वचन देना पड़ता था। इन सिद्धांतों को पंचशील नाम से जाना जाता है। ये हैं :

(1) हत्या न करना,

(2) चोरी न करना,

(3) झूठ न बोलना,

(4) कामुक न बनना, और

(5) मादक पेयों का सेवन न करना।

ये पांच सिद्धांत आम लोगों के लिए थे। भिक्षुकों के लिए निम्न पांच और सिद्धांत थे :

(6) वर्जित समयों पर भोजन न करना,

(7) नृत्य, गायन में भाग न लेना अथवा नाट्य अथवा अन्य तमाशों में उपस्थित न होना,

(8) फूलमालाओं, इत्रों और आभूषणों के इस्तेमाल से दूर रहना,

(9) ऊंचे अथवा चौड़ी शैयाओं के उपयोग से दूर रहना, और

(10) कभी भी धन ग्रहण न करना।

इन शीलों अथवा सिद्धांतों से एक आचरण संहिता बन गई थी, जिसका प्रयोजन स्त्रियों और पुरुषों के विचारों और कार्यों को नियमित करना था।

इनमें सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत हत्या न करने का था। बुद्ध ने जोर देकर यह बात स्पष्ट कर दी थी कि इस सिद्धांत का अर्थ केवल यही नहीं है कि जान लेने से बचना चाहिए। उन्होंने आग्रह किया कि इस सिद्धांत का अर्थ प्रत्येक जीवधारी के लिए सकारात्मक संवेदना, सद्भावना और प्रेम समझा जाना चाहिए।

उन्होंने अन्य सिद्धांतों को भी इसी प्रकार के सकारात्मक और व्यापक अर्थ प्रदान किए। बुद्ध के एक साधारण अनुयायी ने उन्हें एक बार अबौद्ध संन्यासी के इस उपदेश के बारे में बताया कि सर्वोच्च आदर्श, बुरे कार्यों, बुरे शब्दों, बुरे विचारों और बुरे जीवन की अनुपस्थिति में निहित है। बुद्ध की इस संबंध में टिप्पणी उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा:

"अगर, यह सच होता तो हर दूध पीता बच्चा जीवन का आदर्श प्राप्त कर लेता... अच्छे और बुरे का ज्ञान जीवन है, और उसके बाद बुरे कार्यों, शब्दों, विचारों और जीवन के बदले अच्छे कार्यों, अच्छे शब्दों, अच्छे विचारों और अच्छे जीवन की प्राप्ति है। यह स्थिति केवल दृढ़ संकल्प और सतत प्रयास द्वारा लाई जा सकती है।..........."

बुद्ध के उपदेश केवल नकारात्मक नहीं थे। वे सकारात्मक और रचनात्मक हैं। बुद्ध अपने सिद्धांतों का अनुसरण करने वाले व्यक्ति से संतुष्ट नहीं होते थे। वह आग्रह करते थे कि दूसरों को उनका अनुसरण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उदाहरणार्थ, *अंगुत्तर निकाय* में बुद्ध ने एक अच्छे मनुष्य और बहुत अच्छे मनुष्य में भेद करते हुए बताया है कि वह जो हत्या, चोरी, कामुकता, झूठ और नशे से दूर रहता है, उसे अच्छा मनुष्य कहा जा सकता है, लेकिन बहुत अच्छा कहलाने योग्य केवल वही मनुष्य होता है, जो स्वयं इन बुरी चीजों से दूर रहता है और दूसरों को भी इससे दूर रखने के लिए प्रेरित करता है।

जैसा कि ठीक कहा गया है, बौद्ध धर्म के दो महत्त्वपूर्ण गुण प्रेम और विवेक हैं।

वह गुण के रूप में प्रेम के व्यवहार को कितनी गंभीरता से हृदयगम कराते थे, उन्हीं के शब्दों से स्पष्ट हो जाता है—'जिस प्रकार अपने जीवन का खतरा उठाते हुए मां अपने शिशु की देख-भाल करती है, उसी प्रकार व्यक्ति को सभी प्राणियों के प्रति अपार प्रेम प्रदान करने के लिए मन बनाना चाहिए। उसे संपूर्ण विश्व के प्रति सद्भावना रखनी चाहिए, ऊपर-नीचे और उस पार सभी के लिए उसके मन में घृणाहीन और शत्रुता रहित अबाध प्रेम होना चाहिए। ऐसी जीवन-पद्धति विश्व में सर्वोत्तम है।' बुद्ध ने ऐसा उपदेश दिया था।[1]

1. सुत्त निपात

'सभी पीड़ित प्राणियों के प्रति व्यापक दयाभाव, संवेदना, प्रत्येक प्रकार के संवेदनशील जीवन के प्रति सद्भावना तथागत (बुद्ध) की विशेषता थी, जैसे कि कुछ अन्य मानव पुत्रों में भी ये विशेषताएं रही हैं और वह अपने दृष्टिकोण को अनुयायियों तक पहुंचाने में अत्यंत आश्चर्यजनक रूप में सफल हुए[1]।'

बुद्ध विवेक के सिद्धांत को उतनी ही दृढ़ता से मानते थे, जितनी दृढ़ता से वह प्रेम के सिद्धांत को मानते थे। उनकी मान्यता थी कि नैतिक जीवन का प्रारंभ ज्ञान के साथ होता है और उसकी समाप्ति विवेक के साथ होती है। वह 'विश्व की रक्षा के लिए आए और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उनका तरीका अज्ञानता का विनाश, जीवन के सही मूल्यों एवं विवेकपूर्ण जीवन पद्धति के लिए ज्ञान का प्रसार करना था।' बुद्ध ने यह दावा नहीं किया कि लोगों का उद्धार करने के लिए उनके पास शक्ति है। लोगों को स्वयं इसके लिए प्रयत्न करना है और ज्ञान के मार्ग पर चलकर उद्धार हो सकता है। उन्होंने ज्ञान पर इतना जोर दिया कि उनके विचार में ज्ञान के बिना नैतिकता कोई गुण नहीं है।

तीन चीजों के विरुद्ध बुद्ध ने महान अभियान छेड़ा था। उन्होंने वेदों की सत्ता को अस्वीकार किया...

दूसरे, उन्होंने धर्म के रूप में बलि की निंदा की। बलि के प्रति बुद्ध का रवैया एक कहानी के रूप में जातक-माला में भली-भांति वर्णित है। कहानी इस प्रकार है :

बलि की कहानी

जिनके हृदय पवित्र हैं, वे दुष्टों के बहकावे में नहीं आते। यह जानते हुए हृदय की पवित्रता के लिए संघर्षरत रहना है। यही उपदेश निम्नलिखित से प्राप्त होगा :

यह कहा जाता है कि बहुत समय पहले बोधिसत्व नाम के एक राजा थे, जिन्होंने अपना राज्य आनुवांशिक उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया था। वह अपने पुण्य कार्यों के प्रभाव से इस स्थिति तक पहुंचे थे। वह शांतिपूर्वक अपने राज्य पर शासन करते थे। किसी प्रतिद्वंद्वी ने अशांति उत्पन्न नहीं की। उनकी प्रभुसत्ता को सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त थी। उनका देश किसी भी प्रकार के कोप, प्रकोप अथवा विपदा से मुक्त था। अपने देश और बाहर के देशों के साथ उनके संबंध हर प्रकार से मधुर थे, और उनके सभी अधीनस्थ उनके आदेशों का पालन करते थे।

1. प्रात-बुद्धिज्म, पृ. 49

1. इस राजा ने अपने इच्छा रूपी शत्रुओं का दमन किया था और उसको ऐसे लाभों के प्रति कोई झुकाव नहीं था जिनका भोग करना बुरा माना जाता है, बल्कि उसकी मनोकामना अपनी प्रजा के सुख-संवर्धन की रहती थी। उसके कर्मों का एकमात्र प्रयोजन धर्माचरण था, वह एक मुनि की तरह व्यवहार करता था।

2. वह मानव स्वभाव को जानता था, लोग सबसे श्रेष्ठ मानव के व्यवहार का अनुकरण करना महत्वपूर्ण मानते हैं, इसलिए अपनी प्रजा को निर्वाण दिलाने की इच्छा से उसने खास तौर से धार्मिक कृत्यों के निष्पादन की ओर विशेष ध्यान दिया।

3. वह भिक्षा-दान करता था, नैतिक आचरण (शील) के सिद्धांतों का कठोरता से पालन करता था, सहिष्णुता की ओर ध्यान देता था और प्राणियों के लाभ के लिए संघर्ष करता था। अपने विचारों के अनुरूप विनम्र स्वरूप था, वह अपनी प्रजा की प्रसन्नता के लिए समर्पित रहता था और धर्म का साकार रूप दिखाई देता था।

एक बार ऐसा हुआ कि उसके द्वारा रक्षित रहते हुऐ भी, उसके राज्य के कई जिले, उनके निवासियों के दोषपूर्ण कार्यों और वर्षा का ध्यान रखने वाले देवों की गलती के परिणाम-स्वरूप सूखे और इस आपदा के विक्षोभकारी प्रभावों से पीड़ित हो गए। अतः राजा को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि उस पर यह विपत्ति स्वयं उसके अथवा उसकी प्रजा द्वारा धर्मपरायणता का उल्लंघन किए जाने के फलस्वरूप आई है और जिन लोगों के कल्याण के प्रति वह दृढ़ प्रतिज्ञ था, उनके कष्ट से उसे हार्दिक वेदना हुई, इसलिए उसने धार्मिक मामलों में अपने ज्ञान के लिए प्रख्यात ज्ञानियों और क्षमता-संपन्न लोगों से सलाह ली। उसने अपने परिवार के पुरोहित की अध्यक्षता में वयोवृद्ध ब्राह्मणों और अपने मंत्रियों को सलाह के लिए बुलाया और उनसे इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए कुछ उपाय पूछे। उन्होंने वेदों के अनुसार बलि में विश्वास व्यक्त करते हुए कहा कि इससे ही पर्याप्त वर्षा हो सकती है। उन्होंने राजा को इस प्रकार की भयावह बलि देने का सुझाव दिया, जिसमें सैंकड़ो जीवधारियों की हत्या अपेक्षित है। लेकिन इस प्रकार की हत्या से संबंधित ऐसी हर बात की सूचना प्राप्त कर लेने पर जो कि बलि के लिए विहित है, उसके सहज करुणाभाव ने उनकी सलाह मानने से मन ही मन में इंकार कर दिया। फिर भी शिष्टतावश अस्वीकृति के कठोर शब्दों से वह उन्हें आहत नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने इस मुद्दे से हटकर बातचीत का रुख अन्य विषयों की तरफ मोड़ दिया।

दूसरी ओर, राजा के मनोभावों से अनभिज्ञ उन लोगों को जब भी धार्मिक मामलों पर राजा से बातचीत का मौका मिलता, तभी वे बलि के लिए उन्हें सचेत करते रहते।

4. 'आप भूमि पर अधिकार प्राप्त करने और उस पर शासन करने के लिए निर्धारित विभिन्न प्रकार के राजकीय कर्तव्यों का समय पर निष्पादन करने का निरंतर ध्यान रखते हैं। इन कार्यों की संपन्नता धर्मपरायणता के सिद्धांतों के अनुरूप है।

5. 'जब कि आप (सभी अन्य मामलों में) 'त्रयी' (धर्म, अर्थ और काम), का अनुपालन इतनी चतुराई से करते हैं, अपने लोगों के हित में रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं, तब क्या कारण है कि आप देवों की दुनिया तक पहुंचाने वाले उस पुल के संबंध में, जिसका नाम 'बलि' है, इतने लापरवाह और लगभग निष्क्रिय हैं?

6. 'सेवकों की तरह राजा (आपके अधीनस्थ) आपके आदेशों का इस विश्वास के साथ आदर करते हैं कि उनसे सफलता निश्चित है। अपने शत्रुओं का विनाश करने वाले, हे राजन, अब समय आ गया है कि आप बलि के जरिए अपने यश में वृद्धि करने वाले वरदान प्राप्त करें।

7.8. 'दान की अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति और संयम (अच्छा आचरण) बरतने में कठोरता के कारण एक दीक्षित के लिए अपेक्षित पवित्रता पहले से ही आपके पास है, तथापि आपके लिए यह उपयुक्त होगा कि आप ऐसी बलि द्वारा, जिनके वर्ण्य विषय वेद हैं– देवों का ऋण चुकाएं। उपयुक्त तथा निर्दोष रूप से कराई गई बलि से संतुष्ट होकर देवता बदले में वर्षा भेजकर प्राणियों का सम्मान करते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए अपने प्रजाजन और स्वयं अपने कल्याण के बारे में सोचिए और नियमित रूप से बलि की स्वीकृति दीजिए, जिससे आपकी कीर्ति बढ़ेगी।'

इस पर राजा के मन में यह विचार आया, 'ऐसे नेताओं के विश्वास पर अवलंबित मुझ में निरीह व्यक्ति वास्तव में असम्यक रूप से रक्षित है। विधान पर निष्ठापूर्वक विश्वास करते हुए और उसका आदर करते हुए भी दूसरों के शब्दों पर निर्भरता मेरी सहृदयता के गुण को समूल नष्ट कर देगी।

9. 'लोगों में जो सर्वोत्तम आश्रयदाता के रूप में विख्यात हैं, वही लोग विधि-विधान के आधार पर अपने तर्कों द्वारा नुकसान पहुंचाने का इरादा रखते हैं। ऐसा व्यक्ति जो उनके द्वारा दिखाए गए गलत रास्ते का अनुसरण करता है, वह शीघ्र ही स्वयं को संकटग्रस्त पाएगा, क्योंकि वह बुराइयों से घिर जाएगा।

10. 'धर्मपरायणता और पशुओं के उत्पीड़न के बीच क्या संबंध हो सकता है? देव लोक में मेरे आवास अथवा देवताओं की आराधना का उत्पीड़ितों की हत्या से क्या सरोकार है?

11.12. 'उनका कहना है कि अनुष्ठानों के अनुसार विहित प्रार्थनाओं से, मानो कि वे पवित्र सूत्र उसे घायल करने के लिए अनगिनत बर्छियां हों, वध किया गया पशु स्वर्ग लोक को जाता है और इसी उद्देश्य से उसकी हत्या की जाती है। इस प्रकार व्याख्या करके इस कार्रवाई को विधिसम्मत माना जाता है। तथापि यह मिथ्या है। क्योंकि यह कैसे संभव है कि परलोक में कोई भी प्राणी दूसरों के द्वारा किए गए कार्य का फल भोग सकता है? और किस कारण से वह पशु, जिसकी बलि दी गई है, स्वर्गारोहण करेगा जब कि वह बुरे कर्मों से दूर न रहा हो और अच्छे कार्यों के लिए उसने स्वयं को समर्पित न किया हो? क्या केवल इसलिए वह स्वर्ग को जाएगा क्योंकि अपने स्वयं के कार्यों के आधार पर उसका वध नहीं हुआ है, बल्कि उसकी बलि दी गई है।

13. 'और अगर बलि में वध किया गया उत्पीड़ित प्राणी वास्तव में स्वर्ग को जाता है, तो क्या हमें ब्राह्मणों से यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि वे बलि में आत्मदाह के लिए स्वयं को प्रस्तुत करें। लेकिन इस प्रकार की कोई प्रथा कहीं भी उनमें नहीं देखी जाती। तो फिर इन सलाहकारों द्वारा दी गई सलाह को कौन हृदगगंम कर सकता है?

14. 'जहां तक देवताओं का प्रश्न है, क्या हम यह विश्वास करें कि जो सुंदर अप्सराओं द्वारा परोसे गए स्वच्छ तथा अतुलनीय सुगंधियुक्त, स्वादिष्ट और गुणकारी व्यंजन ग्रहण करते हैं, क्या वे उसका त्याग करके दयनीय प्राणी के वध का आनंद उठाएंगे? क्या वे बलि में उन्हें भेंट किए गए प्राणी की ओझड़ी अथवा ऐसे अन्य अंगों का आनंदपूर्वक आस्वादन करेंगे?

'इसलिए यह समय अमुक कार्य करने के लिए उपयुक्त है', इस प्रकार इरादा करके राजा ने यह ढोंग किया कि वह बलि का आयोजन करने के लिए तत्पर हैं, और उनका समर्थन करते हुए वह उनसे इस प्रकार बोले : 'यह सच है कि आप जैसे महान सलाहकारों के होते हुए, जो कि मेरी प्रसन्नता के लिए कटिबद्ध हैं, मैं बहुत ही सुरक्षित और संतुष्ट हूं। इसलिए मैं एक हजार वध्य पुरुषों की बलि (पुरुषमेध) कराऊंगा। हर कारोबार के क्षेत्र में रत मेरे कर्मचारियों को इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित वस्तुएं जुटाने के आदेश दे दिए जाएं। साथ ही सबके लिए डेरे डालने और अन्य भवनों का निर्माण करने हेतु सर्वोत्तम भूमि का पता चलाया जाए। साथ ही शुभ चंद्र दिवसों, करणों, मुहूर्तों और नक्षत्रों के बारे में विचार करके (ज्योतिषियों द्वारा) बलि के लिए उपयुक्त समय निश्चित किया जाए।' पुरोहित ने उत्तर दिया, 'अपने उद्यम में सफलता प्राप्त करने के लिए महामहिम को एक बलि के अंत में अवभृथ (अंतिम स्नान) करना होगा और तत्पश्चात् आप क्रमानुसार बलि करा सकते हैं। क्योंकि अगर एक हजार वध्य पुरुषों को एकदम पकड़ लिया जाए तो यह निश्चित है कि आपकी प्रजा आपको दोष देगी और वह एक बड़ा विद्रोह खड़ा कर देगी।' अन्य ब्राह्मणों द्वारा पुरोहित की बात का अनुमोदन किए जाने पर राजा ने उत्तर दिया, 'जनता के क्रोध की आशंका मत कीजिए। आदरणीय महानुभावो, मैं ऐसे

कदम उठाऊंगा, जिससे मेरी प्रजा में किसी प्रकार का विद्रोह नहीं होगा।'

इसके पश्चात राजा ने नगर-पुरुषों और भूधारकों की सभा बुलाई और कहा, 'मेरा इरादा एक हजार नर-बलियां कराने का है। लेकिन मैं समझता हूं कि ईमानदारी से कार्य करने वाला कोई भी व्यक्ति अग्निदाह के लिए उपयुक्त नहीं है। इसी विचार से मैं आपको यह सलाह देता हूं कि आपमें से जिस किसी को आज के बाद नैतिक आचरण की सीमाओं का उल्लंघन और राजकीय इच्छा का निरादर करते हुए देखूंगा, उसे बलि के लिए पकड़वाने का आदेश दूंगा, क्योंकि मेरे विचार में ऐसा व्यक्ति अपने परिवार के लिए कलंक और मेरे देश के लिए खतरा होगा। इस संकल्प को लागू करने के उद्देश्य से दोष रहित और पैनी दृष्टि तथा सदैव सचेत रहने वाले दूत आपका निरीक्षण करते रहेंगे और आपके आचरण के संबंध में मुझे सूचना देंगे।'

तत्पश्चात सभा में अग्रिम पंक्ति के लोग हाथ जोड़कर और उन्हें माथे तक ले जाकर बोले :

15.16. 'महामहिम, आपके सभी कार्य आपकी प्रजा की प्रसन्नता के लिए होते हैं और उस आधार पर आपकी अवज्ञा करने का कारण ही क्या हो सकता है? यहां तक कि ब्रह्मा (देवता) भी केवल आपके व्यवहार का अनुमोदन ही कर सकता है। महामहिम, जो गुणीजनों पर अधिकार रखते हैं, वही हमारे लिए सर्वोत्तम अधिकारी हैं। इस कारण जिससे भी महामहिम को प्रसन्नता होती है, उससे हमें भी अवश्य प्रसन्नता होगी। वास्तव में आपको हमारे आनंद और हमारी भलाई के अलावा किसी भी चीज से प्रसन्नता नहीं मिलती।'

उसके पश्चात नगर और देश के गण्यमान्य लोगों ने जब इस प्रकार उनके आदेश को मान लिया, तो राजा ने सभी नगरों और देश-भर में ऐसे अधिकारियों को भेज दिया जो बाहरी शक्ल-सूरत से लोगों को इस कार्य के लिए उपयुक्त प्रतीत होते थे और उन्हें बुरा कार्य करने वालों को पकड़ने का काम सौंपा गया और प्रतिदिन डुग-डुगी बजाकर सर्वत्र इस प्रकार के आदेश की घोषणा करने का आदेश दिया गया।

17. 'राजा सुरक्षा प्रदान करता है और उस नाते वह हमेशा ईमानदारी से रहने वाले, अच्छे आचरण वाले, संक्षेप में गुणीजन की सुरक्षा का आदेश देता है, फिर भी अपनी प्रजा के लाभ के लिए वह नर-बलि के इरादे से ऐसे लोगों में से हजारों वध्य मानवों को अलग कर लेना चाहता है, जो दुराचरण में आनंद लेते हैं।

18. 'इसलिए आज के बाद जो भी मनमाने तौर पर दुर्व्यवहार करेगा, हमारे राजा के आदेश की अवज्ञा करेगा, जिसके आदेश का पालन उसके अधीनस्थ राजा भी करते हैं, उसे उसी के कार्यों के कारण बलि के वध्य व्यक्ति के रूप में ले जाया जाएगा और लोग उसकी यातनापूर्ण पीड़ा को देखेंगे, जब कि वह पीड़ा से तड़पेगा और उसके शरीर को बलि-स्तंभ से कस कर बांध दिया जाएगा।'

जब राज्य के निवासियों को उनके राजा द्वारा बलि के लिए भेंट चढ़ाने के इरादे से बुरे कर्म करने वालों की सावधानी से की जा रही खोज के बारे में जानकारी मिली, क्योंकि वे दिन-प्रतिदिन अत्यंत भयावह राज-उद्घोषणा सुनते थे और दुष्टजन को खोजने और पकड़ने के लिए नियुक्त किए गए राजा के सेवकों को अक्सर सर्वत्र देखते थे, तो उन्होंने बुरे आचरण के प्रति आसक्ति का त्याग कर दिया और नैतिक सिद्धांतों तथा आत्म-संयम का कठोरता से पालन करने का इरादा कर लिया। वे घृणा और शत्रुता के हर अवसर का त्याग करते रहे और अपने झगड़ों और मतभेदों को निपटाते हुए उन्होंने आपसी प्रेम और आदर-भाव को बढ़ावा दिया। उनमें माता-पिता तथा गुरुजन की आज्ञा का पालन, उदारता और दूसरों से सहयोग की सामान्य भावना, शिष्ट व्यवहार और नम्रता जैसे गुणों का समावेश हो गया। संक्षेप में, वे ऐसे रहते थे, जैसे कि कृत-युग (ब्राह्मण-काल) में रहते हों।

19. मृत्यु के भय ने उनमें परलोक के विचार जागृत कर दिए थे, अपने परिवारों के सम्मान को कलंकित करने के जोखिम ने उन्हें अपनी ख्याति की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया था, उनके हृदय की महान पवित्रता ने उनके लोकलाज के भाव को मजबूत बना दिया था। इन कारणों से शिष्ट व्यवहार वाले लोगों की शीघ्र ही पहचान कर ली जाती थी।

20. यद्यपि हर व्यक्ति पवित्र आचरण बनाए रखने के बारे में पहले से कहीं अधिक कटिबद्ध था, तथापि राज़ के सेवकों ने बुरे कर्म करने वालों की सतर्कता पूर्वक की जा रही खोज में कमी नहीं आने दी। इस कारण से भी लोगों की धर्मपरायणता में गिरावट नहीं आई।

21. राजा को अपने दूतों से जब राज्य की इस स्थिति की जानकारी प्राप्त हुई, तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने शुभ समाचार लाने वाले संदेशवाहकों को पुरस्कार के रूप में बहुमूल्य उपहार प्रदान किए और अपने मंत्रियों को कुछ इस प्रकार बोलते हुए आदेश दियाः

22.24. 'आपको मालूम है कि मेरी सर्वोच्च इच्छा अपनी प्रजा की रक्षा करना है। अब वे बलि के उपहारों को प्राप्त करने योग्य बन गए हैं और बलि के उद्देश्य से ही मैंने यह संपत्ति प्रदान की है। मेरे विचार से बलि को उचित रूप से जिस प्रकार संपन्न किया जाता है, मैं उसे उसी तरह पूरा करना चाहता हूं। जो भी व्यक्ति इस आशय से धन की कामना करता है कि इससे उसकी प्रसन्नता में वृद्धि होगी, उसे अपनी इच्छा की संतुष्टि के लिए मुझसे धन प्राप्त करने के लिए मेरे पास आने दें। इस प्रकार जिस कष्ट और अभाव से हमारा देश पीड़ित है, वह शीघ्र ही दूर हो जाएगा। वास्तव में जब भी मैं अपनी प्रजा की रक्षा के प्रति अपने दृढ़ संकल्प और इस कार्य में आप सरीखे उत्कृष्ट साथियों

से प्राप्त होने वाले असीम सहयोग के बारे में सोचता हूं, तो अक्सर मुझे ऐसा लगता है जैसे कि मेरे लोगों की पीड़ाएं मेरे क्रोध को भड़का कर मेरे मस्तिष्क में ज्वाला की तरह प्रज्ज्वलित हो रही हैं।'

मंत्रियों ने राजाज्ञा को स्वीकार किया और उसे शीघ्र अमल में लाने लगे। उन्होंने सभी गांवों, नगरों और बाजारों और उसी तरह सड़कों पर सभी स्थानों पर भिक्षा-गृहों की स्थापना के लिए आदेश दिए। इस कार्य के संपन्न हो जाने के बाद उन्होंने उन सभी के लिए जो अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए भीख मांगते थे, दिन-प्रतिदिन वे सभी चीजें उसी प्रकार दान-स्वरूप देने की व्यवस्था की, जिस प्रकार राजा ने आदेश दिया था।

25. इस प्रकार निर्धनता दूर हो गई और राजा से धन मिलने पर विविध और अच्छी पोशाकें तथा आभूषण पहन-संवरकर लोगों ने उत्सव जैसे दिनों की भव्यता का प्रदर्शन किया।

26. आनंदित उपहार प्राप्तकर्ताओं के गुणगानों से राजा की कीर्ति सभी दिशाओं में उसी प्रकार फैल गई, जैसे झील की छोटी-छोटी तरंगों द्वारा संवाहित कमल-पुष्पों का पराग सतह पर फैलता ही चला जाता है।

27. और अब अपने शासक द्वारा उठाए गए विवेकपूर्ण कदमों के परिणाम-स्वरूप सभी लोग शिष्ट व्यवहार के अभ्यस्त हो गए, तो समृद्धि के प्रेरक इन सभी गुणों के विकास द्वारा पराजित कष्ट और विपत्तियां लुप्त हो गईं।

28. सदा समय से ऋतुएं आने लगीं और अपनी नियमित रूप से प्रत्येक व्यक्ति को आनंदित करने लगीं और राजा के नए स्थापित कार्य-व्यापार की भांति विधिसम्मत रूप से चलने लगीं। इसलिए पृथ्वी पर्याप्त मात्रा में विभिन्न प्रकार के अनाज उगाने लगी और वहां भरपूर जल सुलभ रहता और सभी जलाशय कमलों से भरे रहते।

29. संक्रामक रोग मानव-जाति को ग्रसित नहीं करते थे, चिकित्सीय जड़ी-बूटियां बहुत ही प्रभावशाली बन गई थीं। वर्षा सदा समय से और नियमित रूप से आने लगी ओर तारामंडल शुभ मार्ग से गुजरने लगा।

30. बाहर से अथवा राज्य के भीतर से या अव्यवस्था फैलाने वाले खतरनाक तत्वों की ओर से कहीं भी कोई भय नहीं था। धर्मपरायणता, आत्म-संयम, शिष्ट व्यवहार और नम्रता का जीवनयापन करते हुए इस देश के लोगों को लग रहा था, मानो वे कृत युग के लाभों का उपयोग कर रहे हैं।

इस प्रकार विधि के सिद्धांतों के अनुसार त्याग-तपस्या करने की राजा की शक्ति द्वारा कष्ट और विपत्तियों की समाप्ति के साथ निर्धनों की पीड़ाएं भी दूर हो गईं और

देश समृद्ध हो गया तथा उसकी संपन्न जनता को आनंद की अनुभूति प्राप्त हुई। तदनुसार वहां के लोग अपने राजा का गुणगान करने और सभी दिशाओं में उसकी ख्याति का विस्तार करने से कभी नहीं थकते थे।

एक दिन एक उच्च अधिकारी जिसका हृदय सत्य (निष्ठा) में प्रवृत्त था, इस प्रकार राजा से बोला, 'सच ही, यह एक सच्ची कहावत है।

31. 'राजा अपने विवेक से कितने ही बुद्धिमान लोगों को पीछे छोड़ देते हैं, क्योंकि उन्हें सदा सभी प्रकार के कार्यों और सबसे ऊंचे, सबसे निचले और मध्यम वर्ग के लोगों से निबटना पड़ता है। महामहिम, क्योंकि आपने पशु-हत्या का दोषी बनने के पाप से मुक्त होकर धर्मपरायणता में जो त्याग-तपस्या का अनुष्ठान किया है, उसके प्रभाव से अपनी प्रजा के लिए इस लोक और परलोक का सुख प्राप्त कर लिया है। अब संकट के दिन बीत गए हैं और गरीबी के कष्ट समाप्त हो गए हैं, क्योंकि लोग अच्छे आचरण के सिद्धांतों में परिपक्व हो चुके हैं। अधिक कहने से क्या लाभ? आपकी प्रजा प्रसन्न है।

32. 'आपके अंगों को आच्छादित करने वाला काले हिरन का चर्म उज्ज्वल चंद्रमा में विद्यमान काले धब्बे के समान है, और न ही आपके ऊपर दीक्षित होने के कारण जो संयम थोपा गया है, वह आपके व्यवहार के सहज सौंदर्य को बाधित नहीं कर सकता। दीक्षा के अनुष्ठानों के अनुरूप आपने सिर पर जो वस्त्र धारण किया है, उसकी चमक आपके द्वारा पहले से धारण किए गए राज-छत्र की भव्यता से कम नही है। और अंत में यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि आपकी विशाल ह्रदयता ने ख्याति प्राप्त लोगों को पीछे छोड़ दिया है और एक सौ बलि देने वालें की प्रसिद्धि के अंहकार को चूर कर दिया है।

33. 'हे बुद्धिमान राजन्, नियमानुसार किसी कामना की प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाले लोगों द्वारा कराई गई बलि एक कुकृत्य है, क्योंकि उसके द्वारा जीवधारियों की हत्या की जाती है। इसके विपरीत आपके द्वारा किया गया त्याग आपकी कीर्ति का स्मारक है और आपके सुंदर व्यवहार और बुराई के प्रति आपकी विमुखता के पूर्णरूप से अनुरूप है।

34. 'आपकी प्रजा प्रसन्न है, जिसे आप जैसा संरक्षक प्राप्त है। यह निश्चित है कि कोई भी पिता अपने बच्चों का आपसे बेहतर अभिभावक नहीं बन सकता।'

एक अन्य अधिकारी ने कहा :

35. 'अगर समृद्ध व्यक्ति दान देते हैं, तो वे सदगुण अपनाने की आशाओं से प्रेरित होते हैं। अच्छा आचरण भी लोगों में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त करने अथवा मृत्यु के पश्चात स्वर्ग पहुंचाने की अभिलाषा से किया जाता है। लेकिन ये दोनों प्रकार के कार्य, जिनका

प्रतिपादन दूसरों को लाभान्वित करने के लिए आपकी दक्षता में दृष्टिगोचर होता है, केवल उन्हीं लोगों द्वारा किए जा सकते हैं, जो ज्ञान और सदगुणों के प्रयास से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार पवित्र हृदय की पवित्रता के लिए संघर्ष किया जाना चाहिए। (राजा के लिए आध्यात्मिक उपदेशों में यह भी कहा जाना चाहिए: जो अपनी प्रजा की भलाई की कामना करते हुए स्वयं प्रयास करता है, और इस प्रकार निर्वाण, कीर्ति और प्रसन्नता लाता है, इसके सिवाय जिसका कोई कार्य नहीं है, वही राजा है।'

और इसमें निम्नलिखित यह जोड़ा जा सकता है: 'जो (राजा) भौतिक समृद्धि के लिए प्रयास करता है, उसे यह सोचते हुए कि उसकी प्रजा का धार्मिक आचरण ही समृद्धि का स्त्रोत है, स्वयं धर्म के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना चाहिए।'

इसमें आगे यह कहा जाना चाहिए: 'पशुओं की हत्या करने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती , बल्कि इसे प्राप्त करने की शक्ति दान, आत्म-संयम, इंद्रिय-निग्रह आदि में निहित है और इसी कारण से जो भी मोक्ष की कामना करता है, उसे इन गुणों के लिए स्वयं प्रयास करना चाहिए।' और तथागत के संबंध में चर्चा करते समय यह भी कहा गया है: 'इस प्रकार स्वामी ने, जब कि वह अभी तक अपने पूर्व अस्तित्व में थे, विश्व के हितों का ध्यान रखने की प्रवृत्ति जताई।'

IV

बलि के विरुद्ध दूसरा प्रबल प्रहार *कूटदंत सुत्त* के नाम से विख्यात उनके प्रवचनों में निहित है । यह इस प्रकार है:

उचित और अनुचित बलि

1. इस प्रकार मैंने सुना है। जब एक बार महाभाग लगभग पांच सौ बांधवों की भारी भीड़ के साथ यात्रा करते समय मगध से गुजर रहे थे, तो वह ब्राह्मणों के खानुमाता नामक एक गांव में पहुंचे और वहां अम्बलत्तिका विहारोद्यान में ठहरे।

उस समय ब्राह्मण कूटदंत खानुमाता में ही रहता था। वह एक ऐसा स्थान था, जिसमें जीवन का स्पंदन था, काफी हरित भूमि और वन्य भूमि थी, पर्याप्त मात्रा में जल और अनाज था। मगध के राजा बिम्बसार ने उपहार स्वरूप उसे यह क्षेत्र भेंट किया था। उस पर उसका ऐसा अधिकार था, मानो वह वहां का राजा हो। और तभी ब्राह्मण कूटदंत की ओर से एक विशाल बलि की तैयारी की जा रही थी। सौ सांडों, सौ बछड़ों, सौ बछियों, सौ बकरियों और भेड़ों को बलि-स्थल पर लाया गया था।

2. जब खानुमाता के ब्राह्मणों और परिवारवालों ने श्रमण गौतम के पहुंचने का समाचार सुना, तो उन्होंने साथियों और भृत्यों के साथ अम्बलत्तिका विहारोद्यान जाने के लिए

खानुमाता से प्रस्थान करना शुरू कर दिया।

3. और तभी ब्राह्मण कूटदंत मध्याह्न विश्राम के लिए अपने मकान के ऊपर की छत पर चला गया था। इस प्रकार लोगों को जाते हुए देखकर उसने अपने द्वारपाल से इसका कारण पूछा। द्वारपाल ने उसे कारण बताया।

4. तब कूटदंत ने सोचाः 'मैने यह सुना है कि श्रमण गौतम तीन उपायों और उसके सोलह सहायक उपकरणों से बलि के सफल निष्पादन के बारे में समझ रखते हैं। लेकिन मुझे इस सबकी जानकारी नहीं है, फिर भी मैं बलि देना चाहता हूं। मेरे लिए यह अच्छा रहेगा कि मैं श्रमण गौतम के पास जाऊं और उसके बारे में उनसे पूछूं।'

इसलिए उसने अपने द्वारपाल को खानुमाता के ब्राह्मणों और अन्य गृहस्थों के पास यह कहने के लिए भेजा कि वे उसकी प्रतीक्षा करें, जिससे कि वह उनके साथ ही महाभाग से मिलने जा सके।

5. लेकिन उस समय विशाल बलि में भाग लेने के लिए बहुत से ब्राह्मण गांव में ठहरे हुए थे। और जब उन्होंने इस बारे में सुना तो वे कूटदंत के पास गए और उसे वहां न जाने के लिए उसी आधार पर समझाया, जिस आधार पर ब्राह्मणों ने पहले सोनदंड को समझाया था। लेकिन उसने भी उन्हें उसी प्रकार का उत्तर दिया, जैसा कि सोनदंड ने उन ब्राह्मणों को दिया था। तब वे संतुष्ट हो गए और उसके साथ ही महाभाग से मिलने चले गए।

9. कूटदंत ब्राह्मण ने आसन ग्रहण करने के बाद महाभाग को वह सब-कुछ बताया, जो उसने सुना था और उनसे प्रार्थना की कि वह उसे तीन उपायों और सोलह प्रकार के सहायक उपकरणों से बलि के सफल निष्पादन के बारे में बताएं।

'अच्छा, तो हे ब्राह्मण, ध्यान से सुनो और मैं बताऊंगा।'

'बहुत अच्छा, श्रीमन्', कूटदंत ने उत्तर में कहा, और महाभाग ने निम्न प्रकार से बखान कियाः

> 10. हे ब्राह्मण, बहुत समय पहले महाविगत नामक शक्तिशाली राजा था। उसके पास बहुत धन और विपुल संपत्ति थी, चांदी और सोने के भंडार थे, आनंद के अपार साधन थे, वस्तुओं और अनाज के आगार थे और उसके कोष तथा धान्यागार भरे रहते थे। जब एक बार राजा महाविगत अकेले ध्यानमग्न था, उसे इस विचार से चिंता हुई कि मेरे पास सभी अच्छी वस्तुओं की प्रचुरता है, जिसका कोई नश्वर व्यक्ति जी भरकर उपभोग कर सकता है, संपूर्ण पृथ्वी वृत्त विजय द्वारा मेरे स्वामित्व में है, कितना अच्छा होता अगर मैं एक महान बलि दे सकता, जिससे बहुत दिनों तक मेरा सुख और कल्याण सुनिश्चित हो जाता। और उसने ब्राह्मण को जो उसका

पुरोहित था, बुलाया, जो कुछ भी उसने सोचा था, उसे बताया और कहा, हे ब्राह्मण, मैं बहुत दिनों तक अपने सुख-शांति और कल्याण के लिए एक विशाल बलि देना चाहता हूं , इसलिए, श्रद्धेय, मुझे अनुदेश दें कि यह कृत्य कैसे संपन्न कराया जा सकता है।'

11. इस पर ब्राह्मण ने, जो पुरोहित था, राजा से कहा: 'श्रीमन्, राजा का देश संकट-ग्रस्त तथा लूटपाट से उत्पीड़ित है। देश से बाहर जो डाकू हैं, वे गांवों और नगरों में डाका डालते हैं और सड़कों को असुरक्षित बनाते हैं। जब तक ऐसी स्थिति रहती है, तब तक राजा कोई नया कर लगा दें, तो सचमुच महामहिम का यह कार्य अनुचित होगा। लेकिन संयोगवश महामहिम यह भी सोच सकते हैं कि मैं, अपमानित तथा देश-निष्कासित करके, दंडित करके और कारावास तथा मृत्यु-दंड द्वारा शीघ्र ही इन दुष्टों का प्रपंच समाप्त कर दूंगा। लेकिन उनका स्वेच्छाचार पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता, जो दंडित होने से बच निकलेंगे, वे राज्य में परेशानी पैदा करते रहेंगे। इस अव्यवस्था को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिए एक उपाय काम में लाया जा सकता है। राजा के राज्य में जो भी लोग पशुपालन और खेती करते हैं, उन्हें महामहिम खाद्य तथा बीज प्रदान करें। राजा के राज्य में जो भी लोग व्यापार करते हैं, उन्हें महामहिम पूंजी प्रदान करें। राजा के राज्य में जो भी लोग सरकारी सेवा करते हैं, उन्हें महामहिम वेतन और खाद्य प्रदान करें। तब वे लोग अपना-अपना कारोबार करते हुए कभी भी राज्य में संकट उत्पन्न नहीं करेंगे। राजा का राजस्व बढ़ेगा, देश में शांति रहेगी और एक-दूसरे के साथ सुख-चैन से निर्वाह करते हुए सामान्य जन अपनी बाहों में अपने बच्चों को झुलाते हुए द्वार खुला रखकर रहेंगे।'

हे ब्राह्मण, राजा महाविगत ने अपने पुरोहित की बात मान ली और उसी के कथनानुसार कार्य किया। और अपना-अपना कारोबार करते हुए उन लोगो ने कभी राज्य में कठिनाई उत्पन्न नहीं की। राजा का राजस्व बढ़ गया और देश में सुख-शांति छा गई। सामान्य जन एक-दूसरे के साथ सुख-चैन से निर्वाह करते हुए अपनी बाहों में अपने बच्चों को झुलाते हुए द्वार खुले रखकर रहने लगे।

12. तब राजा महाविगत ने अपने पुरोहित को बुलवाया और उससे कहा: 'अव्यवस्था समाप्त हो गई है। देश में शांति है। मैं बहुत दिनों तक अपनी सुख-शांति और कल्याण के लिए महान बलि देना चाहता हूं, इसलिए, श्रद्धेय, मुझे अनुदेश दें कि यह कृत्य कैसे संपन्न कराया जा सकता है।'

'तो राजा के राज्य में जो भी क्षत्रिय हों, उनके भृत्य हों, चाहें वे देहात में हों अथवा नगरों में हों, अथवा जो उनके मंत्री और कर्मचारी हों, चाहे वे देहात में हों

अथवा नगरों में हों, अथवा जो मान्य ब्राह्मण हों, चाहे वे देहात में हों अथवा नगरों में हो, अथवा जो महत्वपूर्ण परिवार हों, चाहे वे देहात में हों अथवा नगरों में हों, उन्हें वह यह कहते हुए निमंत्रण भेजेः मैं एक बलि देना चाहता हूं, जिससे बहुत दिनों तक मुझे सुख-शांति और कल्याण प्राप्त हो सके।' श्रद्धेय, उसके लिए अपनी स्वीकृति प्रदान करें।'

हे ब्राह्मण, राजा महाविगत ने अपने पुरोहित की बात मान ली और निमंत्रण भेजे। क्षत्रियों, ब्राह्मणों और अन्य गृहस्थों ने एक जैसा उत्तर दियाः महामहिम, बलि संपन्न कराएं । राजन् समय उपयुक्त है।

इस प्रकार ये चारों सहमति से सहयोगी के रूप में बलि कराने के लिए साधन बन गए।

13. राजा महाविगत निम्नलिखित आठ गुणों से युक्त थेः उनका जन्म मातृ पक्ष और पितृ पक्ष, दोनों की ओर से अच्छे कुल में हुआ था, उनकी पिछली सात पीढ़ियां पवित्र तथा शालीन थीं, जन्म के संबंध में उन पर कोई कलंक नहीं लगा और किसी ने अंगुली नहीं उठाई।

वह सुंदर, आकर्षक, विश्वासोत्पादक, अत्यंत मनोहर स्वरूप वाले, गौर वर्ण और देखने में भव्य थे।

वह शक्तिशाली थे, प्रचुर धन-संपदा और विपुल संपत्ति से युक्त थे, चांदी और सोने, विलासिता सामग्री और अनाज के भंडारों से उनके कोष और धान्यागार परिपूर्ण रहते थे।

वह ताकतवर थे, स्वामिभक्त तथा अनुशासित चतुरंगिणी सेना (हाथी, घुड़सवार, रथ और धनुर्धर) उनके आदेशाधीन थी, मेरे विचार में अपनी कीर्ति द्वारा ही वह अपने शत्रुओं का दलन करते थे।

वह आस्थावान और उदार थे, शालीन दानी थे, घर खुला रखते, और उनके कुएं से सामान्य-जन और ब्राह्मण, निर्धन और राहगीर, भिखारी और याचक पानी भर सकते थे, वह अच्छे कार्यों के कर्ता थे।

वह सभी प्रकार के ज्ञान में अग्रणी थे।

वह कही गई बात का अर्थ समझते थे, और उसे समझा सकते थे, यह कहावत इस प्रकार है और इसका ऐसा अर्थ है।

वह बुद्धिमान, विशेषज्ञ और चतुर थे तथा वर्तमान अथवा भूत अथवा भविष्य के बारे में विचार कर सकते थे।

और उनके ये आठ गुण भी उस बलि के लिए साधन बन गए थे

14. उनका ब्राह्मण (पुरोहित) इन चार गुणों से संपन्न था—उसका जन्म मातृ पक्ष और पितृ पक्ष, दोनों की ओर से अच्छे कुल में हुआ था, उसकी पिछली सात पीढ़ियां पवित्र तथा शालीन थीं, जन्म के संबंध में उस पर कोई कलंक नहीं लगा और किसी ने अंगुली नहीं उठाई।

वह आवृत्तिकर्ता विद्यार्थी था जिसे रहस्यवादी पद्य कंठस्थ थे, वह तीन वेदों का ज्ञाता था और उसके अनुक्रम, उनकी क्रिया-पद्धति, ध्वनि-शास्त्र और भाष्य से परिचित था। उसे पुराणों की जानकारी थी, वह मुहावरों और व्याकरण में निष्णात था, लोकायत (जनश्रुति संकलन) का अच्छा ज्ञान रखता था और एक महापुरुष के शरीर में विद्यमान तीस लक्षणों से परिचित था।

वह सदाचारी था, सदाचार के लिए सिद्ध हो गया था और ऐसे गुणों से जिनको महान माना जाता है, युक्त था।

वह बुद्धिमान, विशेषज्ञ और चतुर था। आदर-सत्कार करने वालों में उसका पहला नहीं, तो दूसरा स्थान अवश्य था। इस प्रकार उसके चार गुण भी बलि कराने के लिए साधन बन गए।

15. और, हे ब्राह्मण, पुरोहित ने बलि प्रारंभ कराने से पहले राजा महाविगत को तीन विधियां समझाईः 'अगर महामहिम राजा विशाल बलि प्रारंभ कराने से पूर्व इस प्रकार का कोई खेद महसूस करें, जैसे—हाय, इसमें मेरी धन-संपत्ति का काफी हिस्सा चला जाएगा, तो राजा को इस प्रकार के खेद को स्थान नहीं देना चाहिए। अगर महामहिम राजा विशाल बलि प्रस्तुत कराते हुए इस प्रकार का कोई खेद महसूस करें, जैसे—हाय, इसमें मेरी धन-संपत्ति का काफी हिस्सा चला जाएगा, तो राजा को इस प्रकार के खेद को स्थान नहीं देना चाहिए। अगर महामहिम राजा विशाल बलि कराने के बाद इस प्रकार का कोई खेद महसूस करें, जैसे—हाय, इसमें मेरी धन-संपत्ति का काफी हिस्सा चला जाएगा, तो राजा को इस प्रकार के खेद को स्थान नहीं देना चाहिए।'

इस प्रकार, हे ब्राह्मण, बलि प्रारंभ कराने से पूर्व पुरोहित ने राजा महाविगत को तीन विधियां समझाईं।

16. और इसके आगे, हे ब्राह्मण, बलि प्रारंभ होने से पूर्व किसी भी ऐसे पश्चाताप के निवारण के लिए, जो बाद के दस दिनों में उन लोगों के सबंध में उत्पन्न हो सकता है जिन्होंने उसमें भाग लिया हो, पुरोहित ने कहा, 'हे राजन्, आपके द्वारा आयोजित बलि में ऐसे मनुष्य आएंगे जो जीवित प्राणियों का जीवन नष्ट करते

हैं। और ऐसे भी जो उससे दूर रहते हैं, ऐसे मनुष्य जो उन चीजों को ग्रहण करते हैं जो उनको न दी गई हों और ऐसे भी जो उनसे दूर रहते हैं। ऐसे मनुष्य जो झूठ बोलते हैं और ऐसे भी जो झूठ नहीं बोलते, ऐसे मनुष्य जो पर निंदा करते हैं और ऐसे भी जो ऐसा नहीं करते, ऐसे मनुष्य जो अशिष्टता से बोलते हैं और ऐसे भी जो ऐसा नहीं करते, ऐसे मनुष्य जो व्यर्थ की बातें करते हैं और ऐसे भी जो उनसे अलग रहते हैं, ऐसे मनुष्य जो लोभ करते हैं और ऐसे भी जो लोभ नहीं करते, ऐसे मनुष्य जो दुर्भावना रखते हैं और ऐसे भी जो दुर्भावना नही रखते, ऐसे मनुष्य जिनके विचार अनुपयुक्त होते हैं और ऐसे भी जिनके विचार उपयुक्त होते हैं। इनमें से जो भी बुरा कार्य करता है, उसे उसके कर्म पर छोड़ दें। जो अच्छा कार्य करते हैं, उन्हें महामहिम भेंट प्रदान करें। राजन्, उनके लिए अनुष्ठानों की व्यवस्था करें, उन्हें संतुष्टि दें, जिससे हमें भी आंतरिक शांति प्राप्त हो सकेगी।'

17. और फिर, हे ब्राह्मण, जब कि राजा बलिदान करा रहे थे तो पुरोहित ने सोलह उपायों से उनको अनुदेश दिया, प्रेरित किया और हर्षित किया। उसने कहा, 'जब कि राजा बलिदान करा रहे हैं, उनके बारे में लोग अगर यह कहें: राजा महाविगत अपनी प्रजा के चार वर्णों को आमंत्रित किए बिना, स्वयं आठ व्यक्तिगत गुणों से संपन्न न होने पर भी और चार व्यक्तिगत गुणों से मुक्त ब्राह्मण की सहायता के बिना बलिदान करा रहे हैं, तो उनका यह कथन तथ्य के अनुसार नहीं होगा। क्योंकि चार वर्णों की सहमति प्राप्त कर ली गई है और राजा आठ व्यक्तिगत गुणों से तथा उनके ब्राह्मण चार व्यक्तिगत गुणों से संपन्न हैं। जहां तक इन सोलह शर्तों में से प्रत्येक का संबंध है, राजा को इस बात से आश्वस्त किया जा सकता है कि हर शर्त पूरी कर ली गई। वह बलिदान करा सकते हैं, प्रसन्न हो सकते हैं और अपने मन की शांति प्राप्त कर सकते हैं।'

18. और फिर, हे ब्राह्मण, उस बलिदान में न तो कोई बैल, न बकरियां, न मुर्गे, न मांसल सुअर और न किसी प्रकार के जीवित प्राणी ही मारे गए। खंभों के रूप में इस्तेमाल करने के लिए कोई वृक्ष नहीं काटे गए और बलिदान-स्थल के चारों ओर विकीर्ण करने के लिए न कोई घास ही काटी गई। और वहां नियुक्त किए गए दासों, दूतों और कर्मचारियों को न तो डंडों से हांका जा रहा था और न वे भय से त्रस्त थे। काम करते हुए न तो वे रो रहे थे और न उनके चेहरे अश्रुपूरित थे। जो भी मदद करना चाहता था, वह काम करता था। जो मदद नहीं करना चाहता था, वह काम नहीं करता था। सभी अपनी रुचि के अनुकूल कार्य करते थे। जिस कार्य में उनकी रुचि नहीं थी, उसे वे बिना किए छोड़ देते थे। घी और तेल, दूध और मक्खन, शहद और खांड से ही वह बलिदान संपन्न किया गया।

19. और फिर, हे ब्राह्मण, क्षत्रिय, भृत्य, और मंत्री तथा कर्मचारी, प्रतिष्ठित ब्राह्मण

और महत्वपूर्ण गृहस्थ , चाहे वे देहात के हों अथवा नगरों के, अपने साथ काफी धन-संपत्ति लेकर राजा महाविगत के पास गए और उन्होंने कहा, 'यह प्रचुर धन संपत्ति हम राजा के उपयोग के लिए लाए हैं। महामहिम, हमारे हाथों से इसे ग्रहण कर लें। इस पर राजा महाविगत ने कहा' मित्रो, मेरे पास पर्याप्त धन-संपत्ति हैं। कराधान की राशि ही बहुत है। आप अपनी संपत्ति रखिए और अपने साथ और भी ले जाइए।'

इस प्रकार राजा द्वारा उनकी बात मानने से इंकार कर दिए जाने पर, वे एक तरफ चले गए और उन्होंने एक-दूसरे के साथ इस प्रकार विचार-विमर्श किया– यदि हम इस धन-संपत्ति को पुनः अपने घरों को वापस ले जाएं, तो यह हमारे लिए उचित नहीं होगा। राजा महाविगत महान बलिदान कर रहे हैं। हमें भी इस कार्य मे योगदान करना चाहिए।

20. इसलिए राजा द्वारा निर्मित बलिदान-स्थल के पूर्व में क्षत्रियों ने , दक्षिण में कर्मचारियों ने, पश्चिम में ब्राह्मणों ने और उत्तर में अन्य गृहस्थों ने निरंतर दान की व्यवस्था की। 'उसमें जो वस्तुएं और उपहार दिए गए, वे स्वयं राजा महाविगत के महान बलिदान के अनुरूप थे।

इस प्रकार, हे ब्राह्मण, यह एक चंहुमुखी सहयोग था। राजा महाविगत आठ व्यक्तिगत गुणों से और उनके पालक ब्राह्मण चार गुणों से संपन्न थे, और उस बलिदान को कराने की तीन विधियां थीं। हे ब्राह्मण, इस सोलह प्रकार के उपस्कारों से युक्त त्रिगुणात्मक विधि से निष्पादित बलिदान को उपयुक्त उत्सव कहा जा सकता है।

21. और तब, उन ब्राह्मणों ने ऊंचे स्वर में कहा: 'कितना भव्य है यह बलिदान और कितना पवित्र है इसका निष्पादन।'

लेकिन कूटदंत ब्राह्मण वहां मौन बैठा रहा।

तब उन ब्राह्मणों ने कूटदंत से कहा : 'आप श्रमण गौतम के सही कथन का यह कहकर अनुमोदन क्यों नही करते कि उन्होंने ठीक कहा है?'

ब्राह्मण कूटदंत ने कहा, 'मैं अवश्य अनुमोदन करता हूं, क्योंकि श्रमण गौतम के सही कथन का जो यह कहकर अनुमोदन नहीं करता है कि उन्होंने ठीक कहा है, तो सचमुच उसका सिर दो भागों में विभक्त हो जाएगा। लेकिन मैं इस बात पर विचार कर रहा था कि श्रमण गौतम यह नहीं कहते हैं कि इस प्रकार मैंने सुना है। न वह यह कहते हैं कि 'इस प्रकार यह अवश्य अनुपालनीय है।' वह केवल यह कहते हैं– 'तब यह इस प्रकार था', अथवा वह कहते हैं, 'तब वह वैसा था।' इसलिए मेरी यह धारणा है कि निश्चित

रूप से उस समय श्रमण गौतम ही स्वयं राजा महाविगत रहे होंगे, अथवा वह ब्राह्मण रहे होंगे जिसने उस बलिदान में उनके कार्यपालक के रूप में कार्य किया होगा। क्या श्रद्धेय गौतम यह स्वीकार करते हैं कि जो इस प्रकार के बलिदान का उत्सव मनाता है, अथवा मनवाता है, वह मृत्यु के पश्चात शरीर के विलीन हो जाने पर स्वर्ग में किसी आनंद की अवस्था मे पुनर्जन्म लेता है।'

'हां, हे ब्राह्मण, मैं यह स्वीकार करता हूं। और उस समय मैं वही ब्राह्मण था, जिसने पुरोहित के रूप में वह बलिदान कराया था।'

22. 'हे गौतम, क्या कोई ऐसा अन्य बलिदान है, जो इसकी तुलना में कम कठिन और कम कष्टकर हो और जिसका फल और लाभ इससे अधिक हो?'

'हां, हे ब्राह्मण, ऐसा है।'

'हे गौतम, वह क्या हो सकता है'

'एक परिवार में निरंतर रखे जाने वाले वे उपहार जो विशेष रूप से सदाचारी संन्यासियों को प्रदान किए जाते हैं।'

23. 'लेकिन इसका क्या कारण है कि एक परिवार में रखे गए उपहारों का, विशेष रूप से सदाचारी संन्यासियों को निरंतर प्रदान किया जाना, तीन विधियों और सोलह प्रकार के उपसाधनों से संपन्न किए जाने वाले अन्य बलिदान की तुलना में कम कठिन और कम कष्टकर हैं, अधिक फलदायक और लाभप्रद है?'

'हे ब्राह्मण, बाद में बताए गए बलिदान को न तो अर्हत और न अर्हत मार्ग पर प्रवत्त कोई अन्य कराएगा। और ऐसा क्यों नहीं होगा? क्योंकि उसमें लाठियों से प्रहार किया जाता है और गले से पकड़ा जाता है। लेकिन वे पूर्वोक्त बलिदान में जाएंगे, क्योंकि उसमें ऐसा नहीं होता है। इसलिए इस प्रकार के निरंतर उपहार अन्य प्रकार के बलिदान से श्रेष्ठ होते हैं।'

24. 'और, हे गौतम, इन दोनों में से किसी की भी तुलना में कोई अन्य बलिदान है, जो अपेक्षाकृत कम कठिन और कष्टकर है, किंतु अधिक फलदायक और लाभप्रद हो?'

'हां, हे ब्राह्मण, ऐसा है।'

'और, हे गौतम, वह क्या हो सकता है?'

'संघ की ओर से चारों दिशाओं में विहारों का निर्माण।'

25. 'और, हे गौतम, इन तीनों में से किसी एक और तीनों की तुलना में क्या कोई अन्य बलिदान है, जो अपेक्षाकृत कम कठिन और कष्टकर है, किंतु अधिक फलदायक

और लाभप्रद हो ?'

'हां, हे ब्राह्मण, ऐसा है।'

'और, हे गौतम, वह क्या हो सकता है ?'

'जो निष्ठापूर्ण हृदय से एक बुद्ध को अपने मार्गदर्शक के रूप में ग्रहण करता है, सत्य और संघ को ग्रहण करता है, वह एक ऐसा बलिदान है, जो खुले दान-गृह से श्रेष्ठ है, सतत भिक्षादान से श्रेष्ठ है और आवास-स्थान के उपहार से श्रेष्ठ है।

26. 'और, हे गौतम, इन चारों की तुलना में क्या कोई अन्य बलिदान है, जो अपेक्षाकृत कम कठिन और कष्टकर, किंतु अधिक फलदायक और लाभप्रद हो?'

'जब कोई मनुष्य निष्ठापूर्ण हृदय से संयम के द्वारा जीवन को नष्ट होने से बचाता है, जो वस्तुएं उसको नहीं दी गई हैं, उनको लेने से परहेज करता है, ऐंद्रिय आसक्तियों के संबंध में बुरे आचरण का परित्याग करता है, मिथ्या वचनों का परित्याग करता है, मादक और पागल करने वाले पेय का त्याग करता है जो लापरवाही की जड़ है, तो वह एक ऐसा बलिदान है, जो खुले दान-गृह से श्रेष्ठ हैं, निरंतर भिक्षादान से श्रेष्ठ है, आवास स्थानों के उपहार से श्रेष्ठ है और पथ-प्रदर्शन स्वीकार करने से श्रेष्ठ है।

27. 'और हे गौतम, इन पांचों की तुलना में कोई अन्य बलिदान है, जो अपेक्षाकृत कम कठिन और कष्टकर हैं, किंतु अधिक फलदायक और लाभप्रद हो ?'

'हां, हे ब्राह्मण, ऐसा है।'

'और, हे गौतम, वह क्या हो सकता है ?'

(इसका उत्तर श्रमण फल सुत्त 40 से 75 में (पुस्तक के पृष्ठ 62 से 74) प्रथम गाथा के एक लंबे उद्धरण में निम्न रूप में दिया गया है:

1. बुद्ध के आविर्भाव, उनके उपदेश, श्रोता के मतांतरण, और उनके द्वारा संसार के परित्याग के संबंध में परिचयात्मक अनुच्छेद।
2. शील (सहज नैतिकता)।
3. विश्वास के संबंध में परिच्छेद।
4. 'इंद्रियों के द्वारा सुरक्षित है' के संबंध में परिच्छेद।
5. 'सावधान तथा आत्मलीन' के संबंध में परिच्छेद।
6. 'संतोष' के संबंध मे परिच्छेद।
7. एकाकीपन के संबंध में परिच्छेद।

8. पांच बाधाओं के संबंध में अनुच्छेद।

9. प्रथम गाथा का वर्णन।

'हे ब्राह्मण, पूर्वोक्त बलिदानों की तुलना में यह बलिदान कम कठिन, कम कष्टकर है, किंतु अधिक फलदायक और लाभप्रद है।'

दूसरी, तीसरी और चौथी गाथा में क्रमशः यही बात कही गई है (जैसा कि श्रमण फल सुत्त 72.82 में है) और ज्ञान से उत्पन्न होने वाली अंतर्दृष्टि (तदैव 83.84) और आगे (85.96 सम्मिलित, किसी भी प्रकार सीधा वर्णन न करते हुए) आसवों, घातक मादक द्रव्यों से विनाश का ज्ञान (तदैव 97.98)

'और, हे ब्राह्मण, इससे अधिक श्रेष्ठ और मधुर बलिदानोत्सव मनुष्य नहीं मना सकता।'

28. और जब वह इस प्रकार बोल चुके, तो कूटदंत ब्राह्मण ने महाभाग से कहा: 'परम श्रेष्ठ, हे गौतम, आपके मुख से निकले शब्द अत्युत्तम हैं, जैसे कोई मनुष्य उसे स्थापित करे जो कुछ फेंक दिया गया हो, अथवा उसे प्रकट करे जो कुछ छिपाया गया हो, अथवा भटके हुए को कोई उचित मार्ग बताया जाए, अथवा अंधेरे में कोई प्रकाश दे जाए, जिससे आंखों वाले बाह्य स्वरूपों को देख सकें, ठीक वैसे ही जैसे श्रद्धेय गौतम ने मुझे सत्य का ज्ञान कराया है। मैं सिद्धांत तथा आदेश के अनुशीलन के लिए श्रद्धेय गौतम को अपने मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार करता हूं। श्रद्धेय, मुझे एक ऐसे शिष्य के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज के दिवस से जीवन-पर्यंत आपको अपना मार्गदर्शक चुन लिया है। और, हे गौतम, मैं स्वयं सात सौ सांडों, सात सौ बछियों और सात सौ बछड़ों, सात सौ बकरियों और सात सौ भेढ़ों को मुक्त कराऊंगा। मैं उन्हें जीवन दान देता हूं। वे हरी घास खाएं, ताजा पानी पिएं और उनके चारों ओर ठंडी हवा बहे।'

29.तब महाभाग ने ब्राह्मण कूटदंत से समुचित क्रमानुसार बातचीत की, अर्थात उन्होंने उसे उदारता, सम्यक आचरण, स्वर्ग, जोखिम, मिथ्या अहंकार, इंद्रिय आसक्तियों की अपवित्रता और परिवर्जन के लाभों के बारे में बताया। और जब महाभाग को यह ज्ञात हो गया कि कूटदंत ब्राह्मण तैयार हो गया है, मृदुल, पूर्वाग्रह रहित, उन्नत और हृदय से निष्ठावान बन गया है, तो उन्होंने उस सिद्धांत की घोषणा की, जिस पर केवल बुद्धों को ही विजय प्राप्त है, अर्थात दुख, उसके मूल और उसकी समाप्ति तथा सन्मार्ग का सिद्धांत। और जिस प्रकार सभी प्रकार के धब्बों के धुल जाने पर कोई स्वच्छ वस्त्र शीघ्र ही रंग ग्रहण कर लेगा, ठीक वैसे ही कूटदंत ब्राह्मण को वहीं बैठे-बैठे ही सत्य के दर्शन के लिए शुद्ध तथा निष्कलंक दृष्टि प्राप्त हो गई। उसे यह ज्ञान हो गया कि जिस किसी का प्रारंभ होता है, उस प्रारंभ में उसके विलोपन की अनिवार्यता भी निहित है।

30. और तब एक ऐसे व्यक्ति के रूप में, जिसने सत्य के दर्शन कर लिए हों, उस पर विजय प्राप्त कर ली हो, उसे समझ लिया हो और उसका गहन चिंतन कर लिया हो, जो संदेह के परे पहुंच गया हो, जिसने विमूढ़ता को भगा दिया हो और पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया हो, और जो गुरु के उपदेशों के अपने ज्ञान के लिए किसी अन्य पर अवलंबित न हो, ब्राह्मण कूटदंत ने महाभाग को संबोधित करते हुए कहा: 'श्रद्धेय गौतम, कृपया संघ के सदस्यों सहित कल का भोजन मेरे साथ करने की स्वीकृति प्रदान करें।' और महाभाग ने मौन रहकर अपनी सहमति प्रदान कर दी। यह देखते हुए कि महाभाग ने स्वीकृति प्रदान कर दी है, कूटदंत ब्राह्मण अपने स्थान से उठे और उनके दाईं ओर से गुजरते हुए, वहां से विदा हो गए। और तड़के ही उन्होंने बलिदान के लिए निर्मित वेदी पर पुष्ट और मृदु, दोनों ही प्रकार का मधुर भोजन तैयार करवाया और महाभाग के लिए समय की घोषणा की, हे गौतम, समय हो गया है, भोजन तैयार है। और महाभाग ने, जो प्रातःकाल ही तैयार हो चुके थे, अपना चीवर पहना और अपना पात्र लेकर बांधवों सहित कूटदंत के बलिदान-स्थल पर पहुंचे और वहां अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए और कूटदंत ब्राह्मण ने बुद्ध तथा बांधवों को अपने हाथों से पुष्ट और मृदु, दोनों ही प्रकार का मधुर भोजन तब तक परोसा, जब तक वे तृप्त नहीं हो गए, और जब महाभाग ने अपना भोजन कर लिया, अपना पात्र और हाथ धो लिए, कूटदंत ब्राह्मण ने नीचे का स्थान लिया और उनके पार्श्व में बैठ गए। और जब वह इस प्रकार आसीन हो गए, महाभाग ने धार्मिक प्रवचन द्वारा कूटदंत ब्राह्मण को अनुदिष्ट, प्रेरित , उत्साहित तथा हर्षित किया, उसके बाद वह अपने आसन से उठे और वहां से विदा हो गए।

(कूटदंत सुत्त समाप्त हुआ)

V

तीसरे, बुद्ध ने जातिप्रथा की निंदा की । जातिप्रथा उस समय वर्तमान रूप में विद्यमान नहीं थी। अंतर्जातीय भोजन और अंतर्जातीय विवाह पर निषेध नहीं था। तब व्यवहार में लचीलापन था। आज की तरह कठोरता नहीं थी। किंतु असमानता का सिद्धांत जो कि जातिप्रथा का आधार है, उस समय सुस्थापित हो गया था और इसी सिद्धांत के विरुद्ध बुद्ध ने एक निश्चयात्मक और कठोर संघर्ष छेड़ा। अन्य वर्गों पर अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए ब्राह्मणों के मिथ्याभिमान के वह कितने कट्टर विरोधी थे और उनके विरोध के आधार कितने विश्वासोत्पादक थे, उसका परिचय उनके बहुत से संवादों से प्राप्त होता है। इनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण अम्बट्ठ सुत्त के रूप में जाना जाता है।

अम्बट्ठ सुत्त

(एक युवा ब्राह्मण की अशिष्टता और एक वृद्ध की निष्ठा)

1. मैंने इस प्रकार सुना है। एक बार जब महाभाग कौशल देश की यात्रा के दौरान लगभग पांच सौ बांधवों सहित कौशल के इच्छानंगल नामक ब्राह्मण के गांव में पहुंचे, और वह वहां के इच्छानंगल अरण्य में ठहरे।

उस समय पोष्करसाति नामक ब्राह्मण उक्कट्ठा में निवास करता था। वह स्थल चहल-पहल, हरियाली और वन्य भूमि तथा धान्य से परिपूर्ण था। कौशल-नरेश प्रसेनजित ने यह क्षेत्र उन्हें उपहार के रूप में प्रदान किया था, जिस पर उन्हें राजा के समान अधिकार प्राप्त था।

2. अब पोष्करसाति ब्राह्मण ने यह समाचार सुना: 'लोग कहते हैं कि शाक्य वंश के श्रमण गौतम शाक्य परिवार का त्याग करके धम्म (धार्मिक) जीवन अंगीकार करने के लिए बड़ी संख्या में अपने संघ के बांधवों के साथ इच्छानंगल में पहुंच गए हैं और वहां अरण्य में ठहरे हुए हैं। अब जहां तक श्रद्धेय गौतम का संबंध है, उनकी इतनी ख्याति है कि विदेश में भी उनकी ऐसी चर्चा है: महाभाग एक अर्हत, पूर्ण प्रबुद्ध, विवेक और सौजन्य से परिपूर्ण, लौकिक ज्ञान से पुष्ट, मार्गदर्शन के इच्छुक नश्वरों के लिए अनुपम पथप्रदर्शक, देवों और मनुष्यों के लिए उपदेशक, वरदान प्राप्त हैं। वह स्वयं देवताओं, ब्राह्मणों और असम प्रदेश की पहाड़ियों पर मर भाषा बोलने वाले लोगों के उपर के लोक और उसके नीचे संन्यासियों तथा ब्राह्मणों, राजाओं और प्रजाजन वाले लोक सहित संपूर्ण सृष्टि को इस प्रकार जानने के बाद, वह अपने ज्ञान की जानकारी दूसरों को कराते हैं। सत्य, जो अपने मूल में सुंदर हैं, प्रगति में सुंदर है, संपूर्णता में सुंदर है, उसी की उद्घोषणा वह भावना और शब्द में करते हैं, वह उच्चतर जीवन की पूर्णता और पवित्रता का भरपूर ज्ञान कराते हैं।'

और उस प्रकार के अर्हत के दर्शनार्थ जाना अच्छा है।

3. और उस समय अम्बट्ठ नामक युवा ब्राह्मण पोष्करसाति ब्राह्मण का एक शिष्य था। वह जाप करता था (पवित्र शब्दों का), उसे रहस्यवादी पद्य कंठस्थ थे, वह तीनों वेदों का ज्ञाता था, उनके अनुक्रम, उनकी क्रियापद्धति, ध्वनिशास्त्र और भाष्य (चतुर्थ रूप में) तथा पंचमशास्त्र के रूप में दंतकथाओं का अच्छा ज्ञान था। वह मुहावरों और व्याकरण में निष्णात था, वह लोकायत, कूट तार्किकता और एक महापुरुष के शरीर पर विद्यमान लक्षणों से संबंधित शस्त्र से सुपरिचित था, त्रिसूत्री वैदिक ज्ञान पद्धति में उसे इतना पारंगत माना जाता था कि उसका गुरु भी उसके संबंध में यह कहता था, 'जो कुछ मैं जानता हूं वह तुम जानते हो, और जो तुम जानते हो वह मैं जानता हूं।'

4. और पोष्करसाति ने अम्बट्ठ को यह समाचार सुनाया और कहा: 'प्रिय अम्बट्ठ, श्रमण गौतम के पास जाओ और यह पता लगाओ कि विदेश में उनकी ख्याति का जो डंका बज रहा है, वह वास्तविकता के अनुरूप है या नहीं, श्रमण गौतम वैसे ही हैं, जैसा

कि उनके विषय में कहा जाता है, अथवा नहीं?'

5. 'लेकिन, श्रीमन्, मैं कैसे जान पाऊंगा कि वह वैसे ही हैं, या नहीं?'

'अम्बट्ठ, हमारे रहस्यवादी पद्यों में एक महापुरुष के बत्तीस शारीरिक लक्षण बताए गए हैं। अगर वे लक्षण किसी मनुष्य में हों, तो दो में से एक वह अवश्य बनेगा, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं बनेगा। अगर वह गृहस्थ है, तो वह एकछत्र सम्राट, एक धर्मपरायण राजा बनेगा, चार महासागरों के तटों तक उसका शासन होगा, वह एक विजेता होगा और अपनी प्रजा का संरक्षक तथा सात विधियों का स्वामी होगा और ये सात विधियां हैः चक्र, हाथी, घोड़ा, रत्न, स्त्री, कोषाध्यक्ष और मंत्री। और उसके एक हजार से अधिक वीर और शक्तिशाली पुत्र होते हैं, जो शत्रु की सेनाओं के छक्के छुड़ा देते हैं। और वह समुद्र-पर्यन्त इस विशाल पृथ्वी पर तलवार के बल के बिना धर्मपरायणता के साथ शासन करता हुआ पूर्णप्रभुता से युक्त निवास करता है। लेकिन अगर वह गृहस्थ का त्याग करके गृहविहीन स्थिति में प्रवेश करता है, तो वह बुद्ध बन जाएगा, जो विश्व की आंखों से परदा हटा देता है। अम्बट्ठ, अब तुमने मुझसे रहस्यमय शब्द प्राप्त किए हैं।'

6. 'बहुत अच्छा, श्रीमन्', अम्बट्ठ ने उत्तर में कहा, और अपने स्थान से उठकर पोष्करसाति के प्रति सम्मान व्यक्त करते हुए युवा ब्राह्मणों के दल के साथ वह अश्वचालित रथ पर इच्छानंगलकला के अरण्य की ओर चल पड़ा। और वह रथ वहां तक गया, जहां तक वाहनों के लिए मार्ग उपयुक्त था। उसके बाद वह रथ से उतरकर पैदल ही उपवन में गया।

7. उस समय बहुत से बांधव खुली हवा में इधर-उधर टहल रहे थे। अम्बट्ठ उनके समीप गया और कहा, 'इस समय श्रद्धेय गौतम कहां ठहरे हुए हैं? हम यहां उनसे मिलने आए हैं।'

8. तब बांधवों ने सोचा : यह युवा ब्राह्मण अम्बट्ठ विशिष्ट परिवार का है और विख्यात ब्राह्मण पोष्करसाति का शिष्य है। महाभाग ऐसे व्यक्ति के साथ वार्तालाप करने में कठिनाई महसूस नहीं करेंगे। और उन्होंने अम्बट्ठ से कहा, 'गौतम वहां ठहरे हुए हैं, जहां द्वार बंद हैं, चुपचाप ऊपर जाओ और धीरे से ड्योढ़ी में प्रवेश करो और खांस कर दस्तक दो। महाभाग तुम्हारे लिए द्वार खोल देंगे।'

9. तब अम्बट्ठ ने ऐसा ही किया। और महाभाग ने द्वार खोल दिया, अम्बट्ठ भीतर चला गया और अन्य युवा ब्राह्मण भी अंदर चले गए और उन्होंने महाभाग से नम्रता तथा शालीनता से पूर्ण शुभकामनाओं का आदान-प्रदान किया तथा अपना स्थान ग्रहण किया। लेकिन अम्बट्ठ टहलता रहा और उसने अचानक बड़ी बेचैनी से खड़े-खड़े बैठे हुए महाभाग से कुछ विनीत स्वर में कहा।

10. और महाभाग ने उससे कहा: 'अम्बट्ठ, क्या वृद्ध गुरुओं और अपने गुरुओं के वयोवृद्ध गुरुजनों से बात करने का तुम्हारा यही व्यवहार है, जैसे कि तुम अब इधर-उधर टहलते हुए अथवा खड़े-खड़े मुझसे बात कर रहे हो, जब कि मैं बैठा हुआ हूं।'

11. 'अवश्य नहीं, गौतम। अगर ब्राह्मण स्वयं चल रहा हो तो उससे चलते हुए बोलना, अगर ब्राह्मण खड़ा है तो खड़े-खड़े, अगर उसने आसन ग्रहण कर लिया है तो बैठकर, अथवा अगर ब्राह्मण सहारे से लेटा है तो सहारा लेकर उससे बोलना उचित है। लेकिन मुंडित सिर वालों, छद्मवेशी साधुओं, काले भृत्यों और हमारे कुल की सेवा में रत अधम जातियों के साथ मैं उसी प्रकार बोलूंगा जैसा कि अब मैं आपसे बोल रहा हूं।

'लेकिन, अम्बट्ठ, जब तुम यहां आए हो, तो तुम्हें किसी चीज़ की जरूरत रही होगी। अच्छा तो यही है कि तुम यहां अपने आने के उद्देश्य पर विचार करो। यह युवा ब्राह्मण अम्बट्ठ अशिष्ट है, यद्यपि वह अपनी संस्कृति पर गर्व करता हैं। क्या ऐसा व्यवहार प्रशिक्षण के अभाव के सिवाय किसी अन्य कारण से हो सकता है?'

12. तब अम्बट्ठ अशिष्ट कहे जाने पर महाभाग से अप्रसन्न और नाराज हो गया और यह विचार करते हुए कि महाभाग उससे कुपित हैं, उसने व्यंग्य और उपहास करते हुए अवज्ञापूर्ण ढंग से महाभाग से कहा: 'गौतम, आपका यह शाक्य कुल असुसंस्कृत है, आपका शाक्य वंश अशिष्ट, चिड़चिड़ा और उग्र है। भृत्य केवल भृत्य हैं, वे न तो ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा रखते हैं, न उन्हें महत्व देते हैं, न उन्हें उपहार देते हैं, और न उनका सम्मान करते हैं। गौतम, ऐसा व्यवहार न तो उपयुक्त है, न ही भद्रोचित है।'

इस प्रकार युवा ब्राह्मण अम्बट्ठ ने पहली बार शाक्यों पर भृत्य होने का लांछन लगाया।

13. लेकिन, अम्बट्ठ, शाक्यों ने तुम्हारे प्रति कौन-सा दुर्व्यवहार किया है ?

'एक बार, गौतम, मुझे पोष्करसाति के किसी कार्य से कपिलवस्तु जाना पड़ा और मैं शाक्यों के सभा भवन में चला गया। उस समय बहुत से वृद्ध और युवा शाक्य मंडप में भव्य आसनों पर बैठे हुए आनंद मना रहे थे और साथ- साथ परिहास कर रहे थे, अपनी अंगुलियों से एक-दूसरे को धकिया रहे थे, और सच पूछो तो मेरे विचार में उनके परिहास का विषय स्वयं मैं था, और किसी ने बैठने तक को नहीं कहा। और, गौतम, न तो यह उपयुक्त है, और न ही भद्रोचित है, क्योंकि शाक्य भृत्य केवल भृत्य हैं, जो न तो ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा रखते हैं, न उन्हें महत्व देते हैं, न उन्हें उपहार देते हैं, और न उनका सम्मान करते हैं।

इस प्रकार युवा ब्राह्मण अम्बट्ठ ने दूसरी बार शाक्यों पर भृत्य होने का लांछन लगाया।

14. 'इतनी छोटी-सी बात पर बुरा मान गए, अम्बट्ठ। नन्हीं-सी हठी चिड़िया अपने घोंसले में जो चाहे, बोल सकती है। और शाक्य तो कपिलवस्तु में अपने ही घर में थे।

इतनी छोटी-सी बात पर बुरा मान जाना तुम्हें शोभा नहीं देता।'

15. 'गौतम, ये चार श्रेणियां हैं—कुलीन जन, ब्राह्मण, व्यापारी और श्रमिक जन। और इन चारों में से तीन, अर्थात कुलीन जन, व्यापारी और श्रमिक जन, वास्तव में ब्राह्मणों के सेवक हैं। इसलिए गौतम, न तो यह उपयुक्त है, और न भद्रोचित ही है कि शाक्य जो भृत्य और केवल भृत्य हैं, वे न तो ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धा रखते हैं, न उन्हें महत्त्व देते हैं, न उन्हें उपहार देते हैं, और न उनका सम्मान ही करते हैं।'

इस प्रकार युवा ब्राह्मण अम्बट्ठ ने तीसरी बार शाक्यों पर भृत्य होने का लांछन लगाया।

16. तब महाभाग ने इस प्रकार सोचा : यह अम्बट्ठ शाक्यों पर भृत्य कुलीन होने का आरोप लगाकर उन्हें नीचा दिखाने पर तुला हुआ है। मैं उससे उसकी अपनी वंश-परंपरा के बारे में भी पूछ सकता हूं।' और उन्होंने उससे कहा :

> अम्बट्ठ, तुम्हारा संबंध किस परिवार से है? हां, अगर कोई पितृ और मातृ पक्ष की ओर से तुम्हारे पुराने नाम और तुम्हारी वंश-परंपरा का अध्ययन करे, तो यह पता चलेगा कि किसी समय में शाक्य तुम्हारे स्वामी होते थे और तुम उनकी किसी एक दासी की संतान हो। लेकिन शाक्य मूलतः स्वयं को ओक्काक राजाओं के वंशधर बताते हैं।
>
> अम्बट्ठ, बहुत समय पहले राजा ओक्काक ने अपनी चहेती रानी के पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा से अपने बड़े बच्चों-ओक्कमुख, करान्दा, हत्थीनिका और सिनीपुरा को देश से निष्कासित कर दिया। इस प्रकार निष्कासित होने के बाद उन्होंने हिमालय की ढलान पर, झील के किनारे आश्रय लिया, जहां एक विशाल कोल (शाल) का वृक्ष विद्यमान था। और इस आशंका से कि कहीं उनके वंश की पवित्रता को आंच न आए, उन्होंने अपनी बहनों से अंतर्विवाह कर लिया।
>
> अब राजा ओक्काक ने अपने दरबार में मंत्रियों से पूछा, 'श्रीमन्, अब बच्चे कहां हैं?'
>
> 'राजन, हिमालय की ढलान पर, झील के किनारे एक स्थान है, जहां एक विशाल कोल (शाल) का वृक्ष विद्यमान है। वहीं वे रहते हैं। और कहीं उनके वंश की पवित्रता पर आंच न आए जाए, इसलिए उन्होंने अपनी ही बहनों (शाक्य वंशीय) से विवाह कर लिया है।
>
> तब राजा ओक्काक ने प्रशंसा से अभिभूत होकर कहा : 'वे युवक कोल (शाक्य) के हृदय हैं, वे अपने वंश (परम शाक्य) को कायम रखे हुए हैं। अम्बट्ठ, यही कारण है कि उन्हें शाक्यों के नाम से जाना जाता है। ओक्काक की दिशा नाम की एक दासी थी। उसने एक काले बच्चे को जन्म दिया। और ज्यों ही वह उत्पन्न हुआ,

उस नन्हें से काले बच्चे ने कहा, 'मां, मुझे धोओ। मां, मुझे नहलाओ, मां, मुझे इस कलुष से मुक्त करो। तभी मैं आपके काम आ सकूंगा।' अम्बट्ठ, अब जिस प्रकार लोग असुरों को असुर कहते हैं, उसी प्रकार उस समय लोग काले (कान्हे) को असुर कहते थे। और उन्होंने कहा : 'यह पैदा होते ही बोल पड़ा। यह जो काला (कान्हा) बच्चा पैदा हुआ है, यह एक असुर पैदा हुआ है।' और अम्बट्ठ कान्हायनों का मूल यही है। वह कान्हायनों का पूर्वज था। और मातृ पक्ष की ओर से तुम्हारे पुराने नाम और तुम्हारी वंश-परंपरा का अध्ययन करें, तो यह पता चलेगा कि किसी समय शाक्य तुम्हारे स्वामी होते थे और तुम उनकी किसी एक दासी की संतान हो।

17. और जब वह इस प्रकार बोल चुके तो युवा ब्राह्मणों ने महाभाग से कहाः 'श्रद्धेय गौतम, अम्बट्ठ पर दासी कुल से उत्पन्न होने का कलंक लगाकर उसे और नीचा न दिखाएं। वह अच्छे वंश में उत्पन्न हुआ है और अच्छे परिवार का है। वह पवित्र देव स्तुतियों से सुपरिचित एक योग्य पाठक और विद्वान पुरुष है और वह इन मामलों में श्रद्धेय गौतम को उत्तर देने में समर्थ है।'

18. तब महाभाग ने उनसे कहा : 'बिल्कुल ऐसा ही होगा। अगर तुम अन्यथा समझते हो, तो हमारी इस वार्ता को आगे बढ़ाने का काम तुम्हारा होगा। लेकिन जब तुम इस प्रकार सोचते हो, तो स्वयं अम्बट्ठ को बोलने दिया जाए।'

19. 'हम ऐसा नहीं सोचते। और हम मौन ही रहेंगे। अम्बट्ठ इन मामलों में श्रद्धेय गौतम को उत्तर देने में समर्थ है।'

20. तब महाभाग ने अम्बट्ठ ब्राह्मण से कहा : 'तब आगे यह प्रश्न उठता है, अम्बट्ठ, जो बहुत ही सुसंगत है, और अनिच्छापूर्वक ही सही, तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर अवश्य देना होगा। अगर तुम स्पष्ट उत्तर नहीं दोगे, अथवा दूसरे प्रसंग पर चले जाओगे, अथवा मौन रहोगे, अथवा विचलित हो जाओगे, तो तुम्हारा सिर इसी स्थल पर खंड-खंड हो जाएगा। जब वयोवृद्ध और अनुभवी ब्राह्मण तुम्हारे गुरुजन अथवा उनके गुरुजन इस बारे में आपस में बात कर रहे थे कि कान्हायनों की मूल उत्पत्ति कहां से हुई और उनका वह पूर्वज कौन था जिसका कि वे अपने-आपको वंशज बताते हैं, तुमने इस बारे में क्या सुना है?'

और जब वह इस प्रकार बोल चुके, तो अम्बट्ठ मौन रहा और महाभाग ने फिर से वही प्रश्न पूछा। और फिर भी अम्बठ्ठ मौन रहा। तब महाभाग ने उससे कहा : 'अम्बट्ठ, बेहतर यही होगा कि तुम अब इसका उत्तर दे दो। यह तुम्हारे चुप रहने का समय नहीं है। क्योंकि कोई भी यदि तथागत (जिसने सत्य पर विजय प्राप्त कर ली हो) द्वारा तीसरी बार पूछे जाने पर भी एक सुसंगत प्रश्न का उत्तर नहीं देता, तो उसका सिर वहीं टुकड़ों

में खंडित हो जाता है।'

21. और उस समय वज्र को धारण करने वाला प्रेत, अग्नि से दहकते हुए, चौंधियाने वाले और प्रकाशमय शक्तिशाली लोह पिंड के साथ अम्बट्ठ के ऊपर आसमान में, इस इरादे से खड़ा हो गया कि अगर उसने उत्तर नहीं दिया, तो उसका सिर वहीं टुकड़ों में खंडित कर दिया जाएगा। और महाभाग ने वज्र धारण किए हुए प्रेत को देखा, और अम्बट्ठ ब्राह्मण को भी वह दिखाई दिया और इस स्थिति से अवगत होने पर आतंकित, स्तंभित और व्यग्र अम्बट्ठ महाभाग से सुरक्षा, संरक्षण और सहायता की याचना करता हुआ भयभीत होकर उनके पार्श्व में सिमट कर बैठ गया और बोला, 'महाभाग, आपने क्या कहा था? एक बार फिर कहिए।'

'तुम क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? जब वयोवृद्ध और अनुभवी ब्राह्मण, तुम्हारे गुरुजन अथवा उनके गुरुजन इस संबंध में आपस में बात कर रहे थे कि कान्हायनों की मूल उत्पति कहां से हुई और उनका वह पूर्वज कौन था जिसका कि वे अपने-आपको वंशज बताते हैं, तुमने इस बारे में क्या सुना है?'

'ठीक ऐसा ही, गौतम, मैंने सुना है जैसा कि श्रद्धेय गौतम ने कहा है। कान्हायनों की मूल उत्पत्ति वही है, और वही उनका पूर्वज है, जिसका कि वे अपने-आपको वंशज बताते हैं।'

22. और जब वह इस प्रकार बोल चुके, तो युवा ब्राह्मणों में क्षोभ, अशांति और हलचल मच गई और उन्होंने कहा : 'उनका कहना है कि अम्बट्ठ ब्राह्मण जन्म से नीच है, वे कहते हैं कि उसके परिवार की पृष्ठभूमि अच्छी नहीं है। वे कहते हैं कि वह दासी कुल में उत्पन्न हुआ है और शाक्य उसके स्वामी थे। हम यह नहीं मानते कि श्रमण गौतम जिनके शब्दों में सत्यता है, वह विश्वासयोग्य व्यक्ति नहीं है।'

23. और महाभाग ने सोचा : 'ये ब्राह्मण एक दासी की संतान के रूप में अम्बट्ठ का बहुत अपमान कर रहे हैं। मुझे उनके अपमान से इसे मुक्त करना चाहिए। और उन्होंने कहा :

'अम्बट्ठ ब्राह्मण को उसके वंश के आधार पर इतनी निर्दयता से अपमानित मत कीजिए। वह कान्हा एक शक्तिशाली सिद्ध पुरुष बन गया था। वह दक्षिण में गया। वहां उसने रहस्यवादी पद्य सीखे और राजा ओक्काक के पास वापस आकर उसने विवाह में उसकी बेटी मद्दरूपी का हाथ मांगा। उत्तर में राजा ने उससे कहा : 'यह व्यक्ति वास्तव में कौन है जो मेरी दासी का पुत्र होने पर भी विवाह के लिए मेरी पुत्री का हाथ मांग रहा है। और क्षुब्ध तथा अप्रसन्न होकर उसने अपने धनुष में बाण चढ़ा दिया। लेकिन न तो वह तीर चला सका, और न वह प्रत्यंचा से पुनः उसे हटा ही सका। तब मंत्री तथा दरबारी सिद्ध पुरुष कान्हा के पास गए और कहा : 'श्रीमान्, राजा की रक्षा कीजिए,

राजा की रक्षा कीजिए।'

'राजा को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी। किंतु उसने अगर बाण नीचे की ओर छोड़ा तो उसके राज्य-पर्यन्त धरती सूख जाएगी।'

'श्रीमन्, राजा की रक्षा कीजिए और देश की भी।'

'राजा को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी, न उसकी भूमि को। किंतु उसने अगर ऊपर को बाण छोड़ा, तो देवता सात वर्षों तक उसके राज्य-पर्यन्त वर्षा नहीं करेंगे।'

'श्रीमन्, राजा की रक्षा कीजिए और देश की भी, और देवता को वृष्टि करने दीजिए।'

'राजा को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी और न भूमि को ही, और देवता वृष्टि करेंगे। लेकिन राजा अपने सबसे बड़े पुत्र पर बाण चलाए। राजकुमार को कोई क्षति नहीं पहुंचेगी, उसका बाल भी बांका नहीं होगा।'

तब हे ब्राह्मणो, मंत्रियों ने ओक्काक को यह बताया और कहा : 'राजन, अपने सबसे बड़े पुत्र पर बाण छोड़ें, उसे कोई हानि अथवा भय नहीं होगा।' और राजा ने ऐसा ही किया, और कोई क्षय नहीं हुआ। किंतु राजा ने जो पाठ पढ़ा था, उससे आतंकित होकर उसने उस पुरुष को पत्नी के रूप में अपनी पुत्री मद्दरूपी दे दी। हे ब्राह्मणो, आपको दासी कुल के मामले में अम्बट्ठ का इतना और अपमान नहीं करना चाहिए। वह कान्हा शक्तिशाली सिद्ध पुरुष था।

24. तब महाभाग ने अम्बट्ठ को कहा : 'अम्बट्ठ, इस बारे में तुम क्या सोचते हो? अगर एक युवा क्षत्रिय का संबंध किसी ब्राह्मण कन्या से हो जाता है और उनके सहवास से एक पुत्र का जन्म होता है। क्या ऐसा पुत्र ब्राह्मणों से आसन और जल (आदर के प्रतीक के रूप में) प्राप्त कर सकेगा?'

'हां, गौतम, वह करेगा।'

'लेकिन क्या ब्राह्मण उसे पितरों के निमित्त आयोजित भोज, अथवा दूध में उबाले गए खाद्य, अथवा देवताओं को दी जाने वाली भेंट, अथवा उपहार के रूप में भेजे जाने वाले भोजन में सम्मिलित होने की अनुमति देंगे?'

'हां, गौतम, वे अनुमति देंगे।'
'लेकिन ब्राह्मण उसे अपने पद्य सिखाएंगे अथवा नहीं?'
'हां, गौतम, वे सिखाएंगे।'
'किंतु उनकी स्त्रियों से उसे अलग रखा जाएगा अथवा नहीं।'
'उसे अलग नहीं रखा जाएगा।'
'किंतु क्या क्षत्रिय उसे एक क्षत्रिय के रूप में संस्कारित होने की अनुमति देंगे?'

'निश्चित रूप से नहीं, गौतम।'

'क्योंकि मातृ पक्ष की ओर से उसका वंश शुद्ध नहीं है।'

25. 'अब तुम इस बारे में क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? अगर एक युवा ब्राह्मण का संबंध किसी क्षत्रिय कन्या से हो जाता है और उनके सहवास से एक पुत्र का जन्म होता है' क्या ऐसा पुत्र ब्राह्मणों से आसन और जल (आदर के प्रतीक के रूप में) प्राप्त कर सकेगा?'

'हां, गौतम, वह करेगा।'

'किंतु क्या ब्राह्मण उसे पितरों के निमित्त आयोजित भोज, अथवा दूध में उबाले गए खाद्य, अथवा देवताओं को दी जाने वाली भेंट, अथवा उपहार के रूप में भेजे जाने वाले भोजन में सम्मिलित होने की अनुमति देंगे?'

'हां, गौतम, अनुमति देंगे।'

'किंतु ब्राह्मण उसे अपने पद्य सिखाएंगे अथवा नहीं?'

'हां, गौतम, वे सिखाएंगे।'

'किंतु क्या क्षत्रिय उसे एक क्षत्रिय के रूप में संस्कारित होने की अनुमति देंगे?'

'निश्चित रूप से नहीं, गौतम।'

'उसकी अनुमति क्यों नहीं?'

'क्योंकि पितृ पक्ष की ओर से उसका वंश शुद्ध नहीं है।'

26. 'तब तो, अम्बट्ठ, चाहे स्त्रियों की स्त्रियों से और पुरुषों की पुरुषों से तुलना करें, क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मण हेय हैं। और, अम्बट्ठ, इस बारे में तुम क्या सोचते हो? अगर ब्राह्मण किसी अपराध के कारण किसी ब्राह्मण को न्याय के लाभ से वंचित कर दे, उसका मुंडन करके उसके सिर पर राख मलकर उसे भूमि और बस्ती से निष्कासित कर दे, क्या उस ब्राह्मण को ब्राह्मणों के मध्य आसन अथवा जल प्रदान किया जाएगा?'

'कदापि नहीं, गौतम।'

'अथवा ब्राह्मण उसे पितरों के निमित्त आयोजित भोज, अथवा दूध में उबाले गए खाद्य, अथवा देवताओं को दी जाने वाली भेंट, अथवा उपहार के रूप में भेजे जाने वाले भोजन में सम्मिलित होने की अनुमति देंगे?'

'कदापि नहीं, गौतम।'

'अथवा ब्राह्मण उसे अपने पद्य सिखाएंगे या नहीं।'

'कदापि नहीं, गौतम।'

'और उसे उनकी स्त्रियों से अलग रखा जाएगा या नहीं?'

'उसे अलग रखा जाएगा।'

27. 'किंतु इस बारे में तुम क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? यदि क्षत्रिय उसी प्रकार किसी क्षत्रिय को न्याय के लाभ से वंचित करके भूमि अथवा बस्ती से निष्कासित कर देते हैं, तो क्या ब्राह्मणों के मध्य उसे आसन और जल प्रदान किया जाएगा?'

'हां, उसे प्रदान किया जाएगा, गौतम।'

'और क्या उसे पितरों के निमित्त आयोजित भोज, अथवा दूध में उबाले गए खाद्य, अथवा देवताओं को दी जाने वाली भेंट, अथवा उपहार के रूप में भेजे जाने वाले भोजन में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाएगी?'

'हां, गौतम, अनुमति दी जाएगी।'

'और क्या ब्राह्मण उसे अपने पद्य सिखाएंगे।'

'वे सिखाएंगे, गौतम।'

'और उसे उनकी स्त्रियों से अलग रखा जाएगा अथवा नहीं?'

'उसे अलग नहीं रखा जाएगा, गौतम।'

'लेकिन, अम्बट्ठ, मुंडित सिर, राख की टोकरी से सने, भूमि तथा आबादी वाले क्षेत्रों से निष्कासित क्षत्रिय का घोर पतन हो जाता है, लेकिन घोर पतन के गर्त में गिर जाने के बावजूद यह धारणा सही है कि क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मण हेय हैं।'

28. 'तथापि एक ब्रह्म देवता सुनामकुमार ने यह श्लोक कहा है' :

> वंश-परंपरा के प्रति आस्थावान इस जन-समूह में क्षत्रिय सर्वोत्तम है, किंतु जो विवेक और सत्यता में परिपूर्ण है, वह देवों और मनुष्यों में सर्वोत्तम है।

'अब, अम्बट्ठ यह श्लोक ब्रह्म सुनामकुमार द्वारा सही तौर से गाया और कहा गया था, जो अर्थपूर्ण है, रिक्त नहीं है। मैं भी इसका अनुमोदन करता हूं।'

'मैं भी', अम्बट्ठ कहता है।

'वंश-परंपरा के प्रति आस्थावान इस जन-समूह में क्षत्रिय सर्वोत्तम है। लेकिन जो विवेक और न्यायनिष्ठा में परिपूर्ण है, वह देवों और मनुष्यों में सर्वोत्तम है।'

....

(पाठ के लिए प्रथम भाग यहां समाप्त होता है)

1. 'लेकिन, गौतम, उस पद्य में व्यक्त सत्यता क्या है? और विवेक क्या है?'

'विवेक और सत्यता की सर्वोच्च पूर्णता में, अम्बट्ठ, जन्म अथवा वंश-परंपरा, अथवा इस प्रकार के अभिमान का प्रश्न ही नहीं उठता, जिसके आधार पर यह कहा जाता है—आपको उतना ही योग्य माना जाता है, जितना मुझे, अथवा आपको उतना योग्य नहीं माना जाता, जितना मुझे। जब कभी विवाह की बात चलती है, अथवा विवाह में देने की बात होती है, तो इस प्रकार की बातों का उल्लेख किया जाता है। अम्बट्ठ, जो भी जन्म अथवा वंश-परंपरा, अथवा सामाजिक स्थिति के अभिमान, अथवा विवाह द्वारा संबंध की दासता से ग्रस्त हैं, वे सर्वोत्तम विवेक और सत्यता से दूर हैं। इस प्रकार की दासता से मुक्त होने पर ही मनुष्य विवेक और आचरण की सर्वोच्च पूर्णता अपने लिए प्राप्त कर सकता है।'

2. 'लेकिन, गौतम, वह आचरण और वह विवेक क्या है?'

(यहां शील के अधीन इसका उल्लेख है)

बुद्ध के आविर्भाव, उनके उपदेश, श्रोता के मतांतरण और उनके द्वारा संसार के परित्याग के संबंध में परिचयात्मक अनुच्छेद (श्रमणफल के पाठ्य का 40.42, पृष्ठ 62, 63) उसके पश्चात आते हैं :

1. उपरोक्त शील, पृष्ठ, 4-12 (8.27) में केवल आंशिक भिन्नता है। प्रत्येक खंड के अंत में दुहराए गए परिच्छेद में यह आता है : 'यह उसमें नैतिकता के रूप में जानी जाती है।'

उसके पश्चात करुणा के अधीन

2. विश्वास के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 63 के पृष्ठ 69। इसके बाद अंश इस प्रकार है : 'यह उसमें आचरण के रूप में माना जाता है।'

3. इंद्रियों का द्वार सुरक्षित है, के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 64 के पृष्ठ 70।
4. सावधान और आत्मलीन के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 65 के पृष्ठ 70।
5. संतोष के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 66 के पृष्ठ 71।
6. एकाकीपन के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 67 के पृष्ठ 71।
7. 'पांच बाधाएं' के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 68-74 के पृष्ठ 71-72।

8. चार गहन ध्यान के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 73-76 के पृष्ठ 75-82। प्रत्येक के अंत में अंश 'पिछले से उच्चतम और अच्छे को' यहां वास्तव में संन्यासी के जीवन के उच्चतर फल के रूप में न पढ़कर उच्चतर आचरण के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

विवेक (विग्ग) के अधीन

9. ज्ञान से उत्पन्न होने वाली अंतर्दृष्टि (नानादासनम्) के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 83-84 के पृष्ठ 76। इसके बाद अंश है : 'यह उसमें विवेक के रूप में जाना जाता है और वह अंतिम से उच्चतर और अधिक मधुर है।'

10. बौद्धिक छवि के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 85-86 के पृष्ठ 77।

11. रहस्यमय देन (इद्धी) के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 87-88 के पृष्ठ 77।

12. दिव्य कर्ण, (दिब्बासोता) के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 89-90 के पृष्ठ 79।

13. दूसरों के हृदय का ज्ञान (कटो-परियानानम) के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 91-92 के पृष्ठ 79।

14. पिछले जन्म का स्मरण (पुब्बे निवास-अनुस्साती-नामा) के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 93-94 के पृष्ठ 81।

15. दिव्य चक्षु, (दिब्बा चक्खु) के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 95-96 के पृष्ठ 82।

16. भयंकर बाढ़ का नाश, (आसावानम खयनानम) के संबंध में अनुच्छेद, पाठ्य 97-98 के पृष्ठ 83।

'अम्बट्ठ, इस प्रकार के मनुष्य को विवेक में, आचरण में और विवेक तथा आचरण, दोनों में परिपूर्ण कहा जाता है। और विवेक तथा आचरण में कोई अन्य पूर्णता इससे अधिक उच्चतर और मधुर नहीं है।

3. 'अब, अम्बट्ठ, विवेक और सौजन्य की इस सर्वोच्च पूर्णता में चार क्षरण हैं और ये चार क्या हैं? अम्बट्ठ, यदि कोई संन्यासी अथवा ब्राह्मण विवेक और आचरण की सर्वोच्च पूर्णता, पूर्ण रूप से प्राप्त किए बिना, अपने कंधे पर बहंगी (ईंधन, पानी का घड़ा, सुइयां और भिक्षुक साधु का शेष साज-सामान ले जाने के लिए) उठाए हुए गहन वन में प्रवेश करता है, और स्वयं यह शपथ लेता है : एतद् पश्चात मैं उनमें से एक बन जाऊंगा, जो केवल स्वयं गिरे हुए फलों पर निर्वाह करते हैं तो निश्चित ही वह उसका केवल सेवक बनने की योग्यता रखता है, जिसने विवेक और सत्यता को प्राप्त कर लिया हो।

'और पुनः, अम्बट्ठ, यदि कोई संन्यासी अथवा ब्राह्मण विवेक और आचरण की सर्वोच्च पूर्णता, पूर्ण रूप से प्राप्त किए बिना, और केवल स्वयं गिरे हुए फलों पर निर्वाह न कर पाने की स्थिति में, अपने साथ कुदाली और टोकरी लेकर गहन वन में प्रवेश करता है, और स्वयं यह शपथ लेता है : 'एतद् पश्चात् मैं उनमें से एक बन जाऊंगा, जो केवल कंद और फलों के मूलों पर निर्वाह करते हैं', तो निश्चित ही, वह उसका केवल सेवक बनने की योग्यता रखता है, जिसने विवेक और सत्य को प्राप्त कर लिया हो।

'और पुनः, अम्बट्ठ, यदि कोई संन्यासी अथवा ब्राह्मण विवेक और आचरण की सर्वोच्च पूर्णता, पूर्ण रूप से प्राप्त किए बिना, और केवल स्वयं गिरे हुए फलों और कंद-मूल तथा फलों पर निर्वाह न कर पाने की स्थिति में, किसी गांव अथवा नगर की सीमाओं के समीप स्वयं अग्नि-मंदिर का निर्माण करता है और अग्नि-देव की उपासना करते हुए वहां निवास करता है, तो निश्चित ही वह उसका केवल सेवक बनने की योग्यता रख्ता है, जिसने विवेक और सत्यता को प्राप्त कर लिया हो।

'और पुनः अम्बट्ठ, यदि कोई संन्यासी अथवा ब्राह्मण विवेक और आचरण की सर्वोच्च पूर्णता पूर्ण रूप से प्राप्त किए बिना, और केवल स्वयं गिरे हुए फलों और कंद-मूल तथा फलों पर निर्वाह न कर पाने, और अग्नि-देव की उपासना न कर पाने की स्थिति में, किसी चौराहे पर, जहां चार उच्च मार्ग मिलते हैं, स्वयं चार द्वारों वाले एक भिक्षागृह का निर्माण करता है, और वहां रहते हुए स्वयं को यह कहता है, 'चाहे संन्यासी हो अथवा ब्राह्मण, जो कोई भी इन चार दिशाओं में से किसी भी दिशा से यहां से गुजरेगा, मैं अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार उसका स्वागत करूंगा', तो निश्चित ही वह उसका केवल सेवक बनने की योग्यता रखता है, जिसने विवेक और सत्यता को प्राप्त कर लिया हो।'

'अम्बट्ठ, सत्यता और आचरण की सर्वोच्च पूर्णता में ये चार क्षरण हैं।'

4. 'अब, अम्बट्ठ, तुम क्या सोचते हो? क्या एक ही गुरू के अधीन शिष्यों की एक कक्षा के रूप में तुम्हें विवेक और आचरण की सर्वोच्च पूर्णता के संबंध में अनुदेश प्राप्त हो चुके हैं।'

'ऐसा नहीं है, गौतम। मेरा ज्ञान इतना कम है कि मैं उसका दावा भी नहीं कर सकता। विवेक और आचरण की पूर्णता कितनी महान है। मैं किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण से दूर रहा हूं।'

'तब तुम क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? यद्यपि तुमने विवेक और सौजन्य की यह सर्वोच्च पूर्णता पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं की है, तो क्या तुमने अपने कंधों पर बोझ उठाने और एक ऐसे मनुष्य की तरह गहन वन में प्रवेश करने का प्रशिक्षण प्राप्त किया है, जो स्वेच्छा से यह शपथ ले सके कि वह केवल स्वयं गिरे हुए फलों पर निर्वाह करेगा?'

'वह भी नहीं, गौतम।'

'तब तुम क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? यद्यपि तुमने विवेक और सौजन्य की यह सर्वोच्च पूर्णता पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं की है, और तुम स्वयं गिरे हुए फलों और कंद-मूल तथा फलों पर भी निर्वाह नहीं कर सकते, तो क्या तुम्हें किसी गांव अथवा नगर की सीमाओं पर स्वयं एक अग्नि-मंदिर का निर्माण करना, और एक ऐसे मनुष्य की तरह वहां रहना सिखाया गया है, जो स्वेच्छा से अग्नि-देव की सेवा करेगा।'

'वह भी नहीं, गौतम।'

'तब तुम क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? यद्यपि तुमने विवेक और सौजन्य की सर्वोच्च पूर्णता प्राप्त नहीं की है, और तुम स्वयं गिरे हुए फलों और कंद-मूल तथा फलों पर निर्वाह नहीं कर सकते, और तुम अग्नि-देव की सेवा भी नहीं कर सकते, तो क्या तुम्हें स्वयं एक ऐसे स्थान पर चार द्वारों वाले भिक्षागृह का निर्माण करना सिखाया गया है, जहां चार उच्चतम मार्ग एक-दूसरे से मिलते हों, और जहां तुम एक ऐसे मनुष्य की तरह निवास कर सको, जो स्वेच्छा से यह शपथ लेगा कि चार दिशाओं में से किसी भी दिशा से जो कोई भी वहां से गुजरेगा, तो तुम अपनी योग्यता और अपनी सामंर्थ्य के अनुसार उसका स्वागत करोगे।'

'वह भी नहीं, गौतम।'

5. 'इसलिए, अम्बट्ठ, शिष्य के रूप में सर्वोच्च विवेक और आचरण के मामले में ही नहीं, अपितु उन चार क्षरणों में से किसी एक के संबंध में भी, जिसके कारण विवेक और आचरण की पूर्ण प्राप्ति बाधित हो जाती है, तुम्हारे उचित प्रशिक्षण में कमी रह गई है, और तुम्हारे गुरु, ब्राह्मण पोष्करसाति ने भी तुम्हें यह कहावत बताई है : 'ये मुंडित सिर वाले छद्मवेशी साधु, काले भृत्य, हमारे बांधवों के चरणों की धूल कौन हैं, जो तीनों वेदों के ज्ञान में पारंगत ब्राह्मणों से वार्ता करने का दावा करते हैं।' जब कि वह स्वयं अपेक्षाकृत न्यून कर्तव्यों में से किसी एक का भी पालन नहीं कर सके हैं (जिनके कारण मनुष्य ऊंचे कर्तव्यों की अपेक्षा करते हैं)। देखो, अम्बट्ठ, तुम्हारे गुरु, ब्राह्मण पोष्करसाति ने तुम्हारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है।

6. 'और, अम्बट्ठ, ब्राह्मण पोष्करसाति कौशल-नरेश प्रसेनजित के अनुदान का उपभोग करता है। लेकिन नरेश उसे अपनी उपस्थिति में आने की अनुमति नहीं देता है। जब वह उससे परामर्श करता है, तो वह उससे केवल आवरण के पीछे से बोलता है। यह कैसी बात है, अम्बट्ठ, कि प्रसेनजित, जिससे वह इस प्रकार का शुद्ध और विधि-सम्मत निर्वाह-व्यय स्वीकार करता है, वह उसे अपनी उपस्थिति में आने की अनुमति नहीं देता। देखो, अम्बट्ठ, तुम्हारे गुरु, ब्राह्मण पोष्करसाति ने तुम्हारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है?

7. 'अब तुम क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? मान लो, राजा अपने हाथी की गर्दन पर या अपने घोड़े की पीठ पर बैठा है, अथवा अपने रथ के पायदान पर खड़ा है और वह अपने प्रमुखों अथवा राजकुमारों से राज्य के बारे में चर्चा करता है, और मान लो, जैसे ही वह अपने स्थान को छोड़कर एक तरफ चला जाता है, एक श्रमिक (शूद्र) अथवा श्रमिक का दास वहां आता है और वहां खड़े होकर उस विषय पर चर्चा करते हुए कहता है, 'राजा प्रसेनजित ने ऐसा-ऐसा कहा।' यद्यपि उसने राजा की तरह ही कहा हो और राजा की

तरह ही चर्चा की हो, तथापि क्या उससे वह राजा बन जाएगा, अथवा उसका कोई अधिकारी ही बन जाएगा?'

'कदापि नहीं, गौतम।'

8. 'लेकिन ठीक इसी तरह, अम्बट्ठ, ब्राह्मणों के उन पुराने कवियों (ऋषियों), रचनाकारों, पद्य-गायकों के प्राचीन रूप में विद्यमान शब्दों को उन्हीं की धुन में अथवा संगीतबद्ध रूप में आज के ब्राह्मण पुनः गाते हैं, उनका पूर्वाभ्यास करते हैं और उन्हीं की तरह उनका पाठ करते हैं, जैसे अत्थका, वामका, वामदेव, यमदग्नि, अंगीरस, भारद्वाज, वशिष्ठ, विश्वामित्र, कश्यप और भृगु। तुम कह सकते हो, 'एक शिष्य के रूप में मुझे उनके पद्य कंठस्थ हैं,' क्या उस आधार पर तुम ऋषि की पदस्थिति प्राप्त कर सकते हो? इस प्रकार की स्थिति का कोई अस्तित्व नहीं है।

9. 'अब तुम क्या सोचते हो, अम्बट्ठ? तुमने इस बारे में क्या सुना है, जब बूढ़े और अनुभवी तथा वयोवृद्ध ब्राह्मण, तुम्हारे गुरु और उनके गुरु वार्तालाप कर रहे थे, क्या वे पुराने ऋषि जिनके पद्यों को तुम गाते और दुहराते रहते हो, सुसज्जित होकर इत्र का प्रयोग करके, अपने बालों और अपनी दाढ़ी संवार कर, पुष्पहारों तथा रत्नों-सहित, सफेद वस्त्र पहने हुए, पांचों ऐन्द्रिय सुखों का पूर्ण आनंद लेते हुए, आत्म-प्रदर्शन करते फिरते थे, जैसा कि अब तुम और तुम्हारे गुरु भी करते फिरते हैं।'

'वैसा नहीं, गौतम।'

'और क्या वे उत्तम पके हुए चावलों पर अपना निर्वाह करते थे, जिससे खराब दाने निकाल दिए गए हों, और जिसे विभिन्न प्रकार के मसालों और कढ़ी से जायकेदार बनाया गया हो, जैसा कि तुम और तुम्हारे गुरु अब करते हैं?'

'वैसा नहीं, गौतम।'

'अथवा क्या झालरयुक्त और चुन्नटदार घाघरा पहने हुए स्त्रियां उनकी सेवा में तत्पर रहती थीं, जैसे कि अब तुम्हारी और तुम्हारे गुरु की सेवा में रहती हैं?

'अथवा क्या वे वेणीयुक्त और चुन्नटदार पूंछों वाली घोड़ियों द्वारा खींचे गए रथों को लंबे सोटे से हांकते फिरते थे, जैसा कि अब तुम और तुम्हारे गुरु करते हैं?'

'वैसा नहीं, गौतम।'

'अथवा क्या उन्होंने लंबी तलवारों से सज्जित पुरुषों द्वारा, स्वयं को ऐसी किलेबंदी वाले नगरों में अभिरक्षित कराया है, जिनके चारों ओर खाइयां खुदी हुई हैं और जिनके द्वारों के सामने कैंची द्वार लगाए गए थे, जैसा कि तुम और तुम्हारे गुरु करते हैं।'

'वैसा नहीं है, गौतम ।'

10. 'तब, अम्बट्ठ, न तो तुम और न तुम्हारे गुरु ऋषि हैं और न तुम ऐसी स्थितियों में रहते हो, जिनमें ऋषि रहते थे। किंतु, अम्बट्ठ, चाहे कोई भी कारण हो, जिसकी वजह से तुम मेरे बारे में आशंका और भ्रांति में पड़े हो, तुम मुझसे पूछ सकते हो। मैं स्पष्टीकरण द्वारा उसे स्पष्ट कर दूंगा।'

11. तब महाभाग अपने कक्ष से निकले और उन्होंने इधर से उधर विचरना आरंभ कर दिया। अम्बट्ठ ने भी वही किया और इस प्रकार महाभाग का अनुसरण करते हुए उसने महापुरुष में पाए जाने वाले बत्तीस लक्षण महाभाग के शरीर में हैं या नहीं, परखना चाहा। और उसे दो लक्षणों को छोड़कर सभी लक्षण दिखाई दिए। दो लक्षणों, प्रछन्न अंग और जिह्वा का विस्तार, के बारे में उसे शंका तथा भ्रम हुआ, और वह संतुष्ट और निश्चित नहीं हो पाया।

12. और महाभाग को ज्ञात था कि उसे इस प्रकार की शंका है। और उन्होंने अपनी अद्‌भुत देन द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था की कि ब्राह्मण अम्बट्ठ ने देखा कि महाभाग का वह अंग जिसे वस्त्रों से आच्छादित होना चाहिए था, किस प्रकार एक खोल में समावृत्त था। और महाभाग ने अपनी जिह्वा को इस प्रकार घुमाव दिया कि उससे उन्होंने दोनों कानों को स्पर्श किया और सहलाया, और अपने दोनों नासिका रंध्रों को स्पर्श किया और सहलाया, और उन्होंने अपने मस्तक के समग्र भाग को अपनी जिह्वा से आवेष्ठित कर लिया।

युवा ब्राह्मण अम्बट्ठ ने सोचा— श्रमण गौतम महापुरुष के केवल कुछ लक्षणों से ही नहीं, अपितु पूरे बत्तीस लक्षणों से संपन्न हैं। और उसने महाभाग से कहा : 'अब, गौतम, हमारा जाना हितकर रहेगा। हम व्यस्त हैं और हमें बहुत से कार्य करने हैं।'

'अम्बट्ठ, जो तुम्हें उपयुक्त लगे, वही करो।'

और अम्बट्ठ घोड़ियों द्वारा खींचे जाने वाले अपने रथ पर चढ़ा और वहां से विदा हो गया।

13. उस समय ब्राह्मण पोष्करसाति ब्राह्मणों के बड़े समूह के साथ उक्कट्ठा से चला गया था, और अपने ही विहारोद्यान में बैठा हुआ वहां अम्बट्ठ की प्रतीक्षा कर रहा था। और अम्बट्ठ विहार में आया। और जब वह अपने रथ में वहां तक आया जहां तक रथों के लिए मार्ग सुगम था, वह रथ से उतर गया और पैदल ही वहां पहुंचा जहां पोष्करसाति थे, और उनका अभिवादन करके उसने सम्मानपूर्वक ढंग से एक ओर अपना आसन ग्रहण किया और उसके इस तरह आसीन हो जाने पर पोष्करसाति ने उससे कहा।

14. 'अच्छा, अम्बट्ठ, क्या तुमने महाभाग को देखा?'

'हां, श्रीमन्, हमने उन्हें देखा।'

'अच्छा, क्या श्रद्धेय गौतम वैसे ही हैं, जैसे उनकी ख्याति है, और जैसा कि मैंने तुम्हें बताया था, उससे अन्यथा तो नहीं हैं। वह ऐसे ही हैं अथवा नहीं?'

'वह वैसे ही हैं, श्रीमन्, जैसी कि उनकी ख्याति घोषित करती है, उससे अन्यथा नहीं हैं। वह वैसे ही हैं, उससे भिन्न नहीं हैं। और वह महापुरुष के कुछ लक्षणों से ही नहीं, अपितु पूरे बत्तीस लक्षणों से संपन्न हैं।'

'और क्या, अम्बट्ठ, श्रमण गौतम से तुम्हारी कोई बात हुई?'
'हां, श्रीमन्, हुई।'
'और वार्ता कैसी रही?'

तब अम्बट्ठ ने ब्राह्मण पोष्करसाति को उस पूरी बातचीत से अवगत कराया, जो कि महाभाग के साथ हुई थी।

15. जब वह इस प्रकार बोल चुका, तो पोष्करसाति ने उससे कहा : 'ओह, तुम कैसे ज्ञानाभिमानी हो। कितने मंद बुद्धि हो। ओह, तुम हमारे तीनों वेदों की विशेष जानकारी रखते हो। उनका कहना है कि जो मनुष्य इस प्रकार कार्य करता है, मृत्यु के पश्चात शरीर के क्षय हो जाने पर कष्ट और पीड़ा की निराशाजनक स्थिति में पुनर्जन्म लेता है। अपने अशिष्ट शब्दों में तुमने जिन प्रश्नों पर बल दिया, उनका क्या परिणाम? क्या वही नहीं है, जिसका कि श्रद्धेय गौतम ने प्रकटीकरण किया है? कितने ज्ञानाभिमानी, कितने मंद बुद्धि और हमारे तीनों वेदों के ज्ञान में निष्णात।' और क्रोधित तथा अप्रसन्न होकर उसने अम्बट्ठ को पैर मारकर धकेल दिया और उसने तत्काल महाभाग से मिलना चाहा।

16. लेकिन वहां मौजूद ब्राह्मणों ने पोष्करसाति से इस प्रकार कहा : 'श्रीमन्, आज श्रमण गौतम से मिलने के लिए बहुत देर हो चुकी है। सम्माननीय पोष्करसाति कल यह कार्य कर सकते हैं।'

पोष्करसाति ने अपने ही घर में पुष्ट और नरम, दोनों ही प्रकार का मीठा भोजन तैयार करवाया और मशालों की तेज रोशनी में उसे वाहनों में रखवाया और उक्कट्ठा को चल पड़े। और वह स्वयं इच्छानंगल वनखंड की ओर अपना रथ हांकते हुए उस स्थान तक गया जहां तक वाहनों के लिए मार्ग सुगम था, और उसके बाद पैदल ही महाभाग के पास गया और जब उसने नम्रता तथा शालीनतापूर्वक महाभाग से अभिवादन और सम्मान का आदान-प्रदान कर लिया, तो उसने एक तरफ आसन ग्रहण कर लिया और महाभाग से बोलाः

17. 'गौतम, क्या हमारा युवा शिष्य ब्राह्मण अम्बट्ठ यहां होकर गया है?'

'हां, ब्राह्मण, वह यहां आया था।'

'और, गौतम, क्या आपने उससे बात की थी?'

'हां, ब्राह्मण, मैंने की थी।'

'और आपने उससे किस विषय पर बात की थी?'

18. तब महाभाग ने, जो भी बात हुई थी, उसके बारे में ब्राह्मण पोष्करसाति को बताया, और जब वह इस प्रकार बोल चुके, तो पोष्करसाति ने महाभाग से कहा : 'गौतम, वह युवा ब्राह्मण अम्बट्ठ अज्ञानी और मूर्ख है। गौतम, उसे क्षमा कर दीजिए।'

19. और ब्राह्मण पोष्करसाति ने महाभाग के शरीर को ध्यानपूर्वक देखा और उस पर महापुरुष के बत्तीस लक्षणों को परखा। उसे दो लक्षणों को छोड़कर सभी लक्षण स्पष्ट दिखाई दिए। खोल में, प्रच्छन्न अंग और सुदीर्घ जिह्वा, इन दो लक्षणों के बारे में वह अब तक शंका और अनिर्णय की स्थिति में था। लेकिन महाभाग ने पोष्करसाति को वे लक्षण दिखा दिए, जैसे कि अम्बट्ठ को भी दिखाए थे, और पोष्करसाति ने देखा कि महाभाग महापुरुष के कुछ ही लक्षणों से ही नहीं, अपितु पूरे बत्तीस लक्षणों से संपन्न हैं, और उसने महाभाग से कहा : 'क्या श्रद्धेय गौतम, संघ के सदस्यों सहित कल का भोजन मेरे साथ करने की कृपा करेंगे?' और महाभाग ने मौन रहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

20. तब ब्राह्मण पोष्करसाति ने यह देखते हुए कि महाभाग ने (कल के लिए) प्रार्थना स्वीकार कर ली है, समय की घोषणा की : 'समय हो गया है, गौतम, भोजन तैयार है।' और तब महाभाग ने जो प्रातः ही तैयार हो चुके थे, अपना चीवर पहना और अपना पात्र लेकर बांधवों के साथ पोष्करसाति के घर पर पहुंचे और अपने लिए तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। और तब ब्राह्मण पोष्करसाति ने अपने हाथों से पुष्ट और नरम, दोनों ही प्रकार का स्वादिष्ट भोजन महाभाग को और उनके संघ के युवा ब्राह्मण सदस्यों को तब तक परोसा, जब तक कि वे तृप्त नहीं हो गए और उन्होंने और भोजन ग्रहण करने से इंकार नहीं कर दिया, और जब महाभाग भोजन कर चुके, तो उन्होंने अपना पात्र धोया और हस्त प्रक्षालन किया। पोष्करसाति ने नीचे आसन ग्रहण किया और उनके पार्श्व में बैठ गया।

21. और तब इस प्रकार बैठे हुए उससे महाभाग ने उपयुक्त क्रमानुसार बात की, अर्थात उन्होंने उसे उदारता, सद्आचरण, स्वर्ग और भय के बारे में, मिथ्याभिमान और लोभ की विकृति और त्याग के लाभों के विषय में बताया। और जब महाभाग ने देखा कि ब्राह्मण पोष्करसाति प्रकटतः नरम, पूर्वाग्रह से मुक्त, उन्नत और हृदय से आस्थावान बन चुका है, तब उन्होंने उस सिद्धांत की घोषणा की, जिस पर केवल बुद्ध ही विजय पा सके हैं, अर्थात दुख का सिद्धांत, उसका मूल, उसकी समाप्ति और इस लक्ष्य को

प्राप्त करने का मार्ग। और जिस प्रकार एक स्वच्छ वस्त्र, जिसके सभी दाग धो दिए गए हैं, तुरंत रंग ग्रहण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण पोष्करसाति को वहां बैठे सत्य को निरखने के लिए शुद्ध और स्वच्छ दृष्टि प्राप्त हो गई, और उसे ज्ञात हुआ, 'जिस किसी का भी प्रारंभ होता है, उसके साथ ही उसकी समाप्ति की आवश्यकता भी निहित है।'

22. और तब ब्राह्मण पोष्करसाति ने, जिसने अब सत्य का दर्शन कर लिया था, उस पर विजय प्राप्त कर ली थी, उसे समझ लिया था, उसका गहन चिंतन कर लिया था, जो शंका से परे हो गया था, भ्रांति से मुक्ति पा ली थी और पूर्ण विश्वास प्राप्त कर लिया था, और जो स्वामी के उपदेश के अपने ज्ञान के लिए किसी अन्य पर आश्रित नहीं था—महाभाग को संबोधित किया और कहा :

'परम श्रेष्ठ, हे गौतम, आपके मुख से निकले ये शब्द परम श्रेष्ठ हैं। ठीक ऐसे ही, जैसे कोई मनुष्य किसी फेंकी हुई चीज को फिर से स्थापित करे, अथवा उसे प्रकट करे जो कुछ छिपाया गया हो, अथवा भटके हुए को सही मार्ग दिखाए, अथवा अंधेरे में प्रकाश ले आए जिससे आंखों वाले बाह्य रूपों को देख सकें, ठीक उसी प्रकार, स्वामी, श्रद्धेय गौतम ने मुझे विभिन्न रूपों में सत्य का ज्ञान कराया है। और मैं, हे गौतम, अपने पुत्रों, अपनी पत्नी, अपने संगी-साथियों सहित सत्य और संघ के लिए अपने पथप्रदर्शक के रूप में श्रद्धेय गौतम की शरण में आता हूं। श्रद्धेय गौतम, मुझे एक ऐसे शिष्य के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज से जीवन-पर्यन्त उन्हें अपना पथप्रदर्शक बना लिया है। और जिस प्रकार श्रद्धेय गौतम उक्कट्ठा में अन्य लोगों के परिवारों और अपने शिष्यों के पास जाते हैं, वह मेरे परिवार में भी आएं। और वहां जो कोई भी हों, ब्राह्मण अथवा उनकी पत्नियां, वे श्रद्धेय गौतम के प्रति सम्मान व्यक्त करेंगे, अथवा उनकी उपस्थिति में खड़े होंगे, अथवा उन्हें आसन और जल भेंट करेंगे, अथवा उनकी उपस्थिति से प्रसन्न होंगे, उन्हें दीर्घकाल तक सुख और आनंद की प्राप्ति होगी।'

'जो तुम कहते हो, ब्राह्मण, वह ठीक है।'

(यहां अम्बट्ठ सुत्त समाप्त होता है)

VI

जाति के विरोध के मामले में बुद्ध ने जो शिक्षा दी, उसी को व्यवहार में भी लाए। उन्होंने वही किया, जिसे आर्यों के समाज ने करने से इंकार कर दिया था। आर्यों के समाज में शूद्र अथवा नीच जाति का मनुष्य कभी ब्राह्मण नहीं बन सकता था। किंतु बुद्ध ने जातिप्रथा के विरुद्ध केवल प्रचार ही नहीं किया, अपितु शूद्र तथा नीच जाति के लोगों

को भिक्षु का दर्जा दिलाया, जिनका बौद्धमत में वही दर्जा है, जो ब्राह्मणवाद में ब्राह्मण का है।

सर्वप्रथम, स्वयं अपने संघ के संबंध में, जिस पर केवल उनका ही पूर्ण नियंत्रण था, वह जन्म, व्यवसाय और सामाजिक दर्जे से प्राप्त होने वाले सभी प्रकार के लाभों और हानियों की पूर्णतः तथा नितांत उपेक्षा करते हैं, और मात्र आनुष्ठानिक अथवा सामाजिक अशुचिता के मनमाने नियमों से उत्पन्न होने वाली बाधाओं और अयोग्यताओं को मिटा देते हैं।

उनके संघ के सर्वाधिक प्रख्यात सदस्यों में से एक था उपाली, जिसका उल्लेख संघ के नियमों के संबंध में स्वयं गौतम के बाद प्रमुख प्राधिकारी के रूप में किया जाता था, जो पहले नाई का काम करता था, जिसे घृणित व्यवसायों में से एक माना जाता है। इसी प्रकार बांधवों में से पुक्कुसा जाति का निम्न आदिवासी सुनीता था, जिसके पद्यों को थेरी गाथा में सम्मिलित करने के लिए चुना गया है। घोर नास्तिकता का प्रवर्तक सती, मछुआरे के पुत्रों में से था। इस जाति को भी बाद में निम्न जाति माना गया और तब भी निर्दयता के कारण उस व्यवसाय को खास तौर से घृणित माना जाता था। नंदा एक चरवाहा था। दो पंथकों का जन्म एक अच्छे परिवार की कन्या का एक दास के साथ सहवास से हुआ (जिसके कारण मनु के सूत्र 31 में निर्धारित नियमानुसार, वे वास्तव में जाति-बहिष्कृत थे)। कापा एक मृग-आखेटक की पुत्री थी। पुन्ना और पुन्निका दास कन्याएं थीं। सुमंगलमाता श्रमिकों की पुत्री और पत्नी थी, और शुभा लुहार की बेटी थी। और भी उदाहरण निश्चित रूप से दिए जा सकते हैं और ग्रंथों के प्रकाशन के बाद अन्य के बारे में भी पता चलेगा।

इस बात से कोई ऐतिहासिक अंर्तदृष्टि प्रकट नहीं होती कि संख्या की अल्पता का उपहास किया जाए और यह कहा जाए कि कल्पित बौद्धिकता अथवा उदारता मात्र एक बहाना है। तथ्यों से स्थिति स्वयं स्पष्ट हो जाती है, और संघ के नीच जाति के सदस्यों का प्रतिशत संभवतः शेष आबादी की तुलना में तिरस्कृत जातियों और सिप्पा लोगों के प्रतिशत के अच्छे अनुपात में था। इसी प्रकार थेरी गाथा में वर्णित साठ थेरियों की सामाजिक स्थिति का हमें पता है, जिनमें से पांच का उल्लेख ऊपर किया है, अर्थात संपूर्ण संख्या के साढ़े आठ प्रतिशत नीच जाति में जन्मे थे। इसकी काफी संभावना है कि यह सूचना उस अनुपात के बारे में है, जो एक जैसी सामाजिक स्थिति वाले व्यक्तियों की शेष जनसंख्या से था।

जिस प्रकार बुद्ध ने शूद्रों और नीच जाति के मनुष्यों को भिक्षुओं को सर्वोच्च दर्जा दिलाकर उनकी स्थिति को उन्नत किया, उसी प्रकार उन्होंने स्त्रियों की स्थिति को भी ऊंचा उठाया। आर्यों के समाज में स्त्रियों और शूद्रों को समान स्थिति प्रदान की गई

थी, और आर्यों के साहित्य में स्त्रियों और शूद्रों के बारे में साथ-साथ वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनका समान स्तर है। दोनों को संन्यास लेने का कोई अधिकार नहीं था, जब कि संन्यास ही निर्वाण लिए एकमात्र मार्ग था। स्त्रियां और शूद्र निर्वाण से परे थे। बुद्ध ने स्त्रियों के विषय में इस नियम को वैसे ही भंग किया, जिस प्रकार उन्होंने शूद्रों के मामले में किया था। जिस प्रकार एक शूद्र भिक्षु बन सकता था, उसी प्रकार एक स्त्री संन्यासिनी बन सकती थी। यह आर्यों के समाज की दृष्टि में उसे सर्वोच्च दर्जा प्रदान करना था।

बुद्ध ने आर्यों के समाज के नेताओं के विरुद्ध जिस अन्य प्रश्न पर लड़ाई लड़ी, वह अध्यापक और अध्यापन के शीलाचार का प्रश्न था। आर्यों के समाज के नेताओं की यह धारणा थी कि ज्ञान और शिक्षा का विशेषाधिकार ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को प्राप्त है। शूद्रों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं है। उनका आग्रह था कि अगर उन्होंने स्त्रियों अथवा ऐसे पुरुषों को पढ़ाया जो द्विज नहीं हैं, तो इससे सामाजिक व्यवस्था के लिए भय उत्पन्न हो जाएगा। बुद्ध ने आर्यों के इस सिद्धांत की निंदा की। जैसा कि राइस डेविड्स ने इस प्रश्न पर कहा है : 'हर व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दी जानी चाहिए, हर ऐसे व्यक्ति को, जो कुछ योग्यताओं से संपन्न है, अध्यापन की अनुमति दी जानी चाहिए, और यदि वह पढ़ाता है तो उसे सबको सब-कुछ पढ़ाना चाहिए, कुछ भी शेष नहीं रखना चाहिए, और किसी को उससे वंचित नहीं रखा जाना चाहिए।' इस संबंध में बुद्ध और ब्राह्मण लोहिक्क के बीच संवाद का उल्लेख किया जा सकता है, जिसे *लोहिक्क* सुत्त के रूप में जाना जाता है।

लोहिक्क सुत्त

(अध्यापन के शीलाचार की कुछ बातें)

1. इस प्रकार मैंने सुना है। एक बार भारी संख्या में संघ के सदस्यों के साथ लगभग पांच सौ भिक्षुकों सहित कौशल जनपदों की यात्रा के दौरान परम श्रेष्ठ साल वाटिका (साल वृक्षों की पंक्ति से घिरे गांव) में पहुंचे। उस समय, ब्राह्मण लोहिक्क साल-वाटिका में सुस्थापित थे। वह जीवन की हलचल से गुंजित स्थल था, जहां पर्याप्त हरित भूमि थी, वन्य भूमि थी और अनाज था। कौशल-नरेश प्रसेनजित ने उपहार स्वरूप ये क्षेत्र उन्हें इस अधिकार के साथ प्रदान किया था, मानो वह स्वयं राजा हों।

2. अब, उस समय विचारमग्न ब्राह्मण लोहिक्क निम्नलिखित कुत्सित बात सोच रहा था : 'मान लो, कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण किसी उच्च स्थिति (मस्तिष्क की) को प्राप्त कर लेता है, तो उसे उसके बारे में किसी को नहीं बताना चाहिए। क्योंकि कोई मनुष्य दूसरे के लिए क्या कर सकता है? दूसरों को बताना तो ऐसा ही होगा, मानो कि कोई मनुष्य एक पुराने बंधन को तोड़कर स्वयं को नए बंधन में फंसा ले। उसी प्रकार मैं कहता

हूं कि यह (दूसरों को बताने की इच्छा) एक तरह की लालसा है। क्योंकि कोई मनुष्य दूसरे के लिए क्या कर सकता है?'

3. अब, ब्राह्मण लोहिक्क ने समाचार सुना: 'लोग कहते हैं कि शाक्य कुल के श्रमण गौतम जो धार्मिक जीवन अंगीकार करने के लिए शाक्यों से अलग हो गए थे, अब अपने संघ के बहुत से बांधवों सहित कौशल के जिलों की यात्रा करते हुए साल-वाटिका में पहुंच गए हैं। अब जहां तक श्रद्धेय गौतम का संबंध है, उनकी इतनी ख्याति है कि विदेश में भी उनकी ऐसी चर्चा है : महाभाग एक अर्हत, पूर्ण प्रबुद्ध, विवेक और सौजन्य से परिपूर्ण, लौकिक ज्ञान से पुष्ट, मार्गदर्शन के इच्छुक नश्वरों के लिए अनुपम पथप्रदर्शक, देवों और ""नुष्यों के लिए उपदेशक, वरदान प्राप्त हैं। और वह स्वयं देवताओं, ब्राह्मणों और असम प्रदेश की पहाड़ियों पर मर भाषा बोलने वाले लोगों के ऊपर वाले लोक और उसके नीचे संन्यासियों तथा ब्राह्मणों, राजाओं और प्रजाजन वाले लोक सहित संपूर्ण सृष्टि को पूर्ण रूप से इस तरह जानते और देखते हैं, मानो वह उनके सामने हों, और उस संपूर्ण सृष्टि को जानने के बाद, वह अपने ज्ञान की जानकारी दूसरों को कराते हैं। सत्य जो अपने मूल में सुंदर है, प्रगति में सुंदर है, संपूर्णता में सुंदर है, उसी की उद्घोषणा वह भावना और शब्द में करते हैं, वह उच्चतर जीवन की पूर्णता और पवित्रता का भरपूर ज्ञान कराते हैं। और उस प्रकार के अर्हत के दर्शनार्थ जाना अच्छा है।'

4. तब लोहिक्क ब्राह्मण ने भेषिक नाई से कहा : 'आओ भेषिक, वहां जाओ जहां श्रमण गौतम टिके हुए हैं, और वहां जाकर मेरे नाम से उनसे पूछना कि क्या वह रोग और अस्वस्थता से मुक्त हैं, और स्वास्थ्य और शक्ति से पूर्ण सुविधाजनक स्थिति में हैं, और इस प्रकार कहना : क्या श्रद्धेय गौतम अपने संघ के बांधवों सहित कल का भोजन लोहिक्क ब्राह्मण से ग्रहण करना स्वीकार करेंगे?'

5. भेषिक नाई ने लोहिक्क ब्राह्मण के शब्दों का पालन करते हुए कहा, 'बहुत अच्छा, श्रीमन्, और जैसा कहा गया था, उसने वैसा ही किया। और परम श्रेष्ठ ने मौन रहकर उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

6. और जब भेषिक नाई ने देखा कि परम श्रेष्ठ ने सहमति दे दी है, वह अपने स्थान से उठा, और अपना दायां हाथ परम श्रेष्ठ की ओर करते हुए वहां से चला गया और लोहिक्क ब्राह्मण के पास पहुंच कर उससे इस प्रकार बोला : 'श्रीमन्, आपके आदेशानुसार हमने परम श्रेष्ठ को संबोधित किया और परम श्रेष्ठ ने आने की सहमति दे दी है।'

7. तब रात्रि के बीत जाने पर लोहिक्क ब्राह्मण ने अपने निवास-स्थान पर पुष्ट और नरम, दोनों ही प्रकार का स्वादिष्ट भोजन तैयार करवाया और भेषिक नाई से कहा : 'भेषिक, वहां जाओ जहां श्रमण गौतम टिके हुए हैं, और वहां पहुंचकर यह कहते हुए समय की घोषणा कर दो : हे गौतम, समय हो गया है, और भोजन तैयार है।'

भेषिक नाई ने लोहिक्क ब्राह्मण के शब्दों का पालन करते हुए कहा, 'बहुत अच्छा, श्रीमन्, और आदेशानुसार वैसा ही किया। और परम श्रेष्ठ, जो प्रातः ही तैयार हो गए थे, अपना पात्र लेकर संघ के बांधवों सहित साल-वाटिका की ओर चल पड़े।

8. अब, ज्यों ही वह चले, भेषिक नाई परम श्रेष्ठ के पीछे-पीछे चलता रहा। और उसने परम श्रेष्ठ से कहा :

'लोहिक्क ब्राह्मण के दिमाग में निम्नलिखित कुत्सित विचार घर कर गया है, 'मान लो कि कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण किसी उच्च स्थिति (मस्तिष्क की) को प्राप्त कर लेता है, तो उसके बारे में किसी को नहीं बताना चाहिए। क्योंकि कोई मनुष्य दूसरे के लिए क्या कर सकता है? दूसरों को बताना तो ऐसा ही होगा, मानो कि कोई मनुष्य एक पुराने बंधन को तोड़कर स्वयं को नए बंधन में फंसा ले। उसी प्रकार मैं कहता हूं कि यह (दूसरों को बताने की इच्छा) एक तरह की लालसा है।' यह अच्छा होता, श्रीमन्, यदि परम श्रेष्ठ उसके मस्तिष्क को उस कुत्सित विचार से मुक्त कर देते। क्योंकि कोई मनुष्य दूसरे के लिए क्या कर सकता है?'

'वही ठीक रहेगा, भेषिक, वही ठीक होगा।'

9. और परम श्रेष्ठ लोहिक्क ब्राह्मण के निवास स्थान पर गए और अपने लिए नियत आसन पर बैठ गए। और लोहिक्क ब्राह्मण ने बुद्ध के नेतृत्व में उनके संघ को संतुष्ट किया, अपने ही हाथों से पुष्ट और नरम, दोनों ही प्रकार का स्वादिष्ट भोजन तब तक परोसा, जब तक कि उन्होंने और ग्रहण करने से इंकार नहीं कर दिया। और जब परम श्रेष्ठ भोजन कर चुके, तो उन्होंने अपना पात्र धोया और हस्त-प्रक्षालन किया। लोहिक्क ब्राह्मण ने नीचे आसन ग्रहण किया और उनके पार्श्व में बैठ गया। और उसके इस प्रकार आसीन हो जाने पर परम श्रेष्ठ ने उससे निम्नानुसार कहा :

'लोहिक्क, जो कुछ कहते हैं, क्या वह सच है कि तुम्हारे दिमाग में निम्नलिखित कुत्सित विचार उत्पन्न हो गया है (और उन्होंने उपरोक्त कथनानुसार वह विचार प्रकट किया)।

'ऐसा ही है, गौतम।'

10. 'अब तुम क्या सोचते हो, लोहिक्क? क्या तुम साल-वाटिका में सुस्थापित नहीं हो?'

'हां, ऐसा है, गौतम।'

'तब, लोहिक्क, मान लो, कोई इस प्रकार कहे : 'साल-वाटिका' में लोहिक्क ब्राह्मण का राज्य है, उसे अकेले ही साल-वाटिका के संपूर्ण राजस्व और उत्पाद का उपभोग करने दो, किसी और को कुछ न मिले। ऐसी बात कहने वाला व्यक्ति खतरनाक होगा

या नहीं, क्योंकि वह उन लोगों को छेड़ रहा है, जो तुम्हारे अधीन जीवन यापन करते हैं?'

'हां, गौतम, वह खतरनाक होगा।'

'और भय उत्पन्न करने वाला क्या वह व्यक्ति उनकी भलाई के लिए सहानुभूति रखता होगा या नहीं?'

'वह उनकी भलाई के बारे में नहीं सोचेगा, गौतम!'

'और उनकी भलाई की बात न सोचते हुए क्या उसका हृदय उनके प्रेम की ओर उन्मुख होगा अथवा उनसे शत्रुता रखेगा?'

'शत्रुता रखेगा, गौतम।'

'किंतु यदि किसी का हृदय शत्रुता में निमग्न है, तो वह अविश्वसनीय सिद्धांत है, अथवा विश्वसनीय?'

'वह अविश्वसनीय सिद्धांत है, गौतम।'

'अब अगर, लोहिक्क, कोई मनुष्य अविश्वसनीय सिद्धांत का मानने वाला है, तो मैं घोषणा करता हूं कि उसकी नियति यह होगी कि दो भावी जन्मों में एक बार वह या तो पाप मोचन के लिए जन्म लेगा अथवा एक पशु के रूप में उसका पुनर्जन्म होगा।'

11. 'अब तुम क्या सोचते हो, लोहिक्क? क्या कौशल-नरेश प्रसेनजित के अधिकार में काशी और कौशल नहीं हैं?'

'हां, है, गौतम।'

'तो, मान लो, लोहिक्क, यदि कोई इस प्रकार कहे :

'कौशल-नरेश प्रसेनजित के अधिकार में काशी और कौशल हैं, उसे काशी और कौशल के संपूर्ण राजस्व और उत्पाद का उपभोग करने दो, अन्य किसी को कुछ न मिले। ऐसी बात कहने वाला व्यक्ति खतरनाक होगा या नहीं, क्योंकि उसने कौशल-नरेश प्रसेनजित के अधीन जीवनयापन करने वाले मनुष्यों को, तुम्हें और अन्य लोगों को छेड़ा है।'

'हां, गौतम, वह खतरनाक होगा।'

'और भय उत्पन्न करने वाला वह व्यक्ति उनकी भलाई के लिए सहानुभूति रखता होगा या नहीं?'

'वह उनकी भलाई के बारे में नहीं सोचेगा, गौतम?'

'किंतु यदि किसी का हृदय शत्रुता में निमग्न है, तो वह अविश्वसनीय सिद्धांत है अथवा विश्वसनीय?'

'वह अविश्वसनीय सिद्धांत है, गौतम।'

'अब अगर, लोहिक्क, कोई मनुष्य अविश्वसनीय सिद्धांत का मानने वाला है, तो मैं घोषणा करता हूं कि उसकी नियति यह होगी कि दो भावी जन्मों में एक बार वह या तो पाप मोचन के लिए जन्म लेगा अथवा एक पशु के रूप में उसका पुनर्जन्म होगा।

12. और 14. 'इसलिए, लोहिक्क, तुम स्वीकार करते हो कि वह जो यह कहता है कि साल-वाटिका पर तुम्हारा अधिकार है, इसलिए तुम्हें वहां के संपूर्ण राजस्व और उत्पाद का उपभोग करना चाहिए और अन्य किसी को कुछ नहीं देना चाहिए, और वह जो यह कहता है कि कौशल-नरेश प्रसेनजित का काशी और कौसल पर अधिकार है, इसलिए उन्हें स्वयं वहां के संपूर्ण राजस्व और उत्पाद का उपभोग करना चाहिए और अन्य किसी को कुछ नहीं देना चाहिए, वह तुम्हारे अधीनस्थ रहने वालों के लिए भय उत्पन्न करेगा अथवा नरेश प्रसेनजित के अधीन रहने वाले तुम्हारे और अन्य लोगों के लिए भय उत्पन्न करेगा, और जो इस प्रकार दूसरों के लिए भय उत्पन्न करते हैं, उनमें उनके प्रति सहानुभूति का अभाव होता है। और जिस मनुष्य के प्रति सहानुभूति का अभाव है, उसका हृदय शत्रुता में निमग्न हो जाता है, और अपने हृदय को शत्रुता में निमग्न कर लेना अविश्वसनीय सिद्धांत है।

13. और 15. 'ठीक ऐसे ही, लोहिक्क, जो यह कहता है : 'मान लो, कोई श्रमण अथवा ब्राह्मण किसी उच्च स्थिति (मस्तिष्क की) को प्राप्त कर लेता है, तो क्या उसे उसके बारे में किसी और को नहीं बताना चाहिए? क्योंकि कोई मनुष्य दूसरे के लिए क्या कर सकता है? दूसरों को बताना तो ऐसा ही होगा, मानो कि कोई मनुष्य एक पुराने बंधन को तोड़कर स्वयं को नए बंधन में फंसा ले।' उसी प्रकार मैं कहता हूं कि दूसरों को बताने की यह इच्छा एक तरह की लालसा है। जो इस प्रकार बात करता है, वह उन परिजनों के मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करेगा, जिन्होंने उस व्यक्ति द्वारा निर्धारित सिद्धांत और अनुशासन अंगीकार किए हैं, जिन्होंने सत्य पर विजय प्राप्त कर ली है—उदाहरण के तौर पर धर्मान्तरण का फल प्राप्त कर चुके हैं, अथवा एक बार उसमें वापस जाने, अथवा कभी वापस न जाने, और यहां तक कि अर्हत के रूप में दीक्षित हो जाने की स्थिति में पहुंच चुके हैं, वह उनके मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करेगा, जो ऐसे आचरण को फलित कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप स्वर्ग में परमेश्वर्य की स्थितियों में पुनर्जन्म संभव है। किंतु उनके मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करके उनकी भलाई के प्रति उसकी सहानुभूति नहीं होगी, उनकी भलाई के प्रति सहानुभूति के अभाव में उसका हृदय शत्रुता में निमग्न हो जाएगा, जो कि अविश्वसनीय सिद्धांत है। अब, लोहिक्क, अगर कोई मनुष्य अविश्वसनीय

सिद्धांत को मानता है, तो मैं घोषणा करता हूं कि उसकी स्थिति यह होगी कि दो भावी जन्मों में एक बार वह या तो पाप-मोचन के लिए जन्म लेगा अथवा एक पशु के रूप में उसका जन्म होगा।

16. 'लोहिक्क, विश्व में ये तीन प्रकार के गुरु हैं, जो दोषारोपण के योग्य हैं, और जो भी इस प्रकार के गुरु को दोषी बताएगा, भर्त्सना न्यायोचित होगी, तथ्यों और सत्य के अनुरूप, अनुचित नहीं होगी। यह तीन प्रकार क्या हैं?

> सर्वप्रथम, लोहिक्क, एक इस प्रकार का गुरु होता है, जो श्रमण के उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका है, जिसके कारण उसने गृह-त्याग किया और गृहविहीन जीवन अंगीकार किया। उस लक्ष्य को स्वयं प्राप्त किए बिना वह अपने श्रोताओं को सिद्धांत (धम्म) का उपदेश देता है और कहता है : 'यह तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है, इससे तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त होगी।' तब उसके वे श्रोता न तो उसे सुनते हैं, न उसके शब्दों की ओर ध्यान देते हैं, और न उसके ज्ञान के माध्यम से चित्त को स्थिर कर पाते हैं, वे अपने गुरु की शिक्षा से अलग, अपने ही मार्ग पर चलते हैं। इस प्रकार के गुरु की भर्त्सना की जानी चाहिए, और उसे इन तथ्यों की जानकारी कराते हुए यह भी बताना चाहिए : 'तुम उस पुरुष की तरह हो, जो ऐसी स्त्री से प्रणय निवेदन करेगा, जो कि उसका तिरस्कार करती है, अथवा उसका आलिंगन करेगा जो उससे अपना मुख फेर लेती है।' मैं कहता हूं, तुम्हारा यह लोभ भी उसी प्रकार का है (मनुष्यों के गुरु का ढोंग रचते रहना, जब कि कोई ध्यान नहीं देता, वे तुम्हारा विश्वास ही नहीं करते)। तब किस लिए, कोई मनुष्य दूसरे के लिए कुछ करे?

लोहिक्क, यह विश्व में पहले प्रकार का गुरु है, जो दोषारोपण के योग्य है। और जो कोई भी ऐसे को दोषी बताएगा, उसकी भर्त्सना न्यायोचित होगी, तथ्यों और सत्य के अनुरूप, अनुचित नहीं होगी।

17. दूसरे स्थान पर, लोहिक्क, एक इस प्रकार का गुरु होता है, जो श्रमण के उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका है, जिसके कारण उसने गृह-त्याग किया और गृहविहीन जीवन अंगीकार किया। उस लक्ष्य को स्वयं प्राप्त किए बिना वह अपने श्रोताओं को सिद्धांत का उपदेश देता है और कहता है : 'यह तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है, इससे तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त होगी।' और उसके शिष्य सुनते हैं, उसके शब्दों पर ध्यान देते हैं, कही हुई बात को समझ कर वे चित्त की स्थिरता प्राप्त करते हैं, और गुरु के उपदेश से अलग वे अपने ही मार्ग पर नहीं चलते। इस प्रकार के गुरु की भर्त्सना की जानी चाहिए, और उसे इन तथ्यों की जानकारी कराते हुए यह भी बताना चाहिए : 'तुम उस मनुष्य की तरह हो, जो अपने खेत की तरफ

ध्यान न देकर अपने पड़ोसी के खेत की निराई के बारे में सोचेगा।' मैं कहता हूं, तुम्हारा यह लोभ भी उसी प्रकार का है।(दूसरों को शिक्षा देते रहना, जब कि तुमने स्वयं को शिक्षित नहीं किया है)। तब एक मनुष्य दूसरे के लिए क्या कर सकता है?

लोहिक्क, यह विश्व में दूसरे प्रकार का गुरु है, जो दोषारोपण के योग्य है। और जो भी ऐसे गुरु की भर्त्सना करेगा, उसकी भर्त्सना न्यायोचित होगी, तथ्यों और सत्य के अनुरूप, अनुचित नहीं होगी।

18. और पुनः, लोहिक्क, तीसरे स्थान पर एक इस प्रकार का गुरु होता है, जो स्वयं श्रमण के उस लक्ष्य को प्राप्त कर चुका है, जिसके कारण उसने गृह-त्याग किया और गृहविहीन जीवन अंगीकार किया। उस लक्ष्य को स्वयं प्राप्त कर चुकने के बाद वह अपने श्रोताओं को सिद्धांत का उपदेश देता है और कहता है : 'यह तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है, इससे तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त होगी।' किंतु उसके वे श्रोता न तो उसकी बात सुनते हैं, न उसके शब्दों पर ध्यान देते हैं, न उसकी बात को समझकर चित्त की स्थिरता प्राप्त करते हैं। गुरु के उपदेश से अलग वे अपने ही मार्ग पर चलते हैं। इस प्रकार के गुरु की भर्त्सना की जानी चाहिए और उसे इन तथ्यों की जानकारी देते हुए यह भी बताना चाहिए: 'तुम उस मनुष्य की तरह हो जो पुराने बंधन को तोड़कर स्वयं को नए बंधन में फंसा लेता है।' मैं कहता हूं, तुम्हारा लोभ उसी प्रकार का है (शिक्षा देते रहना, जब कि तुमने शिक्षा देने के लिए स्वयं को प्रशिक्षित नहीं किया है)। तब किसलिए, एक मनुष्य दूसरे के लिए कुछ करे?

लोहिक्क, विश्व में यह तीसरे प्रकार का गुरु है, जो दोषारोपण के योग्य है। और जो भी इस प्रकार के गुरु को दोषी बताएगा, उसकी भर्त्सना न्यायोचित होगी, तथ्यों और सत्य के अनुरूप, अनुचित नहीं होगी। और, लोहिक्क, ये तीन प्रकार के गुरु हैं, जिनके बारे में मैंने बताया।

19. और जब वह इस प्रकार बोल चुके, लोहिक्क ब्राह्मण परम श्रेष्ठ से इस प्रकार बोले : 'लेकिन, गौतम, क्या विश्व में इस प्रकार का भी कोई गुरु है, जो दोषारोपण के योग्य न हो?'

'हां, लोहिक्क, विश्व में एक ऐसा गुरु है, जो दोषारोपण के योग्य नहीं है।'

'और, गौतम, वह किस प्रकार का गुरु है?'

(इसका उत्तर ऊपर दिए गए व्याख्यात्मक शब्दों के रूप में श्रमण-फल में है।) यह निम्नानुसार है :

1. तथागत (जिसने सत्य पर विजय प्राप्त कर ली हो) का आविर्भाव, उनके उपदेश, श्रोता के धर्मान्तरण और उनके द्वारा गृहविहीन स्थिति का अंगीकार किया जाना।

2. शील का सूक्ष्म विवरण, जिसका वह पालन करता है।

3. हृदय का विश्वास, जो वह अपने व्यवहार द्वारा प्राप्त करते हैं।

4. 'इंद्रियों का द्वार सुरक्षित है' के संबंध में अनुच्छेद।

5. 'सावधान और आत्मलीन' के संबंध में अनुच्छेद।

6. थोड़े से संतुष्ट, जीवन की सादगी के संबंध में अनुच्छेद।

7. उद्धार, असंयमित स्वभाव, आलस्य, चिंता और विमूढ़ता के संबंध में अनुच्छेद।

8. इस मुक्ति के फलस्वरूप प्राप्त आनंद और शांति जिससे उसका संपूर्ण अस्तित्व परिपूर्ण हो जाता है, के संबंध में अनुच्छेद।

9. चार हर्षोन्माद (गाथा) के संबंध में अनुच्छेद।

10. ज्ञान से उत्पन्न अंतर्दृष्टि के संबंध में अनुच्छेद (प्रथम मार्ग का ज्ञान)।

11. चार महान सत्यों, मादक द्रव्यों—लोभ, मोह, भविष्य, अज्ञानता का विनाश —और अर्हंत के पद की प्राप्ति के संबंध में अनुच्छेद।

टेक के साथ, अंतिम अनुच्छेद इस प्रकार है :

'और गुरु, चाहे कोई भी हो, लोहिक्क, जिसके अधीन शिष्य इतनी उत्कृष्टता प्राप्त करता है, वैसे गुरु पर विश्व में कोई दोषारोपण नहीं कर सकता। और ऐसे गुरु पर जो भी दोषारोपण करेगा, उसकी भर्त्सना न्यायोचित नहीं होगी—तथ्यों अथवा सत्य के अनुरुप नहीं होगी, और उसका समुचित आधार नहीं होगा।'

78. और जब वह इस प्रकार बोल चुके, तो लोहिक्क ब्राह्मण ने परम श्रेष्ठ से कहा : 'किसी मनुष्य को कोई उसके सिर के बालों से खींचकर पकड़ ले और उसे उठाकर वापस दृढ़ भूमि पर सुरक्षित रख दे, ठीक वैसे ही पाप विमोचन स्थल पर गिरते हुए मुझे उठाकर श्रद्धेय गौतम ने वापस भूमि पर रख दिया है। परम श्रेष्ठ, हे गौतम, आपके मुख से निकले शब्द परम श्रेष्ठ हैं। ठीक ऐसे ही, जैसे कोई मनुष्य किसी फेंकी हुई चीज को फिर से स्थापित करे, अथवा उसे प्रकट करे जो कुछ छिपाया गया हो, अथवा भटके हुए को सही मार्ग दिखाए, अथवा अंधेरे में प्रकाश ले आए जिससे आंखों वाले बाह्य रूपों को देख सकें— ठीक उसी प्रकार श्रद्धेय गौतम ने मुझे विभिन्न रूपो में सत्य का ज्ञान कराया है। और मैं भी सत्य और संघ के लिए अपने पथप्रदर्शक के रूप में श्रद्धेय गौतम की शरण में आता हूं। श्रद्धेय गौतम, मुझे एक ऐसे शिष्य के रूप में स्वीकार करें, जिसने आज से जीवन-पर्यन्त उन्हें अपना पथप्रदर्शक बना लिया है।'

5

बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन

डा. भीमराव अम्बेडकर ने अंग्रेजी में लिखित 'रिवोल्यूशन एंड काउंटर-रिवोल्यूशन' विषयक शोध के एक अंग के रूप में 'दि डिक्लाइन एंड फाल आफ बुद्धिज्म' (बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन) शीर्षक लेख लिखा था। उनके कागजों में उसके केवल पांच पृष्ठ मिले, जिन्हें संशोधित भी नहीं किया गया था। डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को इस निबंध की प्रति श्री एस. एस. रेगे से मिली, जिसमें डा. अम्बेडकर द्वारा यत्र-तत्र अपनी कलम से किए गए कुछ संशोधन मिलते हैं। अंग्रेजी में यह निबंध अठारह टंकित पृष्ठों में है – संपादक

I

भारत से बौद्ध धर्म के लोप हो जाने पर उन सभी लोगों को अत्यधिक आश्चर्य होता है, जिन्होंने इस विषय पर कुछ चिंतन किया है और उन्हें इसकी ऐसी स्थिति देखकर दुख भी होता है। परंतु यह चीन, जापान, बर्मा, स्याम, इंडोचीन, श्रीलंका तथा मलाया द्वीप-समूह में कहीं-कहीं अभी भी विद्यमान है। केवल भारत में ही इसका अस्तित्व नहीं रहा है। भारत में केवल इसका अस्तित्व ही समाप्त नहीं हुआ, बल्कि बुद्ध का नाम भी अधिकांश हिंदुओं के दिमाग से निकल गया है। ऐसा कैसे हो गया, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता है। केवल यही बात नहीं है कि इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं है, बल्कि किसी भी व्यक्ति ने इसके संतोषजनक उत्तर को ढूंढने का प्रयास भी नहीं किया है। इस विषय पर विचार करते समय लोग एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंतर को भूल जाते हैं। यह अंतर बौद्ध धर्म की अवनति और पतन के बीच का है। दोनों में अंतर रखना आवश्यक है। बौद्ध धर्म का पतन एक ऐसी बात है जो उन कारणों से भिन्न है, जिनसे इसकी अवनति हुई है। पतन के कारण तो बिल्कुल स्पष्ट हैं, जब कि अवनति के कारण उतने स्पष्ट नहीं हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में बौद्ध धर्म का पतन मुसलमानों के आक्रमणों के कारण हुआ था। इस्लाम 'बुत' के शत्रु के रूप में प्रकट हुआ। 'बुत' शब्द, जैसा कि लोग जानते हैं, अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ 'मूर्ति' है। तथापि, बहुत से लोगों को यह पता नहीं है कि 'बुत' शब्द की व्युत्पत्ति कहां से हुई है। 'बुत' शब्द अरबी भाषा में बुद्ध का बिगड़ा हुआ रूप है। इस प्रकार इस शब्द की व्युत्पत्ति से यह पता चलता है कि मुसलमान विचारकों की दृष्टि में मूर्तिपूजा और बौद्ध धर्म, दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं। मुसलमानों के लिए मूर्तिपूजा तथा बौद्ध धर्म एक जैसे ही थे। इस प्रकार मूर्तिभंजन करने का लक्ष्य, बौद्ध धर्म को नष्ट करने का लक्ष्य बन गया। इस्लाम ने बौद्ध धर्म को केवल भारत में ही नष्ट नहीं किया, बल्कि वह जहां भी गया, वहीं उसने बौद्ध धर्म को मिटाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। इस्लाम धर्म के अस्तित्व में आने से पहले बौद्ध धर्म बैक्ट्रिया, पार्थिया, अफगानिस्तान, गांधार तथा चीनी तुर्किस्तान का धर्म था और एक प्रकार से यह धर्म समूचे एशिया में फैला हुआ था।[1] इन सब देशों में इस्लाम ने बौद्ध धर्म को नष्ट किया। जैसा कि विन्सेंट स्मिथ[2] ने कहा है:

> "मुसलमान आक्रमणकारियों ने अनेक स्थानों पर जो भीषण हत्याकांड किए, वे रूढ़िवादी हिंदुओं द्वारा किए गए अत्याचारों से कहीं अधिक प्रबल थे और भारत के कई प्रांतों से बौद्ध धर्म के लुप्त होने के लिए भारी जिम्मेदार हैं।"

इस स्पष्टीकरण से सब लोग संतुष्ट नहीं होंगे। यह पर्याप्त नहीं लगता। इस्लाम ने ब्राह्मणवाद तथा बौद्ध धर्म, दोनों पर आक्रमण किया। यह पूछा जा सकता है कि उनमें से एक जीवित क्यों रहा और दूसरा नष्ट क्यों हो गया? यह तर्क युक्तिसंगत तो लगता है, परंतु इससे उक्त सिद्धांत का खंडन नहीं होता। ब्राह्मणवाद जीवित रहा तथा उसका अस्तित्व बना रहा। इस बात को स्वीकार करने का अभिप्राय यह नहीं है कि बौद्ध धर्म का पतन इस्लाम की तलवार की धार, अर्थात उनके आक्रमणों के कारण नहीं हुआ। इसका अभिप्राय केवल यह है कि उस समय कुछ ऐसी परिस्थितियां थीं, जिनके कारण इस्लाम के आक्रमण के सामने ठहरना व जीवित रहना ब्राह्मणवाद के लिए तो संभव था, लेकिन बौद्ध धर्म के लिए असंभव हो गया था।

जो लोग इस विषय पर और अधिक विचार करेंगे, उनको यह पता चलेगा कि उस समय तीन ऐसी विशेष परिस्थितियां थीं, जिन्होंने मुस्लिम आक्रमणों के संकट के सामने ब्राह्मणवाद को टिका व बने रहना संभव और बौद्ध धर्म के लिए असंभव बना दिया था। पहली बात तो यह है कि मुस्लिम आक्रमणों के समय ब्राह्मणवाद को राज्य की सहायता व समर्थन प्राप्त था। बौद्ध धर्म को ऐसी कोई सहायता व समर्थन प्राप्त नहीं था। तथापि,

---

1. आधुनिक अनुसंधानों से पता चलता है कि बौद्ध धर्म यूरोप में फैल गया था और ब्रिटेन में सैल्ट बौद्ध थे। देखिए, डोनाल्ड ए. मैकेंजी की पुस्तक *बुद्धिज्म इन प्री-क्रिश्चियन ब्रिटेन*
2. *अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया* (1924)

जो बात अधिक महत्वपूर्ण है, वह यह है कि ब्राह्मणवाद को राज्य की सहायता व समर्थन तब तक प्राप्त रहा, जब तक इस्लाम एक शांत धर्म के रूप में विकसित नहीं हुआ और उसके अंदर मूर्तिपूजा के विरुद्ध एक लक्ष्य के रूप में प्रारंभ में उन्माद की जो ज्वाला जल रही थी, वह समाप्त नहीं हुई। दूसरी बात यह है कि इस्लाम की तलवार ने बौद्धों के पौरोहित्य को बुरी तरह नष्ट कर दिया और उसे फिर से जीवित नहीं किया जा सका। इसके विपरीत ब्राह्मणवादी पौरोहित्य को मिटाना व नष्ट करना इस्लाम के लिए संभव नहीं हुआ। तीसरी बात यह है कि भारत के ब्राह्मणवादी शासकों ने बौद्ध जनसाधारण पर अत्याचार किए। उनके इस अत्याचार व उत्पीड़न से बचने के लिए भारत के बौद्ध लोगों को बहुत बड़ी संख्या में इस्लाम को अंगीकार करना पड़ा और उन्होंने बौद्ध धर्म को सदा के लिए छोड़ दिया।

इनमें से कोई भी ऐसा तथ्य नहीं है, जिसकी पुष्टि इतिहास न करता हो।

भारत के जो प्रांत मुस्लिम प्रभुत्व व शासन के अधीन आए थे, उनमें सिंध पहला प्रांत था। इस प्रांत पर पहले एक शूद्र राजा का शासन था। परंतु बाद में उसे एक ब्राह्मण ने अपने राज्य में मिला लिया। वहां उसके वंश का शासन रहा। सन् 712 में जब इब्ने कासिम द्वारा सिंध पर आक्रमण किया गया तो उस समय उसके द्वारा ब्राह्मणवादी धर्म की सहायता करना स्वाभाविक था। सिंध का शासक दाहिर था। इस दाहिर का संबंध ब्राह्मण शासकों के वंश से था।

ह्वेनसांग ने स्वयं अपनी आंखों से यह देखा था कि उसके समय में पंजाब पर एक क्षत्रिय बौद्ध राजवंश का शासन था। इस राजवंश ने पंजाब पर लगभग सन् 880 तक शासन किया। इसके बाद उस राज्य को लल्लिया नामक एक ब्राह्मण सेनाध्यक्ष ने अपने अधीन कर लिया था, जिसने ब्राह्मणशाही राजवंश की स्थापना की। इस वंश ने पंजाब पर सन् 880 से 1021 तक शासन किया। इस प्रकार यह दिखाई पड़ेगा कि जिस समय सुबुक्तगीन तथा मौहम्मद ने पंजाब पर आक्रमण आरंभ किए थे, तब तब देशी शासक ब्राह्मण धर्मावलंबी थे और जयपाल (960-980 ई.), आनंदपाल (980-1000 ई.) तथा त्रिलोचनपाल (1000-21 ई.) ब्राह्मण धर्मावलंबी शासक थे। सुबुक्तगीन तथा मौहम्मद के साथ इनके संघर्ष के बारे में हमने बहुत पढ़ा है।

मध्य भारत मुस्लिम आक्रमणों से ग्रस्त रहने लगा था। ये आक्रमण मौहम्मद के समय से आरंभ हुए थे और शहाबुद्दीन गौरी के नेतृत्व में जारी रहे। उस समय मध्य भारत में अलग-अलग राज्य थे। मेवाड़ (अब उदयपुर) पर गहलौतों का शासन था, सांभर (अब बूंदी, कोटा तथा सिरोही में विभक्त) पर चौहानों का शासन था, कन्नौज[1]

---

1. कन्नौज में कुछ नहीं बचा था। यद्यपि पृथ्वीराज ने बड़ी वीरता से उसकी रक्षा की थी, परंतु मौहम्मद ने इसे पूरी तरह से नष्ट कर दिया था।

पर प्रतिहार, धार पर परमार, बुंदेलखंड पर चंदेल, अन्हिलवाड़ पर चावड़ा और चेदि पर कलचुरि शासन करते थे। इन सभी राज्यों के शासक राजपूत थे और राजपूत कुछ कारणों से, जो रहस्यपूर्ण हैं और जिनकी मैं बाद में चर्चा करूंगा, ब्राह्मणवादी धर्म के सबसे कट्टर समर्थक हो गए थे।

इन आक्रमणों के समय बंगाल दो राज्यों, पूर्वी तथा पश्चिम में, विभक्त हो गया था। पश्चिम बंगाल पर पाल वंश के राजाओं का शासन था और पूर्वी बंगाल पर सेन वंश के राजाओं का शासन था।

पाल क्षत्रिय थे। वे बौद्ध धर्मावलंबी थे, परंतु श्री वैद्य[1] के शब्दों में, 'शायद वे केवल प्रारंभ में या नाम मात्र के लिए बौद्ध थे।' सेन राजाओं के सबंध में इतिहासकारों में मतभेद है। डा. भंडारकर का कहना है कि ये सब ब्राह्मण थे, जिन्होंने क्षत्रियों के सैनिक व्यवसाय को अपना लिया था। श्री वैद्य इस बात को बलपूर्वक कहते हैं कि सेन राजा आर्य क्षत्रिय या चंद्रवंशी राजपूत थे। कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं है कि राजपूतों की भांति सेन सनातन या रूढ़िवादी धर्म के समर्थक थे।[2]

नर्मदा नदी के दक्षिण में, मुस्लिम आक्रमण के समय चार राज्य विद्यमान थे– (1) पश्चिमी चालुक्यों का दक्कन राज्य, (2) चोलों का दक्षिण राज्य, (3) पश्चिमी तट पर कोंकण में सिलहाड़ा राज्य, तथा (4) पूर्वी तट पर त्रिकलिंग का गंग राज्य। ये राज्य सन् 1000-1200 के दौरान समृद्ध हुए। यही समय मुस्लिम आक्रमणों का था। उनके अधीन कुछ सामंती राज्य थे। ये राज्य 12वीं. शताब्दी में पुनः शक्तिशाली हो गए और 13वीं शताब्दी में स्वतंत्र तथा शक्ति-संपन्न हो गए थे। ये राज्य हैं– (1) देवगिरि जिस पर यादवों का शासन, (2) वारंगल जिस पर काकतीय वंश का शासन, (3) हैयबिड पर होयसल वंश का शासन, (4) मदुरा पर पांड्य वंश का शासन, तथा (5) त्रावणकोर पर चेर वंश के राजाओं का शासन था।

ये सब शासक रूढ़िवादी ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे।

भारत पर मुस्लिम आक्रमण सन् 1001 में आरंभ हो गए थे। इन आक्रमणों की अंतिम लहर सन् 1296 में दक्षिण भारत में पहुंची, जब अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरि राज्य को अपने अधीनस्थ बनाया। भारत पर मुस्लिम विजय वास्तव में सन् 1296 तक पूरी नहीं हुई थी। अधीन बनाने के लिए ये युद्ध मुस्लिम विजेताओं तथा स्थानीय शासकों के बीच चलते रहे, जो यद्यपि पराजित हो गए थे, पर अधीन नहीं हुए थे। परंतु जिस बात को

---

1. *हिस्ट्री आफ मैडिवल हिंदू इंडिया,* खंड 2, पृ. 142
2. *वही,* खंड 3. अध्याय 10

इस प्रकार बौद्ध पुजारियों का मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा संहार किया गया। उन्होंने जड़ पर ही कुल्हाड़ी मारी। धम्मोपदेष्टा की हत्या कर इस्लाम ने बौद्ध धर्म की ही हत्या कर दी। यह एक घोर संकट था, जो भारत में बौद्ध धर्म के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। किसी अन्य विचारधारा की भांति धर्म की स्थापना केवल प्रचार द्वारा ही की जा सकती है। यदि प्रचार असफल हो जाए तो धर्म भी लुप्त हो जाता है। पुजारी वर्ग, वह चाहे जितना भी घृणास्पद हो, धर्म के प्रवर्तन के लिए आवश्यक होता है। धर्म-प्रचार के आधार पर ही रह सकता है। पुजारियों के बिना धर्म लुप्त हो जाता है। इस्लाम की तलवार ने पुजारियों पर भारी आघात किया। इससे वह या तो नष्ट हो गया या भारत के बाहर चला गया। बौद्ध धर्म के दीपक को प्रज्ज्वलित रखने के लिए कोई भी जीवित नहीं बचा।

कहा जा सकता है कि वही बात ब्राह्मणवादी पौरोहित्य के संबंध में भी हुई होगी। ऐसा होना संभव है, भले ही उस सीमा तक नहीं हो। परंतु यह अंतर इन दोनों धर्मों के संगठन में रहा और यह अंतर इतना बड़ा है कि इसी कारण ब्राह्मण धर्म तो मुसलमानों के आक्रमण के बाद भी बचा रहा, परंतु बौद्ध धर्म नहीं बच सका। ये अंतर पुरोहित वर्ग से संबंधित है। ब्राह्मणवादी पौरोहित्य का एक बहुत ही विस्तृत व व्यापक संगठन रहा है। इसका स्पष्ट किंतु संक्षिप्त विवरण स्वर्गीय सर रामकृष्ण भंडारकर ने (*इंडियन एंटिक्वैरी*) में दिया है।[1] उन्होंने लिखा है:

> 'प्रत्येक ब्राह्मण परिवार में किसी न किसी वेद या वेद की एक विशेष शाखा का नियमपूर्वक वास होता है और उस परिवार के घरेलू संस्कार उस वेद से संबंधित सूत्र में वर्णित विधि के अनुसार संपन्न किए जाते हैं। उसके लिए उस विशेष वेद की ऋचाओं को कंठस्थ करना अनिवार्य होता है। उत्तरी भारत में मुख्यतः *शुक्ल यजुर्वेद* की प्रधानता है। यहां की शाखा मध्यंदिन है। लेकिन इसका पाठ आदि लगभग समाप्त हो चुका है। अब यह केवल बनारस में ही रह गया है। यहां पर भारत के सभी भागों से आकर ब्राह्मण परिवार बस गए हैं। कुछ सीमा तक यह पद्धति गुजरात में प्रचलित है। परंतु ये उससे अधिक महाराष्ट्र में प्रचलित है और तेलंगाना में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे ब्राह्मण हैं, जो आज भी इसके अध्ययन में लगे हुए हैं। इनमें से बहुत से ब्राह्मण देश के सभी भागों में दक्षिणा (शुल्क-भिक्षा) लेने के लिए जाते हैं और देश के खाते-पीते संपन्न लोग अपने साधनों के अनुसार उनको सहायता प्रदान करते हैं। वे उनसे अपने से संबंधित वेद के अंशों को सुनते हैं। यह अधिकांशतः *कृष्ण यजुर्वेद* और *सूत्र आपष्तम्ब* होता है। यहां बंबई में कोई

1. *इंडियन एंटिक्वैरी (1874)*, पृ. 132, मैक्स मूलर द्वारा उद्धृत हिब्बर्ट लेक्चर्स (1878), पृ. 162-66

भी सप्ताह ऐसा नहीं जाता जब तेलंगाना से कोई ब्राह्मण मेरे पास दक्षिणा मांगने के लिए न आता हो। प्रत्येक अवसर पर मैं उन लोगों से जो कुछ उन्होंने पढ़ा है, उसका पाठ सुनता हूं और अपने पास रखे मुद्रित मूल पाठ के साथ उसका मिलान व तुलना करता हूं।'

'अपने व्यवसाय के अनुसार प्रत्येक वेद के ब्राह्मण सामान्यतः दो वर्गों में विभक्त हैं—गृहस्थ और भिक्षु। गृहस्थ स्वयं सांसारिक व्यवसाय में लगे रहते हैं, जब कि भिक्षु इन पवित्र पुस्तकों व ग्रंथों के अध्ययन मे तथा धार्मिक अनुष्ठान करने में अपना समय व्यतीत करते हैं।'

'इन दोनों वर्गों के लोगों को प्रतिदिन संध्या-वंदन अथवा सुबह-शाम प्रार्थना करनी होती है, इनके रूप विभिन्न वेदों के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। परंतु 'तत्सवितुर्वरेण्यम् गायत्री मंत्र' का पाठ पांच बार, फिर अठाईस बार या एक सौ आठ बार करना सबके लिए सामान्य बात है, यह पाठ प्रत्येक धर्मानुष्ठान का मुख्य अंग होता है।'

'इसके अलावा, बहुत से ब्राह्मण प्रतिदिन एक अनुष्ठान करते हैं, जिसे ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। यह कुछ अवसरों पर सबके लिए आवश्यक होता है। यह ऋग्वेद के लिए होता है। इसमें प्रथम मंडल का प्रथम स्त्रोत, ऐतरेय ब्राह्मण का उपोद्घात, ऐतरेय आरण्यक के पांच मंडल, यजुः संहिता, साम-संहिता, अथर्व-संहिता, आश्वलायन कल्प सूत्र, निरूक्त, खंड, निघंटु, ज्योतिष, शिक्षा, पाणिनि, *याज्ञवल्क्य स्मृति, महाभारत* और कणाद, जैमिनि तथा बादरायण के सूत्र समिलित होते हैं।'

यह बात याद रखने की है कि अनुष्ठान के मामले में भिक्षु[1] तथा गृहस्थ में कोई अंतर व भेद नहीं होता। ब्राह्मंण धर्म में दोनों ही पुरोहित हैं और एक गृहस्थ एक पुरोहित के रूप में अनुष्ठान करने के लिए भिक्षु से किसी भी तरह से कम सुपात्र नहीं होता। यदि कोई गृहस्थ एक पुरोहित के रूप में अनुष्ठान का कार्य नहीं करता, तो इसका कारण यह होता है कि उसने मंत्रों तथा धर्मिक अनुष्ठानों में विशेषता प्राप्त नहीं की है या वह

1. भिक्षुओं का (ब्राह्मण धर्म में) आगे (1) वैदिक, (2) याज्ञिक, (3) श्रोत्रिय, तथा (4) अग्निहोत्री में उप-विभाजन किया गया है। वैदिक वे होते हैं जो वेदों को कंठस्थ रखते हैं और उन्हें बिना किसी त्रुटि के ठीक-ठीक सुना देते हैं। याज्ञिक वे होते हैं जो यज्ञ तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। श्रोतिय वे हैं जो महान यज्ञ व बलि के अनुष्ठान करने की कला में पारंगत होते हैं। अग्निहोत्री वे हैं जो तीन प्रकार की यज्ञाग्नि को दीप्त रखते हैं (इष्टि, पाक्षिक बलि) तथा चातुर्मास (प्रत्येक चार महीनों में किए जाने वाले यज्ञ का अनुष्ठान) करते हैं।

ध्यान में रखने की आवश्यकता है, वह यह है कि मुसलमानों के इन विजय-युद्धों की 300 वर्ष की इस अवधि के दौरान सारे भारत पर ऐसे राजाओं का शासन था, जो ब्राह्मण धर्म के रूढ़िवादी व सनातन मत को मानते थे। मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा आहत ब्राह्मण धर्म सहायता तथा समर्थन के लिए शासकों की ओर देख सकता था और वह मिला भी। मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा पराजित तथा आहत बौद्ध धर्म के पास ऐसी कोई आशा की किरण नहीं थी। वह अनाथ बन चुका था। उसका कोई संरक्षक नहीं था। वह देशी शासको की उपेक्षा के शीत झोंको में मुरझा गया और विजेताओं द्वारा आक्रमणों की प्रज्ज्वलित अग्नि में जलकर नष्ट हो गया।

मुसलमान आक्रमणकारियों ने जिन बौद्ध विश्वविद्यालयों को लूटा, इनमें कुछ नाम नालंदा, विक्रमशिला, जगद्दल, ओदंतपुरी के विश्वविद्यालय हैं। उन्होंने बौद्ध मठों को भी तहस-नहस कर दिया, जो सारे देश में स्थित थे। हजारों की संख्या में भिक्षु भारत से बाहर भागकर नेपाल, तिब्बत और कई स्थानों में चले गए। मुसलमान सेनापतियों ने बहुत बड़ी संख्या में भिक्षूओं को मौत के घाट उतार दिया। बौद्ध भिक्षुओं को मुसलमान आक्रमणकारियों ने अपनी तलवार से किस प्रकार नष्ट किया, उसका वर्णन स्वयं मुस्लिम इतिहासकारों ने किया है। मुसलमान सेनापति ने बिहार में सन् 1197 में अपने आक्रमण के दौरान बौद्ध भिक्षुओं की किस प्रकार हत्याएं कीं, इसका संक्षिप्त वर्णन करते हुए विन्सेंट स्मिथ लिखते हैं :[1]

> "बार-बार लूटमार और आक्रमणों के कारण बिहार में जिस मुसलमान सेनापति का नाम पहले ही आंतक बन चुका था, उसने एक झटके में ही यहां राजधानी पर कब्जा कर लिया। लगभग उन्हीं दिनों एक इतिहासकार की भेंट सन् 1243 में आक्रमण करने वाले दल के एक व्यक्ति से हुई। उससे उसको यह पता चला था कि बिहार के किले पर केवल दो सौ घुड़सवारों ने बेखटके, निधड़क होकर पिछले द्वार से धावा बोला और उस स्थान पर अधिकार कर लिया था। उन्हें लूट में भारी मात्रा में माल मिला और 'सिर मुंडे ब्राह्मणों' अर्थात बौद्ध भिक्षुओं की इस प्रकार से हत्या करके उनका सफाया कर दिया था कि जब विजेता ने मठों व विहारों के पुस्तकालयों में पुस्तकों की विषय-वस्तु को समझाने व स्पष्ट करने के लिए किसी योग्य व सक्षम व्यक्ति की तलाश की, तो ऐसा कोई भी जीवित व्यक्ति नहीं मिला जो उनको पढ़ सकता। हमें यह बताया गया कि बाद में यह पता चला था कि समूचा दुर्ग तथा नगर एक महाविद्यालय (कालिज) था। हिंदी भाषा में महाविद्यालय को वे विहार कहते थे।"

1. *अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया* (1924), पृ. 419-20

इसकी अपेक्षा कुछ और अधिक लाभप्रद व्यवसाय करता है। ब्राह्मण धर्म में प्रत्येक ब्राह्मण में जो बहिष्कृत नहीं है, पुरोहित होने की क्षमता होती है। भिक्खु वास्तविक पुरोहित होता है और गृहस्थ संभावित पुरोहित होता है। प्रत्येक ब्राह्मण पुरोहित बन सकता है। इसके अलावा, ब्राह्मण के लिए एक पुरोहित या पुजारी के रूप में कार्य के लिए कोई प्रशिक्षण या दीक्षा आवश्यक नहीं होती। पुरोहित या पुजारी का कार्य करने के लिए उसकी इच्छा ही पर्याप्त होती है। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म में पौरोहित्य कर्म कभी भी समाप्त नहीं हो सकता। प्रत्येक ब्राह्मण पुरोहित हो सकता है और उसे आवश्यकता पड़ने पर इस कार्य में प्रवृत्त किया जा सकता है, लम्पट से लम्पट व्यक्ति के जीवन तथा प्रगति को रोकने वाली को चीज नहीं है। बौद्ध धर्म में यह संभव नहीं है। उपासक या धर्मोपदेष्टा का कार्य करने से पहले उसे पहले से अभिषिक्त पुरोहितों द्वारा स्थापित संस्कारों के अनुसार अभिषिक्त किया जाना चाहिए। बौद्ध पुरोहितों के संहार के बाद यह अभिषेक असंभव हो गया था, जिससे बौद्ध धर्मोपदेष्टा का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया। बौद्ध धर्मोपदेष्टा के अभाव को भरने के लिए प्रयास किया गया। सभी उपलब्ध स्रोतों से बौद्ध धर्मोपदेष्टा का वर्ग तैयार करना पड़ा। वे निश्चय ही सर्वोत्तम नहीं थे। हरप्रसाद शास्त्री[1] का मत है:

> "भिक्खु के अभाव से बौद्ध धर्मोपदेष्टा में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। विवाहित पुरोहित वर्ग ने, जो परिवार वाला था और आर्य कहलाता था, मर्यादित भिक्षुओं का स्थान ले लिया और उसने सामान्य रूप से बौद्धों के धार्मिक क्रियाकलापों को संपन्न करना आरंभ कर दिया। उन्हें कुछ अनुष्ठान करने के बाद सामान्य भिक्षुओं की प्रतिष्ठा दी जाने लगी (भूमिका-पृष्ठ 19-7, तथाकर गुप्त की पुस्तक *आदि कर्म रचना*: 149, पृ. 1207-1208)। वे धार्मिक अनुष्ठान करते, परंतु साथ ही राजगीर, रंगसाज, मूर्तिकार, सुनार तथा बढ़ई जैसे व्यवसाय करके अपना जीविकोपार्जन करते। ये कारीगर व शिल्पकार पुरोहित जिनकी संख्या बाद में मर्यादित भिक्खु की तुलना में काफी अधिक हो गई, लोगों के धार्मिक मार्गदर्शक हो गए। अपने व्यवसाय के कारण उनके पास विद्या व ज्ञान प्राप्ति के लिए, गंभीर मनन व विचार के लिए, तथा ध्यान करने एवं अन्य आध्यात्मिक कार्यों के लिए बहुत कम समय बचता था और इसमें उनकी रुचि भी नहीं रही थी। उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे अपने प्रयास से ह्रासोन्मुख बौद्ध धर्म को कोई उच्चतर स्थिति प्रदान कर सकेंगे। उनसे यह आशा भी नहीं की जा सकती थी कि वे तत्कालीन स्थिति में थोड़ा सुधार कर बौद्ध धर्म को समाप्त होने से रोक सकते थे।"

---

1. नरेन्द्रनाथ लॉ द्वारा संक्षेप में प्रस्तुत विचार *हरप्रसाद शास्त्री मैमोरियल खंड*, पृ. 363-64

यह बात स्पष्ट है कि इन नए बौद्ध पुरोहितों में न तो कोई गरिमा थी और न ही वे ज्ञानवान ही थे। ब्राह्मण पुरोहितों की तुलना में वे हीन थे, जो इनके प्रतिद्वंद्वी होते थे और जो विद्वान होते थे और उतने ही चतुर भी।[1]

ब्राह्मण धर्म विनाश के गर्त में डूबने से क्यों बच गया और बौद्ध धर्म क्यों नहीं बच सका, इसका कारण यह नहीं है कि बौद्ध धर्म की अपेक्षा ब्राह्मण धर्म में कोई श्रेष्ठता अंतर्निहित रही। इसका कारण उसके पुरोहितों का विशिष्ट चरित्र रहा। बौद्ध धर्म इसलिए समाप्त हुआ, क्योंकि उसके पुरोहितों का वर्ग ही नष्ट हो गया था और उसे फिर से जीवित करना संभव नहीं था। यद्यपि ब्राह्मण धर्म पराजित हो गया था, परंतु वह पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ था। प्रत्येक जीवित ब्राह्मण पुरोहित व पुजारी बन गया था और उसने अपने पूर्वज प्रत्येक ब्राह्मण पुरोहित का स्थान ग्रहण कर लिया था।

इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि बौद्ध धर्म के पतन का एक कारण, बौद्ध लोगों द्वारा इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेना भी था।

प्रोफेसर सुरेन्द्रनाथ सेन ने भारतीय इतिहास कांग्रेस के प्रारंभिक मध्यकालीन तथा राजपूत अध्ययन खंड की गोष्ठी में, जो सन् 1938 में इलाहाबाद में हुई थी, अपने अध्यक्षीय भाषण में यह बात बहुत सटीक व सही कही थी कि भारत के मध्यकालीन इतिहास से संबंधित दो समस्याएं हैं, जिनका अभी तक कोई भी संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका है। उन्होंने दो समस्याओं का उल्लेख किया, पहली, राजपूतों की उत्पत्ति से संबंधित है। दूसरी, भारत में मुस्लिम जनसंख्या के विस्तार से संबंधित है। दूसरी समस्या के संबंध में उन्होंने कहा:

> "परंतु मुझे एक प्रश्न पर विचार करने की अनुमति दी जाए, जो आज पूर्णतया पुरातत्व विषयक रुचि का नहीं है। भारत में मुस्लिम जनसंख्या के विस्तार के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि इस्लाम का विस्तार उसकी विजय के साथ-साथ हुआ और जिन लोगों को

---

1. नए बौद्ध पुरोहित अपने-अपने व्यवसायों को क्यों नहीं छोड़ सके और अपने को पूर्णतया धर्म के प्रचार में क्यों नहीं लगा सके, इसका कारण जैसा कि हरप्रसाद शास्त्री बताते हैं, यह है: 'बौद्ध धर्म को मानने वाली जनता में कमी के कारण भी बौद्ध भिक्षुओं को भिक्षा प्राप्त करने में कठिनाई हुई। चूंकि एक भिक्षु तीन से अधिक घरों में भिक्षा नहीं ले सकता था और उसी उद्देश्य से उसी घर में एक महीने के अंदर नहीं जा सकता था, इसलिए एक भिक्षु को भिक्षा के लिए नब्बे घरों की आवश्यकता होती है।' *हरप्रसाद शास्त्री मैमोरियल खंड,* पृ. 362

अधीनस्थ बनाया गया, उनको इस्लामी शासकों का धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया था। जब हम सीमांत प्रांत तथा पंजाब में मुसलमानों का आधिक्य व प्रधानता देखते हैं, तब इस विचार को बल मिलता है। परंतु इस सिद्धांत के आधार पर पूर्वी बंगाल में मुसलमानों के भारी बहुमत की बात समझ में नहीं आती। इस बात की संभावना हो सकती है कि कुषाण के समय में उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत में तुर्क लोग बस गए थे और उनका इस्लाम को आसानी से स्वीकार करना, नव विजेताओं के साथ उनके जातीय भाईचारे या जातिगत संबंधों के कारण बताया जा सकता है। परंतु पूर्वी बंगाल के मुसलमानों का तुर्की तथा अफगानों के साथ निश्चित रूप से कोई जातीय संबंध नहीं है और उस क्षेत्र के हिंदुओं ने इस्लाम धर्म को किन्ही अन्य कारणों से स्वीकार किया होगा।[1]"

ये अन्य कारण क्या हैं? प्रो. सेन ने इन कारणों का उल्लेख किया है, जो मुस्लिम इतिहास ग्रंथों में भी मिलते हैं। वह सिंध का उदाहरण लेते हैं। इसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध हैं। वह कहते हैं:[2]

"चचनामा के अनुसार सिंध के बौद्धों ने अपने ब्राह्मण शासकों के अधीन सभी प्रकार के अपमान तथा निरादर सहे, और जब अरबों ने उनके देश पर आक्रमण किया तो बौद्धों ने उनकी पूरे दिल से सहायता की। बाद में, जब दाहिर का वध कर दिया गया और उसके देश में मुस्लिम शासन की दृढ़ता से स्थापना हो गई, तो बौद्धों को यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि जहां तक उनके अधिकारों, विशेषाधिकारों तथा सुविधाओं का संबंध है, अरब उनके लिए यथास्थिति में कोई परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं थे, और यहां तक कि नई व्यवस्था में भी हिंदुओं के साथ उत्तम व्यवहार किया गया। इस कठिनाई से छुटकारा पाने का एकमात्र तरीका इस्लाम धर्म को स्वीकार करना था, क्योंकि धर्मपरिवर्तन करने वाले लोग शासक वर्ग के लिए आरक्षित सब विशेषाधिकार व विशेष सुविधाओं के हकदार हो जाते थे। अतः सिंध के बौद्धों ने बहुत बड़ी संख्या में इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया और वे मुसलमानों में शामिल हो गए।"

इसके बाद प्रो. सेन एक और महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं :

"यह एक अप्रत्याशित घटना नहीं हो सकती कि पंजाब, कश्मीर, बिहार शरीफ के आसपास के जिले, उत्तर-पूर्व बंगाल जहां पर मुसलमानों की अब प्रधानता व बहुतायत है, मुसलमानों से पहले शक्तिशाली बौद्ध केंद्र थे। यह कहना भी उचित

1. *अर्ली कैरियर आफ कान्होजी आंग्रे एंड अदर पेपर्स, पृ० 188-89*
2. *वही, पृ०* 188-89

> नहीं होगा कि बौद्धों ने हिंदुओं की अपेक्षा राजनीतिक प्रलोभनों के सामने आसानी से हार मान ली और उन्होंने धर्मपरिवर्तन अपनी राजनीतिक प्रतिष्ठा व स्थिति में वृद्धि की संभावनाओं के कारण किया था।"

दुर्भाग्यवश, उन कारणों का पता नहीं लगाया गया है, जिन्होंने भारत के बौद्ध लोगों को इस्लाम के पक्ष में बौद्ध धर्म को त्यागने के लिए बाध्य किया था। इसलिए यह कहना असंभव है कि ब्राह्मण राजाओं का अत्याचार इसके लिए कहां तक उत्तरदायी था। परंतु ऐसे संकेतों की भी कमी नहीं है, जिनसे यह पता चलता है कि यही इसका प्रमुख कारण था। हमारे पास दो ऐसे राजाओं के निश्चित प्रमाण हैं, जो बौद्ध लोगों पर अत्याचार करते थे व उनका उत्पीड़न करते थे।

उनमें पहला नाम मिहिरकुल का है। वह हूण था। हूणों ने भारत पर सन् 455 के लगभग आक्रमण किया था। उत्तरी भारत में अपने राज्य की स्थापना की थी। उन्होंने पंजाब में साकल (आधुनिक स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाया था। मिहिरकुल ने सन् 528 के लगभग शासन किया। विन्सेंट स्मिथ का कहना है :[1]

> समस्त भारतीय परंपराएं मिहिरकुल को एक रक्त पिपासु, क्रूर व अत्याचारी शासक के रूप में चित्रित करती हैं। 'भारत के आतताई' के रूप में इतिहासकारों ने हूणों के स्वभाव की यह विशेषता नोट की कि साधारण मात्रा के कठोर और क्रूर स्वभाव की अपेक्षा, वे अत्यधिक क्रूर स्वभाव के थे। मिहिरकुल ने शांतिपूर्ण बौद्ध पंथ के विरुद्ध क्रूर शत्रुता दर्शाई। उसने स्तूपों तथा मठों को निष्ठुरता से नष्ट किया और वहां की सारी संपत्ति को लूट लिया।[2]

दूसरा राजा पूर्वी भारत का राजा शशांक था। उसने सातवीं शताब्दी के प्रथम दशक के लगभग शासन किया और वह हर्ष के विरुद्ध युद्ध में पराजित हुआ। विन्सेंट स्मिथ का कहना है[3] :

> शशांक को हर्ष के भाई का विश्वासघाती हत्यारा कहा गया है। वह संभवतः गुप्त वंश का वंशज था। वह शिव का उपासक था और बौद्ध धर्म से घृणा करता था। उसने बौद्ध धर्म का उन्मूलन करने का हर संभव प्रयास किया। एक जनश्रुति के अनुसार उसने बुद्ध गया में पवित्र बोधि वृक्ष को जड़ से खुदवा कर उसे जलवा दिया था, जिस पर अशोक की अत्यधिक भक्ति व श्रद्धा थी। उसने पाटलिपुत्र में

---

1. *अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया (1924)*, पृ. 336
2. *वही*, पृ. 337
3. *वही*, पृ. 360

उस पत्थर को भी तोड़ दिया, जिस पर बुद्ध के पदचिह्न अंकित थे। उसने मठों व आश्रमों को नष्ट कर दिया। भिक्षुओं को तितर-बितर कर दिया। उसने इनका पीछा नेपाल की तराइयों तक किया।"

सातवीं शताब्दी भारत में धार्मिक अत्याचार व उत्पीड़न की शताब्दी प्रतीत होती है। स्मिथ का कहना है[1] : 'सातवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में इस जैसे ही धर्म जैनमत को भी नष्ट करने की भयंकर कोशिश की गई।'

जब मुस्लिम आक्रमण होने लगे, तब हमें सिंध का उदाहरण मिलता है, जहां पर उत्पीड़न व अत्याचार ही निस्संदेह बौद्ध धर्म के पतन का कारण बना। यह अत्याचार तथा उत्पीड़न मुसलमानों के आक्रमण तक जारी रहा। इसका अनुमान इस तथ्य से भी लग सकता है कि उत्तरी भारत में राजा या तो ब्राह्मण थे या राजपूत। ये दोनों ही बौद्ध धर्म के विरोधी थे। जैनियों पर 12वीं शताब्दी में भी अत्याचार हुए। इसका समर्थन इतिहास भी प्रचुर मात्रा में करता है। स्मिथ ने गुजरात के एक शैव राजा अजय देव का उल्लेख किया है, जो सन् 1174-76 में सिंहासन पर बैठा। उसने जैनियों पर निर्दयतापूर्वक अत्याचार से अपना शासन आरंभ किया था और उनके नेता को यातना देकर मरवा दिया था। स्मिथ लिखते हैं: 'कठोर उत्पीड़न व अत्याचार के अनेक पुष्ट उदाहरणों का उल्लेख किया जा सकता है।'

इसलिए अब कोई संदेह नहीं रह जाता कि बौद्ध धर्म के पतन का कारण बौद्धों द्वारा इस्लाम धर्म को अंगीकार करना था। यह मार्ग उन्होंने ब्राह्मणवाद के अत्याचार व क्रूरता से बचने के लिए अपनाया था। यद्यपि प्रमाण इस निष्कर्ष की पुष्टि नहीं करते, पर कम से कम इसकी संभावना अवश्य दर्शाते हैं। उस समय यदि कोई संकट था, तो यह ब्राह्मणवाद के कारण था।

---

1. अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, (1924), पृ. 214 पर फुटनोट

6

ब्राह्मण साहित्य

डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को पृष्ठ छह से चौदह और पृष्ठ सत्रह से उनतालीस तक मूल अंग्रेजी के इस निबंध के बिखरे हुए पन्ने मिले थे। ऐसा लगता है कि ये पृष्ठ 'दि डिक्लाइन एंड फाल आफ बुद्धिज्म' (बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन) नामक लेख के ही अंतिम अंश के रूप में लिखे गए थे। कुछ पन्ने मूल हैं, तो शेष की कार्बन प्रति है। इनके अतिरिक्त चौदह पृष्ठ और मिले हैं, जिनमें वेदांत सूत्रों और भगवत्गीता का विवेचन हुआ है। जिन कागजों पर (1) दि डिक्लाइन एंड फाल आफ बुद्धिज्म (बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन, (2) दि लिटरेचर आफ ब्राह्मनिज्म (ब्राह्मण साहित्य), तथा (3) वेदांत सूत्र एंड भगवत्गीता, टंकित किए गए हैं, उनका आकार-प्रकार एक जैसा है, किंतु अन्य अध्यायों के आकार-प्रकार से यह भाग भिन्न है -संपादक

I

बौद्ध धर्म के पतन के कारणों से संबंधित तथ्यों को उस ब्राह्मण साहित्य से छान-बीन कर एकत्र किया जाना चाहिए, जो पुष्यमित्र की राजनीतिक विजय के बाद लिखा गया था।

इस साहित्य को छह भागों में बांटा जा सकता है: (1) *मनुस्मृति*, (2) *गीता*, (3) शंकराचार्य का वेदांत, (4) *महाभारत*, (5) *रामायण*, और (6) पुराण। मैं इस साहित्य का विश्लेषण केवल इसी उद्देश्य से कर रहा हूं कि इससे उन तथ्यों का पता चल जाए, जो अनुमानतः बौद्ध धर्म के पतन के कारण रहे होंगे। चूंकि साहित्य समाज का ऐसा दर्पण होता है, जिसमें लोगों का जीवन देखा जा सके। यह कोई अनुचित कार्य नहीं होगा।

एक बात मैं पहले ही स्पष्ट कर दूं। उसका संबंध इस साहित्य के रचना-काल से है। हो सकता है, सभी इसे स्वीकार न करें कि यह साहित्य पुष्यमित्र की क्रांति के बाद की रचना है। इस तथ्य के विपरीत अधिकांश हिंदू, चाहे परंपरावादी हों या विरोधी, चाहे शिक्षित हों या अशिक्षित, इस बात में अटूट विश्वास रखते हैं कि उनका पवित्र साहित्य अति-प्राचीन है। अपने धार्मिक साहित्य को सबसे प्राचीन साहित्य मानना उनके लिए किसी धार्मिक सिद्धांत के मानने जैसा ही है।

मनु के काल-निर्धारण के प्रसंग में मैंने संदर्भ देते हुए बताया था कि *मनुस्मृति* की रचना ईसा पूर्व 185, अर्थात पुष्यमित्र की क्रांति के बाद सुमति भार्गव द्वारा की गई थी। इस विषय में मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है।

भगवत्गीता के लेखन-काल के बारे में अनेक मतभेद हैं। श्री तेलंग के अनुसार *गीता* तीसरी सदी ईसवी पूर्व के पहले की रचना होनी चाहिए, किंतु कितने समय पहले, इस बारे में वह मौन हैं।

प्रो. गार्बे का कहना है[1] 'गीता का वर्तमान स्वरूप उसके मूल स्वरूप से भिन्न है।' अनेक भारतविद् भी अब यह मानने लगे हैं कि *भगवत्गीता* जिस रूप में आज उपलब्ध है, उसमें समय-समय पर अनेक मूलभूत रूपांतरण होते रहे हैं। प्रो. गार्बे बताते हैः '*गीता* में एक सौ छियालीस श्लोक नए हैं। ये श्लोक मूल *गीता* में नहीं थे। उसके रचना-काल के बारे में प्रो. गार्बे ने कहा है, 'संभवतः इसे ईसा पूर्व दूसरी सदी से पहले की रचना नहीं माना जा सकता।'

प्रो. कोसांबी *गीता* को बालादित्य सम्राट के शासन-काल की रचना मानते हैं। बालादित्य गुप्त वंश का सम्राट था, जिसने आंध्र राजवंश सत्ताच्युत कर दिया था। वह सन् 467 में राजगद्दी पर बैठा। *गीता* को इतने बाद की रचना मानने के उन्होंने दो कारण बताए हैं। शंकराचार्य से पूर्व (जन्म 788-मृत्यु 820) उन्होंने *भगवत्गीता* की टिप्पणी लिखी, इससे पहले वह अज्ञात रचना थी। शांतरक्षित के *तत्वसंग्रह* में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता, जब कि यह ग्रंथ शंकराचार्य के आगमन के केवल पचास वर्ष पहले लिखा गया था। उन्होंने दूसरा कारण यह बताया है कि वसुबंधु 'विज्ञानवाद' नामक एक संप्रदाय का प्रणेता था। शंकराचार्य के *ब्रह्म सूत्र भाष्य* में इस विज्ञानवाद की आलोचना मिलती है। गीता[2] में एक जगह *ब्रह्म सूत्र भाष्य* का उल्लेख मिलता है। *गीता* को वसुबंधु और *ब्रह्म सूत्र भाष्य* के बाद की रचना माना जाना चाहिए। वसुबंधु गुप्तवंशीय नरेश बालादित्य

1. प्रो. उटगीकर के अंग्रेजी अनुवाद 'इंट्रोडक्शन टू दि भगवत्गीता' में प्रो. गार्बे की भूमिका देखें।
2. गीता, अध्याय 13, श्लोक 4

का गुरु था। तद्नुसार यह माना जा सकता है कि *गीता* की रचना या तो बालादित्य के शासन-काल में हुई होगी या उसके बाद।

शंकराचार्य के काल-निर्धारण के बारे में इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। उनके जीवन-काल और रचना-काल के बारे में अब सामान्यतः एक ही स्वीकार्य मत पाया जाता है। पर हां, उनकी जीवन संबंधी घटनाओं के बारे में अधिक शोध की आवश्यकता है। इस विषय पर मैं अन्यत्र अपने विचार प्रकट करूंगा। यहां बस इतना कहना ही पर्याप्त होगा।

महाभारत के रचना-काल का ठीक-ठीक निर्धारण करना लगभग असंभव है। इसके रचना-काल के निर्धारण के बारे में कुछ प्रयत्न किया जा सकता है। *महाभारत* के अब तक तीन संस्करण माने जा सकते हैं। प्रत्येक संपादक ने उसके नाम और कथावस्तु में भी परिवर्तन किया। अपने मूल रूप में यह ग्रंथ *जय* नाम से जाना जाता था। यह नाम तृतीय संस्करण के आरंभ और अंत, दोनों स्थानों में आया है। *जय* नामक यह मूल ग्रंथ किसी व्यास नाम के लेखक की रचना था। इसका दूसरा संस्करण *भारत* कहलाया। इसका संपादक कोई वैशम्पायन नाम का व्यक्ति था। वैशम्पायन का संस्करण *भारत* का अकेला द्वितीय संस्करण नहीं था। वैशम्पायन के अतिरिक्त व्यास के और भी कई शिष्य थे, जिनमें से प्रमुख चार थे सुमंतु, जैमिनि, पैल, और शुक। इन सभी ने व्यास से शिक्षा पाई थी। सभी ने *भारत* के अपने-अपने संस्करण तैयार किए। इस तरह तब *भारत* के चार और संस्करण तैयार हुए। वैशम्पायन ने इन चारों संस्करणों की पुनर्रचना कर अलग से अपना संस्करण तैयार किया। तीसरे संस्करण का संपादक सौति था। उसने वैशम्पायन के *भारत* को नया रूप प्रदान किया। सौति का यही संस्करण आगे चलकर *महाभारत* कहलाया। आकार और कथावस्तु, दोनों ही रूपों में यह संस्करण अपने पूर्ववर्ती संस्करण का विस्तार था। व्यास का *जय* काव्य एक लघु काव्य था, जिसमें 8,800 से अधिक श्लोक नहीं थे। वैशम्पायन के संस्करण में इस काव्य के श्लोकों की संख्या बढ़कर 24,000 हो गई। सौति के *महाभारत* में 96,836 श्लोक हैं। कथावस्तु की दृष्टि से व्यास के *जय* काव्य में केवल कौरवों और पांडवों के युद्ध की कथा थी। वैशम्पायन की कलम ने इस कथा सूत्र में नैतिक उपदेशों को पिरो दिया। इस तरह एक विशुद्ध ऐतिहासिक कृति रूपांतरित होकर एक उपदेश-प्रधान रचना बन गई, जिसका उद्देश्य सामाजिक, नैतिक और धार्मिक कर्तव्यों के नियम सिखाना था। सौति ने अंतिम संपादक के रूप में इस कृति को पौराणिक गाथाओं का एक विशाल भंडार बना दिया। *भारत* काव्य में जितनी भी प्रचलित दंतकथाएं या स्वतंत्र रूप से विख्यात जो भी ऐतिहासिक आख्यान थे, उन सबको सौति ने इस काव्य में सम्मिलित कर दिया, ताकि वे विस्मृत न हो जाएं अथवा कम से कम सभी एक स्थान पर मिल जाएं। सौति की एक अन्य आकांक्षा यह भी थी कि इस ग्रंथ को शिक्षा और

ज्ञान का अक्षय भंडार बना दिया जाए। इसलिए राजनीति, भूगोल, धनुर्विद्या जैसे ज्ञान के लगभग सभी क्षेत्रों से संबंधित सामग्री उन्होंने इसमें सम्मिलित की। सौति आवृति या पुनर्कथ्य के इतना अभ्यस्त थे कि भारत उनके हाथों से निकलकर निश्चय ही *महाभारत* बन गया। इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं लगता।

अब इसके तिथि-निर्धारण की बात करें। इसमें यद्यपि कौरवों और पांडवों के बीच हुए युद्ध की घटना अत्यंत प्राचीन घटना है फिर भी यह नहीं माना जा सकता कि व्यास रचित *जय* काव्य भी उतनी ही प्राचीन है, अर्थात हम उसे किसी घटना का समसामयिक काव्य नहीं कह सकते। तीनों संस्करणों का तिथि-निर्धारण करना संभव नहीं है। फिर भी इन सबके बारे में प्रो. होपकिन्स का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है:[1]

> "इस तरह *महाभारत* का रचना-काल सामान्यतः सन् 200 से सन् 400 के बीच ठहरता है। इस निर्णय पर पहुंचते वक्त हमने न तो इसके उत्तरवर्ती संस्करणों पर ध्यान दिया है और न ही इसके विभिन्न कथ्यों के परिवर्तित रूपों पर, जो कदाचित अनुगामी प्रतिलिपिकारों के हाथों से गुजरते हुए माने जा सकते हैं।"

किंतु कुछ ऐसे साक्ष्य हैं, जिनके आधार पर निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि यह बाद की रचना है।

महाभारत में हूणों से संबंधित उल्लेख आया है। स्कंदगुप्त ने हूणों से युद्ध किया था और उसने इन पर सन् 455 में या उसके आसपास विजय पाई थी। इस पराजय के बावजूद हूणों के आक्रमण सन् 528 तक होते रहे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि *महाभारत* की रचना उसके काल में या इसके बाद हुई होगी।

कुछ और भी संकेत मिले हैं, जो इसे और भी बाद की रचना बताते हैं। *महाभारत* में म्लेच्छों अथवा मुसलमानों का उल्लेख हुआ है। *महाभारत* के वन पर्व के 190वें अध्याय के 29वें श्लोक में रचनाकार कहता है कि 'सारा संसार इस्लाममय हो जाएगा। सभी यज्ञ, अनुष्ठान, विधि-विधान, पर्व और त्यौहार समाप्त हो जाएंगे।' इसका सीधा संबंध मुसलमानों से है। यद्यपि इसका संबंध भविष्य से है, फिर भी चूंकि *महाभारत* पुराण काव्य है और पुराणों में *'जो हो गया है'* उसका कथन होता है, इसलिए इसे भी इसी अर्थ में लेना चाहिए। इस श्लोक की इस तरह व्याख्या कर लेने पर यह सिद्ध हो जाता है कि *महाभारत* की रचना भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के बाद हुई होगी।

---

1. *दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया*, प्रो. होपकिन्स, पृ. 389

कुछ अन्य संदर्भों से भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है। इसी अध्याय के 59वें श्लोक में कहा गया है कि 'वृषलों के सताए हुए ब्राह्मण भय से पीड़ित हो हाहाकार करने लगेंगे और कोई रक्षक न मिलने के कारण सारी पृथ्वी पर निश्चय ही भटकते फिरेंगे।'

इस श्लोक में जिन वृषलों की ओर संकेत है, वे बौद्ध नहीं हो सकते। इस बात का लेशमात्र भी प्रमाण नहीं मिलता कि बौद्धों के हाथों ब्राह्मणों को कभी सताया गया हो। उलटे, इस बात के प्रमाण तो मिले हैं कि बौद्धों के शासन-काल में बौद्ध भिक्षुओं की ही तरह ब्राह्मणों के साथ भी उदारता का व्यवहार किया जाता था। यहां 'वृषल' से अर्थ है, असभ्य और ऐसा विशेषण मुसलमान आक्रांताओं के लिए ही प्रयुक्त हुआ लगता है।

वन पर्व के इसी अध्याय में अन्य श्लोक भी हैं। ये श्लोक हैं: 65, 66 और 67। इनमें कहा गया है कि 'समाज अव्यवस्थित हो जाएगा। लोग एडूकों की पूजा करेंगे। वे देवों का बहिष्कार करेंगे। द्विजों की सेवा नहीं करेंगे। सारे संसार में एडूक व्याप्त हो जाएंगे। युग का अंत हो जाएगा।'

इस 'एडूक' शब्द का अर्थ क्या है? कुछ ने इसका अर्थ 'बौद्ध चैत्य' किया है। किंतु श्री कोसांबी के अनुसार यह ठीक नहीं है।[1] न तो बौद्ध साहित्य में, और न ही वैदिक साहित्य में, अर्थात कहीं भी 'एडूक' शब्द 'चैत्य' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उलटे *अमरकोश* और उसके व्याख्याकार महेश्वर भट्ट के अनुसार तो 'एडूक' का अर्थ ऐसी दीवार से है जिसे लकड़ी का ढांचा लगा कर पुष्ट किया गया हो। इस अर्थ को ध्यान में रखते हुए कोसांबी ने इस शब्द का अर्थ 'ईदगाह' लगाया है, जहां मुसलमान नमाज अदा करते हैं। यदि यह व्याख्या सही है, तो फिर स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि *महाभारत* के कुछ अंश मोहम्मद गौरी के आक्रमण के बाद लिखे गए थे। मुसलमानों का पहला आक्रमण इब्ने कासिम के नेतृत्व में सन् 712 में हुआ था। उसने उत्तरी भारत के कुछ नगरों पर कब्जा तो कर लिया था, किंतु उन्हें कोई बहुत नुकसान नहीं पहुंचाया। उसके बाद मौहम्मद गजनी ने हमला किया। उसने मंदिरों और विहारों को बुरी तरह से तोड़ा-फोड़ा और दोनों धर्मों के पुरोहितों का कत्लेआम किया। किंतु उसने भारत में मस्जिदें या ईदगाहें नहीं बनवाईं। ऐसा तो मौहम्मद गौरी ने किया। इससे यह साबित होता है कि *महाभारत* का लेखन सन् 1200 तक पूर्ण नहीं हुआ था।

ऐसा लगता है कि *महाभारत* की ही तरह *रामायण* के भी एक-एक कर तीन संस्करण तैयार हुए। *महाभारत* में *रामायण* के बारे में दो प्रकार के संदर्भ मिलते हैं। एक प्रसंग

1. *हिंदू संस्कृति आणि अहिंसा,* पृ. 156

में *रामायण* का संदर्भ तो आया है, किंतु उसके लेखक का उल्लेख नहीं मिलता। दूसरे प्रसंग में वाल्मीकि की रामायण का उल्लेख हुआ है। किंतु इन दिनों जो उपलब्ध रामायण है, वह वाल्मीकि[1] रचित नहीं है। श्री सी.वी.वैद्य के मतानुसार[2] :

> वर्तमान *रामायण* वाल्मीकि द्वारा मूलतः लिखित *रामायण* नहीं है, चाहे इसे इसी रूप में महान चिंतक और भाष्यकार कटक ने ही क्यों न स्वीकार किया हो। रूढ़िवादी विचारक भी इस तथ्य को स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाएगा। चाहे कोई वर्तमान *रामायण* को सरसरी तौर पर ही क्यों न पढ़े, वह उसमें आई असंगतियों, पृथक प्रसंगों में परस्पर संबंधहीनता या प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नूतन और पुरातन, दोनों प्रकार के विचारों के गठबंधन को देखकर अवश्य हतप्रभ रह जाएगा। यह बात *रामायण* के बंगाल या बंबई वाले किसी भी पाठ में देखी जा सकती है। इन सब बातों को देखकर कोई भी इस नतीजे पर अवश्य पहुंचेगा कि वाल्मीकि *रामायण* में आगे चलकर बहुत फेर-बदल हुआ।

महाभारत की ही तरह रामायण की कथावस्तु में भी कालांतर में क्षेपक जुड़ते गए। आरंभ में रामायण की कथा इतनी भर थी कि रावण ने राम की पत्नी सीता का हरण कर लिया, इसलिए राम और रावण युद्ध हआ। अगले संस्करण में इस कथा में कुछ उपदेश भी जुड़ गए। तब एक विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य के स्थान पर यह कृति उपदेशात्मक बन गई, जिसका उद्देश्य सामाजिक, नैतिक और धार्मिक कर्तव्यों के सही नियमों की शिक्षा देना था। जब इसका तीसरा संस्करण बना तो यह भी *महाभारत* की ही तरह दंतकथाओं, ज्ञान, शिक्षा, दर्शन तथा अन्य कलाओं और विज्ञानों का भंडार बन गई।

रामायण की रचना कब हुई, इसके बारे में एक सर्वसम्मत दृष्टिकोण यह है कि राम की घटना पांडवों की घटना से अधिक पुरानी है, किंतु *रामायण* और *महाभारत* का लेखन-कर्म साथ-साथ ही चला होगा। हो सकता है कि रामायण के कुछ अंश *महाभारत* से पहले लिखे गए हों, किंतु इस बात में किसी तरह का संदेह नहीं है कि रामायण का अधिकांश भाग *महाभारत* के अधिकांश भाग के लिखे जाने के बाद ही लिखा गया होगा।[3]

(अपूर्ण)

---

1. *दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया,* होपकिन्स पृ. 62
2. *दि रिडिल आफ दि रामायण,* अध्याय 2, पृ. 6
3. इन दोनों महाकाव्यों में समान पदावली के लिए होपकिन्स की *दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया* में परिशिष्ट 'ए' देखें।

II

अपने मत की पुष्टि के लिए मैं जिन-जिन ग्रंथों के उदाहरण देना चाहता हूं, वे हैं: 1. *भगवत्गीता*, 2. *वेदांतसूत्र*, 3. *महाभारत*, 4. *रामायण*, और 5. *पुराण*,। इस साहित्य का विश्लेषण करते हुए मैं उन तथ्यों को प्रस्तुत करना चाहता हूं, जिनसे बौद्ध धर्म के पतन के कोई कारण या कारणों का अनुमान किया जा सके।

इस साहित्य-संपदा की विषय-वस्तु का परीक्षण शुरू करने से पहले इस प्रश्न पर विचार कर लेना आवश्यक है कि इनकी रचना कब हुई होगी। संभवतः सभी इस तथ्य से सहमत नहीं होंगे कि उपर्युक्त साहित्य की रचना पुष्यमित्र की क्रांति के बाद हुई थी। उलटे, अधिकतर हिंदू, वे चाहें परंपरावादी हों या उदारतावादी, शिक्षित हों या अशिक्षित, सभी की यह धारणा है कि काल की दृष्टि से उनका उपर्युक्त पवित्र साहित्य अत्यंत पुराना है। इस पर उनकी अगाध श्रद्धा है। इस कारण वह अपने इस साहित्य को कालातीत मान बैठते हैं।

भगवत्गीता

आइए, हम *भगवत्गीता* से शुरू करें। इसके रचना-काल के बारे में विवाद है। श्री तेलंग[1] ईसा पूर्व दूसरी सदी को अंतिम सदी मानते हैं, जिसके पूर्व *गीता* की रचना अवश्य हो गई होगी। स्वर्गीय तिलक[2] का दृढ़ मत था कि वर्तमान *गीता* का रचना-काल हर हालत में शक संवत् के 500 वर्ष पूर्व माना जाना चाहिए। प्रो० गार्बे[3] के अनुसार *गीता* का रचना-काल सन् 200 से 400 के बीच माना जाना चाहिए। श्री कोसांबी का मत इनसे अलग है जो विवाद-रहित तथ्यों पर आधारित है। प्रो. कोसांबी यह बात जोर देकर कहते हैं कि *गीता* की रचना गुप्तवंशीय नरेश बालादित्य के शासन-काल में हुई थी। बालादित्य उस गुप्त वंश से संबंधित था जिसने आंध्रवंश को सत्ताच्युत कर दिया था। बालादित्य सन् 467 में सतारूढ़ हुआ। *गीता* के रचना-काल को इतने बाद का बताने के उन्होंने दो कारण दिए हैं: 1. शंकराचार्य का जन्म सन् 788 और मृत्यु सन् 820 में हुई थी। उन्होंने *भगवत्गीता* का भाष्य लिखा। इससे पहले *गीता* को कोई नहीं जानता था। शांतरक्षित के तत्वसंग्रह में इसका कहीं उल्लेख नहीं आया है जब कि शंकराचार्य के आविर्भाव के लगभग 50 वर्ष पहले यह ग्रंथ लिखा गया था। दूसरा कारण उन्होंने बताया

---

1. *सेक्रेड बुक आफ दि ईस्ट सीरीज में भवगत्गीता (अनुवाद श्री तेलंग) में उनकी भूमिका देखें)*
2. *गीता रहस्य* (अंग्रेजी अनुवाद, खंड 2), पृ. 800, श्री तिलक के मतानुसार मूल *गीता* इससे कुछ शताब्दी पूर्व लिखी गई होगी।
3. प्रो. उटगीकर के अंग्रेजी अनुवाद 'इंट्रोडक्शन टू दि भगवत्गीता में प्रो. गार्बे की भूमिका।

है कि वसुबंधु 'विज्ञानवाद' नामक एक संप्रदाय का प्रवर्तक था। *ब्रह्म सूत्र* भाष्य में इस विज्ञानवाद की वसुबंधु कृत आलोचना मिलती है। *गीता* में एक जगह *ब्रह्म सूत्र भाष्य* का उल्लेख आया है।[1] इसलिए *गीता* की रचना वसुबंधु और *ब्रह्मसूत्र भाष्य* के बाद ही हुई होगी। वसुबंधु गुप्तवंशीय नरेश बालादित्य का गुरु था। इसी आधार पर पूरी *भगवत्‌गीता* का लेखन या कम से कम उसके कुछ अंशों का मूल गीता में जोड़ा जाना निश्चय ही बालादित्य के शासनकाल में या उसके बाद, अर्थात सन 467 के लगभग हुआ होगा।

यद्यपि *भगवत्‌गीता* के रचना-काल के बारे में तो मतभेद पाया जाता है, किंतु इस बारे में किसी तरह का मतभेद नहीं मिलता कि *भगवत्‌गीता* के कालांतर में अनेक संस्करण हुए थे। सभी इस बारे में सहमत हैं कि आज हमें *भगवत्‌गीता* जिस स्वरूप में उपलब्ध है, वह उसका मूल रूप नहीं हैं। अलग-अलग समय में अलग-अलग संपादकों के हाथों इसमें क्षेपक जुड़ते रहे हैं। यह भी स्पष्ट है कि जिन-जिन संपादकों के हाथों इसमें रूपांतर होता रहा है, उन सबकी क्षमता समान नहीं थी। प्रो. गार्बे कहते हैं[2] :

गीता निश्चय ही कोई ऐसी कलात्मक कृति नहीं जिसकी रचना किसी प्रतिभाशाली व्यक्ति ने की हो। इसमें कल्पना की उड़ान तो बहुत बार दिखाई पड़ जाती है, किंतु वह भी कभी-कभी ही। इसमें केवल आडंबरपूर्ण और अर्थहीन शब्दावली के माध्यम से बार-बार किसी एक ही विचार की आवृत्ति दिखाई पड़ती है। कभी-कभी तो साहित्यिक अभिव्यक्तियां भी प्रचुर मात्रा में दोषपूर्ण पाई जाती हैं। अनेक छंद उपनिषदों से ज्यों के त्यों उठाकर रख दिए गए लगते हैं। और यही बात ऐसी है, जिसकी अंतःप्रेरणा से युक्त हर कवि सदा बचना चाहेगा। सत्व, रजस् और तमस् का व्यवस्थित विवेचन पांडित्य प्रदर्शन भर के लिए हुआ है। इनके अतिरिक्त, कई ऐसी बातें और हैं जिनके आधार पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि *गीता* किसी सच्चे और सर्जनात्मक कविहृदय की उपज नहीं है...

होपकिन्स का *भगवत्‌गीता* के बारे में कथन है कि यह कृति अपनी उदात्तता और अपने बचकानेपन, अपनी तार्किकता और उसके अभाव, दोनों के बारे में विशिष्ट है, अपनी यत्र-तत्र अभिव्यक्ति शक्तिमता और रहस्यात्मक प्रशंसा के बावजूद *भगवतगीता* काव्यात्मक कृति की दृष्टि से संतोषजनक नहीं है। एक ही बात को बार-बार दोहराया गया है। आवृत्ति दोष के साथ ही साथ इसमें पदावली और अर्थ में परस्पर विरोध के असंख्य उदाहरण मिलते हैं। इन सब बातों को देखते हुए यदि इसके बारे में यह कहा जाए कि 'यह एक अद्‌भुत गीत है जो रोमांचित कर देता है, तो किसी को आश्चर्य नहीं होगा।

यह कहकर कि यह सब विदेशियों के विचार हैं, इन तथ्यों को झुठलाया नहीं जा

1. *गीता, अध्याय* 13, श्लोक 4
2. *वही, पृ.* 3

सकता। प्रो. राजवाडे[1] भी इनसे पूर्णतः सहमत लगते हैं। वह कहते हैं कि जिन लोगों का *भगवत्गीता* की रचना में हाथ रहा होगा, उन्हें व्याकरण के नियम भी मालूम नहीं थे।

सभी इस तथ्य से तो सहमत हैं कि अलग-अलग संपादकों के हाथों में पड़कर गीता के अलग-अलग संस्करण तैयार हुए, किंतु उनमें इस बात को लेकर असहमति है कि *गीता* में कौन से अंश जोड़े गए हैं। स्वर्गीय राजाराम शास्त्री भागवत के अनुसार मूल *गीता* में केवल साठ श्लोक थे। हम्बोल्ड्ट का यह विचार रहा कि मूलतः *गीता* में केवल आरंभिक ग्यारह अध्याय ही थे। बारहवें से लेकर अट्ठारहवें अध्याय तक की समस्त सामग्री बाद में जोड़ी गई थी। होपकिन्स के अनुसार *गीता* के आरंभिक चौदह अध्याय ही उसका मर्म है। प्रो. राजवाडे दसवें और ग्यारहवें अध्यायों को प्रक्षिप्त मानते हैं। प्रो. गार्बे कहते हैं कि *भगवत्गीता* के 146 छंद नए हैं, जो मूल गीता के अंश नहीं थे। इसका अर्थ यह है कि *गीता* का लगभग पांचवा हिस्सा नया है।

गीता का लेखक कौन है, इसके बारे में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। *गीता* तो समरभूमि में अर्जुन और कृष्ण का संवाद है, जिसमें कृष्ण ने अपने दर्शन का प्रतिपादन अर्जुन के समक्ष किया था। इस संवाद का प्रत्याख्यान संजय ने कौरवों के पिता धृतराष्ट्र के सम्मुख किया था। *गीता* को तो *महाभारत* का अंश होना चाहिए था, क्योंकि जिस अवसर पर यह संवाद हुआ था, वह महाभारत की एक घटना का स्वाभाविक अंश है। किंतु *गीता* *महाभारत* का अंश नहीं है, यह तो एक अलग से स्वतंत्र रचना है। फिर भी, इसके लेखक का नाम इसमें नहीं मिलता। हम तो केवल इतना जानते हैं कि व्यास ने संजय को आदेश दिया कि युद्ध-भूमि में अर्जुन और कृष्ण के बीच जो संवाद हुआ, उसे वह धृतराष्ट्र को सुनाए। इसलिए यह माना जा सकता है कि व्यास ही गीता के लेखक रहे होंगे।

वेदांत सूत्र

पहले कहा जा चुका है कि वैदिक साहित्य में वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषद् सम्मिलित हैं। विषय-वस्तु के अनुसार इस तरह के साहित्य को दो वर्गों में बांटा जा सकता है : (1.) कर्मकांड अर्थात धार्मिक नियम, संस्कार तथा अनुष्ठान आदि से संबंधित साहित्य, और (2.) ज्ञानकांड अर्थात ईश्वर (वैदिक संज्ञा-ब्रह्म) का ज्ञान कराने वाला साहित्य। चारों वेद और ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक साहित्य के प्रथम वर्ग में आते हैं, तो आरण्यक और उपनिषद द्वितीय वर्ग में।

वैदिक साहित्य की मात्रा बढ़ते-बढ़ते असीमित हो गई, किंतु महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि यह वृद्धि जंगली घास की तरह हुई। इस तरह जो दुर्व्यवस्था फैली, उससे छुटकारा

---

1. *भंडारकर मैमोरियल वाल्यूम*

पाने के लिए किसी तरह की व्यवस्था, किसी तरह के समन्वय की आवश्यकता थी। इसलिए जिज्ञासा संबंधी एक शाखा विकसित हुई, जिसे 'मीमांसा' कहते हैं। मीमांसा में वैदिक साहित्य के पाठ से संबंधित अर्थ पर विचार हुआ। जिन्होंने इस व्यवस्था, कार्य और समन्वय के काम को हाथ में लेना आवश्यक समझा, वे कर्मकांड को व्यवस्थित करने वाले, और ज्ञानकांड को व्यवस्थित करने वाले, इन दो संप्रदायों में बंट गए। परिणाम यह हुआ कि मीमांसा शास्त्र की दो शाखाएं विकसित हो गईं, जिनमें से एक पूर्व मीमांसा शाखा और दूसरी उत्तर मीमांसा शाखा कहलाई। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पूर्व मीमांसा शाखा ने वैदिक साहित्य के आरंभिक अंश, अर्थात दो और ब्राह्मण ग्रंथों पर विचार किया। इसलिए यह पूर्व मीमांसा कहलाई। उत्तर मीमांसा शाखा ने वैदिक साहित्य के बाद वाले अंश, अर्थात आरण्यकों और उपनिषदों पर विचार किया, इसलिए यह उत्तर मीमांसा कही जाती है।

इन दोनों शाखाओं से संबंधित विपुल मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। इनमें से सूत्रों के दो संग्रह प्रमुख और अन्यतम माने जाते हैं। पहला सूत्र संग्रह जैमिनि की रचना माना जाता है, जब कि दूसरा बादरायण का। जैमिनि के सूत्र-संग्रह में कर्मकांड[1] का विवेचन हुआ है जब कि बादरायण के सूत्र-संग्रह में 'ज्ञानकांड' का। निस्संदेह इन दोनों के पहले भी कुछ लेखकों ने इन्हीं विषयों पर व्याख्या लिखी थी। फिर भी, मीमांसा शास्त्र की दोनों शाखाओं में जैमिनि और बादरायण की कृतियां ही आदर्श ग्रंथ माने जाते हैं।

यद्यपि इन दोनों के सूत्र मीमांसा शास्त्र से संबंधित हैं, फिर भी जैमिनि के सूत्र मीमांसा सूत्र[2] कहलाते हैं, जब कि बादरायण के सूत्र वेदांत सूत्र। वेदांत का अर्थ है, वेद का अंत, अर्थात वेदों के अंतिम अध्याय में प्रतिपादित सिद्धांत। वेदों के अंतिम अध्याय से अर्थ है, उपनिषद और उपनिषदों को वेदों का अंतिम लक्ष्य माना जाता है। चूंकि बादरायण के सूत्रों ने इनके व्यवस्थापन और समन्वय का काम किया है, इसलिए इन सूत्रों को *वेदांत सूत्र*[3] कहते हैं। वेदों के अध्याय में प्रतिपादित इन्हीं सिद्धांतों के अनुसार संजय को उक्त आदेश दिया गया था। वेदांत सूत्रों का यही उद्‌गम है।

---

1. *वस्तुतः वैदिक साहित्य के कर्मकांड विषयक अंश के व्यवस्थापन से दो प्रकार की कृतियां तैयार हुईं:* 1. कल्प सूत्र, और 2. पूर्व मीमांसा सूत्र। कल्प सूत्रों में ब्राह्मण ग्रंथों में विहित कर्मकांडों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, जब कि पूर्व मीमांसा सूत्रों में उस सामान्य की व्याख्या और समर्थन किया गया है, जिसका अनुसरण करना कल्प सूत्रकार के लिए आवश्यक है, बशर्ते कि वह अपने नियमों को वेदों की शिक्षा के अनुरूप पूरी तरह व्याख्यातित करना चाहे।
2. इन्हें पूर्व मीमांसा अथवा कर्म मीमांसा भी कहते हैं।
3. इनके और भी नाम हैं, यथा–उत्तर मीमांसा सूत्र, ब्रह्म सूत्र या शारीरिक सूत्र या शारीरिक मीमांसा सूत्र।

यह बादरायण कौन है? उसने इन सूत्रों का प्रणयन क्यों किया और कब किया? इस नाम को छोड़कर बादरायण के बारे में और कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।[1] यह भी निश्चित नहीं है कि लेखक का यह नाम वास्तविक नाम था या नहीं। यहां तक कि इन सूत्रों के बड़े-बड़े भाष्यकारों में भी इन सूत्रों के रचयिता के बारे में पर्याप्त मतभेद है। कुछ कहते हैं कि इनके लेखक बादरायण थे। कुछ कहते हैं कि इन सूत्रों के रचयिता व्यास हैं। शेष लोगों का मत है कि बादरायण और व्यास एक ही व्यक्ति हैं। इन सूत्रों के रचयिता के बारे में इतने मतभेद देखकर आश्चर्य होता है।

उसने इन सूत्रों की रचना क्यों की? हर कोई इस बात को भली-भांति स्वीकार कर लेगा कि ब्राह्मणों का यह कर्तव्य था कि वे वैदिक साहित्य के कर्मकांड विषयक साहित्य को व्यवस्थित और वर्गीकृत करें, क्योंकि कर्मकांड से उनका गहरा संबंध था। उनकी आजीविका का साधन कर्मकांड ही था। दूसरी ओर, वैदिक साहित्य की ज्ञानकांड शाखा में उनकी रुचि नहीं थी। तब वे इसे भी व्यवस्थित करने का प्रयत्न क्यों करते? ऐसा प्रश्न अभी तक न तो किसी ने उठाया है, और न ही इस विषय में अभी तक कुछ विचार ही हुआ है। किंतु यह एक महत्पवूर्ण प्रश्न है और इसका उत्तर देना भी अत्यंत महत्पवूर्ण होगा। प्रश्न महत्वपूर्ण क्यों है और उसका उत्तर क्या है, इसका विवेचन मैं आगे चलकर करूंगा।

वेदांत सूत्र के बारे में दो प्रश्न और हैं। पहला, इसे धर्मशास्त्र विषयक कृति माना जाए या विशुद्ध दर्शन विषयक? या सूत्रकार ने इसकी रचना कर दर्शन को स्थापित धर्मशास्त्र के साथ गठबंधन करना चाहा है, ताकि धार्मिक कर्मकांड को घातक और हानिकर होने से बचाया जा सके। अगला प्रश्न *वेदांत सूत्र* के भाष्यों से संबंधित है। कुल मिलाकर पांच भाष्य उपलब्ध हैं, जो सुप्रसिद्ध आचार्यों के हैं। ये सभी बौद्धिक दृष्टि से मेधावी विद्वान थे। इनके नाम है : 1. शंकराचार्य (788-820 ई.), 2. रामानुजाचार्य (1017-1137 ई.), 3. निंबार्काचार्य (मृत्यु लगभग 1162 ई.), 4. मध्वाचार्य (1197-1276 ई.), और 5. बल्लभाचार्य (जन्म 1417 ई.)। इन आचार्यो की वेदांत सूत्र की व्याख्या वेदांत सूत्र से भी अधिक प्रसिद्ध हुई। इनके बारे में महत्वपूर्ण बात यह है कि वेदांत सूत्र के एक ही पाठ की इन पांचों

---

1. *यही बात जैमिनि पर भी लागू होती है। केन का कथन है* – 'जैमिनि के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। जैमिनि के नाम से एक ब्राह्मण ग्रंथ, एक स्त्रोत सूत्र और एक गृह्य सूत्र मिलते हैं। किंतु इस बात की संभावना प्रतीत नहीं होती कि ये ग्रंथ पूर्व मीमांसाकार की ही रचनाएं हैं। आश्वलायन गृह्य सूत्र के 'तर्पण' में सुमंतु और वैशम्पायन के साथ जैमिनि का उल्लेख मिलता है। *भगवत् पुराण* में जैमिनि को सुमंतु का गुरु और *सामवेद* का प्रणेता बताया गया है। *पंचतत्र* के अनुसार, मीमांसाकार जैमिनि की मृत्यु हाथी के पांव तले दब कर हुई थी। (ए ब्रीफ स्केच आफ दि पूर्व मीमांसा सिस्टम, पृष्ठ 12)

आचार्यों ने पांच अलग-अलग विचारधाराओं के अनुसार व्याख्या प्रस्तुत की। शंकर ने बताया कि वेदांत सूत्र परम अद्वैत की शिक्षा देते हैं, जब कि रामानुज के अनुसार विशिष्ट द्वैत की, निंबार्क के अनुसार द्वैताद्वैत की, माधव के अनुसार द्वैत की और वल्लभ के अनुसार शुद्ध द्वैत की। इन सभी पारिभाषिक शब्दों का क्या अर्थ है, यहां मैं इस पर विचार नहीं करूंगा। मैं तो केवल इतना भर बताना चाहता हूं कि एक ही सूत्र संग्रह की पांच अलग-अलग व्याख्याओं के परिणामस्वरूप पांच अलग-अलग संप्रदायों के उदय और विकास की आवश्यकता क्यों पड़ी? क्या यह केवल व्याकरण का विषय है? या इन विविध व्याख्याओं या टीकाओं के पीछे और कोई उद्देश्य छिपा है? इतने प्रकार की टीकाओं के कारण एक और प्रश्न उठता है। इन पांचों टीकाओं में आत्मा और परमात्मा को पहचानने के पांच रास्ते अपनाए गए हैं, जब कि वस्तुतः ये रास्ते दो ही हैं। एक रास्ता वह है जो शंकराचार्य ने अपनाया और दूसरा रास्ता वह है जिस पर शेष चारों आचार्य चले। यद्यपि चारों आचार्यों के बीच परस्पर मतभेद रहा, किंतु शंकराचार्य के विपक्ष में उनकी दो बातों को लेकर उनमें पूर्ण सहमति थी : 1. आत्मा और परमात्मा के बीच पूर्ण एकरूपता है, और 2 संसार माया है। यहीं तीसरा प्रश्न और उठता है। बादरायण के वेदांत सूत्रों की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य ने अपना इतना अनदेखा मत क्यों प्रतिपादित किया? क्या उन्होंने सूत्रों का आलोचनात्मक विवेचन कर ऐसा किया? या क्या ऐसा करना उनके लिए अपने पूर्व विचारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अभिलाषा कल्पित चिंतन मात्र था?

मैं केवल यह प्रश्न कर रहा हूं। यहां उसका उत्तर पाने के लिए विवेचन करना नहीं चाहता। मैं तो यहां केवल यह जानने का इच्छुक हूं कि यह साहित्य किस काल की रचना माना जाए—बौद्ध-काल के पूर्व की अथवा बौद्ध-काल के बाद की।

वेदांत सूत्र के रचना-काल को निर्धारित करने में आरंभिक कठिनाई यह सामने आती है कि *भगवत्गीता* की ही तरह इस ग्रंथ के पाठ में भी अनेक बार संशोधन होते रहे हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार[1] *वेदांत सूत्र* में तीन बार संशोधन हुए। इसी वजह से इसके निर्माण की सही-सही तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती।[2] जो विचार अब तक सामने आए हैं, वे केवल संभावित काल की ही सूचना देते हैं। निस्संदेह *वेदांत सूत्र* की रचना बुद्ध धर्म के जन्म के बाद ही हुई होगी, क्योंकि इन सूत्रों में स्पष्ट उल्लेख न होते हुए भी बौद्ध धर्म के बारे में संकेत अवश्य मिलते हैं। वेदांत सूत्रों की रचना मनु के बाद की नहीं मानी जा सकती, क्योंकि *मनुस्मृति* में वेदांत सूत्रों का उल्लेख मिलता है। प्रो. कीथ की मान्यता है कि इन सूत्रों की रचना सन् 200 के आस-पास हुई होगी। प्रो. जेकोबी कहते हैं कि इनकी रचना सन् 200 और सन् 450 के बीच हुई होगी।

---

1. *देखें, बेलवल्कर, बसु मलिक लेक्चर्स आन वेदांत, लेक्चर 4*
2. *देखें, राधाकृष्णन, इंडियन फिलोसफी, खंड 2, पृ. 430, जहां संबंधित साक्ष्य संकलित है।*

महाभारत

महाभारत की रचना-तिथि का निर्धारण करना असंभव-सा है। हां, उसकी रचना के युग-निर्धारण का प्रयास अवश्य किया जा सकता है। *महाभारत* के तीन संस्करण हुए हैं और हर संस्करण के संपादक ने उसके शीर्षक और कथावस्तु, दोनों में परिवर्तन किए हैं। अपने मूल रूप में यह *जय* के नाम से जाना जाता था। यही मूल नाम तीसरे संस्करण के आरंभ और अंत, दोनों स्थानों में आया है। इस मूल रूप *जय* की रचना किसी व्यास ने की थी। इसका दूसरा संस्करण *भारत* कहलाया। *भारत* का संपादन वैशम्पायन ने किया था। *भारत* नामक इस काव्य का वैशम्पायन कृत द्वितीय संस्करण ही अकेला संस्करण नहीं था। व्यास के शिष्यों में वैशम्पायन के अतिरिक्त सुमंतु, जैमिनि, पैल और शुक भी थे। इन सभी ने व्यास से विद्या ग्रहण की थी। इन्होंने अपने-अपने संस्करण तैयार किए। इस प्रकार *भारत* के ही चार और संस्करण उपलब्ध थे। वैशम्पायन ने इन सभी को नए रूप में ढालकर अपना नया संस्करण तैयार किया। तीसरे संस्करण का संपादक सौति था। उसने वैशम्पायन के संस्करण को नए रूप में ढाला। सौति का संस्करण अंततोगत्वा *महाभारत* के नाम से जाना गया। यह संस्करण आकार और कथावस्तु, दोनों रूपों में अपने पूर्ववर्ती संस्करणों का परिवर्धित रूप था। व्यास के *जय* नामक लघु काव्य ग्रंथ में 8,800 से अधिक श्लोक नहीं थे। वैशम्पायन के *भारत* में यह संख्या बढ़कर 24,000 हो गई। सौति ने श्लोकों की संख्या में विस्तार किया और इस तरह *महाभारत* में श्लोकों की संख्या बढ़कर 96,836 हो गई। कथावस्तु के रूप में व्यास के मूल काव्य में केवल कौरवों और पांडवों की युद्ध कथा थी। वैशम्पायन के काव्य में कथावस्तु में दोगुनी वृद्धि हो गई। मूल युद्ध-कथा के साथ में उपदेश, अर्थात शिक्षाप्रद घटनाएं भी जुड़ गईं। इस तरह एक विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य के स्थान पर इस कृति ने उपदेशात्मक रूप ग्रहण कर लिया, जिसका उद्देश्य सामाजिक, नैतिक और धार्मिक कर्तव्यों, अर्थात नित्य-नियमों की शिक्षा देना हो गया। अंतिम संपादक के रूप में सौति ने इस *महाभारत* को दंतकथाओं, आख्यानों, घटनाओं आदि का एक विशाल सर्वतोमुखी संग्रह बना दिया। *भारत* में वर्णित कथा के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से जितनी भी दंतकथाएं या ऐतिहासिक आख्यान प्रचलित थे, उन सबको सौति ने अपने ग्रंथ में समाविष्ट कर लिया, ताकि वे विस्मृत न हो जाएं अथवा कम से कम एक स्थान पर तो उपलब्ध हो जाएं। सौति की एक आकांक्षा यह भी थी कि *भारत* को शिक्षा और ज्ञान का अक्षय भंडार बना दिया जाए इसलिए उसने इसमें राजनीति, भूगोल, धनुर्विद्या आदि ज्ञान और शिक्षा की सभी शाखाओं से संबंधित सामग्री जोड़ दी। सौति पुनरावृत्ति का शौकीन था। इसे ध्यान में रखते हुए किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए यदि यह कहा जाए कि उसके हाथों से निकलकर *भारत*, *महाभारत* बन गया।

अब तिथि निर्धारण के बारे में विचार करें। निस्संदेह कौरवों और पांडवों का युद्ध

एक अत्यंत प्राचीन घटना थी। किंतु इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि व्यास की कृति भी उस घटना की ही तरह प्राचीन है अथवा उस घटना की समकालीन रचना है। प्रत्येक संस्करण का तिथि-निर्धारण करना कठिन कार्य है। इस संपूर्ण कृति पर विचार करते हुए प्रो. होपकिन्स लिखते हैं :[1]

"इस तरह मोटे तौर पर संपूर्ण *महाभारत* का रचना काल सन् 200 से सन् 400 के बीच का ठहरता है। यह निर्धारण करते समय न तो उत्तरवर्ती काल में हुए बाद के संस्करणों को, जैसा कि हम जानते है, ध्यान में रखा गया हैं और न ही उन वाचिक रूप में हुए परिवर्तनों-परिवर्धनों को ध्यान में रखा गया है, जो परवर्ती प्रतिलिपिकारों के हाथों हुए होंगे।"

किंतु कुछ अन्य साक्ष्यों के आधार पर निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि इसकी रचना इससे भी बाद में हुई होगी।

महाभारत में हूणों का उल्लेख मिलता है। स्कंदगुप्त ने हूणों से युद्ध किया था और उन्हें सन् 455 में या उसके आसपास पराजित किया। इसके बावजूद हूणों के आक्रमण सन् 528 तक होते रहे। स्पष्ट है कि *महाभारत* की रचना उस समय या उसके बाद में हुई होगी।

प्रो. कोसांबी[2] ने कुछ और भी संकेत दिए हैं, जो इसे और बाद की रचना सिद्ध करते हैं। *महाभारत* में म्लेच्छों अथवा मुसलमानों का जिक्र हुआ है। *महाभारत* के वन पर्व के 190 वें अध्याय के 29 वें श्लोक में रचनाकार कहता है कि 'सारा संसार इस्लामय हो जाएगा। सभी यज्ञ, अनुष्ठान, विधि-विधान, पर्व और त्यौहार समाप्त हो जाएंगे।' इस कथन का सीधा संबंध मुसलमानों से है। यद्यपि इसका संबंध भविष्यत काल से है, फिर भी, चूंकि *महाभारत* पुराण काव्य है और पुराणों में जो हो गया है, उसी का कथन होता है, इसलिए इसे भी इसी अर्थ में लेना चाहिए। इस श्लोक की इस तरह व्याख्या कर लेने पर यह सिद्ध हो जाता है कि *महाभारत* की रचना भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के बाद ही हुई होगी।

कुछ अन्य संदर्भों से भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है।

इसी अध्याय के 59 वें श्लोक में कहा गया है कि 'वृषलों के सताए हुए ब्राह्मण भय से पीड़ित हो हाहाकार करने लगेंगे और कोई रक्षक न मिलने के कारण सारी पृथ्वी पर निश्चय ही भटकते फिरेंगे।'

---

1. *प्रो. होपकिन्स, दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया, पृ. 389*
2. *हिंदू संस्कृति आणि अहिंसा, (मराठी)*

इस श्लोक में जिन वृषलों की ओर संकेत है, वे बौद्ध नहीं हो सकते। इस बात का लेशमात्र भी प्रमाण नहीं मिलता कि बौद्धों के हाथों ब्राह्मणों को कभी सताया गया हो। उलटे, इस बात के प्रमाण तो मिले हैं कि बौद्धों के शासन-काल में बौद्ध भिक्षुओं की ही तरह ब्राह्मणों के साथ उदारता का व्यवहार किया जाता था। यहां वृषल से अर्थ है असभ्य और ऐसा विशेषण मुसलमान आक्रांताओं के लिए ही प्रयुक्त हुआ लगता है।

यदि यह बात सही है, तब तो यह मानना ही पड़ेगा कि *महाभारत* का कुछ अंश निश्चय ही भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के बाद लिखा गया होगा।

वन पर्व के इसी अध्याय में कुछ अन्य श्लोक भी हैं जो इसी निष्कर्ष की ओर संकेत करते हैं। ये हैं: 65 वां, 66 वां और 67 वां श्लोक। इनसे भी यही निष्कर्ष निकलता है। इनमें कहा गया है कि 'समाज अव्यवस्थित हो जाएगा। लोग एड्रूकों की पूजा करेंगे। वे देवों का बहिष्कार करेंगे। शूद्र, द्विजों की सेवा नहीं करेंगे। सारे संसार में एड्रूक व्याप्त हो जाएंगे। युग का अंत हो जाएगा।'

यहां 'एड्रूक' शब्द का बहुत ही महत्व है। कुछ ने इस शब्द का अर्थ बौद्ध चैत्य लगाया है। यह इसलिए कि एड्रूक का अर्थ है हड्डी, विशेषकर बुद्ध की अस्थियां। आगे चलकर इसका अर्थ हुआ चैत्य, क्योंकि चैत्य में बुद्ध की अस्थियां होती हैं, किंतु श्री कौसांबी के मतानुसार यह अर्थ ठीक नहीं है। न तो बौद्ध साहित्य में, और न ही वैदिक साहित्य में कहीं भी 'एड्रूक' शब्द 'चैत्य' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उलटे, *अमरकोश* और उसके व्याख्याकार महेश भट्ट के अनुसार तो एड्रूक का अर्थ ऐसी दीवार है, जिसे लकड़ी के ढांचे से पुष्ट किया गया हो। इस अर्थ को ध्यान में रखते हुए कोसांबी ने इस शब्द का अर्थ 'ईदगाह' लगाया है, जहां मुसलमान नमाज अदा करते हैं। यदि यह व्याख्या सही है, तब तो स्पष्ट रूप से यही कहा जा सकता है कि *महाभारत* के कुछ अंश मुसलमानों के आक्रमणों, विशेषकर मौहम्मद गौरी के आक्रमणों के बाद लिखे गए थे। मुसलमानों का पहला आक्रमण इब्ने कासिम के नेतृत्व में सन् 721 में हुआ था। उसने उत्तरी भारत के कुछ भागों पर कब्जा तो कर लिया था, किंतु वहां के मंदिरों और विहारों को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया, और न ही दोनों धर्मों के पुजारियों का संहार ही किया था। उसने मस्जिदें और ईदगाह नहीं बनवाईं। यह काम तो मौहम्मद गौरी ने किया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महाभारत का लेखन सन् 1200 तक चलता रहा होगा।

रामायण

यह एक तथ्य है कि *महाभारत* की ही तरह *रामायण* के भी एक-एक कर तीन संस्करण तैयार हुए। *महाभारत* में *रामायण* के बारे में दो प्रकार के संदर्भ मिलते हैं। एक प्रसंग में *रामायण* का तो संदर्भ आया है, किंतु उसके लेखक का उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

दूसरे प्रसंग में वाल्मीकि *रामायण* का उल्लेख हुआ है, किंतु इन दिनों जो *रामायण* उपलब्ध है, वह वाल्मीकि रचित नहीं है।[1] श्री सी.वी. वैद्य[2] के मतानुसारः

'वर्तमान *रामायण* वाल्मीकि द्वारा लिखित *रामायण* नहीं है, चाहे इसे इसी रूप में महान चिंतक और भाष्यकार कटक ने ही क्यों न स्वीकार किया हो। कट्टर से कट्टर विचारक भी इस तथ्य को स्वीकार करने में नहीं हिचकिचाएगा। चाहे कोई वर्तमान *रामायण* को सरसरी तौर पर ही क्यों न पढ़े, वह उसमें आई असंगतियों को देखकर पूर्व प्रसंगों में परस्पर संबंधहीनता देखकर या काफी मात्रा में उपलब्ध नूतन, और पुरातन, दोनों प्रकार के विचारों के गठबंधन को देखकर हतप्रभ रह जाएगा। यह बात *रामायण* के बंगाल या बंबई वाले किसी भी पाठ में देखी जा सकती है। इन सब बातों को देखकर कोई भी इस नतीजे पर अवश्य पहुंचेगा कि वाल्मीकि की *रामायण* में आगे चलकर बहुत फेर-बदल हुआ।'

महाभारत की ही तरह रामायण की कथावस्तु में भी कालांतर में क्षेपक जुड़ते गए। आरंभ में रामायण की कथा मात्र इतनी ही थी कि रावण ने राम की पत्नी सीता का हरण कर लिया, इसलिए राम और रावण के बीच युद्ध हुआ। अगले संस्करण में इस कथा में कुछ उपदेश भी जुड़ गए। तब एक विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य के स्थान पर यह कृति भी उपदेशात्मक बन गई, जिसका उद्देश्य सामाजिक, नैतिक और धार्मिक कर्तव्यों के सही नियमों की शिक्षा देना था। जब इसका तीसरा संस्करण बना तो यह भी *महाभारत* की ही तरह दंतकथाओं, ज्ञान, शिक्षा, दर्शन तथा अन्य कलाओं और विज्ञानों का भंडार बन गई।

रामायण की रचना कब हुई, इसके बारे में एक सुस्थापित कथन यह है कि राम वाली घटना पांडवों वाली घटना से अधिक पुरानी है, किंतु *रामायण* और *महाभारत* का लेखन-कार्य साथ ही चला होगा। हो सकता है कि रामायण के कुछ अंश महाभारत से पहले लिखे गए हों, किंतु इस बात में किसी तरह का संदेह नहीं हो सकता कि रामायण का अधिकांश भाग महाभारत के अधिकांश भाग के लिखे जाने के बाद ही लिखा गया होगा।[3]

पुराण

इस समय उपलब्ध पुराणों की संख्या अठारह है।[4] शुरू में पुराणों की संख्या इतनी

1. *होपकिन्स, दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया,* पृ. 62
2. *दि रिडिल आफ दि रामायण, अध्याय 2, पृ. 6*
3. इन दोनों महाकाव्यों में समान वाक्य खंडों के लिए होपकिन्स की पुस्तक दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया का परिशिष्ट 'ए' देखें।
4. पुराणों की सामग्री के बारे में जो कुछ मैंने ऊपर कहा है, वह काले की *पुराण निरीक्षण* (मराठी) और पार्टीजर की एनसिएंट *हिस्टोरिकल ट्रेडिशन* नामक पुस्तक में दी गई सूचना पर आधारित है।

नहीं थी। परंपरागत मान्यता के अनुसार, और इस मान्यता में संदेह की गुंजाइश नहीं है, सबसे पहले केवल एक पुराण था। यह भी माना जाता है कि यह पुराण वेदों से भी पुराना था। *अथर्ववेद* में इस पुराण का उल्लेख है और *ब्रह्मांड पुराण* के अनुसार यह वेदों से भी पुराना है। यह एक कथा थी, जिसे राजा को शतपथ के लिए जानना आवश्यक था। ब्राह्मण कहता है कि यज्ञ के दसवें दिन् अध्वर्यु द्वारा इसे राजा को सुनाने का विधान रहा।

अठारह पुराणों के जन्म की कथा व्यास से संबंधित है। कहते हैं कि व्यास ने ही उस मूल पुराण को काट-छांटकर, अर्थात उसे घटा-बढ़ाकर उससे ही अठारह पुराण बना दिए। इस तरह इन अठारह पुराणों के निर्माण की घटना को पुराणों के विकास का द्वितीय चरण माना जा सकता है। इन अठारह पुराणों में से प्रत्येक पुराण के आरंभ के अंश को जिसे व्यास ने अभिव्यक्त या प्रकाशित किया, *आदि पुराण*[1] कहते हैं। मूल कथा व्यास द्वारा रचित है। जब व्यास इन अठारह पुराणों की रचना कर चुके, तब उन्होंने इनको अपने शिष्य रोमहर्षण को सुनाया। रोमहर्षण द्वारा रचित पुराणों का तीसरा संस्करण बना है। रोमहर्षण के छह शिष्य थे। इनमें से तीन शिष्यों, कश्यप, सावर्णी और वैशम्पायन, ने भी अपने-अपने संस्करण तैयार किए, जिन्हें पुराणों का चौथा संस्करण कहा जा सकता है। ये तीनों संस्करण अलग-अलग इन्हीं तीनों के नाम से जाने जाते हैं। *भविष्य पुराण* के अनुसार पुराणों में संशोधन राजा विक्रमादित्य[2] के शासन-काल में हुआ।

अब पुराणों की कथा वस्तु के बारे में विचार करें। प्राचीनकाल से ही पुराण ज्ञान की एक शाखा रहा है। इसे इतिहास से भिन्न माना गया है। इतिहास का अर्थ था किसी शासक राजा से संबंधित प्राचीन घटनाओं का वर्णन। आख्यान से तात्पर्य था, आंखों देखी घटनाओं का मौखिक रूप से कथन। इसी तरह उपाख्यान सुनी हुई कथा के पुनर्कथन को कहते थे। पूर्वजों, प्रकृति, और ब्रह्मांड विषयक गीतों को गाथा कहा जाता था।

श्राद्ध और कल्प[3] विषयक प्राचीन कर्मकांडों को कल्पशुद्धि[4] कहते थे। ज्ञान की इन

---

1. आदि पुराण का यह अर्थ नही है कि यह इस नाम से एक अलग पुराण है। इसका अर्थ प्रत्येक अठारह पुराणों के प्रथम संस्करण से है।
2. विक्रमादित्य कौन है, यह कोई नहीं जानता।
3. श्री हजारा (कल्प शुद्धि के बजाय) कल्प ज्योति कहते हैं, जिसका अर्थ पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही जनश्रुति से है–देखें, पुराण के कालतत्व, पृ. 4
4. 'कल्प' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है, जैसे, 1. व्यवहारिक, 2. उचित, और 3.योग्य, सक्षम। अन्य स्थानों में इसका प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है जैसे, 1.धार्मिक नियम, 2. निर्धारित विकल्प, 3. अनुष्ठान में निर्मित, 4. संसार का अंत, प्रलय 5. ब्रह्म युग का एक दिन, 6. रोगी का उपचार, और 7.छह वेदांगों में से एक, जिसमें अनुष्ठान तथा विभिन्न पर्व और यज्ञ-कर्म संपन्न करने की विधि निर्धारित की गई है।

शाखाओं से पुराण भिन्न माने जाते थे। पुराण में ये पांच विषय होते थे: 1. सर्ग, 2. प्रति सर्ग, 3. वंश, 4. मन्वंतर, और 5. वंशचरित। सर्ग का अर्थ है ब्रह्मांड की रचना, प्रति सर्ग का अर्थ है ब्रह्मांड का विलय। वंश से तात्पर्य है जीवन का क्रम, अर्थात वंशावली। विभिन्न मनुओं के युगों को मन्वंतर कहते थे, विशेष रूप से उन चौदह मनुओं की परंपरा को जिनसे इस पृथ्वी पर सृष्टि का विकास हुआ माना जाता है। वंशचरित से तात्पर्य है, राजा-महाराजाओं की पीढ़ियों का वर्णन।

पुराणों की विषय-वस्तु के क्षेत्र में पर्याप्त विस्तार हुआ लगता है क्योंकि आज पुराण जिन रूपों में मिलते हैं, उनमें उनकी विषय-वस्तु उपर्युक्त पांच विषयों तक ही सीमित नहीं है। उनमें इन पांच निर्धारित विषयों के अतिरिक्त भी अनेक नए विषय सम्मिलित हो गए हैं। वस्तुतः पुराणों के विषय-क्षेत्र की अवधारणा में ही इतना परिवर्तन हो गया है कि कुछ पुराणों में तो पूर्व निर्धारित विषयों में से किसी का विवेचन मिलता ही नहीं, उलटे उनमें केवल नए अथवा अतिरिक्त विषयों का विवेचन ही हुआ है। इन अतिरिक्त विषयों में निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं:

1. स्मृति धर्म– (क) वर्णाश्रम धर्म, (ख) आचार, (ग) अहनिका, (घ) भाष्याभाष्य, (ड) विवाह, (च) अशौच, (छ) श्राद्ध, (ज) द्रव्यशुद्धि, (झ) पताका, (ट) प्रायश्चित, (ठ) नरक, (ड) कर्म विपाक, और (द) युग-धर्म।
2. व्रत धर्म–व्रत रखना, पर्व का पालन।
3. क्षेत्र धर्म – तीर्थ यात्रा, और
4. दान धर्म – दान-पुण्य करना

इनके अतिरिक्त दो विषय और हैं, जिनके बारे में इन पुराणों में बहुत-कुछ कहा गया है।

पहला विषय किसी मत या पंथ विशेष की पूजा-आराधना से संबंधित है। हर पुराण का कोई न कोई इष्ट देवता है और वह पुराण उसी देवता की आराधना-पद्धति अपनाने और उसी देवता को अपना इष्ट बनाने पर बल देता है। अठारह पुराणों में से पांच पुराण[1] विष्णु की आराधना पर बल देते हैं। आठ[2] शिव पूजा पर, एक[3] ब्राह्मण की पूजा पर, एक[4] सूर्य की पूजा पर, दो देवी की पूजा पर और एक गणेश की पूजा पर।

---

1. (1) विष्णु (2) भागवत् (3) नारद (4) वामन और (5) गरुड़
2. (1) शिव, (2) ब्रह्म, (3) लिंग, (4) वराह, (5) स्कंद, (6) मत्स्य, (7) कर्म, और (8) ब्रह्मांड
3. पद्म
4. अग्नि

पुराणों की कथा-वस्तु का दूसरा सर्वाधिक प्रिय विषय है, ईश्वर के अवतार। पुराणों में भगवान का वास्तविक स्वरूप क्या है, और ईश्वर ने कौन-कौन से अवतार धारण किए थे, इसमें भेद किया गया है। जहां तक ईश्वर के स्वरूप का प्रश्न है, पुराण कहते हैं कि ईश्वर की सत्ता तो एक ही है किंतु उसे दो नामों से जाना जाता है। पर जब ईश्वर मानव या पशु के रूप में अवतार लेता है, तो वह कुछ न कुछ चमत्कार अवश्य दिखाता है। अवतारवाद के बारे में जानने का सर्वाधिक उपयोगी *स्त्रोत विष्णु पुराण* है, क्योंकि केवल विष्णु ने ही समय-समय पर अवतार लेकर अनेक अलौकिक कार्य किए हैं। पुराणों में अवतारवाद के इसी विषय पर अत्यंत विस्तार से चर्चा मिलती है।

यदि यह कहा जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी कि इन्हीं नए विषयों के विस्तार से जुड़ जाने के कारण पुराणों के असली स्वरूप को पहचानना कठिन हो गया है।

पुराणों के वास्तविक रचयिता कौन थे, यह प्रश्न भी विचारणीय है, क्योंकि ऐसा लगता है कि रचयिताओं के नाम बदलते रहें हैं। प्राचीन हिंदुओं में साहित्य सृष्टाओं के दो अलग-अलग वर्ग थे। एक वर्ग ब्राह्मणों का था, तो दूसरा सूतों का। ये सूत ब्राह्मणेतर थे। दोनों वर्गों ने अलग-अलग प्रकार के साहित्य की रचना की। सूतों का एकाधिकार पुराणों पर था। इन पुराणों की रचना अथवा इनके कथा-वाचन से ब्राह्मणों का कोई संबंध नहीं था। यह केवल सूतों के लिए आरक्षित था और इससे ब्राह्मणों का कोई संबंध नहीं था। यद्यपि सूतों ने पुराणों की रचना और उनके वाचन का पैतृक अधिकार प्राप्त कर लिया था और यह कार्य उनके लिए निर्धारित हो गया था, किंतु एक समय ऐसा आया जब ब्राह्मणों ने सूतों के हाथ से यह व्यवसाय छीनकर उस पर अपना एकाधिकार जमा लिया। इस प्रकार पुराणों के रचयिता बदल गए। सूतों के स्थान पर अब ब्राह्मण थे जो इनके रचयिता हो गए।[1]

जब पुराणों पर ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित हो गया, तभी कदाचित इनके अंतिम संस्करण तैयार हुए और उनमें नए-नए विषय जोड़ दिए गए। नए-नए विषय जुड़ जाने से इनमें जो परिवर्धन-संशोधन हुए, वे अभूतपूर्व थे। ब्राह्मणों ने परंपरा से प्राप्त पुराणों में अनेक नए अध्याय जोड़ दिए, पुराने अध्यायों को बदलकर नए अध्याय लिख दिए और पुराने नामों से ही अध्याय रच दिए। इस तरह इस प्रक्रिया से कुछ पुराणों की पहले वाली सामग्री ज्यों की त्यों रही, कुछ की पहले वाली सामग्री लुप्त हो गई, कुछ में नई सामग्री जुड़ गई तो कुछ नई रचनाओं में ही परिवर्तित हो गए।

पुराणों के रचना-काल का निर्धारण टेढ़ी खीर है। ब्राह्मणों ने जिन-जिन इतिहास

1. पार्टिजर

ग्रंथों की रचना की, उनमे निर्माण-तिथि का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। पुराण भी इसके अपवाद नहीं रहे। इसलिए पुराणों के रचना-काल का निर्धारण भी उन अन्य साक्ष्यों के आधार पर ही किया जा सकता है, जिनसे संबंधित घटनाओं की तिथियां मान्य हो चुकी हैं। कौन-सा पुराण कब लिखा गया, इस विषय पर उतनी बारीकी से अभी तक विचार नहीं हुआ है, जितना अन्य ब्राह्मणवादी साहित्यिक विधाओं पर हो चुका है। विद्वान शोधकर्ताओं ने वैदिक साहित्य पर जितना अधिक ध्यान दिया है, उतना पुराण साहित्य पर नहीं दिया लगता है। मेरी जानकारी के अनुसार अब तक केवल श्री हजारा ने ही पुराणों के काल-निर्धारण के क्षेत्र में काम किया है। उनके काम का सारांश नीचे दिया जा रहा है :

	पुराण	रचना-काल
1.	मार्कंडेय	सन् 200-600 के बीच
2.	वायु	सन् 200-500 के बीच
3.	ब्रह्मांड	सन् 200-500 के बीच
4.	विष्णु	सन् 100-350 के बीच
5.	मत्स्य	कुछ अंश लगभग सन् 325 कुछ अंश लगभग सन् 1100
6.	भागवत्	सन् 500-600 के बीच
7.	कूर्म	सन् 550-1000 के बीच
8.	वामन	सन् 700-1000 के बीच
9.	लिंग	सन् 600-1000 के बीच
10.	वराह	सन् 800-1500 के बीच
11.	पद्म	सन् 600-950 के बीच
12.	बृहन्नारदीय	सन् 875-1000 के बीच
13.	अग्नि	सन् 800-900 के बीच
14.	गरुड़	सन् 850-1000 के बीच
15.	ब्रह्म	सन् 900-1000 के बीच
16.	स्कंद	सन् 700 के बाद
17.	ब्रह्म वैवर्त	सन् 700 के बाद
18.	भविष्य	सन् 500 के बाद

पुराणों के रचना-काल का इससे अधिक सटीक निर्धारण फिलहाल संभव नहीं है। नई खोज से इस अवधि की ऊपरी और निचली, दोनों सीमाओं का पुनर्निर्धारण तो हो सकता है पर इस बात की संभावना बहुत कम है कि इस अवधि में कोई आमूल परिवर्तन हो जाए, अर्थात शताब्दियों का अंतर आ जाए।

उपर्युक्त संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह बात साफ हो जाती है कि पुराण साहित्य की रचना बुद्धेतर काल में हुई थी। सर्वेक्षण से एक और महत्वपूर्ण तथ्य सिद्ध होता है कि पुराण साहित्य पुष्यमित्र के नेतृत्व में ब्राह्मणों की विजय के बाद के काल में लिखा गया था। इस सर्वेक्षण से एक बात और सामने आती है, वह यह है कि व्यास ने ही *महाभारत* की रचना की, व्यास ने ही *गीता* रची और व्यास ने ही पुराण भी लिखे। *महाभारत* में अठारह पर्व हैं, *गीता* में अठारह अध्याय हैं और पुराणों की संख्या भी अठारह है। तो क्या यह संख्या संयोग मात्र है? या यह एक सुनियोजित,अर्थात सोची-समझी युक्ति या किसी विद्वत गोष्ठी में हुई सहमति का परिणाम? इसका उत्तर पाने के लिए हमें प्रतीक्षा करनी होगी।

III

वेदांत सूत्र

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, बादरायण के वेदांत सूत्र जैमिनि के कर्म सूत्रों की ही तरह ज्ञान की एक विशेष शाखा है। सहज ही पूछा जा सकता है कि इन दोनों संप्रदायों के प्रणोताओं की एक-दूसरे की विचारधाराओं के बारे में क्या धारणा थी? जब इसके बारे में खोज-खबर लेने का हम प्रयत्न करते हैं, तो हमें बहुत ही आश्चर्यजनक तथ्य ज्ञात होते हैं। प्रो. बेलवल्कर[1] के शब्दों में एक तो यह कि 'वेदांत सूत्रों की रचना पूरी तरह कर्म सूत्रों के अनुकरण पर ही हुई है।' रचना-पद्धति और शब्दावली, दोनों ही दृष्टियों से जैमिनि ने जो नियम निर्धारित किए, उन्हें बादरायण ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। पारिभाषिक शब्द और उनके आशय, दोनों में ही समान अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। बादरायण ने वही दृष्टांत दिए हैं, जो जैमिनि ने दिए हैं।

यह समानता तो थोड़ी कम आश्चर्यकारी है। अधिक आश्चर्य तो तब होता है जब हम यह देखते हैं कि एक-दूसरे की विचारधाराओं के प्रति उनकी धारणाएं क्या थीं। मैं एक उदाहरण देता हूं।

बादरायण ने वेदांत के बारे में जैमिनि के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित सूत्र उद्धृत किए हैं[2]:

1. *बसु मलिक लेक्चर्स*, पृ. 152
2. स्वामी वीरेश्वरानंद–ब्रह्म सूत्र (अद्वैत आश्रम, संस्करण, 1936) पृ. 408-11

2. चूंकि (यज्ञादि कर्मों में) (आत्मा) गौण होती है (आत्मा–ज्ञान के फल) केवल कर्ता के गुण बताते हैं, यह अन्य विषयों के संबंध में भी है, ऐसा जैमिनि कहते हैं।

जैमिनि के अनुसार वेद कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, जिसमें मोक्ष की प्राप्ति सम्मिलित है, इससे अधिक कुछ और नहीं, केवल विधियां निर्धारित करते हैं। उनका तर्क है कि आत्मा के विषय में ज्ञान प्राप्त होने से कुछ पृथक परिणाम नहीं प्राप्त होते हैं, जैसा कि वेदांत का मत है, बल्कि उसका संबंध कर्ता के माध्यम से कार्यों से है। जब तक किसी को इस बात का विश्वास न हो कि इसकी सत्ता शरीर से भिन्न है और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग जाएगा जहां वह (अपने द्वारा किए गए) यज्ञादि कर्मों के परिणामों का भोग करेगा, कोई भी कोई यज्ञ-कर्म नहीं करता है। आत्मा–ज्ञान से संबंधित ग्रंथों से केवल कर्ता का ज्ञान होता है और इसलिए यह यज्ञादि कर्म के अधीन है। वेदांत के ग्रंथ आत्मा के ज्ञान के संबंध में जिन परिणामों को घोषित करते हैं, वह अन्य विषयों से संबंधित है, चाहे यह ग्रंथ ऐसे परिणामों को गुण के रूप में क्यों न घोषित करते हों। सार रूप में जैमिनि का मत है कि इस ज्ञान से कि उसकी आत्मा शरीर के बाद भी जीवित रहेगी, कर्ता यज्ञ-कर्म करने के लिए सक्षम हो जाता है, जैसे कि शुद्धि संबंधी संस्कार करने से अन्य वस्तुएं यज्ञ-कर्म के बाद सक्षम हो जाती है।'

3. चूंकि (इस प्रकार के धमग्रंथों से) हमें (आत्म ज्ञान वाले व्यक्तियों के) आचरण का बोध होता है।

जनक, विदेह के राजा, ने एक यज्ञ किया, जिसमें दानादि मुक्त रूप से दिए गए' (बृहस्पति 3.1.1)। 'अर्थात ऋषियो, मैं एक यज्ञ करूंगा।' (छान्दोज्ञ 5.11.5)। ये दोनों अर्थात जनक और अश्वपति आत्मा के ज्ञाता थे। अगर आत्मा के इस ज्ञान द्वारा उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, तब उन्हें यज्ञ करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन उपर्युक्त उदाहरणों से पता चलता है कि उन्होंने यज्ञ किया था। इससे सिद्ध होता है कि किसी को केवल यज्ञ करने से मोक्ष मिल सकता है, न कि आत्मा का ज्ञान होने से, जैसा कि वेदांती लोग कहते हैं।

4. धर्मग्रंथ प्रत्यक्षतः घोषित करते हैं कि (यज्ञादि कर्मो की तुलना में) आत्मा का ज्ञान होना गौण बात है:

'जो ज्ञान, श्रद्धा और ध्यानपूर्वक किया जाता है, वही अधिक तेजस्वी होता है' (छान्दोज्ञ 1.1.10)। इस पाठ से यह स्पष्ट हो जाता है कि ज्ञान यज्ञ-कर्म का एक अंग है।

5. चूंकि दोनों (ज्ञान और कर्म) (मृत जीव के साथ फल के लिए) साथ जाते हैं। 'इसके बाद ज्ञान, कर्म और विगत अनुभव जाते हैं'। (बृहस्पति 4.4.2)। इस पाठ से पता चलता है कि जीवात्मा के साथ ज्ञान और कर्म आते हैं और जो फल भोगने

के लिए निश्चित है उसे उत्पन्न करते हैं। अकेला ज्ञान इस प्रकार का फल नहीं उत्पन्न कर सकता।

6. चूंकि (धर्मग्रंथ) ऐसे के लिए (कर्म का) आदेश देते हैं (जिसे वेदों के सार का ज्ञान है)।

'धर्मग्रंथ उन्हीं के लिए कर्म का आदेश देते हैं, जिन्हें वेदों का ज्ञान है (इसमें) आत्मा का ज्ञान सम्मिलित है। इसलिए केवल ज्ञान से कुछ फल नहीं निकलता।'

7. और निर्धारित नियमों के कारण

'यहां कर्म करने के बाद मनुष्य सौ वर्षों तक जीवित रहने की इच्छा करता है।' (ईषो. 2)। अग्निहोत्र ऐसा यज्ञ-कर्म है, जो वृद्धावस्था और मृत्यु होने तक चलता रहता है, क्योंकि इससे वृद्धावस्था या मृत्यु द्वारा ही मुक्ति होती है (शत. ब्रा. 12.4.1)। इस प्रकार निर्धारित नियमों से भी हमें पता चलता है कि कर्म की तुलना में ज्ञान का स्थान गौण है।

जैमिनि और कर्मकांड शास्त्रों के बारे में बादरायण का क्या दृष्टिकोण है? इसका स्पष्ट परिचय बादरायण के उस उत्तर में मिलता है जो उन्होंने अपने उक्त सूत्रों में वर्णित वेदांत की जैमिनि द्वारा आलोचना किए जाने पर दिया था। यह उत्तर निम्नलिखित सूत्रों में है[1] :

8. लेकिन चूंकि (धर्मग्रंथ) यह शिक्षा देते हैं कि (आत्मा) (कर्ता से) पृथक होती है, बादरायण का दृष्टिकोण सही है, क्योंकि यही धर्मग्रंथों में मिलता है।

सूत्र 2.7 में मीमांसकों का दृष्टिकोण दिया गया है, जिसका खंडन सूत्र 8.17 में मिलता है।

वेदांत के सूत्र सीमित आत्मा की शिक्षा नहीं देते, जो कर्ता होती है बल्कि 'आत्मा' की शिक्षा देते हैं जो कर्ता से भिन्न होती है। इस प्रकार वेदांत के ग्रंथ जिस 'आत्मा' के ज्ञान की बात करते हैं, वह आत्मा के उस ज्ञान से पृथक होता है जो कर्ता के पास होता है। जो 'आत्मा' सभी सीमाओं से मुक्त होती है, उसके ज्ञान से सभी कर्मों में सहायता ही नहीं मिलती, बल्कि सभी कर्म समाप्त भी हो जाते हैं। वेदांत के सूत्र इसी 'आत्मा' की शिक्षा देते हैं, यह इसके सूत्रों से स्पष्ट है। इनमें यह है—यह जो सब कुछ देखता है और सब कुछ जानता है' (मुंडको. 1.1.9) 'हे गार्गी, इस अविकारी के प्रबल शासन में आदि (बृहस्पति 3.8.9)।

9. श्रुति के कथन दोनों दृष्टिकोणों का समान रूप से समर्थन करते हैं।

'यह सूत्र इस मत का खंडन करता है, जो सूत्र 3 में व्यक्त हुआ है। वहां यह कहा

---

1. *स्वामी वीरेश्वरानंद, ब्रह्म सूत्र, पृ. 411-16*

गया है कि ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत भी जनक और अन्य कर्म में प्रवृत्त थे। इस सूत्र में यह कहा गया है कि धर्मग्रंथ भी इस मत का समर्थन करते हैं कि जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसके लिए कोई कर्म शेष नहीं है। इसी आत्मा का ज्ञान होने के बाद ब्राह्मण पुत्र-पुत्रियों, धन-संपत्ति की आकांक्षा त्याग देता है और संन्यास ले लेता है' (बृहस्पति 3.5.1)। 'हमें धर्मग्रंथों से यह भी पता चलता है कि जिन लोगों को आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो गया, उन लोगों ने, जैसे याज्ञवल्क्य ने, कर्म करना त्याग दिया था। 'हे प्रिय, निश्चय ही इतना ही, अमृत तत्व है। ऐसा कहकर याज्ञवल्क्य ने गृह त्याग दिया था' (बृहस्पति 4.5.15)। जनक और अन्य के कर्म को आसक्ति रहित कर्म की संज्ञा दी गई है। इसलिए यह वस्तुतः कोई कर्म नहीं था। अतः मीमांसा का तर्क कमजोर है।

10. (सूत्र 4 में जिस धर्मग्रंथ का उल्लेख है, उसका कथन) विश्वसनीय रूप से सत्य नहीं है।

श्रुति के इस कथन में कि ज्ञान यज्ञादि कर्म के फल में वृद्धि करता है, सभी प्रकार का ज्ञान शामिल नहीं है, क्योंकि यह केवल उद्‌गीथ से संबंधित है जो इस खंड का विषय है।

11. ज्ञान और कर्म भाग हैं, जैसे एक सौ (को दो व्यक्तियों में विभाजित कर दिया जाए) के संबंध में।

यह सूत्र पांचवे सूत्र का खंडन करता है। 'इसके बाद ज्ञान, कर्म और विगत अनुभव आते हैं।' (बृहस्पति 4.4.2)। यहां हमें ज्ञान और कर्म को व्यष्टि भाव के आधार पर ग्रहण करना होगा, अर्थात ज्ञान किसी एक, और कर्म किसी दूसरे का अनुसरण करता है। यह उसी प्रकार है जैसे हम, जब यह कहते हैं कि यह सौ (मुद्राएं) इन दो व्यक्तियों को दे दी जाएं, तब हम इसे बराबर दो भागों में बांटते हैं और प्रत्येक को पचास-पचास मुद्राएं देते हैं। यह दो अलग हो जाते हैं। इस व्याख्या के बिना भी पांचवें सूत्र का खंडन किया जा सकता है, क्योंकि उद्धृत पाठ केवल ज्ञान और कर्म का उल्लेख है, जिसका संबंध अंतरणशील आत्मा से है, मुक्त आत्मा से नहीं। इस पाठ से कि ऐसा वह व्यक्ति करता है जो इच्छा (अंतरण) करता है (बृह. 4.4.6), यह प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती पाठ में अंतरणशील आत्मा के विषय में है। मुक्त आत्मा के विषय में श्रुति का कथन है, 'किंतु वह व्यक्ति जो कभी भी इच्छा नहीं करता (कभी भी अंतरण नहीं करता)' आदि (बृह. 4.46)।

12. धर्मग्रंथ केवल उन लोगों के लिए कर्म का आदेश देते हैं, जिन्होंने वेदों का अध्ययन कर लिया है।

यह सूत्र छठे सूत्र का खंडन करता है। जिन व्यक्तियों ने वेद पढ़ लिए हैं और यज्ञादि

को समझ लिया है, वे कर्म करने के अधिकारी है। जिन व्यक्तियों को उपनिषदों से ज्ञान प्राप्त है, उनके लिए कोई कर्म निर्धारित नहीं है। ऐसा ज्ञान कर्म के साथ मेल नहीं रखता है।

13. चूंकि (जैमिनि) का कोई विशेष उल्लेख नहीं है, इसलिए यह उन पर लागू नहीं होता।

यह सूत्र सातवें सूत्र का खंडन करता है। वहां ईशोपनिषद् से जो पाठ उद्धृत किया गया है, वह एक सामान्य कथन है और उसमें ऐसा कोई विशेष उल्लेख नहीं है कि यह ज्ञानी पर भी लागू होता है। इस प्रकार के सटीक कथन के अभाव में यह उसके लिए अनिवार्य नहीं है।

14. अथवा (कर्म करने की) अनुमति ज्ञान की स्तुति मात्र है।

जिन व्यक्तियों को आत्मा का ज्ञान है, उनके लिए कर्म करने का आदेश उक्त ज्ञान के गौरव को पुष्ट करता है। वह इस प्रकार देखा जा सकता है: जिसको आत्मा का ज्ञान है, वह आजीवन कर्म करता रहे लेकिन उक्त ज्ञान के कारण वह उसके प्रभाव से आबद्ध नहीं होगा।

15. और कुछ अपनी इच्छा के अनुसार (सभी कर्मों से विरत हो जाते हैं)।

सूत्र 3 में कहा गया है कि जनक और अन्य ज्ञान प्राप्त होने के बाद भी कर्म में रत थे। यह सूत्र कहता है कि कुछ ने स्वयं सभी कर्म त्याग दिए थे। स्थिति यह है कि ज्ञान प्राप्त करने के बाद कुछ लोग अन्य व्यक्तियों के लिए आदर्श रूप कर्म करते हैं, जब कि शेष सभी कर्मों का त्याग कर सकते हैं। कर्म के संबंध में आत्मा का ज्ञान वाले व्यक्तियों पर कोई अनिवार्यता नहीं है।

16. और (धर्मग्रंथ कहते हैं कि) (कर्म करने की सभी अर्हताओं की) समाप्ति ज्ञान (प्राप्त होने के कारण होती है)।

ज्ञान सभी प्रकार के अज्ञान और उससे उत्पन्न कारक, कार्य और परिणाम आदि को नष्ट कर देता है।' लेकिन जब ब्राह्मण के ज्ञाता को सभी वस्तुएं आत्मा हो जाती हैं, तब व्यक्ति को क्या देखना चाहिए और किसके माध्यम से देखना चाहिए' आदि (बृह० 4.5.15)। आत्मा का ज्ञान सभी प्रकार के कर्म को निष्फल कर देता है। अतः यह संभवतः कर्म की अपेक्षा गौण नहीं है।

17. और जो लोग संयम का आचरण करते हैं वही ज्ञानी हैं (अर्थात सन्यासियों को), क्योंकि धर्मग्रंथों में (इस चतुर्थ आश्रम का) उल्लेख हुआ है।

'धर्मग्रंथों का कहना है कि ज्ञान की प्राप्ति जीवन की उस अवस्था में होती है, जिसमें

संयम का पालन निर्धारित होता है, अर्थात चतुर्थ अवस्था या संन्यास आश्रम। संन्यासी के लिए विवेक के अतिरिक्त कुछ भी निर्धारित नहीं है इसलिए, कर्म की अपेक्षा ज्ञान किस प्रकार गौण हो सकता है। हमें धर्मग्रंथों में ही जीवन की ऐसी अवस्था का उल्लेख मिलता है जिसे संन्यास कहते हैं, जैसे कर्तव्य की तीन शाखाएं हैं। पहली है त्याग, अध्ययन और सद्भाव... ये तीनों शाखाएं सद्गुण के संसार को प्राप्त करती हैं, लेकिन केवल उसी को अमरता प्राप्त होती है, जो ब्राह्मण में पूर्व तीन हैं (छान्दो. 2.33. 1-2)। 'इस संसार (आत्मा) की इच्छा से ही भिक्षु अपने-अपने घरों को त्याग देते हैं।' (बृ.4.4.22), मुड़ 1.2.111 और छान्दो. 5.10.1 भी देखिए। प्रत्येक व्यक्ति गृही हुए बिना इस जीवन को अपना सकता है, जिससे ज्ञान की स्वतंत्र स्थिति का पता चलता है।'

बादरायण के सूत्रों में अनेक ऐसे सूत्र हैं, जिनमें इन दोनों संप्रदायों के एक-दूसरे के प्रति विचारों का परिचय मिल सकता है। किंतु यहां एक ही पर्याप्त है क्योंकि यह उदाहरण के रूप में प्रतीक बन गया है। अगर कोई किसी बात पर तर्क करना बंद कर देता है, तब स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। जैमिनि वेदांत की निंदा उसे एक झूठा शास्त्र, धोखाधड़ी, बहुत कुछ सतही, अनावश्यक और तत्वहीन कह कर करते हैं। इस प्रकार की आलोचना होती देख बादरायण क्या करते हैं? वह अपने ही वेदांत शास्त्र की पुष्टि करते हैं। बादरायण से किसी ने यही अपेक्षा की होगी कि वह जैमिनि के कर्मकांड की निंदा उसे एक झूठा धर्म कह कर करते। बादरायण ऐसा कोई साहस नहीं करते। उल्टे, वह बहुत ही नम्र हैं। वह यह स्वीकार कर लेते हैं कि जैमिनि का कर्मकांड धर्मग्रंथों पर आधारित है और उसका खंडन नहीं किया जा सकता। कुल मिलाकर वह इस बात पर जोर देते हैं कि उनके वेदांत का सिद्धांत भी सही है, क्योंकि इसे भी धर्मग्रंथों का समर्थन प्राप्त है। बादरायण के इस रवैये के बारे में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है।

भगवत्गीता

भगवत्गीता, महाभारत नामक महाकाव्य के भीष्म पर्व का अंग है। यह महाकाव्य मुख्यत: चचेरे भाइयों, धृतराष्ट्र-पुत्र कौरवों और पांडु-पुत्र पांडवों के बीच प्रभुसत्ता के संबंध में परस्पर संघर्ष से संबंधित है। पांडु, धृतराष्ट्र का अनुज था। धृतराष्ट्र के अंधे होने की वजह से राजसिंहासन पर पांडु बैठा। पांडु की असामयिक मृत्यु के पश्चात पांडवों और धृतराष्ट्र-पुत्र कौरवों के बीच राजसिंहासन के उत्तराधिकार के प्रश्न पर कलह शुरू हो गया। इस संघर्ष की चरम परिणति कुरुक्षेत्र (आधुनिक पानीपत के पास) के युद्ध के रूप में हुई। इस युद्ध में कृष्ण ने पांडवों का साथ दिया और वह उनका पथप्रदर्शक, मित्र और दार्शनिक, तीनों ही था। लेकिन वह पांडवों में से उनके भाई अर्जुन का सारथी, अर्थात रथ-चालक बना।

कौरवों और पांडवों की सेनाएं कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध के लिए तैयार खड़ी हैं।

सारथी के रूप में कृष्ण के साथ अर्जुन रथ में आरूढ़ होकर युद्ध के मैदान मे आते हैं और पांडव सेना के अग्र भाग में अपना स्थान ग्रहण करते हैं। युद्ध की कामना के लिए वह शूरवीर अपनी विपक्षी कौरव सेना को निहारता है, तो उसे चारों ओर अपना ही कुल, अपने ही बंधु-बांधव, अपने ही गुरुजन दिखाई पड़ते हैं। स्वजनों के साथ होने वाले इस भयानक युद्ध में उसे अपने ही भाइयों-भतीजों, अपने ही गुरुजनों, अपने ही स्नेहियों, अपने ही श्रद्धेयों, आदि का रक्तपात करना पड़ेगा, इस विचार के आते ही वह युद्ध की भयानकता के परिणाम से भय-ग्रस्त हो जाता है। उसके मन में विषाद उत्पन्न होता है और वह अपने अस्त्र-शस्त्र त्याग कर युद्ध से मना कर देता है। कृष्ण उसके साथ तर्क-वितर्क करते हैं और उसे युद्ध करने के लिए उकसाते हैं। अर्जुन और कृष्ण के बीच का यही वाद-विवाद प्रश्नोत्तर रूप में *गीता* है। कृष्णार्जुन-संवाद के परिणामस्वरूप अंत में अर्जुन युद्ध करने के लिए तैयार हो जाता है।

भगवत्‌गीता का आरंभ वृद्ध धृतराष्ट्र और संजय के बीच युद्ध करने के बारे में बातचीत से होता है। कौरवों का पिता धृतराष्ट्र युद्ध-काल में जीवित होते हुए भी अंधा होने की वजह से स्वयं कुछ नहीं देख सकता। युद्ध-भूमि में क्या-क्या हो रहा है, यह जानने के लिए वह दूसरे पर आश्रित है। धृतराष्ट्र को युद्ध-भूमि का आंखो देखा हाल कौन सुनाएगा, इस कठिनाई का पूर्वाभास होने पर कहते हैं कि महाभारतकार व्यास ने धृतराष्ट्र का रथ हांकने वाले संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की ताकि वह युद्ध-क्षेत्र में होने वाली प्रत्येक घटना को, घटना ही नहीं मनुष्य के मन में उठने वाले सभी विचारों को जान ले और उन्हें ज्यों का त्यों धृतराष्ट्र को सुना दे। इसलिए *भगवत्‌गीता* की कथा मुख्यतः धृतराष्ट्र और संजय के बीच हुए प्रश्नोत्तरों के रूप में है। किन्तु *गीता* वस्तुतः अर्जुन और कृष्ण के बीच हुई बातचीत से संबंधित है। इसलिए तो इसे 'कृष्णार्जुन संवाद' कहा गया है, जो उचित जान पड़ता है।

इस कृष्णार्जुन संवाद में, जो *भगवत्‌गीता* का वास्तविक नाम है, विवाद का मुख्य विषय यह है कि युद्ध किया जाए या नहीं। विवाद का और कोई प्रश्न नहीं है। केवल इसी विषय पर दोनों में वाद-विवाद होता है। केवल इसी दृष्टिकोण से विचार करें तो स्पष्ट है कि तब यह अवसर नहीं था कि कृष्ण सामान्य जनता को नैतिक उपदेश दे या कि वह अपनी किसी धार्मिक मान्यता का प्रतिपादन करे अथवा किसी पंथ विशेष की प्रश्नोत्तरी शैली का सहारा ले। किंतु *गीता* में यही बात तो उभर कर सामने आती है। अर्जुन का प्रश्न था, युद्ध करूं या नहीं? कृष्ण का उत्तर हां या ना में आना चाहिए था, किंतु कहते हैं, *गीता* में तो कृष्ण ने अर्जुन को अपना सारा का सारा धर्म संदेश ही सुना दिया।

सबसे पहला प्रश्न है, यह कृष्ण कौन है? आश्चर्य है कि *गीता* में ही इस प्रश्न के अनेक प्रकार के उत्तर निहित हैं। *गीता* के आरंभ में कृष्ण एक सामान्य मानव के रूप

में, अर्थात मानवीय व्यक्तित्व लिए उभरता है। वह योद्धा है। महान योद्धा होने के बावजूद वह अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार करता है।'[1] अर्जुन का रथ चलाने जैसा तुच्छ समझा जाने वाला काम अपनाता है। मानव से वह अतिमानव बन जाता है जो युद्ध का संचालक और नियामक ही नहीं, अपितु उसका भविष्य-दृष्टा भी है। अतिमानव से उसका विकास. देवतुल्य मानव और अधिनायक के रूप में होता है। जब उसके सारे तर्क अर्जुन को युद्ध के लिए सन्नद्ध करने में असफल हो जाते हैं, तो वह सीधे तौर पर अर्जुन को युद्ध करने का आदेश देता है और इस तरह भय-ग्रस्त अर्जुन उठ खड़ा होता है और उसके कथनानुसार कार्य करने को तैयार हो जाता है। तब देवतुल्य मानव से उठकर वह ईश्वर का स्थान ग्रहण कर लेता है। इस प्रसंग में उसे ईश्वर ही कहा गया है।

उपर्युक्त विवरणानुसार कृष्ण के व्यक्तित्व का निरंतर विकास हुआ है किंतु इससे भी महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसी *गीता* में कृष्ण को ईश्वर के अन्य रूपों का प्रतिनिधित्व करने वाला भी बताया गया है। यदि कोई व्यक्ति, चाहे संयोगवश ही *गीता* का पाठ क्यों न करे, उसे कृष्ण के इस प्रकार के चार प्रतिनिधि चरित्रों की अवश्य जानकारी मिल जायेगी। कृष्ण वासुदेव है:

भगवत्गीता

10.37. वृष्णिकुल में मैं वासुदेव हूं, पांडवों में धनंजय मैं हूं, मुनियों में व्यास मैं हूं, ऋषियों के लिए ऋषि उशना मैं हूं।

कृष्ण, विष्णु भगवान के अवतार हैं

10.12. आप परम ब्रह्म हैं, परम धाम हैं, परम पवित्र हैं।

10.21. आदित्यों में विष्णु मैं हूं, ज्योतिष्कों में ज्योतिष्मान सूर्य मैं हूं, वायुओं में मरीचि मैं हूं, तारापुंज में चंद्र मैं हूं।

11.24. आपको आकाश का स्पर्श करते, नाना वर्णों में जगमगाते, आपके मुख को विशाल रूप से विवृत और आपके दीप्तमान विशाल नेत्रों को देखकर हे विष्णु, मेरा हृदय व्याकुल हो उठा है और मैं धैर्य या शांति नहीं रख पा रहा हूं।

11.30. हे विष्णु! आप सब लोकों को सब ओर से निगलकर अपने धधकते हुए

---

1. यह घटना कृष्ण और कौरवों के नायक दुर्योधन के बीच हुए समझौते का परिणाम थी। युद्ध शुरू होने से पहले एक बार कृष्ण दुर्योधन के पास पहुंचा और उसे कौरवों की ओर लड़ने के लिए आमंत्रित किया। कृष्ण ने दुर्योधन के सामने विकल्प रखा, मुझे चाहते हो या मेरी यादव सेना को। दुर्योधन ने यादव सेना को लेना स्वीकार किया। इसलिए कृष्ण और यादव सेना परस्पर दलों के साथ थे।

मुख से उन्हें चाट रहे हैं। हे सर्वव्यापी विष्णु! आपका उग्र प्रकाश समूचे जगत को तेज से पूरित कर रहा है और तपा रहा है।

कृष्ण शंकर के भी अवतार हैं:

10.23. रुद्रों में शंकर मैं हूं, यक्ष और राक्षसों में कुबेर मैं हूं, वसुओं में अग्नि मैं हूं, पर्वतों में मेरु मैं हूं।

कृष्ण ब्रह्मा हैं :

15.15. मैं सबके हृदय में अधिष्ठित हूं। स्मृति, ज्ञान और उनका अभाव मेरे कारण होता है। मैं वस्तुतः वह हूं जो समस्त वेदों द्वारा जानने योग्य है। वेदांत का प्रणेता वस्तुतः मैं हूं और वेदों का ज्ञाता भी मैं हूं।

15.16. इस लोक में दो पुरुष हैं। एक क्षर और दूसरा अक्षर है। सभी जीव क्षर हैं और उनमें जो आत्मा है, वह अक्षर कहलाती है।

15.17. इसके सिवाय कुछ और है परम पुरुष, जो परमात्मा कहलाता है। अव्यय ईश्वर जो तीनों लोकों में प्रवेश करके उनका पोषण करता है।

15.18. चूंकि मैं क्षर से परे हूं, इसलिए वेदों और लोकों में मैं पुरुषोतम नाम से प्रख्यात हूं।

15.19. हे भरत के वंशज! जो मोह रहित होकर मुझ पुरुषोतम को इस प्रकार जानता है, वह सब कुछ जानता है और मुझे पूर्ण भाव से भजता है।

अब अगला प्रश्न लें। कृष्ण ने अर्जुन को किस सिद्धांत का उपदेश दिया? कहा जाता कि यह सिद्धांत मोक्ष का सिद्धांत है। यद्यपि कृष्ण ने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है, वह मोक्ष से संबंधित है किंतु कृष्ण ने तो मोक्ष के तीन अलग-अलग सिद्धांतों का उपदेश दिया है।

'ज्ञानमार्ग' से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है जिसका सांख्य योग ने प्रतिपादन किया है।

2.39. तुझे आत्मज्ञान के गुण के विषय में बताया गया, अब तू योग के विषय में सुन। हे पार्थ, इसे सुनकर तू कर्म के बंधनों का नाश करेगा।

यह सांख्य योग पर उपदेश का अंतिम छंद है, जिसकी व्याख्या दूसरे अध्याय के ग्यारहवें से सोलहवें और अठाहरवें से तीसवें छंदों में की गई है।

2. कर्म मार्ग से मोक्ष प्राप्त हो सकता है:.

5.2. कर्मों का त्याग और योग, दोनों ही मोक्ष देने वाले हैं, इनमें से कर्मों का योग कर्मों के संन्यास से बढ़कर है।

3. भक्तिमार्ग से मोक्ष संभव है:

9.13. लेकिन हे पार्थ, दैवी प्रकृति से मुक्त महात्माजन मुझे सब प्राणियों का कारण और अक्षर स्वरूप जानकर अनन्य मन से मुझे भजते हैं।

9.14. ये लोग मेरी सदा स्तुति करते तथा दृढ़ निश्चय से प्रयत्न करते, भक्तिपूर्वक मुझे प्रणाम करते, सदा संकल्प युक्त मुझे भजते हैं।

9.15. और अन्य लोग भी ज्ञान के यज्ञ के (अर्थात् सभी में आत्मा को देखते हुए, मुझे जो पूर्ण है, जो एक है, जो सबसे पृथक है, जो बहुगुण है, भजते हैं)

9.17. मैं इस जगत का पिता हूं, माता हूं, धाता और पितामह हूं, गेय हूं, ओ३म हूं और ऋक्, साम तथा यजुर्वेद हूं।

11.22. जो लोग मुझे अनन्य समझ मेरा ध्यान करते हैं, सभी प्राणियों में भजते हैं; उनके लिए इस प्रकार मैं सदा उस वस्तु का वहन करता हूं जिसका उनमें अभाव है, मैं उस चीज की रक्षा करता हूं जो उनके पास है।

भगवत्गीता के दो अन्य लक्षण भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं।

1. वेदों और वैदिक कर्मकांडों तथा बलि के प्रति वितृष्णा प्रकट की गई है :

2.42-44. हे पार्थ, जो लोग भोग विलास में लिप्त हैं और जिनकी बुद्धि को अविवेकी जनों की अलंकारमयी वाणी ने हर लिया है, जिनकी बड़ी-बड़ी इच्छाएं हैं और जो लोग स्वर्ग को अपना चरम लक्ष्य समझते हैं, जो लोग वेदों की चित्ताकर्षक शब्दावली से प्रसन्न होते हैं और यह कहते हैं कि इसके बाद कुछ नही है, उन्हें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती। उनकी अलंकारमयी वाणी योग और ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के विशिष्ट कर्मकांडों के वर्णन से भरीपूरी रहती है, उनके शब्द (नए) जन्मों के कारण रूप होते हैं, ठीक उनके कर्मों के परिणाम की तरह (जो सकाम किए जाते हैं)।

2.45. वेदों मे तीन गुणों का वर्णन है, हे अर्जुन, तू अपने को इन तीनों से मुक्त कर सदा संतुलित रह, प्राप्ति और ग्रहण (के विचारों) से मुक्त हो और आत्मस्थित रह।

2.46. ऐसे ब्राह्मण के लिए, जिसने आत्मा को जान लिया है, उसे सभी वेदों से उतना ही प्रयोजन होता है जितना किसी जलाशय से ऐसे समय होता है जब सर्वत्र

बाढ़ आई होती है।

9.21. इस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर वे पुण्य का क्षय हो जाने पर मृत्युलोक में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों की निषेधाज्ञाओं का पालन करते, इच्छाओं की पूर्ति की कामना लिए वे आते और जाते हैं।

(अपूर्ण)

7

ब्राह्मणवाद की विजय

राजहत्या अथवा प्रतिक्रांति का जन्म

डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को 'दि ट्रम्फ आफ ब्राह्मोनिज्म' (ब्राह्मणवाद की विजय) शीर्षक के अंतर्गत केवल तीन टंकित पृष्ठ प्राप्त हुए थे। सौभाग्यवश, निबंध की एक प्रति श्री एस.एस. रेगे ने दी, ताकि उसे अंग्रेजी की पुस्तक में सम्मिलित किया जा सके। इन पृष्ठों की जांच करते समय कमेटी के सदस्यों ने यह देखा कि श्री रेगे से जो प्रति प्राप्त हुई है, उसमें तीन से सात तक और नौ से सत्रह तक के पृष्ठ नहीं हैं। इस लेख के कुल टंकित पृष्ठों की संख्या बानबे थी, जिसमें लापता पृष्ठ भी सम्मिलित थे। श्री रेगे की प्रति पर 'दि ट्रम्फ आफ ब्राह्मोनिज्म' (ब्राह्मणवाद की विजय) शीर्षक दिया गया था, जब कि कमेटी को प्राप्त कागजों में पांडुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर शीर्षक 'रेजिसाइड और दि बर्थ आफ काउंटर-रिवोल्यूशन' (राजहत्या अथवा प्रतिक्रांति का जन्म) दिया गया था। इस विषय का वर्गीकरण नौ अध्यायों में किया गया है और कमेटी को प्राप्त प्रति में इसका उल्लेख है, जब कि श्री रेगे की प्रति में यह लापता है। डा. अम्बेडकर की हस्तलिखित प्रति में शीर्षक और वर्गीकरण, दोनों का ही उल्लेख है। इसलिए उन्हें अंग्रेजी के प्रकाशन में यथावत रख लिया गया है। संयोगवश कमेटी को नौ से सत्रह तक के पृष्ठ किसी अन्य फाइल में बंधे प्राप्त हुए। इन सभी कागजों को अंग्रेजी प्रकाशन में यथोचित स्थान पर लगा दिया गया है। इस प्रकार पृष्ठ संख्या चार से सात के अतिरिक्त, यह पांडुलिपि पूर्ण है। कमेटी को प्राप्त प्रति में इस विषय के वर्गीकृत जिन नौ अध्यायों का उल्लेख है, वे हैं- 1. दि ब्राह्मोनिक रिवोल्ट अगेन्स्ट बुद्धिज्म (बौद्ध धर्म के विरुद्ध ब्राह्मणवादी विद्रोह), 2. मनु दि एपोस्टिल आफ ब्राह्मोनिज्म (ब्राह्मणवाद के देवदूत मनु), 3. ब्राह्मोनिज्म एंड दि ब्राह्मिन्स राइट टू रूल एंड

रेजिसाइड (ब्राह्मणवाद तथा ब्राह्मण का शासन करने का अधिकार और राजहत्या), 4. ब्राह्मेनिज्म एंड दि प्रिवीलेजज आफ ब्राह्मिन्स (ब्राह्मणवाद और ब्राह्मणों के विशेष अधिकार), 5. ब्राह्मेनिज्म एंड दि क्रीएशन आफ कास्ट्स (ब्राह्मणवाद और जाति संरचना), 6. ब्राह्मेनिज्म एंड दि डिग्रेडेशन आफ नान-ब्राह्मिन्स (ब्राह्मणवाद और गैर-ब्राह्मण लोगों का अधःपतन), 7. ब्राह्मेनिज्म एंड दि सप्रेशन आफ दि शूद्र (ब्राह्मणवाद और शूद्रों का दमन), 8. ब्राह्मेनिज्म एंड दि सबजेक्शन आफ वीमेन (ब्राह्मणवाद और महिलाओं की पराधीनता), और 9. ब्राह्मेनिज्म एंड दि लीगेलाइजेशन आफ दि सोशल सिस्टम (ब्राह्मणवाद और सामाजिक व्यवस्था का वैधीकरण) -संपादक

I

भारत के विषय में बोलते हुए प्रो. ब्लूमफील्ड अपनी भाषण माला 'वैदिक धर्म' के प्रारंभ में अपने श्रोताओं को स्मरण कराते हैं कि 'भारत कई अर्थों में अनेक धर्मों की भूमि है। इसने अपने स्वयं के संसाधन, अनेक अलग-अलग व्यवस्थाओं और पंथों को जन्म दिया है।

'एक अन्य अर्थ में भारत अनेक धर्मों की भूमि है। अन्य किसी भी स्थान पर जीवन का तानाबाना धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं से इतना अधिक अनुप्राणित नहीं मिलता।'[1]...

इस अभिमत में बहुत सच्चाई है। उन्होंने इस सच्चाई का कहीं अधिक गहन तथा सटीक बखान किया होता, यदि उन्होंने यह कहा होता कि भारत परस्पर विरोधी धर्मों की भूमि है। वास्तव में कोई भी ऐसा देश नहीं है जहां धर्म ने उसके इतिहास में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हो, जैसी कि उसने भारत के इतिहास में निभाई है। भारत का इतिहास और कुछ नहीं, सिर्फ बौद्ध धर्म और ब्राह्मणवाद के बीच जातीय संघर्ष का इतिहास है। इस सत्य की इतनी अवहेलना की गई है कि कोई भी ऐसा नहीं मिलेगा जो इसे तुरंत स्वीकार कर ले। वास्तव में ऐसे कम व्यक्ति मिलेंगे जो इस प्रकार के अभिमत का खंडन कर सकें।

मैं यहां संक्षेप में भारतीय इतिहास के मुख्य-मुख्य तथ्यों को प्रस्तुत कर रहा हूं। यह इसलिए भी कि जिन लोगों ने भारत के इतिहास को कुछ भी समझा है, उनको यह जान लेना चाहिए कि यह इतिहास और कुछ नहीं है, बल्कि ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के बीच महत्ता के लिए संघर्ष का इतिहास है।

कहा जाता है कि भारत का इतिहास आर्यों के आगमन से प्रारंभ हुआ, जिन्होंने भारत

---

1. *दि रिलीजन आफ दि वेद*, पृ. 1

पर आक्रमण किया, इसे अपना घर बनाया और अपनी संस्कृति स्थापित की। आर्य लोगों के गुण, उनकी संस्कृति, उनका धर्म तथा उनकी सामाजिक पद्धति कुछ भी क्यों न हो, परंतु हम उनके राजनीतिक इतिहास के बारे में बहुत कम जानते हैं। अनार्यों की तुलना में आर्यों की श्रेष्ठता के जो भी दावे पेश किए जाते हैं, उस सबके बावजूद यह तो निश्चित है कि आर्यों ने अपनी राजनीतिक उपलब्धियों के बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा है, जो इतिहास का अंग बन सके। नागा नाम की अनार्य जाति के उत्थान से भारत के राजनैतिक इतिहास का प्रारंभ होता है, जो कि शक्तिशाली लोग थे, जिन्हें आर्य पराजित नहीं कर सके तथा जिनके साथ आर्यों ने शांति-समझौता किया और जिन्हें आर्यों को अपने समान ही मान्यता देने के लिए बाध्य होना पड़ा। भारत ने प्राचीन-काल में राजनीतिक क्षेत्र में जो भी ख्याति और गौरव अर्जित किया, उसका श्रेय पूर्णतः अनार्य नागाओं को जाता है। यही वे लोग हैं, जिन्होंने भारत को विश्व के इतिहास में महान और शानदार स्थान दिलाया।

भारत के राजनीतिक इतिहास में सर्वप्रथम युगांतरकारी घटना थी, बिहार में 642 ईसा पूर्व मगध साम्राज्य का उदय। कहा जाता है कि मगध साम्राज्य के संस्थापक का नाम शिशुनाग[1] था और यह नागा नामक अनार्य जाति का था।

शिशुनाग द्वारा स्थापित यह छोटा-सा मगध राज्य उसके वंश में उत्पन्न समर्थ शासकों के अधीन विशाल होता गया और बिम्बसार के अधीन तो यह एक साम्राज्य ही बन गया जो इस वंश में उत्पन्न पांचवा शासक था। यह राज्य मगध साम्राज्य कहा जाने लगा। शिशुनाग वंश ने 413 ईसा पूर्व तक शासन किया। उस समय शिशुनाग वंश के सम्राट महानंद का शासन था। इस सम्राट महानंद की नंद नाम के एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति ने हत्या कर दी और वह सम्राट बन बैठा। उसने नंद राजवंश की स्थापना की। इस नंद वंश ने मगध साम्राज्य पर 322 ईसा पूर्व तक शासन किया। इसके अंतिम सम्राट को चन्द्रगुप्त ने पदच्युत किया और उसने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त शिशुनाग वंश के अंतिम सम्राट के परिवार से संबंधित था[2]। इसलिए कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त ने जो क्रांति की, वह वस्तुतः मगध के नाग साम्राज्य की पुनर्स्थापना थी।

मौर्यों को जो मगध साम्राज्य मिला, उसकी सीमाएं उन्होंने अपने पराक्रम से काफी दूर-दूर तक फैलाईं। अशोक के अधीन इस साम्राज्य की सीमा यहां तक बढ़ी कि इसे एक दूसरा ही नाम दिया जाने लगा। इसे मौर्य साम्राज्य या अशोक साम्राज्य कहा जाने लगा। (इसके आगे अंग्रेजी की मूल पांडुलिपि में पृ. चार से सात तक का अंश नहीं मिलता)।

उस समय जितने विभिन्न धर्म प्रचलित थे, यह उन जैसा नहीं रहा। अशोक ने इसे राजकीय धर्म घोषित किया। निश्चय ही यह ब्राह्मणवाद के लिए बहुत बड़ा आघात था।

---

1. इसे शिशुनाक भी कहा जाता है।
2. श्री हरिकृष्ण देव, स्मिथ द्वारा उल्लिखित, *अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया* (1924), पृ. 44 फुटनोट।

इससे ब्राह्मणों को राज्य का संरक्षण मिलना बंद हो गया। अशोक साम्राज्य में उन्हें गौण या अधीनस्थों का दर्जा दिया जाने लगा और उनकी उपेक्षा की जाने लगी। निश्चय ही कहा जा सकता है कि यह दमन इस छोटे से कारण से हुआ कि अशोक ने सभी प्रकार के पशुओं की बलि पर रोक लगा दी थी, जो ब्राह्मणवाद का मूल आधार थी। ब्राह्मणों को न केवल राज्य का संरक्षण मिलना बंद हुआ, बल्कि उनका व्यवसाय भी छिन गया। यह व्यवसाय था यज्ञ-कर्म कराना और उसके बदले शुल्क लेना, जो कभी-कभी बहुत अधिक होता था और यही उनकी जीविका का मुख्य स्त्रोत था। इस प्रकार लगभग 140 वर्षों तक मौर्य साम्राज्य रहा, ब्राह्मण दलित और दलित वर्गों की तरह रहे।[1]

बेचारे ब्राह्मणों के पास बौद्ध साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के अलावा कोई दूसरा चारा नहीं था। यही विशेष कारण था, जिससे पुष्यमित्र ने मौर्य साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया। पुष्यमित्र सुङ् गोत्र का था। सुङ् लोग सामवेदी ब्राह्मण होते थे[2], जो पशुबलि और सोमबलि में विश्वास करते थे। इसलिए समूचे मौर्य साम्राज्य में पशुबलि निषिद्ध होने और अशोक द्वारा जगह-जगह शिलालेखों आदि पर उसकी घोषणा लिखवा देने से सुङों को अनेक कष्टों का भोगना स्वाभाविक था। यदि पुष्यमित्र ने, जो एक सामवेदी ब्राह्मण था, बौद्ध साम्राज्य को जो ब्राह्मणों के सभी कष्टों का कारण था, नष्ट कर ब्राह्मणों का उद्धार करने और उन्हें अपने धर्म के पालन की छूट देने का बीड़ा उठाया, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं हुई।

"पुष्यमित्र ने जो राजहत्याएं कीं, उनका उद्देश्य राज्यधर्म के रूप में बौद्ध धर्म को नष्ट करना और ब्राह्मणों को भारत का सर्वोच्च शासक बनाना था, जिससे राजा की राजनैतिक सत्ता की सहायता से बौद्ध धर्म पर ब्राह्मण धर्म की विजय हो सके। इस तथ्य की पुष्टि दो अन्य तथ्यों से होती है। पहला तथ्य स्वयं पुष्यमित्र के आचरण से संबंधित था। उपलब्ध साक्ष्य से पता चलता है कि राजगद्दी पर बैठने के बाद पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ अथवा अश्व यज्ञ कराया और इस वैदिक अनुष्ठान को केवल परम प्रभुतासंपन्न व्यक्ति ही करा सकता था। जैसा कि विन्सेंट स्मिथ कहते हैं :

> "बौद्ध धर्म की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता है, पशुओं को अवध्य मानकर उनको अभय जीवन प्रदान करना। अशोक की विधि-व्यवस्था की यही सबसे बड़ी विशेषता थी। इस पर बहुत अधिक बल देने के परिणामस्वरूप ऐसे सभी यज्ञ-कर्मों पर रोक लग गई, जिनमें पूजा-विधि के रूप में रक्त का उपयोग होता था और जिस विधि को कट्टर ब्राह्मण अपना प्रधान अनुष्ठान मानते थे, ब्राह्मणों ने इस क्षेत्र में जो प्रतिक्रिया व्यक्त की, उसकी शुरुआत पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेघ यज्ञ करने से हुई। इस प्रकार के यज्ञ-कर्म बाद में पांच शताब्दियों, समुद्रगुप्त और उसके उत्तराधिकारियों के समय तक जोर-शोर से प्रचलित रहे।"

---

1. मनु ने *मनुस्मृति* में ब्राह्मणों के लिए जो विशेषाधिकार मांगे, उनसे मौर्य शासन में ब्राह्मणों की हीन भावना का पता चलता है। उनमें यह हीन भावना अपनी दलित स्थिति के कारण आई होगी।
2. बुद्धिस्टिक स्टडीज (सं.लॉ), अध्या. 34, पृ. 819, में श्री हरप्रसाद शास्त्री का लेख देखें।

एक और प्रमाण यह है कि पुष्यमित्र ने अपने राज्यारोहण के बाद बौद्धों और बौद्ध धर्म के विरुद्ध जोर-शोर से और कटुतापूर्वक उन्हें सताने का आंदोलन छेड़ दिया था।

पुष्यमित्र ने बौद्ध धर्म को किस निर्दयता से कुचला, इसका अनुमान उसकी उस घोषणा से लगाया जा सकता है, जो उसने बौद्ध भिक्षुओं के विरुद्ध जारी की थी। इस घोषणा में पुष्यमित्र ने हर बौद्ध भिक्षु के कटे हुए सिर की कीमत सौ स्वर्ण मुद्राएं निर्धारित की थीं।[1]

पुष्यमित्र के शासन में बौद्धों पर किस प्रकार अत्याचार किया गया, इस बारे में टिप्पणी करते हुए डा. हरप्रसाद शास्त्री कहते हैं[2] :

> "कट्टर और धर्मांध सुङ् के शासन-काल में बौद्धों की स्थिति का अनुमान करना, उसका वर्णन करने की अपेक्षा अधिक सरल होगा। चीनी अधिकारियों से यह पता चलता है कि बहुत से बौद्ध आज भी पुष्यमित्र का नाम उसे भला-बुरा कहे बिना नहीं लेते हैं।"

II

यदि पुष्यमित्र की क्रांति केवल राजनीतिक क्रांति थी, तब बौद्धों पर व्यापक रूप से अत्याचार करना उसके लिए कोई जरूरी नहीं था। यह तो लगभग वैसा ही कार्य था, जैसा गजनी के मौहम्मद ने हिंदू धर्म के साथ किया था। यह एक परिस्थितिजन्य साक्ष्य है, जिससे यह सिद्व होता है कि पुष्यमित्र का उद्देश्य बौद्ध धर्म को समाप्त करना और उसके स्थान पर ब्राह्मणवाद की स्थापना करना था।

एक अन्य साक्ष्य द्वारा यह पता चलता है कि मौर्य लोगों के विरुद्ध पुष्यमित्र ने जिस क्रांति का सूत्रपात किया, उसका उद्देश्य बौद्ध धर्म का विनाश और उसके स्थान पर ब्राह्मणवाद की स्थापना करना था, जो कि विधि-संहिता के रूप में *मनुस्मृति* को अपनाए जाने के बारे में की गई घोषणा से स्पष्ट है।

मनुस्मृति को ईश्वरीय कृति कहा जाता है। यह कहा जाता है कि इसे स्वयंभू (अर्थात ब्रह्मा) ने मनु को सुनाया था और बाद में मनु ने इसे मनुष्यों को बताया। यह दावा स्वयं

---

1. बर्नोफ *ल 'इट्रोडक्शन अल हिस्टरी' आन बुद्धिज्म, इंडियन, (दूसरा संस्करण)*, पृ. 388
2. *बुद्धिस्टिक स्टडीज,* (सं.लॉ), अध्याय 34, पृ. 820, में श्री हरप्रसाद शास्त्री का लेख देखें।

स्मृति में किया गया है। यह आश्चर्यजनक बात है कि किसी ने भी इस दावे के आधारों की जांच करने की चिंता नहीं की। इसका फल यह हुआ कि भारत के इतिहास में *मनुस्मृति* की विशेषता, स्थान और महत्व का मूल्यांकन करने में कोई भी सफल नहीं हो सका है। हालांकि हिंदू समाज एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति से होकर गुजरा था और *मनुस्मृति* इसका अभिलेख है, तो भी यह बात भारत के इतिहासकारों पर भी लागू होती है। लेकिन यह भी सत्य है कि *मनुस्मृति* ने अपने कृतिकार के विषय में जो दावा किया है, वह बिल्कुल झूठा है और इस झूठे दावे के कारण जो आस्थाएं उपजी हैं, वह कोई तर्कसंगत नहीं हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास में मनु की आदरसूचक संज्ञा थी। इस संहिता को गौरव प्रदान करने के उद्देश्य से मनु को इसका रचयिता कह दिया गया। इसमें कोई शक नहीं कि यह लोगों को धोखे में रखने के लिए किया गया। जैसी कि प्राचीन प्रथा थी, इस संहिता को भृगु के वंश नाम से जोड़ दिया गया।[1] भृगु की इस कृति का वास्तविक नाम मनु की धर्म-संहिता है। भृगु का नाम इस संहिता के प्रत्येक अध्याय के अंत में जोड़ दिया गया है। इसमें हमें इस संहिता के लेखक के परिवार के नाम की जानकारी मिलती है। लेखक का व्यक्तिगत नाम इस पुस्तक में नहीं बताया गया है, जब कि कई लोगों को इसका ज्ञान था। लगभग चौथी शताब्दी में *नारदस्मृति* के लेखक को *मनुस्मृति* के लेखक का नाम ज्ञात था। नारद के अनुसार सुमति भार्गव नाम के एक व्यक्ति थे जिन्होंने मनु संहिता की रचना की। सुमति भार्गव कोई काल्पनिक नाम नहीं है। अवश्य ही यह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति रहा होगा। इसका कारण यह है कि *मनुस्मृति* के महान टीकाकार मेधातिथे[2] का यह मत था कि यह मनु निश्चय ही कोई 'व्यक्ति' था। इस प्रकार मनु नाम सुमति भार्गव का छद्म नाम था और वह ही इसके वास्तविक रचयिता थे।

सुमति भार्गव ने इस संहिता की रचना कब की? यह संभव नहीं है कि इसकी रचना की सही तिथि बताई जाए। परंतु वह सही अवधि दी जा सकती है, जिसमें इस ग्रंथ की रचना की गई। कुछ ऐसे विद्वानों के अनुसार, जिनकी विद्वता पर संदेह नहीं किया जा सकता, सुमति भार्गव ने इस संहिता की रचना ईसा पूर्व 170 और ईसा पूर्व 150 के मध्य-काल में की और इसका नाम जान-बूझकर *मनुस्मृति* रखा। अब यदि हम इस तथ्य पर ध्यान दें कि पुष्यमित्र ने ब्राह्मणवाद की क्रांति ईसा पूर्व 185 में प्रारंभ की थी, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि पुष्यमित्र ने *मनुस्मृति* नामक जिस संहिता को लागू किया, वह मौर्यों के बौद्ध राज्य के विरुद्ध ब्राह्मणवाद की क्रांति के सिद्धांतों का मूर्त रूप थी और यह कि *मनुस्मृति* ब्राह्मणवाद की अनेक संस्थाओं की उत्स थी।

---

1. इस बात के लिए जायसवाल की पुस्तक *हिंदू पोलिटी* में मनु और याज्ञवल्क्य विषयक अध्याय देखें
2. *कमेंट्री आन मनु*, 1.1.

जो भी व्यक्ति *मनुस्मृति* की निम्नलिखित विशेषताओं पर ध्यान देगा, उसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि पुष्यमित्र ने जिस क्रांति का आह्वान किया, वह केवल व्यक्तिगत आधार पर शुरू किया गया कोई साहसपूर्ण कार्य नहीं था।

पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि *मनुस्मृति* एक नवीन विधि-संहिता है, जिसे पुष्यमित्र के शासन-काल में पहली बार प्रवर्तित किया गया था। पहले लोग यह समझते थे कि कोई मानव-धर्म-सूत्र नामक एक संहिता थी और जिसे *मनुस्मृति* के नाम से जाना जाता है, वह उसी पुरानी मानव-धर्म-सूत्र संहिता के आधार पर बनी है। बाद में इस मत पर लोगों का विश्वास नहीं रहा क्योंकि इस प्रकार की किसी कृति का कोई चिह्न उपलब्ध नहीं हुआ। वर्तमान *मनुस्मृति* से पूर्व दो अन्य ग्रंथ विद्यमान थे। इनमें से एक *मानव अर्थशास्त्र* अथवा *मानव राजशास्त्र* अथवा *मानव राजधर्म शास्त्र* के नाम से एक पुस्तक बताई जाती थी। एक अन्य पुस्तक *मानव गृह सूत्र* के नाम से जानी जाती थी। विद्वानों ने *मनुस्मृति* की तुलना की है। महत्वपूर्ण विषयों पर एक ग्रंथ के उपबंध दूसरे ग्रंथ से केवल असमान ही नहीं हैं अपितु दूसरे ग्रंथ में दिए गए उपबंधों से प्रत्येक दशा में भिन्न हैं। यह इस बात का पर्याप्त प्रमाण हैं कि *मनुस्मृति* में नए शासन की नवीन विधि दी गई है।

मनुस्मृति में बौद्धों और बौद्ध धर्म के विरुद्ध स्पष्ट व्यवस्थाएं दी गई हैं, जिनसे यह पता चलता है कि पुष्यमित्र का नवीन शासन बौद्धों और बौद्ध धर्म का विरोधी था। इस संबंध में *मनुस्मृति* के निम्नलिखित सूत्रों पर ध्यान दीजिए:-

> 9.225. जो मनुष्य विधर्म का पालन करते हैं... राजा को चाहिए कि वह उन्हें अपने साम्राज्य से निष्कासित कर दें।
>
> 9.226. राजा के साम्राज्य में रहने वाले छद्मवेश में ये डाकू अपने कुकृत्यों से संभ्रात जगत को अनवरत हानि पहुंचाते हैं।
>
> 5.89. जल का तर्पण उन लोगों (आत्माओं) को अर्पित नहीं किया जाएगा जो (निर्धारित अनुष्ठानों की उपेक्षा करते हैं और जिनके लिए यह कहा जाता है कि) उनका जन्म व्यर्थ ही हुआ है; ऐसे लोगों को भी जल-तर्पण नहीं किया जाएगा जो जातियों के अवैध समागम से उत्पन्न हुए हैं; उन लोगों का भी जल-तर्पण नहीं किया जाएगा जो संन्यासी (विधर्मी वर्गों के लोग) हैं और उन लोगों को जल-तर्पण नही किया जाएगा, जिन्होंने आत्महत्या की है।
>
> 5.90. उन महिलाओं (की आत्माओं को जल-तर्पण नहीं किया जाएगा) जो

विधर्मी पंथ में सम्मिलित हो गई हैं।

4.30. वह (गृहस्थ) वचन से भी विधर्मी तार्किक (जो वेद के विरुद्ध तर्क करे) को सम्मान न दे।

12.95. वे सभी परंपराएं और वे सभी दर्शन की हेय पद्धतियां, जो वेद पर आधारित नहीं हैं, मृत्यु के बाद कोई फल नहीं देतीं क्योंकि उनके बारे में यह घोषित है कि वे अंधकार पर आधारित हैं।

12.96. वे सभी (सिद्धांत) जो (वेद) से विमुख हैं, उत्पन्न होते और (शीघ्र ही) मिट जाते हैं, वे व्यर्थ हैं और झूठे हैं क्योंकि वे अर्वाक् (अर्थात इस समय के रचे हुए) हैं।

वे कौन से विधर्मी हैं जिनके बारे में मनु ने संकेत किया है और वे नए राजा से किसे चाहते हैं कि वह उन्हें अपने साम्राज्य से निष्कासित कर दे और वह कौन-सा गृहस्वामी है, जिसके लिए उसके जीवन–काल में और मृत्यु के बाद आदर देने की बात नहीं उठती? आधुनिक युग का यह व्यर्थ का दर्शन क्या है जो वेदों से भिन्न है और अज्ञान पर आधारित है तथा जिसका निश्चय ही विनाश हो जाएगा? इसमें कोई संदेह नहीं कि मनु के शब्दों में विधर्मी बौद्ध धर्मावलंबी है, और वेदों से भिन्न आधुनिक युग का दर्शन जिसे निस्सार कहा गया है, बौद्ध धर्म है। *मनुस्मृति* के एक अन्य टीकाकार कुल्लुक भट्ट स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनु के इन श्लोकों में विधर्मियों से तात्पर्य बौद्ध धर्मावलंबियों और बौद्ध धर्म से है।

तीसरा साक्ष्य वह स्थान है जो *मनुस्मृति* के लिए निर्धारित किया गया है। *मनुस्मृति* के निम्नलिखित श्लोकों पर ध्यान दीजिए :

1.93. ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने के कारण, ज्येष्ठ होने से, वेद के धारण करने से धर्मानुसार ब्राह्मण ही संपूर्ण सृष्टि का स्वामी होता है।

1.96. समस्त सृजन में प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ हैं, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।

1.100. पृथ्वी पर जो कुछ भी है, वह सब ब्राह्मणों का है, अर्थात ब्राह्मण अच्छे कुल में जन्म लेने के कारण इन सभी वस्तुओं का स्वामी है।

1.101. ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है, अपना ही दान करता है तथा दूसरे व्यक्ति ब्राह्मण की कृपा से इन सबका भोग करते हैं।

10.3. जाति की विशिष्टता से, उत्पत्ति-स्थान की श्रेष्ठता से, अध्ययन एवं व्याख्यान आदि द्वारा नियम के धारण करने से और यज्ञोपवीत-संस्कार आदि की श्रेष्ठता से ब्राह्मण ही सब वर्णों का स्वामी है।

11.35. ब्राह्मण के बारे में यह घोषित है कि वह विश्व का सृजक, दंडदाता, अध्यापक है और इसलिए सभी सृजित मानवों का उपकारक है, कोई भी व्यक्ति जो अहितकारी नहीं कह सकता और न उसके विरुद्ध कठोर शब्दों का प्रयोग कर सकता है।

मनु आगे दिए गए शब्दों के द्वारा ब्राह्मणों को असंतुष्ट करने के विरोध में राजा को यह चेतावनी देता है :

9.313. (राजा) को घोरतम विपत्ति में भी ब्राह्मणों को क्रुद्ध होने के लिए उत्तेजित नहीं करना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण क्रोधित होने पर उस राजा को, उसकी सेना, हाथियों, घोड़ों, वाहनों को नष्ट कर सकते हैं।

मनु ने इससे आगे भी घोषणा की है:

11.31. नियमों को अच्छी तरह जानने वाले ब्राह्मण को किसी दुखदायी आघात की स्थिति में राजा से शिकायत करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह अपनी शक्ति द्वारा ही उस व्यक्ति को दंड दे सकता है जो उसे आघात पहुंचाता है।

11.32. उसकी निजी शक्ति जो केवल उसी पर निर्भर करती है, राजकीय शक्ति से प्रबल होती है जो दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर है। अतः ब्राह्मण अपनी शक्ति से ही अपने शत्रुओं का दमन कर सकता है।

ब्राह्मणों को देवता स्वरूप समझना और उन्हें राजा से ऊंचा स्थान देना तब तक संभव नहीं होगा जब तक राजा स्वयं ब्राह्मण न हो और मनु द्वारा व्यक्त विचारों से सहानुभूति न रखता हो। पुष्यमित्र और उसके उत्तराधिकारियों ने ब्राह्मणों के इन अतिशयोक्तिपूर्ण दावों को सहन नहीं किया होगा, जब तक कि वे स्वयं ब्राह्मण न रहे होंगे और ब्राह्मणवाद की स्थापना में रुचि न रखते होंगे। वास्तव में यह अधिक संभव है कि *मनुस्मृति* पुष्यमित्र के ही आदेश पर रची गई थी। यह ग्रंथ ब्राह्मणवाद का दर्शन-ग्रंथ है।

इन सभी तथ्यों पर ध्यान देने के बाद अब कोई संदेह नहीं रहता कि पुष्यमित्र की क्रांति का एकमात्र उद्देश्य बौद्ध धर्म का विनाश करना तथा ब्राह्मणवाद की पुनः स्थापना करना था।

भारत का इतिहास जिस रीति से लिखा गया है, उससे मैं अगर संतुष्ट होता, तब इस अध्याय के लिए भारत के इतिहास के बारे में मेरी उपर्युक्त टिप्पणी की कोई आवश्यकता नहीं थी । सच तो यह है कि मैं बिल्कुल भी संतुष्ट नहीं हूं। इसकी वजह यह है कि मुसलमानों के हमलों और इन हमलों में उनकी जीत पर बहुत ज्यादा जोर दिया गया है। पन्ने पर पन्ने यह दिखाने के लिए लिखे गए हैं कि किस तरह एक के

बाद एक मुसलमानों के हमले इस तरह होते गए, जैसे पहाड़ की चोटी से बरफ और चट्टानें बार-बार गिर रही हों, और इन हमलों ने कैसे गांव के गांव उजाड़ दिए और शासकों को अपदस्थ करते गए। भारत के इतिहास से यह बताने की कोशिश की गई कि इसमें एक ही महत्वपूर्ण बात मुसलमानों के आक्रमणों की सूची है। लेकिन अगर इसी संकीर्ण दृष्टि से देखा जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि मुसलमानों के आक्रमण ही पठनीय नहीं हैं। यहां ऐसे ही अनेक आक्रमण हुए हैं, जो भले ही कोई अधिक महत्वपूर्ण न रहे हों । अगर हिंदू भारत पर मुसलमान आक्रमणकारियों ने आक्रमण किए तो बौद्ध भारत पर ब्राह्मण आक्रमणकारियों ने आक्रमण किए थे। हिंदू भारत पर मुसलमानों के आक्रमण और बौद्ध भारत पर ब्राह्मणों के आक्रमण, दोनों में बहुत-सी समानताएं हैं। हिंदू भारत के मुसलमान आक्रमणकारियों ने अपने-अपने वंश की समृद्धि के लिए परस्पर लड़ाइयां लड़ीं। अरबों, तुर्कों, मंगोलों और अफगानों ने आपस में एक-दूसरे पर विजय पाने के लिए लड़ाइयां लड़ीं। लेकिन इनमें एक बात समान थी। उनका उद्देश्य मूर्तिपूजा को नष्ट करना था। इसी प्रकार बौद्ध भारत पर ब्राह्मण आक्रमणकारियों ने परस्पर अपने ही वंश की श्रीवृद्धि के लिए लड़ाइयां लड़ीं। शुंगों, कण्वों, और आंध्रों ने परस्पर एक-दूसरे पर अपनी धाक जमाने के लिए लडाइयां लड़ी। लेकिन हिंदू भारत पर मुसलमान आक्रमणकारियों की तरह उनका एक समान उद्देश्य था—बौद्ध धर्म और मौर्यों द्वारा स्थापित बौद्ध साम्राज्य का विनाश। अगर हिंदू भारत पर मुसलमानों के आक्रमण इतिहासकारों के लिए विवेचन का विषय बन सकते हैं, तो बौद्ध भारत पर ब्राह्मणों के आक्रमण भी विवेचन का विषय होना चाहिए। बौद्ध भारत में बौद्ध धर्म के दमन के लिए ब्राह्मणों ने जो उपाय और साधन अपनाए थे, उन उपायों और साधनों की तुलना में कम हिंसापूर्ण और कठोर नहीं थे, जो मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिंदू धर्म का दमन करने के लिए अपनाए थे। सामान्य जनता के सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन पर स्थाई प्रभाव की दृष्टि से यदि हम विचार करें तो कहा जा सकता है कि बौद्ध भारत पर ब्राह्मण आक्रमण का इतना अधिक गंभीर प्रभाव पड़ा कि उसकी तुलना में हिंदू भारत पर मुसलमानों के आक्रमण का प्रभाव वस्तुतः सतही और क्षणिक रहा। मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिंदू धर्म के बाहरी प्रतीकों, जैसे मंदिरों और मठों आदि को तो नष्ट किया था, लेकिन उन्होंने हिंदू धर्म को न तो निर्मूल किया और न उन्होंने उन सिद्धांतों या मतों से जनता को विमुख करने की ही कोशिश की , जो सामान्य जन के आध्यात्मिक जीवन को संचालित करते थे। ब्राह्मण आक्रमणों के प्रभाव ने उन सिद्धांतों में आमूल परिवर्तन कर दिया, जिनकी शिक्षा बौद्ध धर्म में एक शताब्दी से अध्यात्मिक जीवन के सच्चे और शाश्वत सिद्धांतों के रूप में दी थी और जो जन-सामान्य द्वारा जीवन-शैली के रूप में स्वीकार कर लिए गए और जिनका अनुपालन भी होता था। अगर हम इस रूपक को थोड़ा उलट कर कहें, तो कह सकते हैं कि उन्होंने किसी जलाशय में नहाते वक्त उसके जल को खूब हिलाया-डुलाया व मथा, और यह भी कुछ देर तक किया।

उसके बाद वह थक गए और बाहर निकल आए, जिससे जलाशय फिर शांत हो गया। अगर हम हिंदू धर्म के सिद्धांतों को प्रतीक के लिए बालक मान लें तो कहा जा सकता है कि उन्होंने कभी भी जलाशय से बालक को बाहर निकाल कर नहीं फेंका। लेकिन बौद्ध धर्म के विरुद्ध संघर्ष में ब्राह्मणवाद ने तो सब कुछ ही बदल दिया। उन्होंने जलाशय से बौद्ध धर्म रूपी बालक और सारे जल को बाहर निकाल फेंका और उसकी जगह अपना जल भर दिया और वहां अपना बालक ले आए। ब्राह्मणवाद यह देखने के लिए नहीं रुका कि स्वच्छ और सुगंधियुक्त जल की तुलना में जो बौद्ध धर्म के पावन स्रोत से निःसृत हो रहा था, उसका जल कितना मटमैला और गंदा है। ब्राह्मणवाद इस बात पर विचार करने के लिए नहीं रुका कि बौद्ध शिशु की तुलना में उसका अपना शिशु कितना विकृत और कुरूप है। ब्राह्मणवाद ने अपने आक्रमणों के द्वारा बौद्ध धर्म को समूल नष्ट करने के लिए राजनैतिक शक्ति प्राप्त की और उसने बौद्ध धर्म को समूल नष्ट भी किया। इस्लाम ने हिंदू धर्म को नष्ट कर उसके स्थान पर अपने को स्थापित नहीं किया। इस्लाम ने अपने उद्देश्य को कभी भी व्यापक नहीं होने दिया। ब्राह्मणवाद ने यह कार्य किया। इसने बौद्ध धर्म को धर्म के रूप में निकाल बाहर किया और स्वयं उसका स्थान ले लिया।

इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि हिंदू भारत पर मुसलमान आक्रमणों के कारण जितना भी प्रभाव उत्पन्न हो सकता था, उसकी तुलना में बौद्ध भारत पर ब्राह्मण आक्रमणों का प्रभाव भारत के इतिहासकारों के लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। लेकिन इतिहासकारों ने उन दुर्भाग्यपूर्ण परिवर्तनों पर बहुत कम ध्यान दिया है, जो मौर्यों द्वारा निर्मित बौद्ध भारत को झेलने पड़े और यदि कहीं कुछ वर्णन हुआ भी तो वहां ऐसे प्रश्नों का सटीक विवेचन करने पर ध्यान नहीं दिया गया जो सहज ही उत्पन्न होते हैं, जैसे शुंग, कण्व और आंध्र कौन थे, उन्होंने बौद्ध भारत को नष्ट क्यों किया जिसका निर्माण मौर्यों ने किया था। इस तरह उन परिवर्तनों का विवेचन करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया, जो ब्राह्मणवाद ने बौद्ध धर्म पर विजय पाने के बाद राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था में किए थे।

भारत के इतिहास के इस पहलू को न समझने का कारण कुछ बहुत ही गलत धारणाएं हैं जो काफी प्रचलित हैं। यह आमतौर पर मान लिया गया है कि भारत की एक ही संस्कृति रही है और सारे इतिहास में यही मिलती है, ब्राह्मणवाद, बौद्ध धर्म और जैन धर्म इसके विभिन्न पहलू हैं और इनमें परस्पर कोई मूल विरोध नहीं रहा है। दूसरी धारणा यह कि भारतीय राजनीति में जो भी झगड़े व लड़ाइयां देखने के लिए मिलती हैं, उनका आधार केवल राजनीति और वंशगत बैर आदि रहा है, और इनका कोई भी सामाजिक और आध्यात्मिक महत्व नही रहा। इन्हीं गलत धारणाओं के कारण भारत का इतिहास जड़वत हो गया और एक वंश का अभिलेख मात्र बनकर रह गया। इस प्रवृत्ति या इस प्रकार इतिहास लिखने के तरीकों में तभी सुधार आ सकता है, जब इन दो तथ्यों को स्वीकार

कर लें जिनके बारें में कोई विवाद नहीं हैं।

सबसे पहली बात तो यह स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक समान भारतीय संस्कृति जैसी कोई चीज कभी नहीं रही और यह कि भारत तीन प्रकार का रहा– ब्राह्मण भारत, बौद्ध भारत और हिंदू भारत। इनकी अपनी-अपनी संस्कृतियां रहीं। दूसरी बात यह स्वीकार की जानी चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमण के पहले भारत का इतिहास ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के बीच परस्पर संघर्ष का इतिहास रहा है। जो कोई इन दो तथ्यों को स्वीकार नहीं करता, वह भारत का सच्चा इतिहास कभी नहीं लिख सकता, ऐसा इतिहास जो उस युग के अर्थ और उद्देश्य को स्पष्ट कर सके। भारत का इतिहास जिस प्रकार लिखा गया, उसे सुधारने और बीते युग का अर्थ और उद्देश्य स्पष्ट करने की भावना से प्रेरित होकर मैं बौद्ध भारत पर ब्राह्मण भारत के आक्रमण और बौद्ध धर्म पर ब्राह्मणवाद की राजनैतिक विजय का इतिहास फिर से लिख रहा हूं।

इसलिए हम इस तथ्य को स्वीकार कर अपनी बात शुरू करेंगे कि पुष्यमित्र की क्रांति राजनैतिक क्रांति थी, जिसकी योजना ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म को निकाल बाहर करने के लिए तैयार की थी।

जिज्ञासु सहज ही यह पूछेगा कि ब्राह्मणवाद ने विजयी होने के बाद क्या किया? मैं अब इसी प्रश्न को लेता हूं। विजय के दर्प से फूले इस ब्राह्मणवाद के कृत्यों अथवा दुष्कृत्यों की सूची सात शीर्षकों में बनाई जा सकती है–(1) इसने ब्राह्मणों को शासन करने और राजहत्या करने का अधिकार प्रदान किया, (2) इसने ब्राह्मणों को विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों का वर्ग बनाया, (3) इसने वर्ण को जाति में बदल दिया, (4) इसने विभिन्न जातियों के बीच संघर्ष और समाज-विरोधी भावना पैदा की, (5) इसने शूद्रों और स्त्रियों को हेय माना, और (6) इसने वर्ण-असमानता की प्रणाली को थोप दिया, और (7) इस सामाजिक व्यवस्था को कानूनी और कट्टर बना दिया जो पहले पारंपरिक और परिवर्तनशील थी।

हम पहले शीर्षक से शुरू करते हैं।

पुष्यमित्र ने जिस क्रांति का सूत्रपात किया, उसने शुरू में ब्राह्मणों के लिए कठिनाई पैदा कर दी। लोग आसानी से इस क्रांति के साथ समझौता नहीं कर सके। जनता के विरोध को बाण[1] कवि ने बहुत अच्छी तरह व्यक्त किया है। वह इस क्रांति का उल्लेख करते हुए पुष्यमित्र की, उसे अधम जाति में पैदा हुआ बताकर, आलोचना करता है और उसके द्वारा की गई राजहत्या को अनार्य, अर्थात् आर्य नियम के विरुद्ध बताता है। पुष्यमित्र

1. *हर्ष चरित*, स्मिथ (1924) द्वारा उद्धृत, पृ. 208

की क्रान्ति के आरम्भ होने तक तीन बातों पर आर्य नियम पूर्ण रूप से स्पष्ट थे। तत्कालीन आर्य नियमों में इस बात का स्पष्ट विधान था कि (1) राजा होने का अधिकार केवल क्षत्रिय का है, कोई ब्राह्मण राजा नहीं हो सकता, (2) कोई भी ब्राह्मण आयुधों का व्यवसाय नहीं करेगा[1], और (3) राजा के विरुद्ध विद्रोह पाप है। पुष्यमित्र ने विद्रोह को संरक्षण देकर इन व्यवस्थाओं में प्रत्येक के विरुद्ध पाप किया है। वह ब्राह्मण था। उसने ब्राह्मण होते हुए राजा के विरुद्ध विद्रोह किया। उसने आयुधों का व्यवसाय अपनाया और वह राजा बन बैठा। सामान्य-जन उसके इस कार्य से असंतुष्ट था जो नियम-विरुद्ध था। ब्राह्मणों को पुष्यमित्र द्वारा उत्पन्न इस परिस्थिति को विनियमित करना पड़ा। ब्राह्मणों ने यह कार्य सारी व्यवस्था में परिवर्तन कर पूरा किया। व्यवस्था में यह परिवर्तन *मनुस्मृति* में बहुत ही स्पष्ट दिखाई देता है। मैं *मनुस्मृति* में से संबंधित श्लोकों को यहां उद्धृत कर रहा हूं:

> 12.100. राज्य में सेनापति का पद, शासन के अध्यक्ष का पद, प्रत्येक के ऊपर शासन करने का अधिकार ब्राह्मण के योग्य है।

यहां हम नियम में एक परिवर्तन देखते हैं। नया नियम यह घोषित करता है कि ब्राह्मण को सेनापति बनने, किसी राज्य को जीतने, उस राज्य का शासक और उसका राजा बनने का अधिकार है।

> 11.31. नियमों को अच्छी तरह जानने वाले ब्राह्मण को किसी दुखदायी आघात की स्थिति में राजा से शिकायत करने की आवश्कता नहीं क्योंकि वह अपनी शक्ति द्वारा ही उस व्यक्ति को दण्ड दे सकता है जो उसे आघात पहुंचाता है।
>
> 11.32. उसकी निजी शक्ति जो केवल उसी पर निर्भर करती है, राजकीय शक्ति से प्रबल होती है जो कि दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर है। अतः ब्राह्मण अपनी शक्ति के द्वारा ही अपने शत्रुओं का दमन कर सकता है।
>
> 11.261-62. कोई भी ब्राह्मण जिसने चाहे तीनों लोकों के मनुष्यों की हत्याएं क्यों न की हों, उपनिषदों के साथ-साथ *ऋक, यजु या सामवेद* का तीन बार पाठ कर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

यहां नियम में दूसरा परिवर्तन किया गया है। यह ब्राह्मण को न केवल राजा की

---

1. यह नियम इतना कठोर था कि आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार, 'कोई भी ब्राह्मण अपने हाथों में आयुध नहीं ग्रहण करेगा, चाहे वह उसकी जांच क्यों न करना चाहता हो।' अतः पुष्यमित्र ने, जो कि ब्राह्मण था, ऐसा कार्य किस प्रकार किया, यह आश्चर्य की बात है क्योंकि इन परिस्थितियों में यह कार्य वही कर सकता था जो वीर जाति का हो। इसे हरप्रसाद शास्त्री ने बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, शुंग यद्यपि ब्राह्मण था, तथापि वह वीर जाति का था। युद्धशील ब्राह्मणों में दो ब्राह्मण शेष ब्राह्मणों से पृथक थे, विश्वामित्र और भारद्वाज। विश्वामित्र का पत्नी बांझ होने से, एक भारद्वाज से प्राचीन प्रथा 'नियोग' के अनुसार विश्वामित्र के लिए पुत्र पैदा करने के लिए कहा गया। इससे शुंग पैदा हुआ। वह एक गोत्र का जनक बना। इस गोत्र ने सामवेद का अध्ययन करना शुरू किया। शुंग का गोत्र द्वैमुश्य गोत्र कहा गया, अर्थात् दो गोत्रों, विश्वामित्र और भारद्वाज, दोनों ने युद्ध को अपना व्यवसाय चुना। —देखें, *बुद्धिस्टिक स्टडीज* (सं.लॉ.), अध्याय 34, पृ. 820.

हत्या, बल्कि जन-सामान्य में नर-संहार करने का भी अधिकार देता है, बशर्ते वह उसकी शक्ति और पद को क्षति पहुंचाते हों।

8.348. यदि किसी द्विज के कर्तव्य को बलपूर्वक बाधित किया जाता है या उन पर विपत्ति आती है या उनके दुर्दिन आते हैं तो वे शस्त्र उठा सकते हैं।

9.320. यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण के विरुद्ध सभी अवसरों पर हिंसक ढंग से शस्त्र उठाता है, तो उसे स्वयं वह ब्राह्मण ही दंड देगा क्योंकि क्षत्रिय मूलतः ब्राह्मण से ही पैदा हुआ है।

यह तीसरा वैधानिक परिवर्तन है। यह विद्रोह करने और राजहत्या करने के अधिकार को मान्यता देता है। यह नया नियम बड़ी ही कुशलतापूर्वक बनाया गया है। यह विद्रोह करने का अधिकार तीन उच्च वर्गों को देता है। लेकिन यह अधिकार ब्राह्मणों को दिया गया और इसके लिए ऐसी परिस्थिति की व्यवस्था की गई, जिसके रहते विद्रोह में क्षत्रिय और वैश्य, ब्राह्मण का सहभागी न बन सकें। विद्रोह करने के अधिकार को भली प्रकार परिसीमित किया गया। इस अधिकार का प्रयोग केवल ऐसी दशा में होगा, जब राजा विभिन्न वर्णों के लिए मनु द्वारा निर्दिष्ट व्यवसायों में उलट-फेर करने का दोषी हो।

यह नियम-परिवर्तन जितने आवश्यक थे, उतने ही क्रांतिकारी। इनका उद्देश्य उस स्थिति को अधिनियमित और नियमित करना था जो पुष्यमित्र ने अंतिम मौर्य राजा की हत्या कर उत्पन्न की थी। इन विधिक परिवर्तनों के होने से कोई भी ब्राह्मण राजा बन सकता था, आयुध ग्रहण कर सकता था, किसी भी राजा को राजगद्दी से उतार या उसकी हत्या कर सकता था, जो चातुर्वर्ण्य का विरोधी हो और किसी भी व्यक्ति की हत्या कर सकता था, जो ब्राह्मण की सत्ता का विरोध करता हो। मनु ने ब्राह्मणों को नर-संहार का अधिकार दे दिया, बशर्ते यह उनके हितों की रक्षा करने के लिए आवश्यक हो जाए।

इस प्रकार ब्राह्मणवाद ने शासन करने के ब्राह्मण के अधिकार को सुस्थापित कर दिया और इस संबंध में जो भी शंकाएं और विवाद थे, उन सबको दूर कर दिया। लेकिन यह समूचे ब्राह्मण वर्ग के लिए कोई लाभ की बात न थी। यदि ब्राह्मण-शासन में किसी ब्राह्मण के साथ गैर-ब्राह्मणों की तरह सामान्य-जन जैसा व्यवहार किया जाए और उसको उन जैसे अधिकार और कर्तव्य प्राप्त हों, तब कोई खास अंतर नहीं कहा जा सकता था। यदि ब्राह्मण-शासन को अपने अस्तित्व के बारे में कोई औचित्य सिद्ध करना था, तब उसे ब्राह्मणों के समस्त वर्ग को विशेषाधिकार और विशेष रियायत देनी चाहिए थीं। यदि पुष्यमित्र की क्रांति में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्वीकार न की गई होती और उन्हें विशेष सुविधाएं न प्रदान की गई होतीं, तब निश्चय ही वह असफल हो जाती। मनु इससे पूरी तरह परिचित था और इसीलिए उसने, जैसा कि *मनुस्मृति* से स्पष्ट है, ब्राह्मणों के लिए कुछ एकाधिकार निश्चित किए और कुछ विशेष रियायतें और विशेषाधिकार स्वीकृत

किए। पहले एकाधिकारों को लीजिए:

1.88. ब्राह्मणों के लिए उसने (वेद) पढ़ना और पढ़ाना अपने तथा दूसरों के लाभ के लिए यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना कर्म निर्धारित किए हैं।

10.1. तीन प्रकार की द्विज जातियां (वर्ण) अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने के साथ-साथ (वेद का) अध्ययन करें, लेकिन इनमें से (केवल) ब्राह्मण वेद पढ़ावें, दूसरे दो वर्ण नहीं पढ़ावें, यह एक सुस्थापित सत्य है।

10.2. लोगों की आजीविका के जो भी साधन धर्म द्वारा निश्चित किए गए हैं, उन्हें ब्राह्मण को जानना चाहिए, तदनुरूप वह दूसरों को निर्देश दे और स्वयं भी धर्म के अनुसार जीवनयापन करें।

10.3. जाति की विशिष्टता से, उत्पत्ति स्थान की श्रेष्ठता से, अध्ययन एवं व्याख्यान आदि द्वारा नियम के धारण करने से और यज्ञोपवीत, संस्कार आदि की श्रेष्ठता से ब्राह्मण ही सब (वर्णों) का स्वामी है।

10.74. ऐसे ब्राह्मण जो उत्कृष्ट देवत्व प्राप्त करने के इच्छुक हैं और अपने कर्तव्य के प्रति दृढ़ हैं, वे निम्नांकित छह कार्यों को क्रमानुसार पूर्णरूपेण निष्पादित करें।

10.75. वेदों का अध्ययन करना, दूसरों को वेदों का अध्ययन कराना, अपने लिए एवं दूसरों को यज्ञ में सहायता करना, दान देना और दान लेना, ये छह कार्य ब्राह्मण के लिए निर्दिष्ट हैं।

10.76. परंतु उसके लिए (ब्राह्मण के लिए) इन धर्म निर्दिष्ट छह कार्यों में से तीन कार्य उसकी आजीविका के साधन हैं, अर्थात अन्य के लिए यज्ञ-कर्म, अध्यापन और सदाचारी व्यक्तियों से दान लेना।

10.77. ब्राह्मणों और क्षत्रियों में से क्षत्रियों के लिए वे तीन कर्म वर्जित हैं जो ब्राह्मणों के लिए निर्दिष्ट हैं, अर्थात अध्यापन, अन्य के लिए यज्ञ-कर्म और तीसरा, दान स्वीकार करना।

10.78. वे कार्य इसी प्रकार वैश्य के लिए वर्जित हैं, यह निश्चित सत्य है, क्योंकि मनु ने, जो प्रजापति हैं, इन दोनों जातियों के व्यक्तियों के लिए इन्हें निर्दिष्ट नहीं किया है।

10.79. आजीविका के रूप में आयुध से आक्रमण करने और उसे फेंक कर मारने का कार्य क्षत्रियों के लिए निर्दिष्ट है, व्यापार करना, पशुपालन और कृषि–कार्य वैश्यों के लिए निर्दिष्ट हैं। लेकिन उदारता, वेदों का अध्ययन और यज्ञ-कर्म करना उनके कर्तव्य हैं।

यहां तीन कार्य ऐसे हैं, जिन पर मनु ने ब्राह्मणों का एकाधिकार निश्चित किया है: ये कार्य हैं, वेदों का अध्ययन, यज्ञ-कर्म और दान लेना।

ब्राह्मणों को जो छूट दी गई, वह निम्नलिखित है। इसकी कोटियां हैं – कर से मुक्ति और अपराध करने पर अपराधी को दिए जाने वाले दंड के कुछ रूप।

7.133. चाहे कोई राजा (अपूर्ण इच्छा ग्रस्त होकर) मर भी क्यों न रहा हो, तब भी उसे श्रोत्रियों पर कोई कर नहीं लगाना चाहिए और उसके राज्य में रह रहे किसी भी श्रोत्रिय की भूख से मृत्यु नहीं होनी चाहिए।

8.122. वे घोषित करते हैं कि विज्ञों ने ये आर्थिक दंड मिथ्या साक्ष्य देने वालों के लिए निर्धारित किए हैं, जिससे न्याय-व्यवस्था असफल न हो और जिससे अन्याय को रोका जा सके।

8.123. लेकिन न्यायप्रिय राजा तीन निचली जातियों (वर्णों) के व्यक्तियों को आर्थिक दंड देगा और उन्हें निष्कासित कर देगा, जिन्होंने मिथ्या साक्ष्य दिया है, लेकिन ब्राह्मण को वह केवल निष्कासित करेगा।

8.124. स्वयंभू के पुत्र मनु ने ऐसे दस स्थान वताए हैं जहां निचली तीन जातियों के वर्णों के मामले में दंड दिया जा सकता है। लेकिन ब्राह्मण (उस देश से) अक्षत निर्वासित हो जाएगा।

8.379. ब्राह्मण के लिए मृत्यु-दंड के स्थान पर उसका सिर मुंडा देना निश्चित किया गया है, लेकिन अन्य जातियों (के लोगों) को मृत्यु-दंड भुगतना होगा।

8.380. वह किसी भी ब्राह्मण की कभी भी हत्या न करे, चाहे उस ब्राह्मण ने कितने भी अपराध किए हों, उसे ऐसे अपराधी को देश से अपनी संपत्ति सहित और सकुशल चले जाने देना चाहिए।

इस प्रकार मनु ब्राह्मण को गंभीरतम अपराधों के लिए निर्धारित सामान्य दंड-विधान से ऊपर रखता है। मृत्यु-दंड के लिए उसके अपराधों के सिद्ध होने पर भी उसे सकुशल और अपनी संपत्ति सहित देश से निकल जाने की स्वीकृति देता है। उसे आर्थिक दंड या मृत्यु-दंड से बरी रखता है। उसे केवल देश निष्कासन का दंड भोगने देता है। जघन्यतम अपराध करने पर इस स्थिति को होब्स ने केवल 'वातावरण में परिवर्तन' की संज्ञा दी है।

मनु ने ब्राह्मण को कुछ विशेषाधिकार दिए हैं। न्यायाधीश ब्राह्मण होना चाहिए :

8.9. परंतु यदि राजा अभियोगों की जांच स्वयं नहीं करता, तब उसे इन अभियोगों पर विचार करने के लिए विद्वान ब्राह्मण की नियुक्ति करनी चाहिए।

8.10. ऐसा व्यक्ति उस श्रेष्ठतम न्यायालय में तीन निर्धारकों के साथ आएगा और राजा के सम्मुख समस्त कारणों पर, बैठकर या खड़े होकर, पूर्ण विवेचन करेगा।

अन्य विशेषाधिकार आर्थिक थे :

8.37. जब किसी विद्वान ब्राह्मण को कोई निधि मिल गई हो और उसने उसे उसी भांति जमा कर दिया हो, तब वह उस संपूर्ण निधि को ले सकता है, क्योंकि वह प्रत्येक वस्तु का स्वामी है।

8.38. जब राजा को भूमि में गड़ी कोई पुरानी निधि मिल जाए, तब उसे उसका आधा भाग ब्राह्मणों को दे देना चाहिए। और शेष आधा भाग अपने राजकोष में जमा कर देना चाहिए।

9.323. परंतु (जो राजा यह अनुभव करता है कि उसका अंत निकट आ रहा है) उसे अपना समस्त धन, जो दंड आदि से एकत्र हुआ हो, ब्राह्मणों को दान कर देना चाहिए, अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप देना चाहिए और युद्ध क्षेत्र में वीर गति प्राप्त करनी चाहिए।

9.187. मृतक की संपदा सपिंड को मिलेगी जो तीन पीढ़ियों में आता हो और दिवंगत के सबसे निकट हो, इसके बाद उसका एक भाग (उत्तराधिकारी को, उसके बाद) आध्यात्मिक गुरु या शिष्य को मिलेगा।

9.188. परंतु किसी भी उत्तराधिकारी के न होने पर, ऐसे ब्राह्मण उसे आपस में बांट लेंगे जो तीनों वेदों में पारंगत हों, पवित्र और संयमी हों, इस प्रकार विधि का उल्लंघन नहीं होता है।

9.189. ब्राह्मण की संपत्ति राजा द्वारा कभी भी नहीं ली जानी चाहिए, यह एक निश्चित नियम है, लेकिन अन्य जाति के व्यक्तियों की संपत्ति उनके उत्तराधिकारियों के न रहने पर राजा ले सकता है।

ये वे सुविधाएं, रियायतें और विशेषाधिकार हैं, जो मनु ने ब्राह्मणों को दिए। ये इस बात के प्रतीक हैं कि ब्राह्मण किस प्रकार राजा बन जाता है।

ब्राह्मणवाद के समर्थक—ब्राह्मणवाद की श्रेष्ठता में उनका इतना दृढ़ विश्वास है कि अभी तक कोई व्यक्ति उसका समर्थन तर्क द्वारा करने के लिए तैयार नहीं है—उन प्रतिबंधों का उल्लेख करने से नहीं अघाते जो मनु ने ब्राह्मणों पर आरोपित किए हैं। ऐसा करने में उनका उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि मनु ने ब्राह्मणों के लिए निर्धनता और सेवा-भावना का आदर्श निश्चित किया था। यह सत्य है कि मनु ने ब्राह्मणों के लिए कुछ सीमाएं निश्चित की हैं। लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा और तथ्यों

को सोद्देश्य तोड़ना-मरोड़ना होगा, जिसके लिए *मनुस्मृति* में कोई आधार भी नहीं है कि ब्राह्मणों के लिए मनु का आदर्श उसकी निर्धनता और सेवा-भावना है।

यह समझने के लिए कि मनु ने ये सीमाएं ब्राह्मणों के लिए क्यों निश्चित कीं, हमें दो बाते ध्यान में रखनी चाहिएं। पहली बात वह स्थान है, जो मनु ने समाज की सामान्य योजना में ब्राह्मणों के लिए निश्चित किया है, और दूसरी बात इन सीमाओं की प्रकृति है। मनु ने जो स्थान निश्चित किया है, उसकी विवेचना उसने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में की है। चूंकि यह विषय महत्वपूर्ण है, इसलिए मैं उन श्लोकों को पुनः उद्धत कर रहा हूं, जिन्हें मैं पहले उद्धत कर चुका हूं :

> 1.93. ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने के कारण, ज्येष्ठ होने से, वेद के धारण करने से धर्मानुसार ब्राह्मण ही संपूर्ण सृष्टि का स्वामी होता है।

इस सीमा की प्रकृति पर विचार कीजिए।

> 4.2. ब्राह्मण विपत्ति के समय को छोड़कर शेष समय में अपनी आजीविका इस प्रकार ग्रहण करें कि जिसके कारण अन्य लोगों को कोई पीड़ा न हो या अत्यल्प पीड़ा हो।
>
> 4.3. मात्र आजीविका प्राप्त करने के लिए, वह अपने शरीर को अनुचित रूप से कष्ट न देकर ऐसे अनिंदनीय व्यवसायों का अनुसरण कर धन का संग्रह करें, जो उसकी जाति के लिए निर्धारित हैं।
>
> 8.337. चोरी करने पर शूद्र को आठ गुना, वैश्य को सोलह गुना और क्षत्रिय को बत्तीस गुना पाप होता है।
>
> 8.338. ब्राह्मण को चौंसठ गुना या एक सौ गुना या एक सौ अठाईस गुना तक, इनमें से प्रत्येक को अपराध की प्रकृति की जानकारी होती है।
>
> 8.383. उन दोनों जातियों की रक्षित स्त्रियों के साथ संभोग करने पर ब्राह्मण एक सहस्त्र पण दंड के रूप में देने के लिए बाध्य किया जाएगा, रक्षित शूद्र स्त्री के साथ संभोग करने पर क्षत्रिय या वैश्य को एक सहस्त्र पण का दंड दिया जाएगा।
>
> 8.384. अरक्षित क्षत्रिय स्त्री के साथ संभोग करने पर वैश्य को पांच सौ पण का दंड दिया जाएगा, लेकिन इसी प्रकार का अपराध करने पर क्षत्रिय का सिर गधे के पेशाब से मुंडवाया जाएगा या उतना ही (पांच सौ पण) का दंड दिया जाएगा।
>
> 8.385. जो ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य जाति की अरक्षित स्त्रियों या शूद्र जाति की स्त्री के साथ संभोग करता है, उसे पांच सौ पण का, लेकिन सबसे नीची जाति

अर्थात अन्त्यज की स्त्री के साथ संभोग करने पर एक हजार पण का दंड दिया जाएगा।

मनु द्वारा ब्राह्मण को जो स्थान दिया गया है, उसके परिप्रेक्ष्य में इन सीमाओं का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सीमाओं का उद्देश्य यह नहीं था कि ब्राह्मण हानिकर स्थिति में रहे, बल्कि इससे तो यह स्पष्ट होता है कि मनु का उद्देश्य ब्राह्मण को उस उच्च पद से भ्रष्ट होने से बचाना था, जहां उसने उसे प्रतिष्ठित किया और उसका उद्देश्य उसे गैर-ब्राह्मणों से निंदित होने से बचाना था।

मनुस्मृति में दी गई अन्य व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट होता है कि मनु का उद्देश्य ब्राह्मणों को दीनता और अभाव की स्थिति में रखना नहीं था। इस संबंध में *मनुस्मृति* में दिए गए आचरण संबंधी उन नियमों पर ध्यान देना होगा, जिनका ब्राह्मण को उस समय पालन करना चाहिए, जब वह विपत्ति में हो।

> 10.80. जितने भी व्यवसाय हैं, उनमें ब्राह्मणों के लिए वेद का अध्यापन, क्षत्रिय के लिए लोगों की रक्षा करना और वैश्य के लिए व्यापार सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय हैं।
>
> 10.81. लेकिन यदि ब्राह्मण अपने उस व्यवसाय से, जिसका अभी उल्लेख किया गया है, जीवन-निर्वाह नहीं कर सके, तब क्षत्रिय के लिए निर्दिष्ट व्यवसाय को अपना कर जीवन-निर्वाह करे, क्योंकि वह पद के अनुसार उसके बाद आता है।
>
> 10.82. यदि यह पूछा जाए, 'अगर वह इन दोनों व्यवसायों में से किसी भी एक व्यवसाय से अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सके, तब क्या किया जाए?' उत्तर है, वह वैश्य की जीवन-पद्धति अपना ले, स्वयं खेती करे और पशुपालन करे।
>
> 10.83. परंतु जो ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य की जीवन-पद्धति के अनुसार जीवन यापन करता है, उसे सावधानी से कृषि कार्य से विरत रहना चाहिए, जिसमें अनेक जीवों की हिंसा होती है और जो दूसरों पर निर्भर करता है।
>
> 10.84. कुछ लोग कृषि को उत्तम कर्म कहते हैं, किंतु परोपकारी व्यक्ति जीविका के इस साधन को हेय कहते हैं, क्योंकि लोहे के मुख लगा लकड़ी का उपकरण भूमि और उसमें रहने वाले जीवों को क्षति पहुंचाता है।
>
> 10.85. लेकिन जो व्यक्ति जीविका के उत्तम साधनों के अभाव में उचित व्यवसायों को नहीं अपना सकता है, वह उन वस्तुओं की बिक्री कर धन अर्जित कर सकता है, जो व्यापारी बेचते हैं। लेकिन इनमें निम्नलिखित वस्तुओं को शामिल न करे।

यहां ध्यान देने की बात यह है कि जो सीमाएं ब्राह्मण पर आरोपित की गईं, वह तभी तक रहती हैं जब तक वह अपने उन व्यवसायों से फलता-फूलता रहता है, जो किसी अधिकार के कारण उसके अपने हैं। ज्यों ही वह अपने लिए आरक्षित व्यवसाय के साथ-साथ

जो भी उसे पसंद हो, वैसा हर प्रकार का कर्म करने के लिए स्वतंत्र है और वह ब्राह्मण भी बना रहता है। इसके अलावा यह निर्णय करना भी ब्राह्मण के अपने विवेक पर छोड़ दिया गया है कि वह विपत्तिग्रस्त है अथवा नहीं। इस प्रकार संपत्तिवान ब्राह्मण तक पर कोई रोक नहीं है कि वह अपने विवेक के आधार पर किसी भी परिस्थिति को विपत्ति कह किसी भी व्यवसाय को चुनकर, जो उसके लिए खुला है, अपनी आय में वृद्धि न कर सके।

मनुस्मृति में और भी व्यवस्थाएं हैं, जिनका उद्देश्य ब्राह्मणों को भौतिक दृष्टि से समृद्ध बनाना है। ये हैं, दक्षिणा और दान। दक्षिणा वह शुल्क है, जो कोई ब्राह्मण तब लेने का अधिकारी होता है, जब उसे धार्मिक अनुष्ठान करने के लिए बुलाया जाता है। ब्राह्मण धर्म में अनेक धार्मिक रीति और अनुष्ठान वर्णित हैं। हम इस बात का सहज अनुमान लगा सकते हैं कि यह प्रत्येक ब्राह्मण के लिए आय का कितना बड़ा स्रोत रहा होगा। शायद ही कोई ऐसा अवसर आता हो जब पुजारी को उसका शुल्क न दिया जाता हो। दक्षिणा के बारे में धार्मिक भावना उसके अनिवार्य रूप से दिए जाने का पर्याप्त कारण थी। लेकिन मनु ब्राह्मण को उसे अपना शुल्क लेने का अधिकार देना चाहता था।

> 11.38. जो ब्राह्मण संपत्तिशाली होने पर भी प्रजापति को अग्न्याधेय का अनुष्ठान करने पर शुल्क के रूप में पवित्र अश्व नहीं देता है, वह ऐसे व्यक्ति के समान है जिसने अग्निहोत्र नहीं किया है।
>
> 11.39. जो व्यक्ति श्रद्धालु है, जिसे अपनी इंद्रियों पर संयम है, उसे अन्य पुण्य कार्य करने चाहिए, लेकिन उसे किसी भी दशा में ऐसे यज्ञ नहीं करने चाहिए, जिसमें वह (शास्त्र-सम्मत शुल्क से) कम दक्षिणा दे।
>
> 11.40. जिस यज्ञ में बहुत थोड़ी दक्षिणा दी गई हो, ऐसा यज्ञ इंद्रिय, प्रतिष्ठा, स्वर्ग-सुख, दीर्घ आयु, यश, संतान और पशुधन को नष्ट कर देता है, अतः थोड़ा धन वाले व्यक्ति को (श्रौत) यज्ञ नहीं करना चाहिए।

वह यह घोषित कर ब्राह्मण को इस सीमा तक क्षमा कर देता है कि अगर अपनी दक्षिणा प्राप्त करने के लिए वह कुछ भी अपराध करता है तो वह धर्म के अनुसार दंड का भागी नहीं होता।

> 8.349 जो व्यक्ति आत्मरक्षा के लिए पूजा करने वाले पुजारी को उसकी दक्षिणा दिलाने, स्त्रियों और ब्राह्मणों की रक्षा करने जैसी परिस्थितियों में धर्म के निमित्त किसी की हत्या करता है, तो वह कोई पाप नहीं करता।

लेकिन दान का विधान ऐसा विधान है, जो ब्राह्मणों के लिए आय का प्रचुर स्रोत है। मनु राजा को ब्राह्मणों को दान देने के लिए प्रेरित करता है।

7.79. राजा अनेक यज्ञ (श्रौत कर्म) करें, जिनमें दक्षिणाएं दी जाएं और यश प्राप्त करने के लिए वह ब्राह्मणों को भोग के पदार्थ और धन दे।

7.82. वह उन ब्राह्मणों की पूजा करे, जो गुरु के गृह से (वेद का अध्ययन करने के बाद) वापस आए हैं, क्योंकि जो धन ब्राह्मणों को दिया जाता है, वह राजाओं के लिए अक्षय कोष कहा गया है।

7.83. उसे न तो चोर और न शत्रु ही लेते हैं और वह नष्ट नहीं हो सकता, इसलिए राजाओं द्वारा कोई अक्षय कोष ब्राह्मणों के पास अवश्य रखा जाना चाहिए।

11.4. लेकिन राजा जैसा कि उचित है, यज्ञ विधानार्थ सभी प्रकार के रत्न और उपहार वेदज्ञाता ब्राह्मणों को दे।

मनु की राजा को यह चेतावनी ब्राह्मणों के लिए केवल आशा के रूप में नहीं रही। इतिहास साक्षी है कि ब्राह्मणों ने इस उपदेश का पूरा-पूरा लाभ उठाया। इसके प्रमाण स्वरूप अनेक दान-पत्र हैं, जिन्हें पुरातत्वज्ञों ने खोज निकाला है और जो इसकी सूचना देते हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि ब्राह्मणों ने राजाओं को इतना मूर्ख बनाया कि उन्होंने गांव के गांव धूर्त, आलसी और अकर्मण्य ब्राह्मणों को हस्तांतरित कर दिए। निस्संदेह आज के ब्राह्मणों के पास जो संपत्ति है, वह इसी ठग विद्या के कारण है जिसका प्रयोग धूर्त ब्राह्मण धार्मिक प्रवृत्ति के किंतु मूर्ख राजाओं पर करते रहे। मनु इसी बात से संतुष्ट नहीं था कि दान के लिए ब्राह्मण राजा का शोषण करे। उसने दान के मामले में ब्राह्मण को जनता का भी शोषण करने की अनुमति दी। यह उसने तीन प्रकार से किया। सबसे पहले तो वह लोगों को उस कर्तव्य के एक भाग के रूप में दान देने के लिए प्रेरित करता है, जिसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपना कर्त्तव्य समझता है। इसके साथ-साथ वह यह भी बताता हैं कि ब्राह्मण को दिया गया दान सर्वश्रेष्ठ होता है।

85. जो ब्राह्मण नहीं है, उसको दिया गया दान सामान्य (फल) जो अपने को ब्राह्मण कहता है, उसको दिया गया दान दुगुना फल, जो ब्राह्मण विद्वान है उसको दिया गया दान दस लाख गुना फल, जो ब्राह्मण वेद और अंगों को जानता है उसको दिया गया दान अपरिमित फल देने वाला होता है।

7.86. चूंकि दान प्राप्त करने वाले के विशिष्ट गुणों के अनुसार और दान देने वाले की श्रद्धा के अनुसार दान के बदले कुछ थोड़ा या अधिक फल अगले जन्म में प्राप्त होगा।

इसके आगे मनु यह कहता है कि कुछ परिस्थितियों में ब्राह्मण को दान देना अनिवार्य है।

11.1. उसे जो संतान के लिए विवाह करने का इच्छुक है, उसे जो यज्ञ करना

चाहता है, यात्री को, उसे जिसने अपनी सारी संपत्ति दे दी है, उसे जो अपने गुरु, अपने पिता, अपनी माता के लिए भिक्षा मांगता है, वेद के विद्यार्थी को और रोगी को।

11.2. इन नौ ब्राह्मणों को स्नातक समझना चाहिए जो धर्म के अनुसार पवित्र कर्म करने के लिए भिक्षा लेते हैं, ऐसी इन निर्धन व्यक्तियों को उनकी विद्या के अनुसार दान देना चाहिए।

11.3. द्विजों में इन सर्वश्रेष्ठ द्विज को अन्न और धन का दान देना चाहिए, यह घोषित किया जाता है कि अन्य लोगों को यज्ञ वेदी के बाहर अन्न दिया जाना चाहिए।

11.6. वेद में निष्णात और अकेले रहने वाले ब्राह्मणों को अपनी क्षमता के अनुसार धन देना चाहिए। इस प्रकार वह व्यक्ति मृत्यु के बाद स्वर्ग का आनंद भोगता है।

मनु ने दान देने का नियम बनाया। यह निस्संदेह आय का सुरक्षित और स्थाई स्रोत बन गया, जो बहुत ही स्पष्ट है। मनु ने दान को प्रायश्चित से जोड़ दिया। मनु की व्यवस्था में कोई भी अनुचित कार्य पाप हो सकता है, भले ही वह कोई अपराध न हो, या यह पाप और अपराध, दोनों हो सकता है। पाप के रूप में उसका दंड धर्मनिरपेक्ष कानून का विषय है। पाप के रूप में, वह अनुचित कार्य पातक कहा जाता है और इसके लिए जो दंड है, उसे प्रायश्चित कहते हैं। मनु की व्यवस्था में प्रत्येक पातक कर्म से प्रायश्चित का कर्म कर, मुक्त हुआ जा सकता है।

11.44. जो कोई व्यक्ति निर्धारित कार्य नहीं करता या निंदनीय कार्य करता है या ऐन्द्रिक सुखोपभोग में लीन रहता है, उसे प्रायश्चित करना चाहिए।

11.45. (सभी) ऋषि अज्ञान से किए गए कार्य के लिए प्रायश्चित का विधान करते हैं, कुछ उपलब्ध पाठ के साक्ष्य के आधार पर यह कहते हैं कि यह सोद्देश्य किए गए अपराधों के लिए भी किया जाए।

11.46. जो पाप अज्ञान से किया जाता है, वह वेद की ऋचाओं का पाठ करने से दूर हो जाता है। लेकिन जो पाप (लोग) अपनी मूर्खतावश सोद्देश्य करते हैं, वह विभिन्न प्रकार के (विशेष) प्रायश्चित कर्म कर दूर किया जा सकता है।

11.52. इस प्रकार पूर्व जन्म के बचे हुए दुष्कृत्यों के कारण मूर्ख, गूंगे, अंधे, बहरे और विकृत अंगों वाले मनुष्य पैदा होते हैं, जो गुणीजनों के द्वारा हेय समझे जाते हैं।

11.53. इसलिए शुद्धि के लिए प्रायश्चित अवश्य करना चाहिए, क्योंकि जिनके पाप दूर नहीं होते हैं, वे अशोभनीय चिह्न लिए (पुनः) जन्म लेते हैं।

मनु ने अनेक प्रकार के प्रायश्चित निर्धारित किए हैं। जिज्ञासु लोग यह जानने के लिए कि ये प्रायश्चित क्या हैं, *मनुस्मृति* देख सकते हैं। इन प्रायश्चितों के बारे में जो बात ध्यान देने की है, वह यह है कि इन प्रायश्चितों का कुछ इस प्रकार विधान किया गया है, जिससे ब्राह्मण को भौतिक लाभ हो। कुछेक प्रायश्चित का रूप ब्राह्मण को दान देना मात्र है। अन्य में कुछ धार्मिक कृत्य किए जाने का विधान है। लेकिन चूंकि धार्मिक कृत्य ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य के द्वारा नहीं किए जा सकते और धार्मिक कृत्य के लिए शुल्क देना होता है, अतः दान की प्रथा से केवल ब्राह्मण को ही लाभ होता है।

अतः यह कहना निरर्थक बात होगी कि मनु ब्राह्मणों के सम्मुख विनम्रता, दीनता, सेवा का आदर्श प्रस्तुत करना चाहता था। ब्राह्मणों ने मनु को इस रूप में ग्रहण नहीं किया। निश्चय ही उनका यह विश्वास था कि उन्हें एक विशेष दर्जा दिया जा रहा है। उन्हें इसमें विश्वास ही नहीं था, बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी उन्होंने अपने विशेषाधिकार समझे, जिनके बारे में बाद में चर्चा की जाएगी। उनका जो दृष्टिकोण था, उसमें वह पूरी तरह सही थे। मनु ने ब्राह्मणों को 'प्रभु' कहा है और (नियम) इतनी सावधानीपूर्वक बनाए कि वे सदा इसी रूप में बने रहे।

ब्राह्मण-शासन और ब्राह्मण-प्रभुता के लिए पूरी व्यवस्था करने के बाद मनु ने समाज को बदलने का विधान किया, जिससे उसका उद्देश्य पूरा हो सके।

ब्राह्मणवाद अपनी विजय के बाद मुख्य रूप से जिस कार्य में जुट गया, वह था वर्ण को जाति में बदलने का कार्य, जो बड़ा ही विशाल और स्वार्थपूर्ण था। हमारे पास उन उपायों के बारे में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है, जो ब्राह्मणवाद ने इस प्रकार के परिवर्तन को लाने के लिए किए। इसके बजाय 'वर्ण' और 'जाति' के बीच के संबंध के बारे में कुछ भ्रांत विचारधाराएं हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि वर्ण और जाति एक ही बात है। जो लोग इन्हें अलग-अलग समझते हैं, उनका यह विश्वास है कि जब सामाजिक व्यवस्था में अंतर्विवाह निषिद्ध समझा जाने लगा, तब वर्ण जाति बन गया। वस्तुतः यह सब गलत है और यहां गलती इस तथ्य में है कि वर्ण को जाति में बदलते समय मनु ने अपने उद्देश्य की कहीं भी व्याख्या नहीं की और न यही स्पष्ट किया कि उसके साधन उन उद्देश्यों के साथ किस प्रकार संबद्ध हैं। ऑस्कर वाइल्ड का कहना है कि इसे समझने के लिए खोज करनी आवश्यक है। मनु किसी की पकड़ में नहीं आना चाहता था। इसलिए वह अपने लक्ष्यों और साधनों के विषय में मौन है। वह यह काम लोगों के लिए छोड़ देता है कि वह इनके बारे में अनुमान करें। हिंदुओं के लिए यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसे स्पष्ट करना अत्यंत आवश्यक है, जिससे मनु की योजना के बारे में विभिन्न व्यक्तियों

के अनुमानों के कारण उत्पन्न भ्रांतियों को दूर किया जा सके और यह स्पष्ट किया जा सके कि ब्राह्मणवाद ने समाज के आधार के रूप में वर्ण की मूल संकल्पना को किस प्रकार गलत और घातक स्वरूप दे दिया।

जैसाकि मैंने कहा है, मनु ने जो उपाय अपनाए, उन्हें उसने व्यक्त नहीं होने दिया, उन्हें प्रच्छन्न रखा। इसलिए हम जाति के रूप में वर्ण के इस परिवर्तन का ब्यौरेवार और तिथिक्रम से विवरण नहीं दे सकते। लेकिन सौभाग्य से कुछ ऐसे संकेत उपलब्ध हैं, जिनसे इस बात की पर्याप्त रूप से स्पष्ट जानकारी मिलती है कि यह परिवर्तन किस प्रकार किया गया।

यह बताने के पहले कि यह परिवर्तन किस प्रकार किया गया, मैं उस भ्रांति को स्पष्ट करना चाहता हूं, जो लोगों के दिमाग में वर्ण और जाति को लेकर फैली हुई है। इसे दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि हम इन दोनों के बीच समान तत्वों और विषमताओं पर गौर करें। वर्ण और जाति कानूनी अर्थ में एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। दोनों का अभिप्राय पद और व्यवसाय से है। पद और व्यवसाय, दो ऐसी अवधारणाएं हैं जो वर्ण और जाति, दोनों की धारणाओं में सन्निहित हैं। लेकिन वर्ण और जाति, दोनों का एक विशेष महत्व है जिसके कारण दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। वर्ण तो पद या व्यवसाय किसी भी दृष्टि से वंशानुगत नहीं है। दूसरी ओर, जाति में एक ऐसी व्यवस्था निहित है जिसमें पद और व्यवसाय, दोनों ही वंशानुगत हैं और इसे पुत्र अपने पिता से ग्रहण करता है।

जब मैं यह कहता हूं कि ब्राह्मणवाद ने वर्ण को जाति में बदल दिया, तब मेरा आशय यह है कि इसने पद और व्यवसाय को वंशानुगत बना दिया।

यह परिवर्तन किस प्रकार किया गया? जैसा मैंने कहा, कि इस परिवर्तन को करने के लिए ब्राह्मणवाद ने जो उपाय किए, उनके कोई पदचिह्न उपलब्ध नहीं है, लेकिन ऐसे संकेत हैं जो हमें इसका स्पष्ट चित्र देते हैं कि यह योजना किस प्रकार कार्यान्वित की गई।

यह परिवर्तन विभिन्न चरणों में संपन्न किया गया। जाति के रूप में वर्ण के रूपांतरण में तीन चरण तो बिल्कुल स्पष्ट हैं। पहला चरण तो वह था जब व्यक्ति का वर्ण, अर्थात पद और व्यवसाय केवल निर्धारित अवधि के लिए होता था। दूसरा चरण वह था जब किसी व्यक्ति के वर्ण में निहित पद और व्यवसाय केवल उसके जीवन-काल तक सुनिश्चित रहा। तीसरा चरण वह था जब वर्ण का पद और व्यवसाय वंशानुगत हो गया। कानून की शब्दावली में कहा जाए तो यह कि वर्ण द्वारा प्रदत्त संपदा शुरू में केवल किसी एक अवधि के लिए थी। इसके बाद यह जीवन-भर के लिए ही बनी और अंत में यही सपदा वंशानुगत बन गई। इस प्रकार वर्ण जाति में परिवर्तित हो गए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बात की पुष्टि के लिए परंपरा के आधर पर पर्याप्त प्रमाण है, जिसका उल्लेख धार्मिक साहित्य[1] में हुआ है कि वर्ण जिन अवस्थाओं में से होकर जाति बने, वह यही तीन अवस्थाए हैं। इस परंपरा को कुछ इस प्रकार समझने का कोई कारण नही है कि

यह वास्तविक स्थिति की प्रतीक न हो। इस परंपरा के अनुसार किसी भी व्यक्ति के वर्ण का निश्चय करने का काम अधिकारियों के एक दल द्वारा किया जाता था, जिन्हें मनु और सप्तर्षि कहते थे। व्यक्ति के समूह में से मनु उनका चुनाव करता था, जो क्षत्रिय और वैश्व होने के योग्य होते थे और सप्तर्षि उन व्यक्तियों को चुनते थे जो ब्राह्मण होने के योग्य होते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य होने के लिए मनु और सप्तर्षियों द्वारा व्यक्तियों को चुनाव करने के बाद बाकी व्यक्ति जो नहीं चुने जा सकते थे, वे शूद्र कहलाते थे। इस प्रकार जो वर्ण-व्यवस्था निश्चित की जाती थी, वह एक युग, अर्थात चार वर्ष की अवधि तक रहती थी। हर चौथे वर्ष अधिकारियों का नया दल नया चुनाव करने के लिए नियुक्त होता था। जिसकी पद संज्ञा, वही मनु और सप्तर्षि, होती थी। इस प्रक्रिया में यह होता था कि जो लोग पिछली बार केवल शूद्र होने के योग्य बच जाते थे, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने के लिए चुन लिए जाते थे, जब कि पिछली बार जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने के लिए चुने गए होते थे, वे केवल शूद्र होने के योग्य होने के कारण रह जाते थे। इस प्रकार वर्ण के व्यक्ति बदलते रहते थे। यह एक प्रकार से निश्चित अवधि पर होने वाला परिवर्तन था। जैसे ताश के पत्ते हर बाजी के बाद फेंट दिए जाते हैं, और व्यक्तियों को चुनाव उनकी मानसिक और शारीरिक अभिरुचि और व्यवसायों के आधार पर होता था, जो समाज के जीवन के लिए अनिवार्य होते थे। जिस काल में वर्णों में व्यक्तियों की अदला-बदली होती थी, उसे 'मन्वन्तर' कहते थे। इस शब्द का अर्थ वह अवधि भी है, जिसके लिए किसी व्यक्ति को वर्ण निश्चित किया जाता था। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका अर्थ मनु द्वारा किया गया वर्ण-व्यवस्था के आवश्यक तत्वों को अभिव्यक्त करता हैं ये दो तत्व थे। पहला यह कि वर्ण का निश्चय लोगों की एक सवतंत्र सत्ता के द्वारा किया जाता था, जिसे मनु और सप्तर्षि कहते थे। दूसरा यह कि अमूक वर्ण किसी अवधि के था, जिसके बाद मनु द्वारा परिवर्तन किया जाता था[2] पुराणों में वर्णित प्राचीन परंपरा के अनुसार जितनी अवधि के के लिए किसी भी व्यक्ति का वर्ण मनु और सप्तर्षि द्वारा निश्चित किया जाता था, वह चार वर्श की होती थी और उसे युग कहते थे। चार वर्ष की अवधि की समाप्ति पर मन्वन्तर होता था जिसके द्वारा हर चार वर्ष बाद सूची में संशोधन कर दिया जाता था। इस संशोधन के अधीन कुछ का पिछला वर्ण बदल जाता था, कुछ का

---

1. *मैं यहां श्री दफ्तरी और प्रज्ञानेश्वर यति के शोध में प्राप्त विवरण को अपने लेख में अपना आधार बना रहा हूं। श्री दफ्तरी की धर्म रहस्य और श्री यति की चातुर्वर्ण्य नामक पुस्तक में उनके दृष्टिकोण सर्वथा मौलिक हैं, अतः ये बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं। उन्होंने जो रूपरेखा दी है, उसके आधार पर निस्संदेह आगे अनुसंधान किया जाना चाहिए।*

2. *इससे हम अनुमान लगा सकते है कि सुमति भार्गव ने अपनी संहिता का नाम मनुस्मृति क्यों रखा। इससे वह मनु को आदृत और प्राधिकृत करना चाहता था।*

बना रहता था, कुछ अपने वर्ण को गंवा देते थे और कुछ को लाभ हो जाता था।[1]

ऐसा लगता है कि मूल पद्धति का उद्देश्य प्रौढ़ व्यक्तियों के वर्ण का निर्धारण करना था। यह किसी पूर्व प्रशिक्षण या प्रवृत्ति और अभिरुचि के सूक्ष्म परीक्षण पर आधारित नहीं थी। मनु और सप्तर्षि एक प्रकार का चयन मंडल था, जो साक्षात्कार के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण करता था। वर्ण का निर्धारण अनियमित रीति से होता था। ऐसा लगता है कि यह पद्धति व्यवहार में नहीं रही। इसके स्थान पर एक पद्धति शुरू हुई। इसे गुरुकुल-पद्धति कहा जाता था। गुरुकुल एक प्रकार का विद्यालय होता था। इसका भार एक गुरु पर होता था, जिसे आचार्य भी कहते थे। सभी बच्चे इसी गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते थे। शिक्षा की अवधि बारह वर्ष होती थी। जब तक कोई बालक गुरुकुल में रहता था, वह ब्रह्मचारी कहलाता था। जब शिक्षा की अवधि पूरी हो जाती, तब उसके बाद अत्यंत महत्वपूर्ण उपनयन समारोह होता था। यही वह समारोह होता था, जिसमें आचार्य प्रत्येक विद्यार्थी का वर्ण निश्चित करते थे और उसे संसार में अपने वर्ण के कर्तव्य को पूरा करने के लिए वापस भेज देते थे। आचार्य द्वारा उपनयन वर्ण को निश्चित करने का नया तरीका था, जो मनु और सप्तर्षि द्वारा निर्धारण करने की पद्धति के स्थान पर प्रचलित हुआ। यह नई प्रणाली पुरानी प्रणाली की तुलना में निस्संदेह श्रेष्ठ थी। इसमें पुरानी प्रणाली का वास्तविक तत्व निहित था, अर्थात वर्ण का निर्धारण तटस्थ और स्वतंत्र सत्ता द्वारा किया जाना चाहिए। लेकिन इसमें एक नया तत्व आया, अर्थात वर्ण के निर्धारण के लिए पूर्व प्रशिक्षण आवश्यक हो गया। इसका कारण यह है कि प्रशिक्षण ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करता है और किसी भी व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण करने का सबसे निरापद उपाय उसके व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करना है। इस नए तत्व के समावेश से निस्संदेह बहुत सुधार हुआ।

आचार्य वाली गुरुकुल प्रणाली के शुरू होने से वर्ण की अवधि में परिवर्तन हुआ। कोई वर्ण किसी अवधि तक रहने के बजाय, जीवन-पर्यन्त हो गया। लेकिन यह वंशानुगत नहीं था।

स्पष्ट है कि ब्राह्मणवाद उस पद्धति से असंतुष्ट था। इस पद्धति के अधीन इस बात की पूरी संभावना बनी रहती थी कि आचार्य ब्राह्मण के बालक को केवल शूद्र होने के योग्य घोषित कर दे। स्वाभाविक है कि ब्राह्मणवाद इस परिणाम की संभावना को दूर करने के बारे में अधिक चिंतित था। वह वर्ण को वंशानुगत बनाना चाहता था। वह वर्ण को वंशानुगत बनाकर ही ब्राह्मण के बालक को शूद्र घोषित किए जाने से बचा सकता था। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए ब्राह्मणवाद ने जितनी ढिठाई के साथ कोशिश की, उसकी कल्पना शायद असंभव है।

---

1. मनु का यह कथन है कि शूद्रों को वेदों का पाठ नहीं करना चाहिए और न उन्हें सुनना चाहिए। इस कथन के संदर्भ में यह कहना कि वेदों में कुछ शब्द शूद्रों द्वारा विरचित हैं, एक गूढ़ प्रश्न है। इस प्रश्न का समाधान इसी सिद्धांत से हो सकता है।

III

बालक के वर्ण का निर्धारण करने की प्रणाली में ब्राह्मणवाद ने तीन सबसे अधिक बुनियादी परिवर्तन किए। सबसे पहले गुरुकुल-पद्धति को खत्म कर दिया। इस पद्धति में गुरुकुल वह स्थान था, जहां बालक को प्रशिक्षण दिया जाता, और जहां प्रशिक्षण की अवधि के पूरे होने पर गुरु उसके वर्ण का निर्धारण करता था। मनु को गुरुकुलों के बारे में पर्याप्त जानकारी थी और वह गुरुवास[1] अर्थात गुरु के अधीन गुरुकुल में प्रशिक्षण और निवास का उल्लेख करता है। लेकिन वह उपनयन के संबंध में गुरु का अप्रत्यक्ष रुप से भी उल्लेख न कर उपनयन कराने के सक्षम अधिकारी के रूप में गुरु की सत्ता को समाप्त कर देता है। गुरु के स्थान पर मनु बालक के पिता द्वारा अपने घर पर उपनयन करने की अनुमति देता है।[2] प्राचीन काल में उपनयन दीक्षांत-समारोह[3] जैसा होता था, जो गुरु अपने गुरुकुल के विद्यार्थियों को उपाधियां प्रदान करने के लिए आयोजित करता था और उसमें किसी वर्ण विशेष के कर्तव्यों में दक्षता प्राप्त करने के प्रमाण-पत्र दिए जाते थे। मनु के नियमों में उपनयन का अर्थ और इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्था का प्रयोजन बिल्कुल बदल गया। तीसरे, उपनयन के साथ प्रशिक्षण का संबंध पूरी तरह उलट दिया गया। प्राचीन प्रणाली में प्रशिक्षण उपनयन के पहले था। ब्राह्मणवाद में उपनयन का स्थान प्रशिक्षण से पहले हो गया। मनु यह निर्देश देता है कि बालक को प्रशिक्षण के लिए गुरु के पास भेजा जाए। लेकिन उसे उपनयन के बाद, अर्थात तब भेजा जाए, जब उसका वर्ण उसके पिता द्वारा निर्धारित कर लिया जाए।[4]

उपनयन के मामले में ब्राह्मणवाद ने जो मुख्य परिवर्तन किया, वह था उपनयन कराने का अधिकार गुरु से लेकर पिता को देना। इसका परिणाम यह हुआ कि चूंकि पिता को अपने पुत्र का उपनयन करने का अधिकार था, इसलिए वह अपने बालक को अपना वर्ण देने लगा और इस प्रकार उसे वंशानुगत बना दिया। इस प्रकार वर्ण निर्धारित करने का अधिकार गुरु से छीनकर उसे पिता को सौंपकर ब्राह्मणवाद ने वर्ण को जाति में बदल दिया।

---

1. मनुस्मृति, 2.67.
2. वही, 2.36-37.
3. इस संबंध में उपनयन पर प्रज्ञानेश्वर की पुस्तिका देखें।
4. मनुस्मृति, 2.69

वर्ण के जाति में बदल जाने की यही कहानी है। एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने की यह कहानी निश्चय ही पुनर्निमित है। जैसा कि हम पहले बता आए हैं, यह उतनी सटीक और ब्यौरेवार नहीं हो सकती, जितनी कि कोई अपेक्षा करता है। लेकिन मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि जिस क्रम और रीति से वर्ण का अस्तित्व समाप्त हुआ और जाति का जन्म हुआ, वह क्रम और रीति लगभग वैसी ही रही होगी, जिसका वर्णन इस विषय पर ऊपर विवेचन में किया गया है।

इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है कि वर्ण को जाति में बदलने में ब्राह्मणवाद का उद्देश्य क्या रहा होगा। वह उद्देश्य यह था कि प्राचीन-काल से ब्राह्मण जिस उच्च पद और प्रतिष्ठा का उपभोग करते आए हैं, वह विशेषाधिकार प्रत्येक ब्राह्मण और उसकी संतति को गुण या योग्यता की अपेक्षा किए बिना मिलता रहे। दूसरे शब्दों में, उद्देश्य यह था कि प्रत्येक ब्राह्मण को चाहे वह कितना ही भ्रष्ट और अयोग्य क्यों न हो, पद और गौरव देकर उस उच्च स्थान पर बिठाया जाए, जिस पर कुछ लोग अपने गुणों के कारण प्रतिष्ठित हैं। यह बिना अपवाद समस्त ब्राह्मण समुदाय को महिमामंडित करने का प्रयत्न था।

ब्राह्मणवाद का यह उद्देश्य मनु के निर्देशों से स्पष्ट है। मनु जानता था कि वर्ण को वंशानुगत बना देने से सबसे अधिक मूढ़ ब्राह्मण[1] भी उस पद की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेगा, जो सबसे अधिक विद्वान ब्राह्मण को प्राप्त है। उसे आशंका थी कि सबसे अधिक मूढ़ ब्राह्मण को वैसी प्रतिष्ठा प्राप्त न हो, जितनी कि सबसे अधिक विद्वान ब्राह्मण को प्राप्त है। मनु का समस्त ब्राह्मण समुदाय को गौरव दिलाने का यही उद्देश्य था। मनु मूढ़ ब्राह्मण के विषय में बहुत चिंतित था, जो एक नई बात थी। वह मूढ़ और भ्रष्ट ब्राह्मण के प्रति अनादर का भाव रखने पर लोगों को चेतावनी देता है:

> 9.317. जिस प्रकार शास्त्र विधि से स्थापित अग्नि और सामान्य अग्नि, दोनों ही श्रेष्ठ देवता हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण चाहे वह मूर्ख हो या विद्वान, दोनों ही रूपों में श्रेष्ठ देवता हैं।

---

1. वर्ण के अधीन कोई ब्राह्मण मूढ़ नहीं हो सकता। ब्राह्मण के मूढ़ होने की संभावना तभी हो सकती है, जब वर्ण जाति बन जाता है, अर्थात जब कोई जन्म के आधार पर ब्राह्मण हो जाता है।

9.319. इस प्रकार ब्राह्मण यद्यपि निंदित कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, तथापि ब्राह्मण सब प्रकार से पूज्य हैं, क्योंकि वे श्रेष्ठ देवता हैं।

यदि समस्त ब्राह्मण-वर्ग को गौरव प्रदान करना ही उद्देश्य था, तब चेतावनी देने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। यह एक ऐसी स्थिति है, जब कोई भ्रष्ट व्यक्ति ढोंग के लिए भी गुणवान व्यक्ति को आदर देने से ःइन्कार! कर देता है। जब मनु ब्राह्मण की पूजा करने पर बल देता है, चाहे वह भ्रष्ट और मूढ़ ही क्यों न हो, तब क्या इससे अधिक नैतिक पतन भी हो सकता है?

वर्ण से जाति में परिवर्तन संबंधी विषय पर इतना ही पर्याप्त है। इस परिवर्तन का परिणाम क्या हुआ?

यदि तटस्थ होकर विचार किया जाए ये परिणाम आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत अधिक हानिकारक हुए। इस हानि का अनुमान मनु के विधान के परिणामस्वरूप पुरोहित के रूप में उत्पन्न ब्राह्मण की स्थिति की तुलना इंग्लैंड के चर्च के अधीन पादरी कानून के साथ करने से शायद और अच्छी तरह लग सकता है। वहां पादरी दंड-विधान के उतना ही अधीन होता है, जितना कि कोई अन्य नागरिक। इसके साथ वह चर्च अनुशासन अधिनियम के भी अधीन होता है। यदि किसी व्यक्ति ने योग्यता प्राप्त किए बिना पादरी का कार्य किया है, तब यह दंड-विधान के अधीन दंडनीय होगा। चर्च अनुशासन अधिनियम के अधीन अपने इस आचरण के लिए जो अपराध नहीं होने पर भी नैतिक दृष्टि से गलत काम कहा जाएगा, पादरी के रूप में काम करने के आयोग्य घोषित किया जाएगा। पादरी पर यह दुहरा नियंत्रण न्यायसंगत माना जाता है, क्योंकि पादरी के व्यवसाय के लिए, जिससे यह आशा की जाती है कि वह लोगों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूरा करेगा, ज्ञान और नैतिकता को होना लगभग बहुत ही आवश्यक समझा जाता है। ब्राह्मणवाद में केवल ब्राह्मण ही पुरोहित हो सकता है, जिसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह ज्ञाने और नैतिकता का एकमात्र कर्ता है। जो मत इसे अनुमोदित करता है, उसके बारे में टिप्पणी करना व्यर्थ है।

धर्मनिरपेक्ष दृष्टि से देखें तो हम पाएंगे कि जाति में वर्ण के रूपांतरण ने हिंदुओं में एक बहुत ही घातक प्रवृत्ति पैदा कर दी। इस कारण गुण की अवहेलना और केवल जन्म को महत्व दिया जाने लगा। जो व्यक्ति ऊंची जाति का वंशज है, उसे आदर मिलेगा, चाहे उसमें गुण या योग्यता का बिल्कुल ही अभाव क्यों न हो। जो व्यक्ति ऊंची जाति

में पैदा हुआ है, वह उस व्यक्ति से श्रेष्ठ होगा, जिसने नीची जाति में जन्म लिया है, भले ही नीची जाति में जन्म लेने वाला योग्यता की दृष्टि से ऊंची जाति में जन्म लेने वाले से श्रेष्ठ क्यों न हो। गुण स्वयं में कुछ भी नहीं होता। यह पद को गुण से अलग करने के कारण है, जो ब्राह्मण धर्म का कार्य है। एक अप्रगतिशील समाज का निर्माण करने के लिए जो कुलीन वर्ग के विशेषाधिकार की वेदी पर प्रतिभावान लोगों के अधिकारों की बलि कर देता हो, इससे अच्छी योजना क्या बनाई जा सकती थी।

बौद्ध धर्म पर विजय प्राप्त करने के बाद ब्राह्मणवाद ने जो कार्य किए, उस सूची में से अब तीसरे कार्य पर विचार किया जाए। यह कार्य ब्राह्मणों को गैर-ब्राह्मणों के प्रभाव से अलग करना और गैर-ब्राह्मणों को विभिन्न सामाजिक स्तरों में बांटना था।

पुष्यमित्र की ब्राह्मण क्रांति का उद्देश्य चार्तुवर्ण्य की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का उद्धार करना था, जिसे बौद्ध शासन में काल की कसौटी पर परखा जा रहा था। लेकिन जब बौद्ध धर्म पर ब्राह्मणवाद ने विजय प्राप्त कर ली, तब उसे चातुर्वण्य-व्यवस्था को उसी रूप में जिस रूप में, वह पहले थी, पुनः स्थापित करने पर भी संतोष नहीं हुआ। बौद्ध पूर्व समय में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था एक उदार व्यवस्था थी और उसमें गुंजाइश थी। इसका कारण यह है कि इसका विवाह व्यवस्वथा से कोई संबंध नहीं था। चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में जहां चार विभिन्न वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया गया था, वहां इन वर्गों में आपस में विवाह-संबंध करने पर कोई निषेध नहीं था। किसी भी वर्ण का पुरुष विधिपूर्वक दूसरे वर्ण की स्त्री के साथ विवाह कर सकता था। उस दृष्टिकोण की पुष्टि में अनेक दृष्टांत उपलब्ध हैं। मैं नीचे कुछ दृष्टांत दे रहा हूं, जो ऐसे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हैं, जिन्हें हिंदुओं की पवित्र भाषाओं में काफी यश प्राप्त हैं:

पति	वर्ण	पत्नी	वर्ण
1. शांतनु	क्षत्रिय	गंगा	शूद्र अनामिका
2. शांतनु	क्षत्रिय	मत्स्यगंधा	शूद्र धींवर स्त्री
3. पाराशर	ब्राह्मण	मत्स्यगंधा	शूद्र धींवर स्त्री
4. विश्वामित्र	क्षत्रिय	मेनका	अप्सरा
5. ययाति	क्षत्रिय	देवयानी	ब्राह्मण
6. ययाति	क्षत्रिय	शर्मिष्ठा	आसुरी-अनार्य
7. जरत्कारू	ब्राह्मण	जरत्कारि	नाग-अनार्य

जिस किसी को इस बारे में शंका हो कि विभिन्न वर्गों में समाज के विभाजन में इन चार वर्णों में परस्पर अन्तर्विवाह का कोई निषेध नहीं था, उससे मेरा आग्रह है कि वह महान ब्राह्मण ऋषि व्यास के परिवार की वंशावली पर ध्यान देने की कृपा करें, जो नीचे दी गई है–

व्यास की वंशावली

वरुणमित्र = उर्वशी

→ वशिष्ठ = अक्षमाला

↓

शक्ति =

पाराशर =मत्स्यगंधा

↓

= व्यास

ब्राह्मणबाद ने पशु की तरह घोर नृशंस हो विभिन्न वर्णे के बीच अंतर्विवाहों को रोक देने का काम जारी रखा। मनु एक नया नियम बना देता है। यह नियम निम्न प्रकार से है:

3.12.. द्विजों के प्रथम विवाह के लिए समान जाति की स्त्रियां श्रेष्ठ होती हैं।

3.13. यह सच है कि शूद्र स्त्री ही किसी शूद्र की पत्नी हो सकती है।

3.14. किसी भी (प्राचीन) आख्यान में ब्राह्मण या क्षत्रिय की (प्रथम) पत्नी के शूद्र होने का उल्लेख नहीं किया गया है, हालांकि इन्होंने कष्टपूर्ण जीवनयापन किया है।

3.15. जो द्विज लोग मोह में नीची (शूद्र) जाति की स्त्रियों के साथ विवाह कर लेते है, वे शीघ्र ही अपने परिवारों और उनके बच्चों को शूद्रों की स्थिति में ला देते हैं।

3.16 अत्रि का और उतथ्य के पुत्र (गौतम) का मत है कि जो शूद्र स्त्री के साथ विवाह कर लेता है, वह जातिच्युत हो जाता है, शौनक का और भृगु का मत है कि जब किसी के केवल शूद्र स्त्री से किसी संतान का जन्म होता है (तब वह जातिच्युत हो जाता है)।

3.17. जो ब्राह्मण किसी शुद्र स्त्री के साथ शैया पर संभोग करता है, वह (मृत्यु के बाद) नरक में जा गिरता है।

यदि वह उससे संतान उत्पन्न करता है, तो वह ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट हो जाता है।

> 3.18. जो व्यक्ति मुख्यतः (शूद्र पत्नी की) सहायता से देव-कार्य या पितृ-कार्य और अतिथि भोजनादि करता है, उसके हव्य और कव्य को क्रमशः देवता और पितर स्वीकार नहीं करते और ऐसा व्यक्ति स्वर्ग को नहीं प्राप्त करता।
>
> 3.19. जो व्यक्ति शूद्र स्त्री का अधर पान करता है, जो उसके श्वास से दूषित होता है और जो उससे संतान उत्पन्न करता है, उसकी किसी प्रायश्चित से शुद्धि नहीं हो सकती।

ब्राह्मणवाद अंतर्विवाह का निषेध कर संतुष्ट नहीं हुआ। उसने इससे आगे सहभोज का भी निषेध किया।

मनु ने भोजन करने के बारे में कुछ आरोप लगाए हैं। कुछ स्वास्थ्य संबंधी हैं, कुछ सामाजिक हैं। जो सामाजिक हैं, उनमें से निम्नलिखित ध्यान देने योग्य हैं :

> 4.218. राजा के द्वारा दिया गया भोजन उसके तेज को नष्ट करता है, शूद्र वर्ग के द्वारा दिया गया भोजन उसके ब्रह्म वर्चस को, सुनार के द्वारा दिया गया भोजन उसके जीवन को और चर्मकार के द्वारा दिया गया भोजन उसके यश को नष्ट करता है।
>
> 4.219. रसोइया या इस प्रकार के शूद्र शिल्पियों के द्वारा दिया गया भोजन उसकी संतति को और धोबी के द्वारा दिया गया भोजन शारीरिक बल को नष्ट करता है।
>
> 4.221. अन्य के द्वारा दिया गया भोजन, जिनका उल्लेख क्रम से किया गया है, कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए, उनके अन्न को बुद्धिमान चमड़े, हड्डी और सिर के बाल कहते हैं।

4.222. यदि इस प्रकार के व्यक्तियों में से किसी का भी अन्न अज्ञानपूर्वक ग्रहण कर लिया गया है, तब तीन दिन का उपवास करना चाहिए, लेकिन यदि ज्ञानपूर्वक ग्रहण कर लिया हो, तब उसे वैसा ही कृच्छव्रत करना चाहिए, मानो उसने शुक्र मल और मूत्र ग्रहण कर लिया हो।

मैंने यह कहा है कि ब्राह्मणवाद ने अंतर्विवाह और सहभोज पर रोक लगाने का काम पशु की तरह नृशंस होकर किया। यदि किसी को उसमें संदेह हो, तो अनुरोध है कि मनु की भाषा पर विचार करना चाहिए। शूद्र स्त्री के संबंध में मनु जो घृणा व्यक्त करता है, उस पर ध्यान दीजिए। शूद्र के भोजन के बारे में मनु जो-कुछ कहता है, कहता है, उस पर ध्यान दीजिए। वह कहता है कि वह अशुद्ध है, जैसे शुक्र या मूत्र।

इन दो नियमों ने जातिप्रथा को जन्म दिया। अंतर्विवाह और सहभोज का निषेध दो स्तंभ हैं, जिन पर जातिप्रथा टिकी हुई है। जातिप्रथा और अंतर्विवाह तथा सहभोज से संबंधित नियम एक-दूसरे से ऐसे जुड़े हुए हैं, जैसे उद्देश्य के साथ उसको पूरा करने वाले उपाय। निश्चय ही यह उद्देश्य किन्हीं अन्य उपायों द्वारा पूरे नहीं किए जा सकते थे।

इन उपायों की योजना से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणवाद का उद्देश्य जातिप्रथा को जन्म देना था और यही उसका अंतिम लक्ष्य था। ब्राह्मणवाद ने अंतर्विवाह और सहभोज के विरुद्ध निषेध के नियम बनाए। लेकिन ब्राह्मणवाद ने सामाजिक व्यवस्था में अन्य परिवर्तनों का भी सूत्रपात किया। अगर इन परिवर्तनों का प्रयोजन वही था जिनकी संभावना की मैंने अभी चर्चा की है, तब इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि ब्राह्मणवाद जातिप्रथा को कायम रखने के बारे में इतना अधिक आतुर था कि इसने इसके लिए प्रयुक्त साधनों के उचित या अनुचित, नैतिक या अनैतिक होने की कोई परवाह नहीं की। मैं लड़कियों के विवाह और विधवाओं के जीवन के संबंध में *मनुस्मृति* में उल्लिखित नियमों की ओर ध्यान दिला रहा हूं। स्त्रियों के विवाह के संबंध में मनु जो नियम बनाता है, उन्हें देखिए:

> 9.4. वह पिता दोषी है जो उचित समय आने पर (अपनी पुत्री को) विवाह में नहीं देता है।
>
> 9.88. पिता, समान जाति के श्रेष्ठ और सुंदर वर को अपनी पुत्री, चाहे उसकी आयु उचित न भी हो, अर्थात वह ऋतुमती न हुई हो, निर्धारित विधि के अनुसार दे।

इस नियम के अनुसार मनु यह निर्देश देता कि चाहे कोई लड़की गर्भ-धारण करने योग्य न हुई हो, अर्थात चाहे वह बच्ची ही हो, तब भी उसका विवाह कर देना चाहिए। विधवाओं के संबंध में मनु निम्नलिखित नियम घोषित करता है:

> 5.157. वह (अर्थात विधवा) अपने सुख के लिए स्वेच्छापूर्वक शुद्ध पुष्पों, कंदमूल और फलों का आहार कर अपने शरीर को क्षीण कर ले, लेकिन वह अपने पति के निधन के बाद किसी दूसरे पुरुष का नाम भी न ले।
>
> 5.161. परंतु जो विधवा संतानोत्पत्ति की इच्छा से दुबारा विवाह कर अपने दिवंगत पति का अनादर करती है, वह इस लोक में निंदा का पात्र बनती है और वह (स्वर्ग में) अपने पति के सामीप्य से वंचित रहेगी।
>
> 5.162. पति के अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष से उत्पन्न स्त्री की संतान उसकी संतान नहीं कहलाती, पत्नी के अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री से उत्पन्न किसी पुरुष

की संतान उसकी नहीं कहलाती, पतिव्रता स्त्री का दूसरा पति कहीं भी नहीं निर्धारित है।

स्त्री के लिए यह आरोपित वैधव्य के नियम हैं। यहां सती या उस विधवा के संबंध में चर्चा कर ली जाए जो अपने पति की चिता पर स्वयं को भस्म कर देती है और अपने जीवन का अंत कर देती है। मनु इस संबंध में मौन है।

याज्ञवल्क्य[1] नामक विद्वान जो मनु जितना ही महान है, कहता है कि स्त्री को अलग या अकेले नहीं रहना चाहिए।

86. जब किसी स्त्री का पति दिवंगत हो जाए, तब वह अपने पिता, मां, पुत्र भाई, सास या अपने मामा से अलग न रहे, अन्यथा वह निंदा की पात्र बन सकती है।

यहां याज्ञवल्क्य यह नहीं कहता कि विधवा को सती हो जाना चाहिए लेकिन याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका *मिताक्षरा* के लेखक प्रज्ञानेश्वर उक्त श्लोक की टीका करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त करते हैः 'यह *विष्णु*[2] के पाठ के अनुसार विकल्प के रूप में ब्रह्मचर्य का जीवनयापन करने की स्थिति में होता है। पति की मृत्यु के बाद या तो ब्रह्मचर्य या उसके साथ चिंता में बैठना। प्रज्ञानेश्वर[3] इसमें अपना मत जोड़ते हैं कि उसके बाद चिता में बैठने का बड़ा महत्व है।

इससे कोई भी बड़ी सरलता और स्पष्टतापूर्वक यह जान सकता है कि सती होने का नियम किस प्रकार बना। मनु का नियम था कि कोई भी विधवा दुबारा विवाह नहीं कर सकती। लेकिन प्रज्ञानेश्वर के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि *विष्णुस्मृति* के समय से मनु के नियम की कुछ भिन्न व्याख्या की जाने लगी थी। इस नई व्याख्या के अनुसार मनु के नियम का आशय विधवा स्त्री को दो विकल्पों में किसी एक का चुनाव करने का अधिकार देना थाः (1) या तो तुम अपने पति की चिता में भस्म हो जाओ, और (2) यदि तुम ऐसा नहीं करतीं, तब अविवाहित रहो। निस्संदेह यह बिल्कुल गलत व्याख्या थी और मनु के स्पष्ट शब्दों में निहित आशय के ठीक विपरीत थी। यह किसी प्रकार ग्राह्य हो गई। *विष्णुस्मृति* तीसरी या चौथी शताब्दी के आसपास की रचना है। अतः यह कहा जा सकता है कि सती होने का नियम उसी समय बना था।

एक बात तो निश्चित है कि ये नियम नए थे। मनु का यह नियम कि लड़की का

---

1. *याज्ञवल्क्यस्मृति*, सन् 150-200 की रचना है।
2. *विष्णुस्मृति*, अध्याय 25.14
3. उन्होंने सन 1070 और 1100 के बीच *मिताक्षरा* की रचना की।

विवाह उसके ऋतुमती होने के पहले कर देना चाहिए, एक नया नियम है। बौद्ध पूर्व ब्राह्मणवाद में विवाह ऋतुमती होने के बाद ही नहीं किए जाते थे, बल्कि तब किए जाते थे जब लड़कियों की इतनी आयु हो जाती थी कि उन्हें वयस्क कहा जा सके। इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। इसी प्रकार यह नियम भी नया है कि स्त्री को एक बार अपने पति के दिवंगत हो जाने पर दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए। बौद्ध पूर्व ब्राह्मणवाद[1] में विधवा के पुनर्विवाह पर कोई रोक नहीं थी। संस्कृत भाषा में 'पुनर्भू' (अर्थात वह स्त्री जिसका दूसरा विवाह हुआ हो) और 'पुनर्भव' (अर्थात दूसरा पति) जैसे शब्द मिलते हैं। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध पूर्व ब्राह्मणवाद में इस प्रकार के विवाह एक आम बात थी।[2] सती के बारे में कि यह प्रथा कब शुरू हुई है[3], इस बात का भी साक्ष्य है कि यह प्राचीन काल में होती थी। लेकिन इस बात का भी साक्ष्य है कि यह प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो गई और बौद्ध धर्म पर पुष्यमित्र के अधीन ब्राह्मणवाद की विजय के बाद फिर से शुरु की गई, हालांकि यह लगभग मनु के बाद ही हुआ होगा।

प्रश्न यह है कि यह परिवर्तन विजयी ब्राह्मणवाद ने क्यों किए? ब्राह्मणवाद लड़कियों का विवाह उनके ऋतुमती होने के पहले ही कर, विधवाओं को पुनर्विवाह के अधिकार का निषेध कर, और उन्हें अपने दिवंगत पति की चिता पर आत्मदाह करने का निर्देश देकर कौन-सा उद्देश्य पूरा करना चाहता था? इन परिवर्तनों के कारणों का कुछ भी पता नहीं चलता। श्री सी.वी. वैद्य, जो लड़कियों के विवाह के बारे में स्पष्टीकरण देते हैं, कहते हैं[4] कि लड़कियों का विवाह उनको बौद्ध धर्म में भिक्षुणी बनने से रोकने के लिए शुरू किया गया। मैं इस स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं हूं। श्री वैद्य मनु द्वारा निर्धारित एक अन्य नियम, अर्थात विवाह के लिए उपर्युक्त आयु से संबंधित नियम पर विचार करने से चूक जाते हैं। इस नियम के अनुसार:

> 9.94. तीस वर्ष की आयु का व्यक्ति बारह वर्ष की आयु की कुमारी से विवाह करे जो उसको प्रसन्न रखेगी या चौबीस वर्ष की आयु का व्यक्ति आठ वर्ष की आयु की लड़की के साथ।

प्रश्न यह नहीं है कि बाल–विवाह को क्यों आरंभ किया गया। प्रश्न यह है कि मनु ने वर और कन्या की आयु में इतने अधिक अंतर की क्यों अनुमति दी?

---

1. *हिस्ट्री आपफ धर्मशास्त्र, काणे, खण्ड–1*
2. *वही, काणे खंड 2 भाग 2*
3. *सती प्रथा के बारे में उपलब्ध प्रमाण श्री काणे ने अपनी पुसतक हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र में संग्रहीत किए हैं, खंड 2, भाग–1 पृ. 617-36*
4. *हिस्ट्री आफ इंडिया, खण्ड–2*

श्री काणे[1] ने सती-प्रथा का स्पष्टीकरण देने का उद्यम किया है। उनका कहना है कि इसमें कोई नई बात नहीं है। यह प्राचीन-काल में भारत में भी थी, जैसी कि विश्व के अन्य भागों में थी। इससे दुनिया को संतोष नहीं है। यदि यह भारत के बाहर थी तो वहां यह उतने बड़े पैमाने पर नहीं होती थी, जितनी कि यह भारत में होती थी। दूसरे, -अगर इसके चिन्ह प्राचीन भारत में क्षत्रियों में पाए जाते थे तो इसे फिर से क्यों शुरु किया गया। इसे विश्वव्यापी क्यों नही बनाया गया? इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं है। श्री काणे का यह कहना कि यह उत्तराधिकार संबंधी नियमों के प्रसंग में प्रचलित थी, मुझे कोई बहुत अधिक संतोषप्रद नहीं लगती। इसका कारण यह हो सकता है कि उत्तराधिकार के बारे में हिंदू कानून के तहत स्त्री संपत्ति में एक भाग की अधिकारी होती थी, जैसा कि बंगाल में होता था। पति के संबंधी विधवा पर सती हो जाने के लिए दबाव डालते थे, जिससे कि वह उस भाग के संबंध में मुक्त हो सकें। शायद यह एक कारण हो जिससे बंगाल में इतने बड़े पैमाने पर सती-प्रथा का प्रचलन रहा। लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि यह किस प्रकार शुरू हुई और यह किस प्रकार भारत के अन्य भागों में व्यवहार में लाई जाने लगी।

इसके अलावा विधवाओं के पुनर्विवाह पर निषेध के कारणों का कुछ भी पता नहीं चलता। विधवा-विवाह की प्रथा के प्रचलित होते हुए भी विधवा को विवाह करने से क्यों वर्जित किया गया? उससे कष्टपूर्ण जीवन बिताने की अपेक्षा की गई। उसे विरूप क्यों किया गया?

लड़कियों के विवाह, आरोपित वैधव्य और सती-प्रथा के बारे में मेरा मत सर्वथा विपरीत है। मैं इसकी प्रामाणिकता या महत्व के बारे में कोई दावा न करते हुए इसे यहां प्रस्तुत कर रहा हूं[2]:

'इस प्रकार बहिर्जातीय विवाह पद्धति के स्थान पर सजातीय विवाह पद्धति के आरंभ का अर्थ है, जातिप्रथा का सृजन। लेकिन यह कोई सरल कार्य नहीं है। आइए, हम कोई काल्पनिक वर्ग लें जो जाति बनाना चाहता है और इस बात का विश्लेषण करें कि इस वर्ग को सजातीय विवाह पद्धति का बनाने के लिए कौन से उपाय अपनाने होंगे। यदि यह वर्ग जाति बनना चाहता है, तब बाहर के वर्गों के साथ सजातीय विवाह पर औपचारिक निषेधाज्ञा से कोई प्रयोजन नहीं पूरा होगा, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अंतर्जातीय विवाह पद्धति आरंभ करने से पूर्व सभी वैवाहिक संबंधों के लिए बहिर्जातीय विवाह पद्धति नियम होती थी। इसके अलावा, जो वर्ग एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ संपर्कपूर्वक रहते हैं, उन सभी में एक-दूसरे को आत्मसात और समेकित कर लेने और इस प्रकार समरूप में संगठित

---

1. *हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र*
2. यह *'कास्ट्स इन इंडिया'* नामक मेरे लेख में मिलेंगे जो *इंडियन एंटीक्वैरी* नामक पत्रिका में मई 1917 के अंक में प्रकाशित हुआ था।

जाए, तो एक परिधि खींचनी आवश्यक होगी, जिसके बाहर के वर्ग के लोग विवाह नहीं करेंगं।

तथापि, वर्ग से बाहर विवाह को रोकने के लिए परिधि बनाने से उस वर्ग में समस्याएं पैदा होंगी, जिनका समाधान कोई बहुत सरल बात नहीं होगी। सामान्यतः प्रत्येक वर्ग में स्त्री-पुरुषों की संख्या थोड़ी-बहुत एक समान होती है, और मोटे तौर पर एक ही आयु से स्त्री-पुरुषों के बीच समानता भी होती है। लेकिन यह समानता वास्तविक समकक्षों में कभी नहीं देखी गई। जो वर्ग अपनी एक अलग जाति बनाना चाहता है, उसके लिए स्त्री-पुरुषों की संख्या में समानता का होना चरम लक्ष्य बन जाता है, क्योंकि इसके बिना सजातीय विवाह व्यवस्था नहीं बनी रह सकती। दूसरे शब्दों में, अगर सजातीय व्यवस्था को बनाए रखना है, तो वर्ग में ही विवाह के लिए विवाह योग्य स्त्री और पुरुषों का उपलब्ध होना आवश्यक है, अन्यथा उस वर्ग के लोग स्वेच्छानुसार अपना विवाह करने के लिए बाध्य हो जाएंगे। लेकिन क्योंकि वर्ग में ही परस्पर विवाह योग्य स्त्री-पुरुष उपलब्ध होने हैं इसलिए जो वर्ग अपनी एक अलग जाति बनाना चाहता है, उसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वहां परस्पर विवाह योग्य स्त्री-पुरुषों की संख्या बराबर-बराबर हो। इस प्रकार की समानता के द्वारा ही उस वर्ग की सजातीय विवाह व्यवस्था सुरक्षित बनी रह सकती है और इस संख्या में बहुत बड़ी विषमता निश्चित ही उस व्यवस्था को भंग कर देगी।

तब जाति की समस्या अतंतः वर्ग में विवाह योग्य स्त्री-पुरुषों की संख्या में विषमता को दूर करने की समस्या मात्र बनकर रह जाती हैं विवाहयोग्य स्त्री-पुरुषों की संख्या में अपेक्षित समानता तभी बनी रह सकती है, जब पति-पत्नी एक साथ दिवंगत हों। लेकिन यह संयोग बहुत ही विरल होता है। कोई पुरुष अपनी पत्नी से पहले मर सकता है और अपने पीछे एक स्त्री छोड़ जाता है, जो अतिरिक्त हो जाती है। इस पत्नी की व्यवस्था इसका अंतर्विवाह करके की जानी चाहिए, नहीं तो यह अस वर्ग की सजातीय विवाह व्यवस्था को भंग कर देगी। इस प्रकार किसी स्त्री के देहांत के बाद उसका पति बचा रहे, तो समाज को चाहिए कि वह उसकी पत्नी के दुर्भाग्यपूर्ण देहावसान पर संवेदना प्रकट करने के साथ-साथ उसकी भी व्यवस्था कर दें, नहीं तो वह जाति के बाहर विवाह कर लेगा और सजातीय विवाह व्यवस्था को भंग कर देगा। इस प्रकार अतिरिक्त पुरुष और अतिरिक्त स्त्री, दोनों जाति के लिए संकट बन जाते हैं, और इनके लिए उनकी निर्धारित परिधि में उचित साथी की व्यवस्था करके उनकी व्यवस्था नहीं की गई (और वे स्वयं भी कुछ नहीं खोज सकते, क्योंकि उनके चारों ओर युगल ही युगल होते हैं), तो बहुत संभव है कि वह परिधि का संक्रमण कर दें, जाति के बाहर विवाह कर लें और ऐसे लोगों को ले आएं जो जाति के बाहर के हैं। आइए, अब हम इस बात पर विचार करें कि हमारा काल्पनिक वर्ग इस अतिरिक्त पुरुष और अतिरिक्त स्त्री के बारे में क्या व्यवस्था कर सकता है। हम पहले अतिरिक्त स्त्री के बारे मे विचार करते हैं। किसी जाति की सजातीय

विवाह व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने के लिए उसकी व्यवस्था दो प्रकार से हो सकती है।

"पहला, उसे उसके दिवंगत पति की चिता पर बिठाकर भस्म कर डाला जाए और उससे मुक्ति प्राप्त कर ली जाए। लेकिन स्त्री-पुरुष की संख्या में विषमता की समस्या को हल करने का यह संभवतः एक अव्यवहारिक उपाय है। कुछ स्थितियों में यह हो सकता है, लेकिन कुछ में यह संभव नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रत्येक अतिरिक्त स्त्री की व्यवस्था नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि यह हल तो सरल है, किंतु उसे व्यवहार में लाना अत्यंत कठिन हैं लेकिन अगर इस अतिरिक्त स्त्री की व्यवस्था नहीं की जाती और वह वर्ग में बनी रहती है, तो उसके बने रहने से दोहरा खतरा हो जाता है। वह जाति के बाहर विवाह कर सकती है और सजातीय विवाह पद्धति को भंग कर सकती है या वह जाति में ही विवाह कर प्रतियोगी बनकर ऐसी लड़की के विवाह की संभावनाओं में हस्तक्षेप सकती है, जो उसकी जाति में वास्तविक रूप से वधू बनने की अधिकारिणी है। इसलिए वह प्रत्येक स्थिति में संकट का कारण बनी रहती है।"

"दूसरा उपाय है कि उसे आजीवन विधवा बनाए रखा जाए। जहां तक वस्तु निष्ठ परिणामों का संबंध है, किसी भी ऐसी स्त्री को आजीवन विधवा बनाए रखने के बजाय उसे जला देना एक अच्छा समाधान है। विधवा को जला देने से वे तीनों संकट दूर हो जाते हैं, जो विधवा के कारण उत्पन्न होते हैं। जब वह मर जाती है और इस प्रकार समाप्त हो जाती है, तब जाति में या जाति के बाहर उसके पुनर्विवाह की कोई समस्या ही नहीं पैदा होती। लेकिन जलाने की अपेक्षा आजीवन विधवा बनाए रखना श्रेष्ठ है क्योंकि यह अधिक व्यवहारिक है। यह मानवीय तो है, इसके अलावा इससे पुनर्विवाह की समस्या भी उसी प्रकार हल हो जाती है जिस प्रकार उसे जला देने से होती है। लेकिन इससे उस वर्ग के आदर्श नहीं बने रहते। निस्संदेह आजीवन विधवा बनाए रखने से स्त्री मरने से बच तो जाती है, लेकिन चूंकि इससे भविष्य में किसी की वैध पत्नी होने का अधिकार मात्र उससे छिन जाता है, इसलिए दुराचार को प्रोत्साहन मिलता है। लेकिन यह कोई बड़ी भारी कठिनाई नहीं है। उसे ऐसी अवस्था में रखा जा सकता है कि वह भविष्य में लोगों के लिए आकर्षण नहीं बन सके।"

"जो वर्ग अपनी एक अलग जाति बनाना चाहता है, वहां अतिरिक्त पुरुष (विधुर) की समस्या अतिरिक्त स्त्री की समस्या से अधिक महत्वपूर्ण और कठिन है। स्त्री की तुलना में पुरुष का स्थान अनादिकाल से ही उच्च रहा है। प्रत्येक वर्ग में उसकी स्थिति प्रभावशाली रही है और स्त्री व पुरुष को गौरव दिया गया है। स्त्री की तुलना में पुरुष की परंपरागत श्रेष्ठता होने के कारण उसकी इच्छाओं का सदा ध्यान रखा गया हैं दूसरी ओर स्त्री सभी प्रकार के अन्यायपूर्ण प्रतिबंधों का, चाहे वह धार्मिक हों, सामाजिक हों या आर्थिक, आसानी से शिकार बनती रही है। लेकिन इन प्रतिबंधों का निर्माता होने के कारण पुरुष इन सबसे निष्प्रभावित रहा है। जब ऐसी स्थिति हो तब आप अतिरिक्त पुरुष के साथ वैसा व्यवहार नहीं रोक सकते, जैसा आप अपनी जाति में अतिरिक्त स्त्री के साथ कर सकते हैं।"

"पुरुष को उसकी दिवंगत पत्नी के साथ जलाने की बात सोचना दो प्रकार से संकटपूर्ण है पहली बात तो यह है कि यह इसलिए नहीं किया जा सकता कि वह पुरूष है। दूसरे यह कि अगर ऐसा किया गया तो उससे जाति को एक स्वस्थ शरीर की हानि होती है। तब केवल दो उपाय रह जाते हैं जिनको अपनाने से आसानी से उसकी व्यवस्था हो सकती है। मैं 'आसानी' शब्द का इस्तेमाल इसलिए कर रहा हूं कि वह वर्ग के लिए परिसंपत्ति है।"

"जिस प्रकार वह वर्ग के लिए महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार सजातीय विवाह व्यवस्था और भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए समाधान ऐसा होना चाहिए कि दोनों ही उद्देश्य पूरे हो सकें। इन परिस्थितियों में उस पर विधवा की तरह आजीवन विधुर रहने के लिए जोर देना चाहिए। मैं कहूंगा कि इस बात के लिए उसे प्रेरित किया जाना चाहिए। यह समाधान तो बिल्कुल भी कठिन नहीं है। इसका कारण यह है कि कुछ लोग तो स्वयं ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना पसंद करते हैं या कुछ लोग एक कदम आगे बढ़कर संसार और उसके सुखों से सन्यास ले लेते हैं। लेकिन जैसी कि मनुष्य की प्रवृत्ति होती है, यह आशा करना कि सभी इस प्रकार सके समाधान को स्वीकार कर लेंगे, एक मुश्किल बात है। दूसरी ओर, जिसकी संभावना अधिक है कि अगर वह वर्ग के कार्यकलापों में सक्रिय रूप से भाग लेता है तो वह वर्ग के आदर्शों के लिए खतरा बन जाता है। अगर इसे एक भिन्न दृष्टि से देखा जाए तो ब्रह्मचर्य उस जाति की भौतिक उन्नति में कोई अधिक सहायक नहीं होता, यद्यपि यह उन स्थितियों में सरल समाधान होता है, जहां यह सफल हो जाता है। अगर वह वास्तविक रूप में ब्रह्मचर्य अपना लेता है और संसार को त्याग देता है, तब वह अपनी जाति में सजातीय विवाह व्यवस्था या जातीय आदर्शों को बनाए रखने में संकट नहीं बनता, क्योंकि तब वह विरक्त व्यक्ति की तरह जीवन यापन करता है। जहां तक किसी जाति की भौतिक समृद्धि का संबंध है, संन्यासी ब्रह्मचर्य का अस्तित्व वैसा ही है, जैसा कि उस व्यक्ति का, जिसे जला दिया गया हो। जाति में कुछ निश्चित जनसंख्या होनी चाहिए, जिससे कि वह अपने लोगों को स्वस्थ-सामाजिक जीवन प्रदान कर सके। लेकिन इसकी आशा करना और उसके साथ ब्रह्मचर्य की घोषणा करना, ये दोनों बातें ऐसी हैं जैसी किसी क्षयग्रस्त रोगी का इलाज उसका निरंतर खून निकाल कर करना।

"इसलिए वर्ग में इस अतिरिक्त पुरुष पर ब्रह्मचर्य आरोपित करना सैद्धांतिक और व्यवहारिक, दोनों ही प्रकार से असफल हो जाता है। उसे एक ऐसे व्यक्ति के रूप में,

जिसे संस्कृत में गृहस्थ (जो विवाह कर अपना परिवार बना सकें) कहते है,' रखना जाति के हित में हैं। लेकिन यहां समस्या उसे उसी जाति की पत्नी की व्यवस्था करने की है। शुरू में यह संभव नहीं हो सका, क्योंकि तब जाति में अनुपात एक पुरुष के लिए एक स्त्री का होगा और किसी को दोबारा विवाह करने का अवसर नहीं मिल सकता। इसका कारण यह है कि जाति स्वतः आत्म केंद्रित होती है, उसमें विवाह-योग्य पुरुषों के लिए विवाह-योग्य स्त्रियां पर्याप्त मात्रा में होती हैं। इन परिस्थितियों में अतिरिक्त पुरुष के लिए वधू की व्यवस्था उन लड़कियों मे से की जा सकती है जो विवाह-योग्य अभी नहीं हुई हैं, जिससे वह व्यक्ति उस वर्ग से जुड़ा रहे। अतिरिक्त पुरुष के मामले में निश्चित ही यही यथासंभव श्रेष्ठ समाधान है। ऐसा करने से उसे जाति में ही रखा जा सकता है। ऐसा करने से उस जाति को छोड़कर निरंतर बाहर आने वाली जनसंख्या पर नियंत्रण रखा जा सकता है और ऐसा करने से सजातीय विवाह व्यवस्था और आदर्श सुरक्षित रखे जा सकते हैं।

"इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन उपायों द्वारा स्त्री–पुरुषों के बीच संख्यात्मक विषमता को नियंत्रित रखा जा सकता है – वे चार हैं, (1) दिवंगत पति के साथ उसकी विधवा का अग्निदाह, (2) अनिवार्य वैधव्य अग्निदाह का हल्का रूप, (3) विधुर पर अनिवार्य ब्रह्मचारी का जीवन आरोपित करना, और (4) उसका विवाह ऐसी लड़की से कर देना जो विवाह योग्य न हो। जैसा मैं कह चुका हूं कि विधवा का अग्निदाह औरं विधुर का अनिवार्य ब्रह्मचारी का जीवन आरोपित करना, ये दोनों उपाय ऐसे हैं जिनके किसी समुदाय में सजातीय विवाह व्यवस्था बनाए रखने में कार्यान्वित होने में संदेह है, ये दोनों उपाय मात्र हैं। लेकिन जब यह उपाय कठोरतापूर्वक कार्यान्वित किए जाते हैं तब लक्ष्य पूरा हो जाता है। ये उपाय कौन सा लक्ष्य पूरा करते है? ये सजातीय विवाह व्यवस्था का सृजन और उसे स्थाई बनाते हैं। जाति की विभिन्न परिभाषाओं में हमारे विश्लेषण के अनुसार जाति और सजातीय विवाह व्यवस्था, दोनों एक ही वस्तु हैं। इस प्रकार इन उपायों का प्रयोजन जाति और जाति-व्यवस्था में ये दानों ही उपाय निहित हैं।"

"मेरे विचार में किसी भी जाति-व्यवस्था में जाति का यही सामान्य रूप होता है। आइए, अब हिंदू समाज की जातियों और उनकी व्यवस्था पर विचार करें। हम सभी जानते हैं कि भारत में जाति एक अत्यंत प्राचीन व्यवस्था है, और यह कि जो लोग अतीत को उद्घाटित करना चाहते हैं, उसके रास्तों में बहुत सी कठिनाइयां आती हैं। यह बात वहा के लिए तो और भी सच होती हैं, जहां न तो कोई प्रमाणिक या लिखित इतिहास होता, और न ही कोई अभिलेख होते हैं, या जहां लोग इस प्रकार संगठित रहते हैं, जैसे हिंदू, जिनके लिए इतिहास लिखना इसलिए महत्वपूर्ण कार्य है कि यह सारा विश्व ही मिथ्या है। फिर भी व्यवस्थाएं तो रहती हैं, चाहे चिरकाल तक इनका इतिहास अलिखित ही क्यों न रह जाए और इनके थोडे-बहुत आचार-विचार और नैतिक आदर्श जीवाश्व की तरह

हैं, जो अपना इतिहास कहते हैं। अगर यह सच है और अगर हम इसका विश्लेषण करें कि हिंदुओं ने इस अतिरिक्त पुरुष और स्त्री की समस्या का किस प्रकार समाधान किया, तो हम काफी सफल हो सकते हैं।

हिंदू समाज की कार्यप्रणाली में, जो यद्यपि बहुत ही जटिल रही है, पत्नियों के संबंध में मोटे तौर पर तीन रीतियां मिलती हैं, जो किसी और समाज में नहीं मिलतीं। ये निम्नलिखित हैं :

(1) सती अर्थात विधवा को उसके दिवंगत पति के शव के साथ चिता में जला देना,

(2) अनिवार्य वैधव्य जिसके द्वारा किसी भी विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं है, और

(3) बाल्यावस्था में विवाह।

इसके अलावा, अधिकांश विधुर व्यक्तियों में संन्यास लेने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, जो कुछ मामलों में केवल मानसिक झुकाव के कारण हो सकती है। "जहां तक मैं जानता हूं, इन प्रथाओं की उत्पत्ति का कोई वैज्ञानिक कारण आज तक नहीं मिल पाया है। इस बारे में हमें पर्याप्त चिंतन सामग्री उपलब्ध है कि इन प्रथाओं में लोगों की श्रद्धा क्यों थी? (तुलना कीजिए: ब्रिटिश सोशियोलोजिकल रिव्यू,वाल्यूम 6,1953 में ए.के.कुमारस्वामी–सती: ए डिफेंस आफ दि ईस्टर्न वीमेन) चूंकि यह शरीर और आत्मा, पति और पत्नी की पूर्ण एकता और कब्र के बाद भी निष्ठा का प्रमाण है, चूंकि यह स्त्रीत्व के आदर्श का प्रतीक है जिसे उमा ने बड़े अच्छे ढंग से व्यक्त किया है, जब वह कहती है: 'अपने पति के प्रति निष्ठा स्त्री का गौरव है, वह उसका शाश्वत स्वर्ग है।' वह मानवों की भांति बड़ा आर्तनाद करते हुए कहती है, 'हे महेश्वर, यदि आप मुझसे संतुष्ट नहीं हैं, तो मैं स्वर्ग भी नहीं चाहती।' मैं यह नहीं जानती कि अनिवार्य वैधव्य को क्यों गौरव दिया जाता है, हालांकि बहुत से लोग अनिवार्य वैधव्य का समर्थन करते हैं। लेकिन मुझे कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसने इसकी प्रशंसा की हो। छोटी उम्र में ही लड़कियों का विवाह कर देने की प्रथा की प्रशंसा में डा. केतकर ने बताया है, जो इस प्रकार है– 'जो पुरुष या स्त्री वास्तविक रूप से निष्ठावान है, उसे अपनी पत्नी या पति के अतिरिक्त, जिसके साथ उसका विवाह हो गया है, किसी भी दूसरी स्त्री या पुरुष के प्रति अनुरक्त नहीं होना चाहिए। यह शुचिता न केवल विवाह के बाद, बल्कि विवाह के पहले भी अनिवार्य है क्योंकि यही ब्रह्मचर्य का सच्चा आदर्श है। अगर कोई कुमारी उस व्यक्ति, जिसके साथ, उसका विवाह होगा, के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम-भाव रखती है, तब वह शुद्ध नहीं मानी जा सकती। चूंकि वह यह नहीं जानती कि किसके साथ उसका विवाह होगा, उसे चाहिए कि वह विवाह के पूर्व किसी भी व्यक्ति के प्रति अनुरक्त नहीं हो। यदि वह ऐसा करती है तो वह पाप है, इसलिए प्रत्येक लड़की के यह हित में है कि काम-प्रवृत्ति जागने के पहले वह उस व्यक्ति को जान ले, जिसके साथ विवाह होने वाला है।" इसलिए लड़कियों का बचपन में ही विवाह होना शुरू हुआ।

"इस अलंकारिक भाषा और विलक्षण कुतर्क से यह तो पता चलता है कि यह प्रथाएं क्यों अच्छी समझी जाती थीं। लेकिन इससे यह पता नहीं चलता कि ये प्रथाएं क्यों अमल में लाई गई। मेरा अपना मत तो यह है कि चूंकि ये प्रथाएं अमल में लाई गई, इसलिए इन्हें अच्छा समझा जाने लगा। जिस किसी को 18वीं शताब्दी में व्यक्तिवाद के उदय की थोड़ी बहुत भी जानकारी है, वह मेरी टिप्पणी से सहमत होगा। प्रत्येक युग में आंदोलन को सबसे अधिक महत्व दिया गया है और काफी समय बीत जाने के बाद उसे पुष्ट करने और नैतिक समर्थन प्रदान करने के लिए विभिन्न दर्शन उत्पन्न हो जाते हैं। इस आधार पर मेरा यह कहना है कि जिस प्रकार इन प्रथाओं की खुब प्रंशसा की गई, उससे यह सिद्ध होता है कि इन प्रथाओं को जारी रखने के लिए प्रशंसा आवश्यक रही होगी। इस प्रश्न के उत्तर में कि ये प्रथाएं क्यों उत्पन्न हुई, मेरा यह विनम्र मत है कि जाति का ढांचा खड़ा करने के लिए इन प्रथाओं को आवश्यक समझा जाता था और इनके बारे में जिन दर्शनों का जन्म हुआ, उनका उद्देश्य उन्हें लोकप्रिय बनाना था। हम कह सकते हैं कि एक प्रकार से लोहे पर सोने-चांदी का मुलम्मा चढ़ाना था और यह प्रथाएं सीधी-सादी भोली जनता को इतनी अधिक घृणित और दहशत पैदा कर देने वाली लगी होंगी कि इनको चाशनी में पागना अत्यंत आवश्यक हो गया होगा। हालांकि इन प्रथाओं को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है लेकिन ये प्रथाएं वास्तव में अत्यंत ही घृणित प्रकृति की हैं। इस मुलम्मे या चाशनी के चक्कर में हमें उन परिणामों को नहीं भूलना चाहिए, जो इनसे उत्पन्न होते हैं। हम कह सकते हैं कि साधनों को आदर्श रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक होता है और इस विशेष मामले में ऐसा इन प्रथाओं को अधिक कारगर बनाने के लिए किया गया। साधनों को लक्ष्य कहने से हानि नहीं होती, सिवाय इसके कि इससे लक्ष्य का वास्तविक रूप छिप जाता है। लेकिन इससे उसकी वास्तविक प्रकृति नहीं समाप्त होती, और न उसके साधन ही नष्ट होते हैं। जिस प्रकार आप किसी साधन को लक्ष्य कह सकते हैं, उसी प्रकार आप यह कानून बना सकते हैं कि सभी बिल्लियां कुत्ते होती है। अतः यदि मैं यह कहूं कि यह लक्ष्य है या यह साधन है तो कोई अनुचित नहीं। सती-प्रथा, अनिवार्य वैधव्य और बालिका विवाह प्रथाएं हैं, जिनका उद्देश्य जाति में अतिरिक्त पुरुष और अतिरिक्त स्त्री की समस्या को हल करना और सजातीय विवाह व्यवस्था को बनाए रखना था। इन प्रथाओं के बगैर सजातीय विवाह व्यवस्था को सख्ती से लागू नहीं किया जा सकता और सजातीय विवाह व्यवस्था के बगैर जाति एक धोखा है।"

पर रोक लगाकर यही उद्देश्य पूरा करना चाहता था। अंतर्जाती विवाह को रोकना कठिन कार्य है। भिन्न-भिन्न जातियों के लोग प्रेम या आवश्यकता होने के कारण अपनी-अपनी जातियों के बाहर जा सकते हैं। ब्राह्मणवाद ने ये नियम इसी आवश्यकता के विरुद्ध व्यवस्था करने के लिए ही बनाए। मेरा यह स्पष्टीकरण इन नए नियमों के बारे में है, जो ब्राह्मणवाद ने बनाए हैं। यह स्पष्टीकरण सभी को स्वीकार्य न हो, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि ब्राह्मणवाद विभिन्न वर्गों के बीच हो रहे विवाहों को रोकने के लिए हर संभव उपाय कर रहा था।

ब्राह्मणवाद के अभिप्राय का एक और दृष्टांत वह नियम है जो मनु ने किसी व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत करने के बारे में बनाया था।

मनु कहता है कि जो व्यक्ति अपनी जाति से बहिष्कृत[1] कर दिया जाता है, उसे ऐसे समझना चाहिए जैसे वह वास्तविक रूप में मर गया हो।

मनु आदेश देता है कि उसकी अंत्येष्टि करनी चाहिए। वह उसकी अंत्येष्टि के बारे में विधि और पद्धति निश्चित करता है।

> 11.182. बहिष्कृत व्यक्ति के सपिंड और समानोदकों को चाहिए कि वह संबंधियों, ऋत्विकों और गुरुओं की उपस्थिति में सांयकाल को किसी अशुभ दिन (नगर से) बाहर (उसे, जैसे वह दिवंगत हो गया है) जल (तर्पण) करे।
>
> 11.183. दासी जल से भरे घड़े को अपने पैर से ठोकर मारकर उलट दे, जैसे किसी मृत व्यक्ति को (जल का अर्पण किया गया), (उसके सपिंड) और समानोदक एक दिन और एक रात अशुद्ध रहेंगे।

तथापि मनु, जैसा कि निम्नलिखित नियमों से स्पष्ट है, बहिष्कृत व्यक्ति को प्रायश्चित करने पर जाति में वापस सम्मिलित होने की अनुमति देता है:

> 11.186. लेकिन जब वह प्रायश्चित कर ले, वे उसके साथ किसी पवित्र सरोवर में स्नान करें और जल से भरे गए घड़े को उस जलाशय मे छोड़ दें।
>
> 11.187. लेकिन वह उस घड़े को जलाश्य में छोड़ दे, अपने घर में प्रवेश करे और पहले की तरह जाति सम्बंधी सभी कार्यों को करें।
>
> 11.188. बहिष्कृत हुई स्त्रियों के साथ भी इसी नियम का पालन किया जाए, लेकिन उन्हें वस्त्र, भोजन ओर पानी दिया जाए और वह अपने परिवार के घर के पास रहें।

लेकिन यदि बहिष्कृत व्यक्ति अवमानना करता है और पश्चाताप-मुक्त नहीं है, तब मनु दंड की व्यवस्था करता है। मनु बहिष्कृत व्यक्ति को परिवार के साथ रहने की अनुमति

1. जैसा कि आगे स्पष्ट किया गया है, 'बहिष्कृत' और 'अछूत' दो अलग-अलग संकल्पनाएं हैं।

नहीं देता। मनु निर्देश देता है :

11.189. ...उन्हें (अर्थात् परिवार से बहिष्कृत व्यक्तियों को) वस्त्र, भोजन और पानी दिया जाए और वह (अपने परिवार के) घर के पास रहें।

3.92. वह (अर्थात गृहस्थ) कुत्तों, बहिष्कृतों, चांडालों और पिछले पाप के लिए दंड स्वरूप रोगों से ग्रसित व्यक्तियों, कौओं और कीड़ों-मकोड़ों के लिए धीरे से भूमि पर (कुछ अन्न) रखें।

मनु कहता है कि बहिष्कृत व्यक्ति के साथ सामाजिक शिष्टाचार पाप है। वह स्नातक को चेतावनी देता है:

4.79. ...बहिष्कृत व्यक्ति के साथ मत रहो।

4.213. ...बहिष्कृत व्यक्ति के द्वारा दिए गए अन्न को मत ग्रहण करो।

मनु गृहस्थ के लिए कहता है :

3.151. वह (अर्थात गृहस्थ) श्राद्ध में न बुलाएं।

3.157. जो व्यक्ति (पर्याप्त) कारण बिना अपनी मां, अपने पिता या गुरु को छोड़ देता है, वह जिसने बहिष्कृतों के साथ वेद अथवा विवाह के द्वारा संबंध स्थापित किया है।

मनु आदेश देता है कि जो लोग उस व्यक्ति से संपर्क रखते हैं, उन्हें दंडित किया जाए और इस प्रकार बहिष्कृत व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार किया जाए:

11.180. जो किसी बहिष्कृत व्यक्ति के साथ एक वर्ष तक संपर्क रखता है, यज्ञ नहीं करने, वेद नहीं पढ़ने या उसके साथ संपर्क रखने से स्वयं भी बहिष्कृत हो जाता है, क्योंकि इन कार्यों से वह अपनी जाति को तुरंत खो देता है, बल्कि उसके साथ सवारी करने या उसके स्थान पर बैठने या एक ही आसन पर साथ-साथ भोजन करने से भी (बहिष्कृत हो जाता है)।

11.181. जो व्यक्ति किसी बहिष्कृत के साथ संपर्क करता है, उसे इस संपर्क से शुद्धि के लिए वही प्रायश्चित करना चाहिए, जो उस बहिष्कृत व्यक्ति के लिए निर्धारित है।

इसके अलावा, जो बहिष्कृत व्यक्ति अपनी जाति की अवमानना करता है और बहिष्कृत बना रहना चाहता है, उसके लिए दंड का विधान है। मनु उसे अगले जन्म में भोगने वाले दंड का स्मरण कराता है :

12.60. जो बहिष्कृत व्यक्ति के साथ संपर्क रखता है, वह ब्रह्मराक्षस (अर्थात् प्रेत) बनेगा।

मनु बहिष्कृत व्यक्ति के बारे में इतने से ही संतुष्ट नहीं है। वह दंड का भी विधान

करता है, जिसकी कठोरता के बारे में कोई संदेह नहीं कर सकता। बहिष्कृत व्यक्ति के लिए *मनुस्मृति* में निम्नलिखित दंड विधान है :

3.150. जो ब्राह्मण...बहिष्कृत हैं...और नास्तिक हैं, वह देव-कार्य तथा पितृ-कार्य में (भाग लेने के) अयोग्य हैं।

9.201. ...बहिष्कृतों को पैतृक सम्पत्ति में कोई भाग नहीं मिलता।

11.184. लेकिन इसके बाद (अर्थात् बहिष्कृत व्यक्ति का अंतिम संस्कार होने के बाद, उसके साथ बात करना, उसके साथ बैठना-उठना, उसे पैतृक सम्पत्ति में भाग देना और अन्य सलोक व्यवहार करना वर्जित है)।

11.185. और (अगर बहिष्कृत व्यक्ति ज्येष्ठ है) तब उसकी ज्येष्ठता नहीं रहती और ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण अतिरिक्त भाग उसके स्थान पर छोटा भाई गुणवान होने (अर्थात् जो जाति के नियमों का अनुपालन करता है) के कारण ज्येष्ठ का अंश प्राप्त करेगा।

बहिष्कृत व्यक्ति के संबंध में मनु के नियम यही हैं। इन दंडों की कठोरता स्पष्ट है। इनका प्रयोजन उसे सभी प्रकार के लोक व्यवहार से अलग रखना, पर्व आदि पर सभी समारोहो में उसे आमंत्रित न करना, उसे सभी प्रकार के पदों के लिए आयोग्य करना और हर प्रकार की पैतृक संपत्ति से वंचित कर देना है। इन कष्टों और दंडों के अधीन बहिष्कृत व्यक्ति मृतक के समान हो जाता होगा, जैसा कि मनु उसे समझता है, उसे तर्पण देने का निर्देश देता हैं, जैसे वह स्वाभाविक रूप से मर गया हो। सुख-सुविधाओं से वंचित कर देने और अवमानित करने की यह पद्धति उन व्यक्तियों पर भी लागू की गई, जो बहिष्कृतों के साथ संपर्क रखने का प्रयास करते और उनके लिए भी वैसा दंड-विधान निर्धारित किया गया। यह दंड केवल बहिष्कृतों तक ही सीमित नहीं रहा, न ही यह पुरुषों तक सीमित रहा। बहिष्कृतों से संबंधित नियम पुरुषों और स्त्रियों, दोनों के लिए लागू रहे। यहां तक कि ये नियम उनकी संतत्ति पर भी लागू किए गए। यह नियम बहिष्कृत व्यक्ति के पुत्र पर भी लागू किया गया। जो पुत्र अपने पिता के बहिष्कृत होने से पहले पैदा हुआ हो, वह अपने पिता की संपत्ति को उत्तराधिकार के रूप में तुरंत प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता, मानो उसका पिता दिवंगत हो गया हो। जो बहिष्कृत होने के बाद पैदा होता, उसे उत्तराधिकार का कोई अधिकार नहीं रह जाता, अर्थात अपने पिता के साथ वह भी बहिष्कृत हो जाता।

बहिष्कृतों के बारे में मनु के नियम निस्संदेह अन्यायपूर्ण और अमानवीय हैं। कोई यह कह सकता है कि यह कोई बहुत विलक्षण बात नहीं। इसका कारण यह है कि ये नियम धर्मविमुखता और धर्मद्रोह संबंधी नियमों की तरह हैं, जो सभी धर्म-संहिताओं में मिलते हैं। दुर्भाग्य से यह सच है। बौद्ध धर्म को छोड़कर प्रत्येक धर्म ने अपनी-अपनी

संहिता में अटूट निष्ठा रखने और तद्नुसार आचरण करने पर बल देने के लिए उत्तराधिकार के नियमों का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग किया है। सम्राट कांस्टैंटीन्स और जुलियन ने ईसाई व्यक्ति को यहूदी धर्म अपनाने या विधर्मी बन जाने या कोई और धर्म अपनाने पर दंडित किया। सम्राट् थियोडोसियस और वैलेंटीनियोस ने धर्म-प्रचारकों के लिए, यदि वे उसी प्रकार अन्याय से दूसरों को पथभ्रष्ट करने का साहस करते हैं, तो मृत्युदंड तक देने की व्यवस्था की थी। यूरोप के अन्य देशों[1] में दंड-विधान की यही पद्धति अपने यहां ईसाई धर्म लागू करने के लिए अपनाई गई।

बहिष्कृत व्यक्ति संबंधी कानून के बारे में ऐसा दृष्टिकोण अपनाना ओछी बात है। सबसे पहली बात तो यह कि किसी व्यक्ति को बहिष्कृत करने की प्रथा को ब्राह्मणवाद ने जन्म दिया। यह पद्धति जाति प्रथा के कारण उत्पन्न हुई। ब्राह्मणवाद ने जातिप्रथा को जन्म देने का जब एक बार निश्चय कर लिया, तब बहिष्कृत व्यक्तियों के बारे में ऐसा नियम बनाना आवश्यक ही था। बहिष्कृत व्यक्ति को दंडित कर ही जातिप्रथा लागू की जा सकती थी। दूसरे, ईसाई धर्म या मुसलमान धर्म के धर्मविमुखता संबंधी नियमों और ब्राह्मणवाद के जाति संबंधी नियमों में अंतर है। ईसाई या मुसलमान धर्म में विधर्मी होने का अर्थ, धर्म में आस्था न रखने या धर्म का गलत निर्वचन करने तक सीमित था। ब्राह्मणवाद में विधर्मी होने का संबंध धार्मिक आस्था नहीं होने या उसका अभाव हो जाने से बिल्कुल भी नहीं था। इसका संबंध एक सामाजिक संस्था, अर्थात जातिप्रथा को मानने या न मानने से था। इस जाति से बाहर चले जाने को दंडनीय समझा गया। यह एक महत्वपूर्ण अंतर है।

ब्राह्मणवाद धर्म के बहिष्कृत व्यक्ति संबंधी नियमों की तुलना अगर अन्य धर्मों के विधर्मिता संबंधी नियमों से की जाए, तो स्पष्ट हो जाएगा कि ब्राह्मण धर्म में ईश्वर में आस्था रखना आवश्यक नहीं है, मृत्यु के बाद जीवन में विश्वास रखना ब्राह्मणवाद में आवश्यक नहीं है, सदाचार के द्वारा मुक्ति या ईश्वर के दूत में विश्वास रखना ब्राह्मण धर्म में आवश्यक नहीं है, लेकिन वेदों की पवित्रता में विश्वास रखना ब्राह्मणवाद में आवश्यक है। केवल यही एक चीज है जो ब्राह्मणवाद में आवश्यक है। केवल जाति का उल्लंघन ही दंडनीय है। बाकी अन्य का उल्लंघन किया जा सकता है।

जो लोग एकीकरण की इन शक्तियों को देखते-समझते हैं, वे यह स्वीकार करेंगे कि अंतर्जातीय विवाह या सहभोज का निषेध करना समाज को तोड़ देने के बराबर है। यह एकता के लिए मौत का पैगाम है, एकजुट होकर काम करने के रास्ते में एक जबरदस्त बाधा है। हम आगे चलकर देखेंगे कि ब्राह्मणवाद गैर-ब्राह्मणों द्वारा इसे उखाड़ फेंकने के लिए हर संयुक्त कार्रवाई को विफल करने के बारे में सचेत था। और इसीलिए

1. देखिए, *लाज आफ इंग्लैंड* पर स्टीफन की टीका, (15वां संस्करण), खंड 4, पृ. 179

उसने भारतीय समाज को इस प्रकार वर्गों में विभाजित किया। लेकिन किसी भी विष का प्रभाव उसका प्रयोग करने वाले के मूल उद्देश्य तक सीमित नहीं रह सकता। यही जाति के मामले में भी हुआ। ब्राह्मणवाद ब्राह्मणों के विरुद्ध गैर-ब्राह्मणों को पंगु बना देना चाहता था, उसकी योजना उन्हें राष्ट्र के रूप में विदेशी शक्ति के विरुद्ध पंगु बना देने की नहीं थी। लेकिन जाति रूपी विष का परिणाम यह है कि उनमें ब्राह्मणवाद के ही नहीं, विदेशी शक्तियों के विरुद्ध भी सिर उठाने की शक्ति नहीं रह गई। दूसरे शब्दों में, ब्राह्मणवाद ने जातिप्रथा को जन्म देकर राष्ट्रीयता के विकास को भी महान क्षति पहुंचाई।

चाहे लोग कुछ भी कहें, हिंदू जातिप्रथा में किसी भी दोष को स्वीकार नहीं करेगा और एक दृष्टि से यह सही भी है। प्रत्येक परिवार में उसके सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम, एकता और सहायता करने की भावना होती है। चोरों में भी एक-दूसरे के सामान्य हितों के प्रति सद्भाव होता है। डाकुओं के गिरोह में सब का एक ही स्वार्थ होता है और सब एक-दूसरे का ख्याल रखते हैं। इनके गिरोह चाहे एक-दूसरे के विरोधी क्यों न हो, तब भी इनमें परस्पर भाईचारे और अपने-अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना होती है। और इसी से ये पहचाने जाते हैं। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि एक जाति में वे सभी गुण होते हैं जो किसी समाज में होने चाहिए।

इसमें परस्पर प्रेम, एकता और एक-दूसरे की सहायता करने की प्रबल भावना होती है जो किसी परिवार के गुण कहे जाते हैं। चोरों जैसी बंधुत्व की भावना का इसे श्रेय प्राप्त है। इसमें निष्ठा, और भाईचारे की यह भावना भी होती है, जो हमें भिन्न-भिन्न गिरोहों में मिलती है और इसमें समान हित या स्वार्थ की वह भावना भी होती है, जो डाकुओं में मिलती है।

जाति में इन प्रशंसनीय गुणों के होने के कारण हिंदू गौरव का अनुभव कर सकता है और यह कह सकता है कि 'जाति' में कोई दोष नहीं होता। लेकिन वह यह भूल जाता है कि उसकी जाति के बारे में यह धारणा, कि यह सामाजिक संगठन का एक आदर्शरूप है, जो इस अनुमान या कल्पना पर आश्रित है कि प्रत्येक जाति अपने आपको एक स्वतंत्र समाज कह सकती है, यही उसका लक्ष्य है, जैसा कि किसी राष्ट्र के संबंध में होता है। लेकिन जब हम हिंदू समाज और उसी के अनुरूप जातिप्रथा पर विचार करते हैं, तब यह सिद्धांत अर्थहीन हो जाता है।

यहां तक कि इस विषय पर विचार करते समय हिंदू यह कभी नहीं स्वीकार करेगा कि जातिप्रथा एक बुरी प्रथा है। आप हिंदुत्व को जातिप्रथा के दोषों के लिए उत्तरदायी ठहराएं, तब हिंदू तुरंत कह उठेगा कि 'यूरोप में भी वर्ग प्रणाली (क्लास सिस्टम) है।' इस प्रतिक्रिया का आशय अगर यह है कि दार्शनिकों का ऐसा समाज तो कहीं नहीं है, जहां मूलभूत एकता हो, सबका एक जैसा उद्देश्य हो, परस्पर सहानुभूति हो, सार्वजनिक

हित के प्रति निष्ठा हो, और सबके कल्याण की चिंता हो। अगर हिंदू यह कहे कि प्रत्येक समाज में ऐसे परिवार और वर्ग होते हैं, जहां अलगाव, संदेह और ईर्ष्या उन्हीं परिवारों और वर्गों की भांति पाई जाती है, जहां डाकुओं के गिरोह, गुटबाजी, संकीर्ण दलबंदी, ट्रेड यूनियन, कर्मचारी संगठन, कार्तेल, चैम्बर ऑफ कामर्स और राजनैतिक पार्टियां होती हैं, तो किसी को क्या शिकायत हो सकती है। इनमें से कुछ स्वार्थ और लूटने के कारण आपस में संगठित होती हैं और बाकी ऐसी जो जनता की सेवा करने का उद्देश्य लेकर उठ खड़ी होती हैं, लेकिन वह उसको अपना शिकार बनाने में कोई संकोच नहीं करतीं।

यह स्वीकार किया जा सकता है कि हर जगह वास्तविक समाज पूर्णरूप से एक नहीं होता, बल्कि उसमें छोट-छोटे वर्ग होते हैं, जिनकी अपनी-अपनी समस्याएं होती हैं और ये समस्याएं उन तात्कालिक और विशिष्ट प्रयोजनों से प्रेरित होती हैं। लेकिन हिंदू अपनी जाति व्यवस्था और गैर-हिंदू वर्ग प्रणाली के बीच इस समानता को अपनी ढाल नहीं बना सकता और उसके पीछे दुबक कर बैठा नहीं रह सकता जैसे इस विषय पर और कुछ करने के लिए नहीं रह गया है। सच तो यह है कि इससे भी बड़ा प्रश्न है, जिसका उसे उत्तर देना है। उसे इस तथ्य पर विचार करना चाहिए कि हालांकि हर समाज में वर्ग होते हैं, कुछ ऐसे समाज हैं जिनमें वर्ग असामाजिक होते हैं और कुछ ऐसे भी समाज हैं जिनमें वर्ग समाज-विरोधी होते हैं। वर्ग प्रणाली वाले समाज और जाति-प्रणाली वाले समाज में अंतर सिर्फ इस बात में है कि वर्ग प्रणाली सिर्फ गैर-सामाजिक होती हैं, लेकिन जाति-प्रणाली तो निश्चित रूप से समाज-विरोधी है।

यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि किसी समाज में वर्ग प्रणाली गैर-सामाजिक भावना को क्यों पैदा करती है और दूसरे समाज में समाज-विरोधी भावना क्यों पैदा करती है। इसका जो स्पष्टीकरण प्रोफसर जॉन डेवी ने दिया है, उससे अधिक अच्छा स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता। उनके मतानुसार हर चीज इस बात पर निर्भर करती है कि ये वर्ग अलग-अलग हैं या एक-दूसरे से संबद्ध हैं। क्या ये एक-दूसरे के हितों के बारे में ख्याल रखते हैं, या उनमें इस भावना का अभाव है। अगर ये वर्ग एक-दूसरे से संबद्ध है, अगर इनमें एक दूसरे के हितों के बारे में ख्याल नहीं है तब उनमें एक दूसरे के प्रति सिर्फ गैर-सामाजिक भावना होगी। अगर ये वर्ग एक-दूसरे के हित के बारे में ख्याल नहीं है तब इनमें समाज-विरोधी भावना होगी। प्रोफेसर डेवी[1] के शब्दों में:

दल या गुट की अपनी पृथकता और एकांतता के कारण समाज-विरोधी भावना व्याप्त हो जाती है और जहां भी किसी वर्ग का स्वार्थ अपने तक सीमित होता है, वहां ऐसी ही भावना पाई जाती है। इससे उसका पूर्ण संपर्क दूसरे वर्गों के साथ नहीं रहता और

1. *डेमोक्रेसी एंड एजूकेशन*, पृ. 99

"दल या गुट की अपनी पृथकता और एकांतता के कारण समाज-विरोधी भावना व्याप्त हो जाती है। और जहाँ भी किसी का स्वार्थ अपने तक सीमित होता है, वहां ऐसी ही भावना पाई जाती है। इससे उसका पूर्ण संपर्क दूसरे वर्गों क साथ नहीं रहता और उसका मुख्य उद्देश्य पुनर्गठित और संपर्क द्वारा प्रगति करने के बजाय उसी की रक्षा करना रह जाता है, जो उसके पास पहले से ही है। यह भावना राष्ट्रों को एक-दूसरे से अलग कर देती है। इसी प्रकार जो परिवार अपने घरेलू मामलों में उलझे रहते हैं, जैसे उनका व्यापक जीवन में कोई संबंध न हो, स्कूल भी तब अलग जा पड़ते हैं, जब उनका घर और समुदाय से कोई संबंध न हो, स्कूल भी तब अलग जा पड़ते हैं, जब उनका घर और समुदाय स कोई संबंध नहीं रहता, अमीर और गरीब, शिक्षित और अशिक्षित में भेद बढ़ जाता है। मुख्य बात यह है कि पृथकता से जीवन संकीर्ण और औपचारिक मात्र रह जाता है, वर्ग में उसके आदर्श जड़ और स्वार्थपूर्ण हो जाते हैं।"

प्रश्न यह है कि क्या समाज में वर्ग हैं या समाज एक संपूर्ण इकाई होता है। प्रश्न यह है कि विभिन्न वर्गों में परस्पर साहचर्य, सहयोगात्मक संपर्क और संबंध किस मात्रा से हद तक रहता है। उनके ऐसे कौन से उद्देश्य हैं, जिनमें वे प्रत्यक्ष रूप से एक-दूसरे सहभागी रहते हैं। अन्य संस्थाओं के साथ संबंध रखने में वे कितने मुक्त है? कोई समाज इसलिए अवांछनीय नहीं है कि उसमें कई वर्ग हैं। यह तब अवांछनीय हो जाता है जब उसका वर्ग अलग-अलग हो जाते हैं। हर वर्ग की अपने कार्यशैली होती है। यही अलग-अलग रहने की प्रवृति समाज-विरोधी भावना का पैदा होना संभव हो जाता है।

वर्गों में एक दूसरे-दूसरे से अलग-अलग रहना ब्राह्मणवाद कारण हुआ। इसके लिए ब्राह्मणवाद ने प्रमुखतः जो कार्य किया, अंतर्जातीय विवाह और सहभाज की प्रणाली को समाप्त करना था, जो प्राचीन-काल में चारों वर्णों में प्रचलित थी। इस बारे में हम इस अध्याय में पहले खंड में चर्चा कर चुक हैं। इस वृत्त का एक भाग कहा जाना बाकी इस अध्याय के पहले खंड में चर्चा कर चुक हैं। इस वृत्त का एक भाग कहा जाना बाकी है। मैं कह चुका हूं कि वर्ण-व्यवस्था का विवाह से कोई संबंध नहीं था। और विभिन्न वर्णों के पुरुष और स्त्रियां आपस में विवाह कर सकते थे और उन्होंने किया भी। कानून अंतर्वर्ण विवाह के रास्ते आड़े नहीं आता था। इस विवाहों का विरोध समाज में नैतिकता की दृष्टि से भी नहीं होता था। सवर्ण विवाह करना न तो कानुनन जरूरी समझा जाता था, और न समाज ही इस पर बल देता था। इस बात के बावजूद कि वर की अपेक्षा वध उच्च वर्ण की है या वर उच्च वर्ण का है और वध निम्न वर्ण की है, विभिन्न वर्णों के सभी विवाह वैध होते थे। वास्तव में जैसा, कि प्रो० काणे कहते हैं, अनुलोम और प्रतिलाम विवाहों के अंतर को कोई नहीं जानता था, और स्थिति यह थी कि अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों, अर्थात उच्च वर्ण की स्त्री और निम्म वर्ण के पुरुष के बीच विवाह पर रोक लगा दी। यह वर्णों वर्णों के बीच आपसी संबंध का समाप्त करने और इनमें एक-दूसरे के प्रति गैर-भावना पैदा करने की दिशा में एक कदम था। लेकिन जहां प्रतिलोम विवाह के द्वारा अंतः सबंधो का द्वार खुला रखा गया, उसे बंद किया गया। जैसा कि क्रमिक असमानता विषयक

खंड में कहा गया है, ब्रह्मणवाद ने अनुलोम विवाह, अर्थात उच्च वर्ण के पुरुष और निम्न वर्ण स्त्री बीच विवाह जारी रखा। अनुलोम विवाह बहुत अच्छा नहीं कहा गया और यह सिर्फ एक ओर जाने का द्वार था, तो भी यह एक-दूसरे को मिलाने वाला द्वार था जिसके माध्यम से वर्णों को एक-दूसरे का मिलाने वाला द्वार था जिसके माध्यम से वर्णों का एक-दूसरे से बिल्कुल अकेले होने से रोकना संभव था। लेकिन यहां पर भी ब्राह्मणवाद ने चाल चली, जिसे ओछापन ही कहा जाएगा। यह कार्य कितना ओछा था, उन नियमों का यहां बताना आवश्यक है जो शिशु की स्थिति निर्धारित करने के लिए बनाए गए। प्राचीन-काल से चले आ रहे नियमों के अधीन शिशु की स्थिति उसके पिता के आधार पर निर्धारित की जाती थी। मां के वर्ण का कोई महत्व नहीं था।

निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाएगी :

	पिता का नाम	पिता का वर्ण	मां का नाम	मां का वर्ण	शिशु का नाम	शिशु का वर्ण
१.	शांतनु	क्षत्रिय	गंगा	शूद्र	भीष्म	क्षत्रिय
२.	शांतनु	क्षत्रिय	मत्स्यगंधा (धीवर)	अनामिका	विचित्र वीर्य	क्षत्रिय
३.	पाराशर	ब्राह्मण	मत्स्यगंधा (धीवर)	शूद्र	कृष्ण-द्वैपायन	ब्राह्मण
४.	विश्वामित्र	क्षत्रिय	मेनका	अप्सरा	शकुंतला	क्षत्रिय
५.	ययाति	क्षत्रिय	देवयानी	ब्राह्मण	यदु	क्षत्रिय
६.	ययाति	क्षत्रिय	शर्मिष्ठा (अनार्य)	आसुरी	द्रुह्य	क्षत्रिय
७.	जरत्कारू	ब्राह्मण	जरत्कारि (अनार्य)	नाग	असित	ब्राह्मण

यह नियम पितृ-सवर्ण्य का नियम कहलाता था। अनुलोम और प्रतिलाम विवाह-पद्धतियों पर इस पितृ-सवर्ण्य नियम के प्रभाव का विवेचन एक रोचक विषय है।

प्रतिलोम विवाह का प्रभाव यह होगा कि उच्च वर्ग का माताओं के बच्चे नीचे के वर्ण के कहलाएंगे, जो उनको पिता का है। अनुलोम विवाह पर इसका प्रभाव उलटा होगा। नीचे के वर्ण की माताओं के बच्चे ऊँचे वर्ण के कहलाएंगे, जो उनके पिता का वर्ण है।

मनु के प्रतिलोम विवाह को रोक दिया और इस प्रकार उच्च वर्ण क आने पर रोक लगा दी। यह चाहे जितना भी खेदजनक क्यों न हो, जब तक अनुलोम विवाह और पितृ-सवर्ण्य का नियम व्यहृत होता रहा, तब तक कोई अधिक क्षति नहीं हुई। इन दोनों ने मिलकर एक बहुत ही उपयोगी व्यवस्था का निर्माण किया। अनुलोम विवाह-पद्धति ने परस्पर संबंध का बनाए रखा और पितृ-सवर्ण्य नियम ने उच्च वर्णों की स्वयं को पर्याप्त सुगठित रखने में सहायक की। वे निम्न वर्ण में जा नही सकते थे, लेकिन वे विभिन्न

वर्णों की माताओं से जन्मते रहे। ब्राह्मणवाद विभिन्न वर्णों के बीच संबंध के इस द्वार को खुला रखने का इच्छुक नहीं था। यह उसे बंद कर देने पर तुला बैठा था। उसने इसे ऐसी रति से किया जो अप्रतिष्ठाजनक है। सीधा और सच्चा रास्ता अनुलोम विवाह को रोक देना था। लेकिन ब्राह्मणवाद ने ऐसा नहीं किया। उसने अनुलोम विवाह पद्धति को जारी रखा। उसने जा कुछ किया, वह यह कि उसने शिशु की स्थिति का निर्णय करने वाले नियम का बदल दिया। उसने पितृ-सवर्ण्य नियम के स्थान पर मातृ-सवर्ण्य नियम लागू किया, जिससे शिशु की स्थिति मां की स्थिति के आधार पर निर्धारित की जाने लगी। इस परिवर्तन से विवाह परस्पर सामाजिक संपर्क का वह साधन नहीं रह गया, जो वह मुख्य रूप से है। इससे उच्च वर्ण के पुरुष अपने बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्व से सिर्फ इसलिए मुक्त हो गए कि लिए बच्चे निम्न वर्ण की मां से पैदा हुए हैं। इसने अनुलोम विवाह का सिर्फ भाग, निम्न वर्णों को सताने और अपमानित करने, और उच्च वर्णों को निम्न वर्ण की स्त्रियों के साथ कानूनी रूप में वेश्या कर्म करने का एक साधन बना दिया। और व्यापक सामाजिक दृष्टि से इसने वर्णों को एक-दूसरे से पूरी तरह अलग-अलग कर दिया। वर्णों में परस्पर यही अलगाव हिंदू समाज के लिए शाप हो गया है। इस सबके बावजूद कट्टर हिंदू अभी भी यह विश्वास करता है कि जाति व्यवस्था एक आदर्श व्यवस्था है। लेकिन कट्टर हिन्दुओं की ही चर्चा क्यों करें। ऐसे लोग तो प्रबुद्ध राजनीतिज्ञों और इतिहासकारों में भी मिल जाएंगे। राजनतिज्ञों और इतिहासकारों, दोनों में ही ऐसे भारतीय आसानी से मिल जाते हैं जो जोरदार शब्दों से इसका खंडन करते हैं कि जाति-व्यवस्था राष्ट्र-प्रेम के आड़े आती है। यह मानते हैं कि भारत एक राष्ट्र है और जब कोई भारत राष्ट्र न कहकर भारत देश कहता है, तब वे बहुत गुस्सा हो जाते हैं जैसे कि उनके विरूद्ध कोई खराब बात कह दी गई हो। समझ में नहीं आता कि यह दृष्टिकोण क्यों है। राजनतिज्ञों और इतिहासकारों में ज्यादातार लोग ब्राह्मण हैं और उनसे यह आशा नहीं हो सकती कि वे अपने पूर्वजों के कुकृत्यों को स्वीकार कर लें। किसी से भी यह सवाल कीजिए, क्या भारत एक राष्ट्र न कहकर भारत देश कहता है, तब वे बहुत गुस्सा हो जाते हैं जैसे कि उनके विरुद्ध कोई खराब बात कह दी गई हो। समझ में नहीं आता कि यह दृष्टिकोण क्यों है। राजनीतिज्ञों और इतिहासकारों में ज्यादातर लोग ब्राह्मण हैं और उनसे यह आशा नहीं हो सकती कि वे अपने पूर्वजों की कुकृत्यों का पर्दाफाश करने का साहस करें या उनके कुकृत्यों को स्वीकार लें। किसी से भी यह सवाल कीजिए, क्या भारत एक राष्ट्र है और वे एक स्वर में 'हां' कहें। आप इसके कारण पूछिए। वे कहेंगे कि भारत एक राष्ट्र है, पहला कारण तो यह कि भारत एक भौगोलिक इकाई है और दूसरा कारण यहां की संस्कृति में मूलभूत एकता का होना है। यह सब तो तर्क के लिए स्वीकार किया जा सकता है, फिर भी सच बात तो यह है कि इससे यह निष्कर्ष निकालना कि भारत एक राष्ट्र है, भ्रांति को पाले रखना है। राष्ट्र क्या? राष्ट्र उस अर्थ में कोई देश नहीं होता, जिसकी भौतिक सीमाएं होती हैं, चाहे ये कितनी ही दूर तक क्यों न फैली हुई हों। राष्ट्र वह जनसंख्या नहीं होती जो एक भाषा, एक धर्म या एक प्रजाति होने के कारण परस्पर संश्लिष्ट रहती है। मैंने इस बारे में एक जगह कहा है :

> "राष्ट्रीयता व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिक अनुभूति है। यह अनुभूति जिसमें होती है, वे सब यह अनुभव करते हैं कि वे एक-दूसरे के सगे संबंधी हैं। राष्ट्रीयता की भावना दुधारी तलवार की तरह होती है। यह अपने संबंधियों के प्रति मैत्री-भाव, और जो लोग संबंधी नहीं है, उनके प्रति अमैत्री-भाव जागृत करती है। यह 'वर्ण चेतना' की भावना, जो उन सभी लोगों को परस्पर एक सूत्र में बांधती है जो खून के रिश्ते की सीमा में आते हैं और जो इस सीमा में नहीं आते, उनसे पृथक कर देती है। यह अपने वर्ग से जुड़े रहने की इच्छा है। यह दूसरे वर्ग से न जुड़ने की इच्छा है। जिसे राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय भावना कहा जाता है, उसका यही सार है। अपने ही वर्गों से जुड़े रहने की इच्छा है। यह दूसरे वर्ग से न जुड़ने की इच्छा है। जिसे राष्ट्रीयता की भावना कहा जाता है, उसका यही सार है। अपने ही वर्गों से जुड़े रहने की यह इच्छा, जैसा कि मैंने कहा, व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिक भावना है और जो बात खासतौर से याद रखने की है, वह यह है कि अपने ही वर्ग से जुड़े रहने की इच्छा का भूगोल-संस्कृति या आर्थिक या सामाजिक संघर्ष से कोई सरोकार नहीं होता। कहीं भौगोलिक एकता हो सकती है, लेकिन तो भी जुड़ने की इच्छा नहीं हो सकती। आर्थिक संघर्ष और वर्ग विभाजन हो सकते हैं, लेकिन जुड़े रहने की इच्छा रहे। कहना यह है कि राष्ट्रीयता मुख्यतः भूगोल, संस्कृति का विषय नहीं है।"

वैदिक काल की अवनति[1] के दिनों, शूद्रों और स्त्रियों का स्थान बहुत नीचे हो गया था। बौद्ध धर्म के अभ्युदय ने इन दोनों की स्थिति में एक महान् परिवर्तन ला दिया। संक्षेप में कहें तो यह कि बौद्ध काल में शूद्र संपत्ति, विद्या अर्जित कर सकता था और यहां तक कि वह राजा भी बन सकता था। बल्कि वह समाज में सर्वोच्च स्थान तक पहुंच सकता था, जो वैदिक शासन में ब्राह्मण के अधिकार में होता था। बौद्ध भिक्षु-व्यवस्था वैदिक ब्राह्मण-व्यवस्था का प्रतिरूप थी। ये दोनों ही व्यवस्थाएं अपने-अपने धर्म की व्यवस्थाओं में पद और प्रतिष्ठा की दृष्टि से एक-दूसरे के समान थीं। वैदिक काल में शूद्र ब्राह्मण बनने की कभी आकांक्षा नहीं कर सकता था, लेकिन वह भिक्षु बन सकता था और उसी पद और प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकता था, जो ब्राह्मण को प्राप्त थी। वेदों के ब्राह्मणवाद में शूद्रों का प्रवेश वर्जित था, लेकिन भिक्षुओं के बौद्ध धर्म के द्वार शूद्रों के लिए खुले हुए थे। बहुत से शूद्रों ने, जो वैदिक काल में ब्राह्मण नहीं बन सके, बौद्ध धर्म में भिक्षु बने और उन्होंने ब्राह्मण के समान पद प्राप्त किया। इसी प्रकार के परिवर्तन स्त्रियों के संबंध में भी मिलते हैं। बौद्ध धर्म के अधीन उसे स्वतंत्र स्थान मिला। विवाह हो जाने पर भी उसका स्थान स्वतंत्र रहा। बौद्ध धर्म में विवाह एक संविदा था। बौद्ध

---

1. अवनति के दिनों से मेरा तात्पर्य उस समय से है, जब ब्राह्मणों ने चातुर्वर्ण्य के संतुलन को अपनी श्रेष्ठता का दावा कर बिगाड़ना शुरू कर दिया था।

धर्म के अनुसार वह संपत्ति अर्जित कर सकती थी। वह विद्या अर्जित कर सकती थी और जो सबसे विलक्षण बात थी, वह यह कि बौद्ध धर्म में भिक्षुणी बन सकती थी और उसी पद और प्रतिष्ठा को प्राप्त कर सकती थी, जो ब्राह्मण को प्राप्त थी। शूद्रों और स्त्रियों को ऊंचा स्थान दिलाने में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि बौद्ध धर्म के विरोधी इसे शूद्र धर्म (अर्थात निम्न वर्ग के लोगों का धर्म) कहते थे।

निस्संदेह इस सबसे ब्राह्मणों को बड़ी खीज होती होगी। इससे ब्राह्मणों को कितनी अधिक खीज हुई, यह उनके उस बर्बर व्यवहार से स्पष्ट है, जो उन्होंने बौद्ध धर्म पर विजय पाने के बाद शूद्रों और स्त्रियों की उस उच्च स्थिति को पूर्ण ध्वस्त करने के लिए अपनाया जहां ये बौद्ध धर्म के जीवनदायी सिद्धांतों के आधार पर क्रांतिकारी परिवर्तन के कारण प्रतिष्ठित हुए थे।

इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर अगर हम शूद्रों के बारे में मनु के बनाए गए नियमों पर विचार करें, तो इनकी अमानवीयता और निर्दयता को देखकर कंपकंपी आ जाती है। मैं यहां उनमें से कुछ को कुछ फुटकर शीर्षकों के अंतर्गत उद्धृत कर रहा हूं।

मनु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ग के गृहस्थों से कहता है:

4.61. वह उस देश में न रहें, जहां के शासक शूद्र हैं।...

इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उस देश को छोड़कर चले जाएं जहां शूद्र शासक है। इसका यही अर्थ हो सकता है कि अगर शूद्र शासक बन जाए तो उसे मार डालना चाहिए। शूद्र को न केवल राजा होने के अयोग्य समझना चाहिए, बल्कि उसे आदर के भी योग्य नहीं समझना चाहिए। मनु नियम बनाता है:

11.24. ब्राह्मण यज्ञ के लिए (अर्थात धार्मिक कार्यों के लिए) शूद्र से भिक्षा नहीं मांगेगा।

शूद्र के साथ सभी विवाह संबंध गैर-कानूनी कर दिए गए। तीनों उच्च वर्गों में से किसी भी वर्ग की स्त्री के साथ विवाह निषिद्ध कर दिया गया। शूद्र उच्च वर्गों की स्त्री के साथ कोई संबंध नहीं रख सकता था और यदि कोई शूद्र उसके साथ जार कर्म करता है, तब मनु ने उसे ऐसा अपराध घोषित किया, जिसके लिए प्राण-दंड दिया जाए।

8.374. किसी शूद्र ने उच्च वर्ग की रक्षित[1] या अरक्षित स्त्री के साथ संभोग किया है, उसे निम्नलिखित रीति से दंड दिया जाए, यदि वह अरक्षित थी, तब इसका लिंग कटवा दिया जाए, यदि वह रक्षित थी तब उसे प्राण-दंड दिया जाए और उसकी संपत्ति जब्त कर ली जाए।

---

1. रक्षित का अर्थ है संबंधियों के संरक्षण में। आरक्षित का अर्थ है-अकेले।

मनु इस बात पर बल देता है कि शूद्र नीच रहेगा, पद के अयोग्य, अशिक्षित, संपत्ति-रहित और निंदित व्यक्ति रहेगा, उसे और उसकी संपत्ति का बलपूर्वक उपयोग किया जा सकेगा। पद के बारे में मनु निर्धारित करता है:

> 8.20. कोई भी ब्राह्मण जो जन्म से ब्राह्मण है, अर्थात जिसने न तो वेदों का अध्ययन किया है और न वेदों द्वारा अपेक्षित कोई कर्म किया है, वह राजा के अनुरोध पर उसके लिए धर्म का निर्वचन कर सकता है, अर्थात न्यायाधीश के रूप में कार्य कर सकता है, लेकिन शूद्र यह कभी भी नहीं कर सकता (चाहे वह कितना ही विद्वान क्यों न हो)।
>
> 8.21. जिस राज्य में उसका राजा दर्शक की भांति केवल देखता रहता है और उसी की ही उपस्थिति में शूद्र न्याय करता है, वह राज्य उसी प्रकार अधोगति को प्राप्त होता है जिस प्रकार गाय दलदल में नीचे धंस जाती है।
>
> 8.272. अगर कोई शूद्र अभिमानपूर्वक ब्राह्मण को धर्मोपदेश देने का साहस करता है, तो राजा उसके मुंह और कानों में खौलता हुआ तेल डलवाएं।

प्राचीन-काल में वेदों के अध्ययन का तात्पर्य विद्या था। मनु घोषित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को वेदों के अध्ययन करने का अधिकार नहीं है और यह अधिकार कुछ लोगों को ही प्राप्त है। मनु शूद्रों को वेदों के अध्ययन करने का अधिकार नहीं देता। वह यह विशेषाधिकार केवल तीन उच्च वर्णों को देता है। वह शूद्रों को अध्ययन करने से वंचित ही नहीं करता बल्कि उन व्यक्तियों के विरुद्ध दंड की व्यवस्था भी करता है जो शूद्रों को वेदों का अध्ययन करने में सहायता करेगा। जिस व्यक्ति को वेदों के अध्ययन करने का विशेषाधिकार प्राप्त है, उसके लिए मनु निर्देश देता है:

> 4.99. उसे शूद्रों की उपस्थिति में वेदों का कभी भी अध्ययन नहीं करना चाहिए।

और निर्धारित करता है:

> 3.156. जो शूद्र शिष्यों को शिक्षा देता है और जिसका गुरु कोई शूद्र है, वह श्राद्ध में निमंत्रित करने के अयोग्य हो जाता है।

मनु के बाद के स्मृतिकार तो वेदों का अध्ययन करने पर शूद्रों के साथ किए जाने वाले निर्दय व्यवहार में उनसे भी आगे निकल गए। उदाहरण के लिए, कात्यायन का यह नियम है कि जो शूद्र किसी को वेद पढ़ते हुए सुन लेता है या वेद के एक शब्द का भी उच्चारण करने का साहस करता है, राजा उसकी जिह्वा को चिरवा देगा और उसके कानों में पिघलता हुआ जस्ता डलवाएगा।

संपत्ति के विषय में मनु कोई दया का व्यवहार नहीं करता और वह हठी भी है। मनु

की संहिता के अनुसार :

> 10.129. किसी भी शूद्र को संपत्ति का संग्रह नही करना चाहिए, चाहे वह इसके लिए कितना ही समर्थ क्यों न हो, क्योंकि जो शूद्र धन का संग्रह कर लेता है, उसे इसका मद हो जाता है और वह अपने उद्धत या उपेक्षापूर्ण व्यवहार से ब्राह्मणों को कष्ट पहुंचाता है।

इस नियम का प्रयोजन नियम की अपेक्षा कहीं अधिक उग्र था। वस्तुतः मनु को यह विश्वास नहीं था कि शूद्र को संपत्ति अर्जित करने से रोकने के लिए यह निषेधाज्ञा यथेष्ट होगी। शूद्र को संपत्ति एकत्र कर ब्राह्मण की अवज्ञा करने का अवसर ही न मिले, यह सुनिश्चित करने के लिए मुन ने अपनी संहिता में एक और खंड जोड़ दिया। इसमें उसने घोषित किया:

> 8.417. यदि किसी ब्राह्मण का जीवन संकटग्रस्त हो, वह निस्संकोच शूद्र के धन को अधिग्रहीत कर ले।

मनु निर्धारित करता है कि शूद्र का धन ही नहीं, बल्कि शूद्र का श्रम भी अधिग्रहीत किया जा सकेगा। मनु की निम्न व्यवस्था की तुलना करें:

> 8.413. ब्राह्मण शूद्र को वेतन देकर या वेतन न देकर उसे दास कर्म करने के लिए बाध्य कर सकता है क्योंकि ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सेवा के लिए ही शूद्रों की सृष्टि की है।

मनु शूद्र से यह अपेक्षा करता है कि वह बोल-चाल में नीच होगा। वह अपनी बोलचाल में किस सीमा तक नीच हो सकता है, यह मनु द्वारा की गई निम्नलिखित व्यवस्थाओं से देखा जा सकता है:

> 8.270. जो शूद्र द्विज व्यक्ति की उसे दारुण वचनों से संबोधित कर अवमानना करता है, उसकी जीभ कटवा देनी चाहिए, क्योंकि वह नीच से उत्पन्न है।
>
> 8.271. यदि वह (द्विज) और उसकी जाति का नाम धृष्टतापूर्वक लेता है, तब उसके मुख में दस अंगुल लंबी दहकती हुई लोहे की कील डाल देनी चाहिए।

मनु का उद्देश्य शूद्र को केवल नीच बनाकर ही नहीं, बल्कि पूरी तरह तिरस्कार के योग्य बना देना था। मनु शूद्र को अपने बड़े-बड़े नाम रखने की अनुमति नहीं देता। अगर मनु के ये अकाट्य प्रमाण नहीं उपलब्ध होते, तब यह विश्वास करना कठिन हो जाता कि ब्राह्मणवाद शूद्र पर अत्याचार करने में इतना अधिक कठोर और दया-शून्य था। विभिन्न वर्ग अपने-अपने बच्चों के नाम किस प्रकार रखें, इस संबंध में मनु के नियम पर विचार कीजिए :

2.31. ब्राह्मण के नाम का पहला भाग ऐसा हो जो शुभ हो, क्षत्रिय का शक्ति से संबंधित, वैश्य का संपत्ति से और शूद्र का पहला नाम ऐसा हो जो तिरस्कारणीय भाव का सूचक हो

2.32. ब्राह्मण के नाम का दूसरा भाग ऐसा हो जिसमें सुख का भाव निहित हो, क्षत्रिय का ऐसा हो जिसमें रक्षा का भाव, और वैश्य का ऐसा हो जिसमें समृद्धि का भाव तथा शूद्र का ऐसा हो जो सेवा करने का भाव सूचित करे।

इन सारे अमानवीय नियमों का आधार वह सिद्धांत है, जिसका प्रतिपादन मनु ने शूद्रों के संबंध में किया था। *स्मृति में आरंभ में मनु जोरदार शब्दों में और बिना हिचक कहता है:*

1.91. ब्रह्मा ने शूद्र के लिए केवल एक कर्म निर्धारित किया है कि वह विनम्र हो कर इन तीन अन्य जातियों (अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा करे।

मनु ने यह निश्चित करने के बाद कि शूद्र का जन्म दास बनने के लिए हुआ है, तद्नुसार अपने नियम बनाए जिससे उसे नीच बने रहने के लिए बाध्य किया जा सके। बौद्ध काल में शूद्र न्यायाधीश,, पुजारी, और यहां तक कि राजा बनने की इच्छा कर सकता था जो उच्चतम पदा था और जहां तक पहुंचने की उसकी इच्छा हो सकती थी। इसकी तुलना उस आदर्श से कीजिए जो मनु शूद्र के सम्मुख प्रस्तुत करता है तो आपको ब्राह्मणवाद के अंतर्गत उसके लिए नियम किए गए भाग्य का अंदाजा लग जाएगा।

10.121 यदि कोई ब्राह्मणों की सेवा कर के अपना जीवन निर्वाह करने में असमर्थ है। तब वह क्षत्रिय की सेवा करे या वह किसी धन वैश्य की सेवा कर अपना जीवन-निर्वाह करे।

10.122. लेकिन शूद्र ब्राह्मण की सेवा स्वर्ग अथवा दोनों इस जीवन और इसके बाद जीवन के लिए करे क्योंकि जो ब्राह्मण का सेवक कहलाता है, वह कृतकृत्य हो जाता है।

10.123. शूद्र का उत्तम कर्म केवल ब्राह्मणों की सेवा करना कहा गया है, क्योंकि इसके अतिरिक्त वह जो कुछ करता है, उसका उसे कुछ भी फल नहीं मिलता।

10.124 ब्राह्मणों के चाहिए कि वह उस शूद्र की योग्यता योग्यता, उसके उत्साह और उनकी संख्या पर विचार कर जिनको उसे आश्रय देना है, अपने परिवार (संपत्ति) में से उसकी जीविका निश्चित करें।

10.125. उसके लिए बचा हुआ अन्न और पुराने खाट-बर्तन आदि दिए जाएं।

मनु जितना शूद्र के प्रति कठोर है, स्त्रियों के प्रति वह उससे कम कठोर नहीं है।

वह स्त्रियों के बारे में ऊंची धारणा नहीं रखता। मनु कहता है:

2.213. इस संसार में स्त्रियों का स्वभाव पुरुषों को मोहित करना है। इस कारण बुद्धिमान स्त्रियों के बीच अरक्षित नहीं रहते।

2.214. क्योंकि स्त्रियां इस संसार में केवल मूर्ख को ही नहीं, बल्कि विद्वानों को भी पथभ्रष्ट करने और उन्हें काम और क्रोध का दास बना देने में सक्षम हैं।

2.215. कोई किसी की माता, बहन या पुत्री के साथ एकांत में न बैठे, क्योंकि इंद्रियां शक्तिशाली होती हैं और विद्वान को भी अपने वश में कर लेती हैं।

9.14. स्त्रियां रूप की अपेक्षा नहीं करतीं, न उनका ध्यान आयु पर रहता है। वह यह सोचकर कि (यह ही पर्याप्त है कि) वह पुरुष है, सुंदर या कुरूप के साथ संभोग कर बैठती हैं।

9.15. चाहे इस संसार में जितनी भी रक्षा क्यों न की जाए, पुरुषों के प्रति अपनी काम-भावना, अपनी चंचल प्रकृति और अपनी स्वाभाविक हृदयहीनता के कारण वह अपने पति के प्रति निष्ठारहित हो जाती हैं।

9.16. उनका ऐसा स्वभाव जान कर, जो ब्रह्मा ने उन्हें अपनी सृष्टि के समय दिया है, प्रत्येक मनुष्य को उनकी रक्षा के लिए विशेष अमल करना चाहिए।

9.17. मनु ने स्त्रियों की सृष्टि करते समय इनमें (अपनी) शैया, (अपने) स्थान और (अपने) आभूषणों के लिए प्रेम, वासना, क्रोध, बेइमानी, ईर्ष्या और दुराचरण निहित किया है।

स्त्रियों के प्रति मनु के ये नियम अकाट्य हैं। स्त्रियां किसी भी परिस्थिति में स्वतंत्र नहीं हैं। मनु के मतानुसार :

9.2. स्त्रियों को उनके परिवारों के पुरुषों द्वारा दिन-रात अधीन रखा जाना चाहिए और यदि वे अपने को विषयों में आसक्त करें तो उन्हें अपने नियंत्रण में अवश्य रखें।

9.3. स्त्री की रक्षा उसके बचपन में उसका पिता करता है, युवावस्था में उसका पति, जब उसका पति दिवंगत हो जाता है, तब उसके पुत्र (उसकी रक्षा करते हैं)। स्त्री कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है।

9.5. स्त्रियों की विशेषकर रक्षा दुष्प्रवृत्ति से की जानी चाहिए, जो चाहे कितनी भी नगण्य (क्यों न प्रतीत हों), क्योंकि यदि उनकी रक्षा नहीं की गई तो वे दोनों परिवारों के क्लेश का कारण बनती हैं।

9.6. इसे सभी वर्णों का उत्तम धर्म समझते हुए, दुर्बल पतियों को भी अपनी पत्नी की रक्षा करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

5.147. लड़की को, नवयुवती को या वृद्धा को भी अपने घर में कोई काम स्वतंत्रापूर्वक नहीं करना चाहिए।

5.148. स्त्री को बचपन में अपने पिता, युवावस्था में अपने पति और जब उसका पति दिवंगत हो जाए तब अपने पुत्रों के अधीन रहना चाहिए, स्त्री को कभी भी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए।

5.149. स्त्री को अपने पिता, पति या पुत्रों से अपने को अलग करनें की इच्छा नहीं करनी चाहिए, इनको त्याग कर वह दोनों परिवारों (उसका परिवार और पति का परिवार) को निंदित कर देती है। स्त्री को अपना पति छोड़ देने का अधिकार नहीं मिल सकता।

9.45. पति अपनी पत्नी के साथ एक इकाई है। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्री का एक बार विवाहित होने के बाद कोई विच्छेद नहीं हो सकता।

बहुत से हिंदू यहीं रुक जाते हैं, मानों विवाह-विच्छेद के बारे में मनु के नियम का यही सब कुछ सार हो और इसे आदर्श कहते रहते है। वह यह सोच कर अपने विवेक पर पर्दा डाल देते हैं कि मनु ने विवाह को संस्कार की तरह माना है और इसलिए उसने विच्छेद की अनुमति नहीं दी। यंह बात निश्चय ही सत्य से कोसों दूर है। मनु के विच्छेद-नियम का बिल्कुल भिन्न उद्देश्य था। यह पुरुष को स्त्री से बांध देने की बात नहीं, बल्कि यह स्त्री को पुरुष से बांध देने और पुरुष को स्वंतत्र रखने की बात थी, क्योंकि मनु पुरुष को अपनी पत्नी को त्याग देने से नहीं रोकता। वस्तुतः वह उसे अपनी पत्नी को केवल छोड़ देने की अनुमति नहीं, बल्कि उसे बेच देने की भी अनुमति देता है। वह पत्नी को स्वतंत्र न रहने का नियम बनाता है। देखिए, मनु क्या कहता है:

9.46. न तो बेचने और न त्याग देने से कोई स्त्री अपने पति से मुक्त होती है।

इसका अर्थ यह है कि कोई स्त्री बेचे या त्याग दिए जाने से किसी दूसरे व्यक्ति की, जिसने उसे खरीद लिया है या त्याग देने के बाद प्राप्त किया है, वैध पत्नी नहीं हो सकती। अगर यह असंगत नहीं है, तो कुछ भी असंगत नहीं हो सकता। लेकिन मनु अपने नियम के परिणामस्वरूप होने वाले न्याय या अन्याय के बारे में चिंतित नहीं था। वह स्त्री को उस स्वतंत्रता से वंचित कर देना चाहता था जो उसे बौद्ध काल में थी। वह यह जानता था कि स्त्री द्वारा अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने या शूद्र के साथ विवाह करने की उसकी इच्छा होने से वर्ण-व्यवस्था नष्ट हो गई थी। मनु स्त्री की स्वतंत्रता से क्रुद्ध था और इसे रोक कर उसने उसे उसकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया।

संपत्ति के मामले में पत्नी का स्थान मनु द्वारा दास के स्तर पर लाकर पटक दिया गया।

> 9.146. पत्नी, पुत्र और दास, इन तीनों के पास कोई संपत्ति नहीं हो। वे जो संपत्ति अर्जित करें, वह उसकी होती हैं, जिसकी वह पत्नी/पुत्र/दास हैं।

परिवार में रहते हुए अगर वह विधवा हो जाए, तब मनु उसके लिए निर्वाह-योग्य व्यय की अनुमति देता है। और अगर उसका पति अपने परिवार से अलग था, तब उसे उसके पति की संपित्त में से विधवा को संपत्ति मिलेगी। लेकिन मनु उसे संपत्ति पर अधिकार की अनुमति नहीं देता।

मनु के नियमों के अधीन स्त्री को शारीरिक दंड दिया जा सकता है और मनु पति को अपनी पत्नी को मारने-पीटने की अनमुति देता है।

> 8.299. स्त्री, पुत्र, दास, शिष्य और छोटा भाई यदि अपराध करे, तब रस्सी से या बांस की छड़ी से पीटना चाहिए।

अन्य परिस्थितियों में मनु स्त्री का स्थान शूद्र के स्थान के समान मानता है। उसे वेद का अध्ययन मनु द्वारा उसी प्रकार निषिद्ध किया गया जिस प्रकार शूद्र को।

> 2.66. स्त्री के लिए भी संस्कारों का किया जाना जरूरी है और वे किए जाने चाहिए। लेकिन ये वेद मंत्रो के बिना किए जाने चाहिए।

> 9.18. स्त्रियों को वेद पड़ने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए उनके संस्कार वेद-मंत्रों के बिना किए जाएं। चूंकि स्त्रियों को वेद को जानने का अधिकार नहीं है इसलिए उन्हें धर्म का कोई ज्ञान नहीं हो। पाप दूर करने के लिए वेद-मंत्रों का पाठ उपयोगी है। चूंकि स्त्रियां वेद-मंत्रों का पाठ नहीं कर सकती, वे उसी प्रकार अपवित्र हैं जिस प्रकार असत्य अपवित्र होता है।

ब्राह्मण मत के अनुसार, यज्ञ करना धर्म का सार है, फिर भी मनु स्त्रियों को यज्ञ करने की अनुमति नहीं देता। मनु निदेश देता है:

> 11.36. स्त्री वेद विहित दैनिक अग्निहोत्र नहीं करेगी।
>
> 11.37. यदि वह करती है, तब वह नरक में जाएगी।

मनु स्त्री को ब्राह्मण पुरोहित की सहायता व उसकी सेवा ग्रहण करने से वर्जित करता है, जिससे वह यज्ञ-कर्म न कर सके।

> 4.205. ब्राह्मण उस यज्ञ-कर्म में दिए गए भोजन को ग्रहण न करे, जो किसी स्त्री द्वारा किया गया हो।

4.206. जो यज्ञ कर्म स्त्रियों द्वारा किए जाते हैं, वे अशुभ और देवताओं को अस्वीकार्य होते हैं। अतः उसमें भाग नहीं लेना चाहिए।

स्त्रियों को कोई बौद्धिक कार्य नहीं करना चाहिए, उनको स्वतंत्र इच्छा नहीं करनी चाहिए और न ही उन्हें अपने विचारों में स्वतंत्र होना चाहिए। वह कोई अन्य धर्म, जैसे बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं कर सकतीं। यदि वह आजीवन उसका पालन करती हैं तब उन्हें जल का तर्पण नहीं किया जाएगा, जो अन्य मृतकों के लिए किया जाता है।

अंत में, जीवन के उस आदर्श को भी देखिए जो मनु स्त्रियों के लिए निर्धारित करता है। इसे उसी के शब्दों में कहना उचित होगाः

5.151. वह आजीवन उसकी आज्ञा का पालन करेगी जिसे उसका पिता, या उसका भाई अपने पिता की अनुमति से उसे सौंप देगा, और जब वह दिवंगत हो जाए तब उसके श्राद्ध आदि कर्म का उल्लंघन नहीं करेगी।

5.154. चाहे पति सदाचार से हीन हो, या वह अन्य स्त्री में आसक्त हो, या वह सद्गुणों से ही हीन हो, तो भी वह पतिव्रता स्त्री के द्वारा देवता के समान पूज्य होता है।

5.155. स्त्री पति से पृथक कोई यज्ञ, कोई व्रत या उपवास न करे; यदि स्त्री अपने पति का अनुपालन करती है, तब वह इस कारण ही स्वर्ग में पूजित होती है।

अब उन विशिष्ट सूत्रों पर ध्यान दीजिए, जो उस आदर्श के आधार हैं जिसे मनु ने स्त्रियों के लिए प्रस्तुत किया है।

5.153. जिस पति ने किसी का वरण अपनी पत्नी के रूप में पवित्र मंत्रों के उच्चारण के बाद किया है, वह उसके लिए ऋतुकाल में तथा ऋतुभिन्न काल में भी नित्य ही इस लोक में तथा परलोक में सुख देने वाला होता है।

5.150 उसे सर्वदा प्रसन्न, गृह-कार्य में चतुर, घर में बर्तनों को स्वच्छ रखने में सावधान तथा खर्च करने में मितव्ययी होना चाहिए।

हिंदू लोग इसे स्त्रियों के लिए सर्वोच्च आदर्श समझते हैं!

शूद्रो और स्त्रियों के बारे में इन नियमों का कठोर होना यह प्रमाणित करता है कि बौद्ध-काल में इन वर्गों के अभूतपूर्व अभ्युदय ने ब्राह्मणों को रुष्ट ही नहीं किया, बल्कि उनकी स्थिति इन्हें असहनीय हो हो गई थी। यह ऊपर से नीचे तक उनकी पवित्र सामाजिक व्यवस्था को पूरी तरह उलट देना था। जिसका स्थान प्रथम था, वह अंतिम हो गया और जो अंतिम स्थान पर था, वह प्रथम स्थान पर आ गया था। मनु के नियम से यह भी स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों ने किस प्रकार जान-बूझकर शूद्रों और स्त्रियों को पदावनत कर उनकी

स्थिति पर लाने के लिए अपनी राजनैतिक शक्ति का उपयोग किया। विजयोन्मत्त ब्राह्मणों ने पुराने आदर्श के अनुसार अर्थात इनको दसावत बनाए रख कर शूद्रों और स्त्रियों के विरुद्ध जोरदार अभियान शुरु किया और वे इनको पराधीन बनाने में सफल भी हुए। शूद्र तीनों उच्च वर्ण के दास और स्त्रियां अपने-अपने पतियों की गुलाम बना दी गईं बौद्ध धर्म पर विजय पाने के बाद ब्राह्मणवाद ने जो काले कारनामे किए, उनमें सबसे ज्यादा काला कारनामा यही था। इतिहास में इसके जोड़ की कोई मिसाल नहीं मिलती जहां बलपूर्वक अधिकार जमाने वाली किसी सत्ता ने अपने वर्ग के आधिपत्य को बनाए रखने के लिए किसी को इस प्रकार पदावनत करने के इतने घृणित कार्य किए हों। ब्राह्मणवाद ने पददलित करने का जो कार्य किया, उसे दुर्भाग्यवश उसमें पूरी सफलता नहीं मिली। यह 'स्त्री' और 'शूद्र' जैसे शब्दों तक रह गई। जो लोग अपने पातक कर्म की थोड़ी बहुत झलक पाना चाहते हैं, वह इन दोनों शब्दों के पीछे खड़ी भीड़ को देखें। ये शब्द जनसंख्या के कितने बड़े भाग को अपने में समेट लेते हैं? स्त्रियां सारी जनसंख्या का आधा भाग है। जो कुछ बचा, उसमें दो तिहाई तक शूद्र हैं। ये दोनों मिलकर सारी जनसंख्या कर 75 प्रतिशत तक होते हैं,। यह वह विशाल जनसमूह है जिसे ब्राह्मणवाद पर पदावनत कर 75 प्रतिशत लोगों से उनके जीने का, उनकी आजादी का और उनके सुख-चैन से रहन का अधिकार छीन लिया गया, जिसके कारण अगर भारत एक मृत राष्ट्र नहीं तो ह्रासशील राष्ट्र बनकर रहा गया।

वर्गीकृत असमानता का सिद्धांत सारी *मनुस्मृति* में छाया हुआ है। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां मनु ने वर्गीकृत असमानता के सिद्धांत को आधार न बनाया हो। इस सिद्धांत की पूरी व्याख्या करने के लिए सारी *मनुस्मृति* को पुनः उद्धत करना होगा। मनु के कारण वर्गीकृत असमानता का सिद्धांत किस तरह सामाजिक जीवन में रच-पच गया है, इसे स्पष्ट करने के लिए मैं कुछ ही क्षेत्रों की चर्चा करुंगा। विवाह को लीजिए और मनु के नियमों को देखिए :

> 3.13. शूद्र स्त्री केवल शूद्र की पत्नी बन सकती है, वह और वैश्य स्त्री वैश्य पुरुष की, शूद्र और वैश्य स्त्री क्षत्रिय पुरुष की, तथा यह तीनों वर्णों की स्त्रियां तथा ब्राह्मणी-ब्राह्मण की पत्नी हो सकती है।

> अब अतिथियों के सत्कार के बारे में मनु के नियम लीजिए:

> 3.110. लेकिन क्षत्रिय जो ब्राह्मण के घर आता है, अतिथि नहीं कहलाता, न वैश्य न शूद्र और न कोई मित्र, न संबंधी, न ही गुरु।

> 3.111. लेकिन क्षत्रिय अगर ब्राह्मण के घर अतिथि के रूप में आ जाए, तब गृहस्थ उसे उक्त ब्राह्मणों के भोजन करने के बाद अपनी इच्छानुसार भोजन कराए।

3.112. यदि कोई वैश्य और कोई शूद्र उसके घर अतिथि के रूप में आ जाए, तब वह उसे दया भाव से अपने सेवकों के साथ भोजन करा सकता है।

ब्राह्मण के घर में ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी और को अतिथि बनने का गौरव नहीं मिल सकता।[1] अगर कोई क्षत्रिय अतिथि के रूप में ब्राह्मण के घर आता है, तब उसे सभी ब्राह्मणों के बाद भोजन कराना चाहिए और अगर वैश्य और शूद्र अतिथि के रूप में आएं, तब उन्हें सब लोगों के बाद और केवल नौकरों के साथ भोजन कराना चाहिए।

संस्कारों के बारे में मनु के नियम देखिए :

10.126. शूद्र को यह अधिकार नहीं है कि उसका संस्कार हो।

10.68. यह विधान है कि इन दोनों (अर्थात जो मिश्रिम जाति के हैं) में से कोई भी संस्कार के योग्य नहीं है, पहला वह जो नीच माता-पिता से उत्पन्न होने के कारण जातियों के क्रम के प्रतिलोम हैं और नीच हैं।

2.66. स्त्रियों के सारे संस्कार[2] उनकी काया को पवित्र करने के लिए उचित समय पर तथा उचित क्रम से किए जाने चाहिए। लेकिन यह पवित्र मंत्रों के उच्चारण के बिना हो।

मनु और आगे निर्धारित करता है:

6.1. द्विज स्नातक जो इस प्रकार गृहस्थाश्रम के नियमों के अनुसार जीवनयापन कर चुका है, संकल्प-मन हो और अपनी इंद्रियों को अपने अधीन कर (नीचे दिए गए नियमों का विधिवत् पालन करते हुए) वन में रहे।

6.33. और इस प्रकार (पुरुष की सामान्य आयु) का तृतीयांश वन में बिताने के बाद वह सभी सांसारिक विषयों में आसक्ति को त्याग कर अपनी आयु का चतुर्थांश संन्यासी के रूप में व्यतीत करे।

मनु ने वर्गीकृत असमानता को न्याय-व्यवस्था का भी आधार बनाया है। उदाहरण के लिए केवल दो, मानहानि व दुर्व्यवहार और मारपीट संबंधी कानून लीजिए :

8.267 ब्राह्मण से कटु वचन बोलने वाले क्षत्रिय को सौ पण, वैश्व को डेढ़ सौ या दो सौ पण का दंड और शूद्र को शारीरिक दंड दिया जाए।

---

1. मनु अतिथि शब्द का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में करता है और इसका अर्थ उस ब्राह्मण से है, जो केवल एक रात्रि के लिए रुकता है। देखिए 3.102

2. उपनयन के अतिरिक्त सभी संस्कार, जो स्त्रियों के लिए वर्जित है।

8.268. क्षत्रिय से कटु वचन बोलने वाले ब्राह्मण को पचास पण, वैश्य के मामले में पच्चीस पण और शूद्र के मामले में बारह पण का दंड दिया जाए।

8.269. समान जाति (वर्ण) वाले से कटु वचन बोलने वाले द्विज को बारह पण तथा ऐसे वचन बोलने पर जो उच्चारण योग्य नहीं है, प्रत्येक अपराध के लिए दुगना दंड दिया जाना चाहिए।

8.276. ब्राह्मण और क्षत्रिय द्वारा एक-दूसरे को अपवचन कहने पर विवेकशील राजा ब्राह्मण को सबसे कम आर्थिक दंड और क्षत्रिय को सबसे मध्यम आर्थिक दंड दे।

8.277. वैश्य और शूद्र को भी इसी प्रकार उनकी अपनी जातियों के अनुसार दंड देना चाहिए लेकिन उसकी (शूद्र की) जीभ नहीं काटनी चाहिए, यही निर्णय है।
8.279. नीची जाति का व्यक्ति अपने जिस किसी भी अंग से (तीन उच्च जातियों के) व्यक्ति को क्षति पहुंचाएं, वह अंग ही काट दिया जाए, यह मनु का आदेश हैं।
8.280. जो अपना हाथ उठाए या लाठी या छड़ी ले, उसका हाथ काट दिया जाए, अगर वह क्रुद्ध हो अपने पैर से मारे, तब उसका पैर काट दिया जाए। यह मनु का आदेश है।

वर्गीकृत असमानता का सिद्धांत सभी जगह मिलता है। यह सामाजिक व्यवस्था के लिए इतना पक्का हो गया कि जहां कहीं मनु इसे अपना आधर बनाने से चूक गया वहां उनके अनुयायियों ने इसे ला देने में कोई भी चूक नहीं की। उदाहरणार्थ, मनु ने दास प्रथा को मान्यता दी थी, लेकिन वह यह सुनिश्चित नहीं कर पाया था कि वर्गीकृत असमानता का सिद्धांत दास प्रथा का आधार बन सकता है या नहीं।

कहीं यह समझ जाएं कि वर्गीकृत असमानता दासत्व का आधार नहीं बन सकती और ब्राह्मण शूद्र का दास बन सकता है। याज्ञवल्क्य इस संदेह को शीघ्र ही स्पष्ट कर देते हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था :

14.183. दासत्व का आधार वर्णों का अवरोही क्रम है न कि आरोही क्रम।

याज्ञवल्क्य स्मृति की शंका में प्रज्ञानेश्वर ने अपना एक उदाहरण देकर उक्त कथन की पुष्टि की है। वह लिखते हैं:

ब्राह्मण और शेष वर्णों आदि में दासत्व का आधार अवरोही क्रम में अनुलोम्येन होगा। इस प्रकार क्षत्रिय और शेष वर्ण ब्राह्मण का दास हो सकता है, वैश्य और शूद्र क्षत्रिय का, और शूद्र वैश्य का दास हो सकता है। इस प्रकार दास प्रथा अवरोही क्रम मे व्यवहृत होगी।

समानता और असमानता की भाषा में कहा जाए तो इसका अर्थ है कि चूंकि ब्राह्मण किसी का भी दास नहीं हो सकता और उसे किसी भी वर्ग के व्यक्ति को अपने दास के रूप में रखने का अधिकार है अतः वह उच्चतम है। चूंकि शूद्र को हर वर्ग अपने दास के रूप में रख सकता है और वह शूद्र के अतिरिक्त किसी को भी अपना दास नहीं बना सकता अतः वह निम्नतम है। क्षत्रिय और वैश्य को जो स्थान दिया गया है, उससे वर्गीकृत असमानता की प्रणाली लागू हो जाती है। चूंकि क्षत्रिय ब्राह्मण से हीन है इसलिए वह उन्हें अपना दास बनाकर रख सकता है, वैश्यों और शूद्रों को क्षत्रिय को अपने दास के रूप में रखने का कोई अधिकार नहीं है। इसी प्रकार वैश्य, जो ब्राह्मणों और क्षत्रियों से हीन है और जिसे वे अपना दास बना सकते हैं। लेकिन वह इनमें से किसी को भी अपना दास नहीं बना सकता, वह गर्व कर सकता है कि वह कम से कम शूद्र से तो श्रेष्ठ है और उसे वह अपना दास बना सकता है। लेकिन शूद्र वैश्य को अपना दास नही बना सकता।

यही वर्गीकृत असमानता का सिद्धांत है, जिसे ब्राह्मणवाद ने समाज की हड्डियों और मज्जा में घोल दिया। अन्याय को समाप्त करने के लिए समाज को पंगु बनाने के लिए इससे अधिक बुरा कुछ और नहीं किया जा सकता था। हालांकि इसके प्रभाव स्पष्ट रूप से नजर नहीं आते लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसके कारण हिंदू पंगु हो गए। समाज का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी समानता और असमानता के बीच अंतर को पढ़कर संतुष्ट हो जाते हैं। कोई यह नहीं अनुभव करता कि समानता और असमानता के अलावा वर्गाश्रित असमानता जैसी भी एक चीज है। यह वर्गीकृत असमानता जितनी हानिकर है, उसकी आधी भी असमानता हानिकर नहीं होती। असमानता में उसके विनाश के बीज छिपे होते हैं। असमानता अधिक दिनों तक नहीं रहती। जहां केवल असमानता होती है, वहां दो बातें होती हैं। उससे असंतोष जन्म लेता है जो क्रांति का बीज होता है। दूसरे, यह त्रस्त लोगों को समान शत्रु और समान कष्ट के विरुद्ध संगठित कर देती है। लेकिन वर्गाश्रित असमानता की प्रकृति और परिस्थितियां कुछ ऐसी होती हैं जिसमें उक्त दोनों बातों में से किसी एक के भी होने की गुंजाइश नहीं होती। वर्गीकृत असमानता लोगों में अन्याय के विरुद्ध सामान्य असंतोष के पैदा होने में आड़े आती है। इसलिए यह क्रांति की प्रेरणा का आधार नहीं बन सकती। दूसरे, इस असमानता से त्रस्त लोग लाभ और हानि, दोनों ही मामलों में असमान होते हैं। इसलिए अन्याय के विरुद्ध सभी वर्गों के आमतौर पर एक-दूसरे के साथ संगठित होने की कोई संभावना नहीं होती। उदाहरणार्थ, विवाह के बारे में ब्राह्मणों के विवाह संबंधी नियम को लीजिए जो अन्याय से भरा हुआ है। ब्राह्मण का यह अधिकार कि वह अपने वर्ग से नीचे के वर्ग की लड़की तो ले सकता है लेकिन वह इन वर्गों को अपने वर्ग की लड़की नहीं देगा, अन्यायपूर्ण है। लेकिन इस अन्याय को समाप्त करने के लिए क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र परस्पर संगठित नहीं होंगे। क्षत्रिय

ब्राह्मण के इस अधिकार के विरुद्ध कुढ़ता है, लेकिन वह दो कारणों से वैश्य या शूद्र के साथ संगठित नहीं होगा। पहला, वह तीनों वर्गों से लड़की लेने का ब्राह्मण के अधिकार से इसलिए संतुष्ट है कि उसे भी बाकी दो वर्गों से लड़की लेने का अधिकार मिला हुआ है। उसे उतना नुकसान नहीं होता है जितना बाकी दो वर्गों को होता है। दूसरे, अगर वह इस अन्यायपूर्ण विवाह-पद्धति के विरुद्ध आम आंदोलनकारियों के बीच जा खड़ा होता है। तब भले ही वह ब्राह्मणों के स्तर पर पहुंच जाए, लेकिन दूसरी ओर सभी वर्ग एक समान हो जाएंगे जिसका अर्थ यह होगा कि वैश्य और शूद्र उसके स्तर पर पहुंच जाएंगे, अर्थात इस वर्ग के लोग क्षत्रियों की लड़कियां लेने लग जाएंगे, जिसका अर्थ यह है कि वह गिर कर उनके स्तर पर पहुंच जाएगा। आप अन्याय का कोई दूसरा उदाहरण लीजिए और उसके विरुद्ध आंदोलन के बारे में अनुमान लगाइए। यही सामाजिक मनःस्थिति यह स्पष्ट करेगी कि इस अन्याय के विरुद्ध विद्रोह एक असम्भव बात है।

ब्राह्मणवाद और उसके अन्याय के विरुद्ध विद्रोह क्यों नहीं हुआ, इसके कारणों में से एक कारण का आधार केवल वर्गीकत असमानता का सिद्धांत है। यह लूट-खसोट में हिस्सा देने की प्रणाली है जिससे अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए समर्थक जुटाए जा सकें। यह घटिया दर्जे की चालाकी है जो आदमी अन्याय को बरकरार रखने और उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अब तक ईजाद कर सका है। यह और कुछ नहीं, अन्याय में अपना-अपना हिस्सा लेने के लिए लोगों को न्यौता देना है, जिससे कि वे सब लोग अन्याय के समर्थक बन जाएं।

ब्राह्मणवाद के इस नाटक के अंतिम अंक का पर्दा उठाना बाकी रह गया है।

ब्राह्मणवाद को प्राचीन वैदिक धर्म से चातुर्वर्ण्य पद्धति दाय के रूप में प्राप्त हुई थी। चातुर्वर्ण्य पद्धति, जिसे हिंदू अपने आर्य पूर्वजों की अद्वितीय सृष्टि मानते हैं, किसी भी अर्थ में ऐसी नहीं है। इसमे कोई भी मौलिकता नहीं है। यह संपूर्ण प्राचीन विश्व में व्याप्त थी। वह मिस्र के निवासियों में थी और प्राचीन फारस के लोगों में भी थी। प्लेटो इसकी उत्कृष्टता से इतना अभिभूत था कि उसने इसे सामाजिक संगठन का आदर्श रूप कहा था। चातुर्वर्ण्य का आदर्श त्रुटिपूर्ण है। कुछेक व्यक्तियों को एक में मिलाकर उनका एक अलग-अलग वर्ग बनाना मनुष्य और उसकी शक्तियों को जैसे बाहर-बाहर देखना है। प्राचीन आर्यों ने और प्लेटो ने भी हर व्यक्ति की विलक्षणता, दूसरों के साथ अतुलनीयता और हर व्यक्ति अपने आप में एक पृथक वर्ग है, इसकी कोई कल्पना नहीं की थी। उन्होंने इस पर विचार नहीं किया कि व्यक्ति की प्रवृत्तियां अनंत होती हैं और एक व्यक्ति में भी कई तरह की प्रवृत्तियां होती हैं। उन्होंने प्रतिभा या शक्ति के प्रकार के आधार पर व्यक्ति को वर्गीकृत किया। स्पष्टतः यह गलत है। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर

दिया है कि कुछेक व्यक्तियों को मिलाकर और उनके अलग-अलग वर्ग बनाकर प्रत्येक को कुछ खास क्षेत्रों में निहित कर देने से व्यक्ति और समाज, दोनों के प्रति अन्याय होता है। वर्ग और व्यवसाय के आधार पर समाज को स्तरों में विभाजित करने से समाज की क्षमता का पूर्ण उपयोग, जो प्रगति के लिए आवश्यक है, नहीं होता और यह व्यक्ति की सुरक्षा के साथ-साथ सामान्यतः समाज के कल्याण और उसकी सुरक्षा के लिए भी असंगत है।[1]

प्राचीन हिंदुओं और प्लेटो ने एक और गलती की। संभवतः इस बात में कुछ सच्चाई हो कि जिस तरह कीड़ें मकोड़ों में द्विरूपता या बहुरूपता पाई जाती है, उसी तरह यह विशेषता मनुष्यों में भी है यद्यपि इनमें यह केवल मनोवैज्ञानिक रूप में ही मिलती है। अभी हम यह मान लें कि मनुष्यों में मनोवैज्ञानिक रूप में ही मिलती है। अभी हम यह मान लें कि मनुष्यों में मनोवैज्ञानिक द्विरूपता या बहुरूपता है तो भी इनको वर्गों में इस प्रकार बांटना कि अमुक तो अमुक कार्य करने के लिए और अमुक कोई दूसरा ही कार्य करने के लिए पैदा हुआ है, कुछ शासन करने, अर्थात स्वामी बनने और कुछ आज्ञा का पालन करने अर्थात दास बनने के लिए पैदा हुए हैं। यह अनुमान करना भी गलत है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति में कुछ गुण हैं और अन्य में इनका अभाव है। बल्कि सच तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति में सभी गुण होते हैं और यह सच उस बात से नकारा नही जा सकता।कुछ प्रवृत्ति इस सीमा तक प्रबल हो जाती है कि उसके अलावा कोई दूसरी प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती।

हमने अक्सर देखा है कि मनुष्य में किसी एक क्षण में उसकी जो प्रवृत्ति प्रधान होती है, वह उस प्रवृत्ति से भिन्न या उस प्रवृत्ति की बिल्कुल ही उल्टी होती है जो उसी मनुष्य में किसी क्षण प्रधान थी। प्रो बर्गसां 'मनुष्य[2] और 'दास' के संबंध में नीत्शे की झूठी प्रतिस्थापना के बारे में लिखते हुए कहते हैं: हमने क्रांति के दिनों में इस (झूठ) को बेनकाब होते देखा है। सीधे-सादे नागरिक, जो उस क्षण तक विनम्र और आज्ञाकारी थे, लोगों का नेतृत्व करने के लिए एक दिन जाग उठते हैं।' मुसोलिनी और हिटलर का चरित्र आर्यों के और प्लेटो के भी सिद्धांत झुठला देता है।

चातुर्वर्ण्य की बौद्धिक प्रणाली एक आदर्श बनने के बजाए उन परिवर्तनों से और भी बदतर हो गई जो ब्राह्मणों ने किए। इन परिवर्तनों का वर्णन किया जा चुका है। निस्संदेह इनमें हर परिवर्तन कुटिलतापूर्ण था। भिक्षुओं का बौद्ध संघ और ब्राह्मणों की वैदिक प्रणाली एक समान उद्देश्य के लिए बनी थी। उन्होंने समाज में विशिष्ट वर्ग का निर्माण किया जिसका काम समाज को सही रास्ते पर ले जाना था। हालांकि बौद्ध भिक्षु से वहीं काम

1. इस विषय पर और अधिक चर्चा के लिए हिंदी के खंड 1 में 'जातिप्रथा-उन्मूलन' शीर्षक मेरा लेख देखिए।

2. टू सोर्सेज आफ मोरेलिटी, (होल्ट), पृ. 267

अपेक्षित था जो ब्राह्मण से था, तो भी वह अपेक्षाकृत अधिक अच्छी स्थिति में था। इसका कारण यह है कि बुद्ध ने जो एक शर्त निर्धारित की उनसे पहले या उनके बाद किसी ने नहीं किया था। बुद्ध ने यह आवश्यक समझा कि समाज को सही रास्ता दिखाने वाले और उसके विश्वसनीय मार्गदर्शक व्यक्ति को मानसिक दृष्टि से स्वतंत्र होना चाहिए और जो बात अधिक महत्वपूर्ण है, वह यह कि उसकी कोई निजी संपत्ति नहीं होनी चाहिए। यदि उसके ऊपर निजी संपत्ति का दायित्व है, तब वह सही रास्ते से समाज का नेतृत्व करने और उसका मार्गदर्शन करने के कर्तव्य को पूरा करने में अवश्य असफल होगा। बुद्ध ने इसलिए सतर्क हो भिक्षुकों की आचरण-संहिता में एक नियम यह रखा कि भिक्षुक के लिए निजी संपत्ति का होना निषिद्ध है। ब्राह्मणों की वैदिक प्रणाली में इस प्रकार का कोई निषेध नहीं था। ब्राह्मण निजी संपत्ति रखने के लिए स्वतंत्र था। इस अंतर ने बौद्ध भिक्षु और वैदिक ब्राह्मण के आचरण और दृष्टिकोण में गहरा अंतर ला दिया। भिक्षुओं का वर्ग बौद्धिक बन गया। दूसरी ओर ब्राह्मणों का वर्ग शिक्षितों का वर्ग बन गया। बौद्धिक वर्ग और शिक्षित वर्ग में बड़ा भेद होता है। किसी वर्ग या किसी काम से जुड़ने के कारण उस पर कोई बंदिश नहीं होती। दूसरी ओर, शिक्षित वर्ग कोई बौद्धिक वर्ग नहीं होता, हालांकि उसमें तर्क करने, समझने और सोचने की अपनी शक्ति होती है। इसका कारण यह है कि शिक्षित वर्ग की दृष्टि का आयाम और नई विचारधारा के प्रति उसका रवैया उस वर्ग के हित में नियंत्रित होता है जिससे वह पहले से ही जुड़ा होता है।

इसलिए ब्राह्मण शुरू से ही केवल शिक्षित वर्ग रहा जिसके पास बुद्धि तो थी, लेकिन वह स्वार्थ-प्रेरित थी। ब्राह्मणों की इस वैदिक प्रणाली में यह दोष पुरानी वैदिक प्रणाली में किए गए परिवर्तनों के कारण चरम सीमा तक पहुंच गया। शासन करने के अधिकार और अन्य विशेषाधिकारों ने ब्राह्मणों को और अधिक स्वार्थी बना दिया और उनमें ऐसी प्रेरणा भर दी कि वे अपनी शिक्षा का उपयोग ज्ञान की संवृद्धि के लिए न कर, अपने समुदाय के उपयोग के लिए और समाज की उन्नति के विरुद्ध करने लगे।

उनकी समस्त शक्ति और उनकी शिक्षा जनता के हित के बजाए अपने ही विशेषाधिकारों को बरकरार रखने पर खर्च हुई। अधिकांश हिंदू लेखकों का यह दावा रहा है कि भारत की सभ्यता विश्व में प्राचीनतम सभ्यता है। वह इसी बात पर जोर देंगे कि ज्ञान की कोई ऐसी शाखा नहीं है जिसमें उनके पूर्वज अग्रणी नहीं थे। आप प्रो. विनय कुमार सरकार की *दि पोजिटिव बैकग्राउंड आफ हिंदू सोशियोलोजी* या डा. ब्रजेन्द्र नाथ शील की *दि पोजिटिव साइंसेज आफ दि एनसिएंट हिंदूइज्म* जैसी कोई भी पुस्तक लीजिए। उन्होंने विभिन्न वैज्ञानिक विषयों में पूर्वजों के ज्ञान के बारे में जो आंकड़े दिए हैं, उनसे हर कोई चमत्कृत हो जाता है। इन पुस्तकों से यह पता चलेगा कि प्राचीन भारतवासी खगोल विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायन विज्ञान, गणित,

चिकित्सा, खनिज विज्ञान, भौतिक विज्ञान और यहां तक कि, जैसा कि बहुत से लोगों का विश्वास है विमानन भी जानते थे। हो सकता है कि यह सब कुछ बहुत सच हो। अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि प्राचीन भारतीयों ने इन प्रत्यक्ष विज्ञानों की खोज कैसे की। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि प्राचीन भारतीयों ने उन विज्ञानों में कोई प्रगति क्यों नहीं की जिनमें वे अग्रणी थे? प्राचीन भारत में विज्ञान की प्रगति अचानक अवरुद्ध क्यों हो गई, और इस बात पर जितना आश्चर्य होता है, उतना ही खेद होता है। विज्ञान की दुनिया में भारत का स्थान है। यह स्थान आदिम देशों में भले ही पहला हो, लेकिन सभ्य देशों में अंतिम है। यह कैसे हुआ कि जिस देश ने विज्ञान में प्रगति करनी शुरु की, वह क्यों कर प्रगति करते-करते रह गया, रास्ते में रुक गया और उसने उसे प्रारंभिक अवस्था में और अपूर्ण छोड़ दिया? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर विचार करना और जिसका उत्तर दिया जाना आवश्यक है, न कि यह कि प्राचीन भारतीय क्या-क्या जानते थे।

इस प्रश्न का केवल एक उत्तर है और यह बहुत ही आसान है। प्राचीन भारत में केवल ब्राह्मण शिक्षित वर्ग होता था। यही वह वर्ग था, जो अन्य सभी वर्गों से उच्च होने का दावा करता था। बुद्ध ने ब्राह्मणों की उच्चता के दावे का विरोध किया और उनके विरुद्ध संघर्ष किया था। ब्राह्मणों ने बौद्धिक वर्ग से भिन्न एक शिक्षित वर्ग के रूप में वैसा ही कार्य किया, जैसा शिक्षित वर्ग करता है। इसने ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में काम करना छोड़ दिया और अपनी उच्चता के दावे की रक्षा करने और अपने वर्ग के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक हितों की रक्षा करने में जुट गया। विज्ञान पर पुस्तकें लिखने के बजाए, ब्राह्मणों ने *स्मृतियां* लिखने का काम हाथ में ले लिया। भारत में विज्ञान की प्रगति के रुक जाने का यही कारण है। सामाजिक समानता के बौद्ध सिद्धांत का प्रतिरोध करने के लिए ब्राह्मणों ने स्मृतियां लिखना अधिक महत्वपूर्ण और अधिक आवश्यक समझा।

ब्राह्मणों ने कितनी *स्मृतियां* लिखीं?

श्री काणे ने, जो स्मृति साहित्य के बहुत बड़े मर्मज्ञ हैं इनकी संख्या 128 बताई है। ये किसलिए? *स्मृतियां* नियम-पुस्तक कहलाती हैं, किंतु इन पुस्तकों की विषयवस्तु कुछ और है। ये वस्तुतः टीकाएं हैं, जिनमें ब्राह्मणों की सर्वोच्चता और उनके विशेषाधिकारों की व्याख्या की गई है। ब्राह्मणवाद की की रक्षा करना विज्ञापन की प्रगति से अधिक महत्वपूर्ण था। ब्राह्मणवाद ने अपने विशेषाधिकारों की रक्षा नहीं की, बल्कि इन विशेषाधिकारों का आगे इस प्रकार विस्तार किया कि कोई भी सभ्य व्यक्ति लज्जित हुए बिना नहीं रहेगा। ब्राह्मणों ने विशेष रूप से कुछ ऐसे विशेषाधिकारों का विस्तार करना शुरू किया, जो उनके लिए मनु ने स्वीकृत किए थे।

मनु ने ब्राह्मणों को दान प्राप्त करने का अधिकार दिया है। यह हमेशा धन या चल संपत्ति के रूप में होता था। लेकिन कुछ समय बाद दान की अवधारणा का विस्तार किया

गया, जिससे स्त्री-दान भी शामिल किया जा सके और जिसे ब्राह्मण अपनी स्त्री के रूप में रख सकें या जिसे ब्राह्मण धन लेकर वापस कर सकें।[1]

मनु ने ब्राह्मणों को भू-देव, अर्थात पृथ्वी के देवता की संज्ञा दी है। ब्राह्मणों ने इस कथन को व्यापक बनाया और वे अन्य वर्गों की स्त्रियों के साथ संभोग करना अपना अधिकार समझने लगे। रानियां-महारानियां भी इस अधिकार से न बच सकीं। लुडोविको डि वर्थेमा ने, जो भारत में सन् 1502 के आसपास यात्री के रूप में आया था, कालीकट के ब्राह्मणों के विषय में निम्नलिखित वृतान्त लिखा है:

"ये जानना उचित है कि ये ब्राह्मण कौन हैं। इनका यहां के धर्म में वही स्थान है जो हमारे यहां पादरियों का है। जब राजा विवाह करता है, तब वह इन ब्राह्मणों में सबसे अधिक योग्य और सबसे अधिक पूजित ब्राह्मण को चुनता है और उससे अपनी पत्नी के साथ पहली रात सोने का आग्रह करता है ताकि वह उसके कौमार्य को भंग कर सकें।[1]

इसी प्रकार एक दूसरा लेखक हैमिल्टन[3] लिखता है:

"जब सैमोरिन विवाह करे तब उसे तब तक अपनी पत्नी के साथ संभोग न करना चाहिए जब तक नम्बूद्री (नम्बूद्री ब्राह्मण) या प्रधान पुरोहित उसके साथ संभोग न कर ले, और यह पुरोहित यदि चाहे तो उसके साथ तीन रात तक सहवास कर सकता है, क्योंकि उस स्त्री की पहली संतान उस देवता का नैवेद्य होनी चाहिए, जिसकी वह आराधना करती थी।"

बंबई प्रेसिडेंसी में वैष्णव संप्रदाय के पुरोहितों ने यह दावा किया कि उन्हें अपने संप्रदाय की स्त्रियों के साथ उनके विवाह की पहली रात संभोग करने का अधिकार है। यह मामला सन् 1869 में बंबई उच्च न्यायालय में किन्ही करसोनदास मुलजी के विरुद्ध इस संप्रदाय के प्रधान पुरोहित द्वारा दायर किए गए महाराजा मानहानि मुकदमे की सुनवाई के वक्त उठा था। इससे पता चलता है कि उस समय तक पहली रात का लाभ उठाने का अधिकार अमल में था।

अगर पहली रात का संभोग करने का अधिकार निचले वर्ग पर लागू किया जा सकता था तो ब्राह्मण इसका विस्तार करने से नहीं चूके। उन्होंने खास तौर से यह मलाबार में किया। मनु ने ब्राह्मणों को भू-देव, पृथ्वी के स्वामी की संज्ञा दी थी। ब्राह्मणों ने इस

---

1. मुझे एक ऐसे केस की रिपोर्ट पढ़ने के लिए मिली जिसमें एक ब्राह्मण ने जिसे एक विवाहित स्त्री दान के रूप में मिली और जिसने उस स्त्री के पति द्वारा धन देने पर भी उसे वापस करना अस्वीकार कर दिया था।

2. *दि ट्रैवल्स आफ लुडोविको डिवर्थेमा* (प्रकाशक हकयट सोसायटी), पृ. 141; वर्थेमा आगे लिखते हैं, 'आप यह मत समझिए कि ब्राह्मण स्वेच्छया यह काम करने जाता है। राजा को उसे चार सौ या पांच सौ डुकैट देना पड़ता है।'

3. *ए न्यू एकाउंट ऑफ दि ईस्ट इंडीज* (1744), खंड 1, पृ. 310

कथन को व्यापक बनाया और अन्य वर्गों की स्त्रियों के साथ स्वच्छंद होकर संभोग करने का अधिकार जताने लगे। यह खास तौर से मलाबार में हुआ। वहां–[1]

"ब्राह्मण जातियां मक्त्यम पद्धति का अनुसरण करती हैं, अर्थात वह पद्धति जिसके अनुसार बच्चा अपने पिता के परिवार का होता है। जातियां अपनी ही जाति में विवाह करती हैं और सभी कानूनी और धार्मिक प्रतिबंधों और अधिकारों का पालन करती हैं। लेकिन ब्राह्मण पुरुष अक्सर निचली जाति की स्त्रियों के साथ भी विवाह (संबंधन) करते हैं।"

केवल इतना ही नही है। जरा और देखिए, लेखक आगे क्या लिखता है:

"इस विवाह (संबंधन) में कोई भी पक्ष दूसरे परिवार का सदस्य नहीं हो जाता और पति-पत्नी से उत्पन्न बच्चा मां के परिवार का कहलाता है। जहां तक कानून की बात है, इस बच्चे का अपने पिता की संपत्ति का अंश या उससे अपने पालन-पोषण के लिए खर्च प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं होता।"

इस प्रथा के उद्‌भव के बारे में *गजेटियर* के लेखक का कहना है कि इस प्रथा का जन्म:

"भूदेवों या (पृथ्वी के देवताओं) अर्थात (ब्राह्मणों) और उसके बाद निचले वर्ग, अर्थात क्षत्रियों या शासक वर्ग का यह अधिकार इस दावे से सिद्ध होता है कि निचली जाति की स्त्री अपने विवाह के बाद नजराने के रूप में सुहागरात उनके साथ मनाएगी। यह अधिकार यूरोप में सामंत या जागीदार के तथाकथित इस अधिकार के समान है कि उसके आसामी की बहू विवाह के बाद उसके साथ अपनी सुहागरात मनाएगी।"

यदि यह कहा जाए कि यह सिर्फ नजराना लेने का अधिकार है जिसे यूरोप में 'पहली रात का नजराना' कहा जाता था, तो कुछ कम होगा। यह उससे अधिक है। यह निचली जाति पर ब्राह्मण का आम अधिकार होता है कि वह अपनी यौन पिपासा को बुझाने के लिए उस जाति की किसी भी स्त्री के साथ वैश्यावृत्ति कर सकता है और उस पर उससे विवाह करने की कोई जिम्मेदारी नहीं है।

ये वे अधिकार थे, जो आध्यात्म के उपदेशकों ने सामान्य जनता में अपने लिए सुनिश्चित किए। इतिहास में बोर्गीज के पोप लोगों को आध्यात्म के उपदेशकों की जाति में सबसे अधिक चरित्र-भ्रष्ट जाति कहा गया है, जिन्होंने पीटर के राज-सिंहासन को अपने अधीन किया था। कोई पूछ सकता है कि क्या वे लोग वास्तव में भारत के ब्राह्मणों से अधिक निकृष्ट थे?

---

1. *गजेटियर आफ मलाबार एंड एंजेंगो डिस्ट्रिक्ट*, सी.ए.ईन्स, खंड 1, पृ. 95

बुद्ध ने एक शुद्ध वर्ग की कल्पना की थी, जो मुक्त होकर कल्याण की कामना करेगा और जिसका किसी वर्ग के हित में कोई स्वार्थ नहीं होगा। ऐसी कल्पना कहीं और नहीं मिलती। अभी कुछ दिनों तक लोग यही मानते आए है कि बौद्धिक चिंतन में लगे रहने वाले व्यक्ति की स्वतंत्रता उसकी निजी संपत्ति होने से सीमित हो जाती है । इस कारण बौद्धिक वर्ग को जो अभाव हो जाता है, उसकी पूर्ति अन्य देशों में कुछ इस प्रकार की गई है कि वहां समाज के हर स्तर का अपना एक शिक्षित वर्ग होता है। वहां समाज के विभिन्न स्तरों के शिक्षित वर्गों द्वारा विभिन्न प्रकार के मत व्यक्त किए जाते हैं। इससे हालांकि कोई निश्चित मार्गदर्शन नहीं मिलता तो भी सुरक्षा रहती है। इतने ढेर सारे विचारों के व्यक्त होते रहने से समाज को एक ही वर्ग के शिक्षित समुदाय के विचारों द्वारा मार्गदर्शन करने का भय नहीं रहता, क्योंकि वह वर्ग देश के हित की अपेक्षा स्वभावतः अपने ही वर्ग के हितों को सर्वोपरि मानता है। लेकिन ब्राह्मणवाद द्वारा जो परिवर्तन किए गए, गए उससे बौद्धिक वर्ग का सुरक्षित और सटीक मार्गदर्शन समाप्त हो गया। इससे भी ज्यादा बुरी बात यह हुई कि हिंदू अभय और सुरक्षित नहीं रह गए, क्योंकि वहां समाज के विभिन्न विचारों का वैविध्य नहीं रह गया।

ब्राह्मणों ने शूद्रों को शिक्षा से वंचित कर, क्षत्रियों को सेना के काम में लगाकर और वैश्यों को व्यापार की ओर प्रेरित कर और शिक्षा को अपने लिए सुरक्षित कर केवल स्वयं को शिक्षित वर्ग के रूप में संगठित किया। वे सारे समाज को गलत दिशा में मोड़ने और उसका गलत मार्गदर्शन करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र हो गए। वर्ण को जाति में परिवर्तित कर उन्होंने यह घोषित कर दिया कि मनुष्य की योग्यता का वास्तविक और अंतिम मानदंड यह है कि वह किस जाति में पैदा हुआ है। जाति और वर्गीकृत असमानता से फूट और वैमनस्य एक आम बात हो गई।

अगर मूल वर्ग पद्धति का यह विकृतीकरण केवल सामाजिक व्यवहार तक सीमित रहता,तब तक तो सहन हो सकता था। लेकिन ब्राह्मण धर्म इतना कर चुकने के बाद भी संतुष्ट नहीं रहा। उसने इस चातुर्वर्ण्य पद्धति के परिवर्तित पद्धति *मनुस्मृति* में व्यक्ति और गृहस्थ के धर्म के रूप में उपलब्ध है। इनमें किसी को कोई संदेह नहीं हो सकता।

मनु ने यह विधान किया कि अगर निचली जाति का कोई व्यक्ति अपने को उच्च जाति के स्तर का होने या उच्च जाति का होने की अनधिकार चेष्टा करता है, तब वह अपराध माना जाएगा।

> 10.96. निचली जाति का कोई व्यक्ति यदि लोभवश ऊंची जातिवाले व्यक्ति के व्यवसाय को अपना कर जीवनयापन करता है तब राजा उसकी संपत्ति छीन ले

तथा उसे निर्वासित कर दे।

11.56. असत्य रूप में अपने को ऊंचे कुल में जन्मा बताना, राजा को (किसी अपराध के बारे में) सूचना देना और अपने गुरु की झूठी निंदा करना (ऐसे अपराध हैं जो) किसी ब्राह्मण की हत्या करने के समान हैं।

यहां दो अपराधों का वर्णन है, सामान्य छद्म व्यक्तिता (रूप धारण करना, 10.96) और शूद्र द्वारा छद्म व्यक्तिता। कृपया यह देखिए, कितना भयंकर दंड है। पहले अपराध के लिए दंड है संपत्ति का छीन लिया जाना और निर्वासन। दूसरे अपराध के लिए वही दंड है जो किसी ब्राह्मण की मृत्यु का कारण बनने के लिए है।

आधुनिक न्याय व्यवस्था में छद्म व्यक्तिता का अपराध जाना-पहचाना अपराध है। भारतीय दंड-संहिता की धारा 419 इसी के बारे में है। लेकिन भारतीय दंड-संहिता छद्म व्यक्तितता के लिए क्या दंड देती है? जुर्माना, और अगर कैद तो तीन साल की, या दोनों। मनु अपने जाति वाले कानून को अंग्रेज सरकार द्वारा इतना हल्का बना दिए जाने पर स्वर्ग में जरूर अपना सिर धुन रहा होगा।

मनु इसके बाद राजा को निर्देश देता है कि उसे इस नियम को कार्यान्वित करना चाहिए। पहले, वह राजा से उसे उसके पवित्र कर्तव्य की साक्षी देते हुए अपील करता है:

8.172. जातियों के एक-दूसरे में विलय को रोकने से राजा की शक्ति बढ़ती है और वह उस जीवन में और मृत्यु के बाद समृद्धिवान् होता है।

मनु संभवत: जानता था कि वर्णों के परस्पर विलय से संबंधित नियम राजा को संभवत: रुचिकर न हो और वह इसे कार्यान्वित न करे। इसलिए मनु राजा को यह बताता है कि नियमों को कार्यान्वित करने के संबंध में उसे किस प्रकार का आचरण करना चाहिए।

8.177. इसलिए राजा को अपनी रुचि या अरुचि पर ध्यान नहीं देना चाहिए तथा ठीक यम की तरह व्यवहार करना चाहिए, अर्थात उसे उसी तरह पक्षपात रहित होना चाहिए जिस प्रकार यम, मृत्यु का न्यायकर्ता होता है।

मनु, तथापि इसे राजा के पवित्र कर्तव्य के सहारे नहीं छोड़ देना चाहता। मनु इसे राजा के लिए अनिवार्य कर देता है। तदनुसार मनु इसे दायित्व घोषित करता है:

8.410. राजा को वैश्य को व्यापार करने, रुपया सूद पर देने, कृषि करने, पशु उधार देने और शूद्र को द्विजों की सेवा करने का आदेश देना चाहिए।

मनु इस विषय पर आगे प्रकाश डालता है:

> 8.418 राजा सावधानीपूर्वक वैश्यों और शूद्रो को अपना-अपना कर्तव्य (जो उनके लिए निर्धारित है) करने के लिए बाध्य करे, क्योंकि यदि वे अपने कर्तव्य से विरत होते हैं तो वे इस समस्त संसार को अस्त-व्यस्त कर डालेंगे।

अगर राजा अपने इस दायित्व को पूरा न करे, तब क्या होगा? मनु की दृष्टि में चातुर्वर्ण्य के इस नियम की सत्ता इतनी परम है कि वह उस राजा के सामने झुकने को तैयार नहीं है जो इस नियम को कार्यान्वित करने के बारे में अपने दायित्व को पूरा नहीं करता। वह दृढ़प्रतिज्ञ हो, एक नए नियम का सृजन कर देता है कि ऐसे राजा को राज-सिंहासन से च्युत कर दिया जाएगा। इससे हम कल्पना कर सकते हैं कि चातुर्वर्ण्य की पद्धति मनु को कितनी प्रिय थी।

जैसा कि मैंने कहा है, चातुर्वर्ण्य की वैदिक पद्धति जाति-व्यवस्था की अपेक्षा उत्तम थी। लेकिन यह पद्धति ऐसे समाज के सृजन के पक्ष में नहीं थी, जिसे एक पूरा समाज कहा जा सके, जहां आदर्श समाज में मिलने वाली एकता हो। चातुर्वर्ण्य सिद्धांत में ही चार वर्गों का जन्म हुआ। इन चार वर्गों का आपस में कोई मैत्रीभाव नहीं था। ये आपस में झगड़ते थे और ये झगड़े कभी-कभी इतने कटु हो जाते थे कि वे वर्गयुद्ध का रूप ले लेते। फिर भी, प्राचीन चातुर्वर्ण्य पद्धति में दो अच्छाइयां थीं, जिन्हें ब्राह्मणवाद ने स्वार्थ में अंधे होकर निकाल दिया। पहली, वर्णों की आपस में एक-दूसरे से पृथक स्थिति नहीं थी। एक वर्ण का दूसरे वर्ण में विवाह, और एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ भोजन, दो बातें ऐसी थीं जो एक-दूसरे को आपस में जोड़े रखती थीं। विभिन्न वर्णो में असामाजिक भावना के पैदा होने के लिए कोई गुजाइंश नहीं थी, जो समाज के आधार को ही समाप्त कर देती है। हालांकि क्षत्रिय ब्राह्मणों के, और ब्राह्मण क्षत्रियों के विरुद्ध लड़ते थे तो भी ऐसे क्षत्रियों[1] की कमी नहीं थी जो ब्राह्मण के लिए क्षत्रियों के विरुद्ध लड़े हों और इसी प्रकार ऐसे ब्राह्मणों[2] की भी कमी नही थी, जिन्होंने क्षत्रियों से मिलकर ब्राह्मणों को न दबाया हो।

दूसरी बात यह है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था रूढ़िगत थी। यह समाज का आदर्श थी, लेकिन यह शासन का नियम नहीं थी। ब्राह्मणवाद ने वर्णों को अलग-अलग कर दिया और उनकी एक-दूसरे से पृथक स्थिति हो गई। उसने परस्पर बैर के बीज बो दिए। जो रूढ़िगत था, ब्राह्मणवाद ने उसे नियम बना दिया। इस नियम का आधार बनाकर उसने दुष्कृत्य कर डाला। यदि वैदिक चातुर्वर्ण्य व्यवस्था हानिकर थी, तब वह काल और परिस्थितियों के आघात से स्वतः मिट जाती। ब्राह्मणवाद ने इसे नियम का रूप प्रदान कर शाश्वत बना

1. क्षत्रियों के विरुद्ध परशुराम के युद्धों की कहानी के बारे में यह मेरी व्याख्या है।

2. बौद्ध धर्म ब्राह्मणों और ब्राह्मणवाद के विरुद्ध एक विद्रोह था। तो भी प्रारंभ में बुद्ध और बौद्ध धर्म के अधिकांश अनुयायी ब्राह्मण थे।

दिया। संभवतः यह सबने महान कुकृत्य था, जो ब्राह्मणवाद ने हिंदू समाज के प्रति किया।

इस प्रश्न पर विचार करते समय हर व्यक्ति के ध्यान में यह बात आती है कि चातुर्वर्ण्य के नियम को, जो वर्गीकृत असमानता का एक दूसरा रूप हैं, कार्यान्वित करने का जो दायित्व राजा को सौंपा गया है, उसका अभिप्राय यह नहीं कि राजा इस नियम को ब्राह्मणों और क्षत्रियों पर भी लागू करे। यह दायित्व इस नियम को वैश्यों और शूद्रों पर लागू करने तक सीमित है। इस बात को ध्यान में रखने के बाद कि ब्राह्मणवाद इस पद्धति को नियम का रूप देने के बारे में दृढ़संकल्प था, यह कहना कोई अधिक अनुचित नहीं कि इसके परिणाम बड़े ही भयावह रहे। इस व्यवस्था को नियम बनाने की इन कोशिशो के बावजूद यह व्यवस्था आधी रूढ़िगत रही और आधी ही नियम बनी। वह वैश्यों और शूद्रों के लिए नियम बन गई और ब्राह्मणों और क्षत्रियों के संबंध में केवल रूढ़िगत रही।

इस अंतर को स्पष्ट करना आवश्यक है। क्या ब्राह्मणवाद इस व्यवस्था को नियम का रूप देने में कपटरहित था? क्या उसका यह अभिप्राय था कि चारों वर्णों में से प्रत्येक वर्ण पर यह नियम लागू हो? तथा तथ्य कि ब्राह्मणवाद ने अपने बनाए इस नियम को ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए अनिवार्य नहीं किया, इस बात को सिद्ध करता है कि ब्राह्मणवाद पूरी तरह निष्कपट नहीं था। यदि उसे यह विश्वास था कि यह एक आदर्श व्यवस्था है, तो वह इसे सभी पर लागू करने में कोई कोर-कसर न उठा रखता।

इस कूट-कर्म में कपट के अतिरिक्त कुछ और भी है। हम यह समझ सकते है कि ब्राह्मणों को उस नियम से क्योंकर मुक्त और अनियंत्रित रखा गया। मनु ने उन्हें पृथ्वी के देवता कहा और देवता कहा और देवता तो नियम के ऊपर होते हैं। लेकिन ब्राह्मण को जिस प्रकार मुक्त रखा गया, उस प्रकार क्षत्रियों को क्यों मुक्त रखा गया? वह जानते थे कि क्षत्रिए ब्राह्मणों के सम्मुख अपना सिर नहीं झुकाएंगे। इसलिए वह क्षत्रियों को चेतावनी देते हैं कि अगर वे उद्धत होते हैं और विद्रोह की योजना बनाते हैं तो ब्राह्मण उनको किस प्रकार दंडित कर सकते हैं।

> 9.320. जब क्षत्रिय किसी भी प्रकार ब्राह्मणों के प्रति निरंकुश जो जाएं तो ब्राह्मण स्वयं उसे विधिवत नियंत्रित कर सकते हैं, क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मणों से उत्पन्न हुए हैं।
>
> 9.321. जल से अग्नि, ब्राह्मणों से क्षत्रिय, पत्थर से लोहा उत्पन्न हुए है। इन (तीनों) की बेधन शक्ति का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता, जहां से ये उत्पन्न हुई।

हम यह कह सकते हैं कि मनु क्षत्रिय पर नियम लागू करने का दायित्व राजा को इसलिए नहीं सौंपता कि ब्राह्मणों ने यह अनुभव किया कि वे अपनी शक्ति से और राजा

की सहायता के बिना क्षत्रियों से निबट सकते हैं और जब समय आएगा, परिणाम के विषय में चिंता किए बिना वे क्षत्रियों का निषेध कर सकते हैं। मनु एकाएक शांत हो जाता हैं और क्षत्रियों से सहयोग करने और ब्राह्मणों के साथ मिलकर एक मिला-जुला मोर्चा बनाने की वकालत करने लगता है। जिस श्लोक में मनु क्षत्रियों के विरुद्ध गर्जन-तर्जन और अभिशाप आदि की चर्चा करता है, उसके आगे के श्लोक में वह कहता है:

> 9.323. लेकिन (जो राज यह अनुभव करता है कि उसका अंत निकट है), वह अपनी समस्त संपत्ति जो उसने अर्थ दंड लगाकर संग्रहीत की ब्राह्मणों को सौंप दे है। अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप दे तथा युद्ध मे मृत्यु का वरण करे ब्राह्मणों को सौंप दे।

अभिशाप के बाद अनुनय-विनय के स्वर विचित्र अलाप लगते हैं। क्षत्रियों के विरूद्ध आचार-व्यवहार में इस नरमी की वजह क्या है? ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच इस सहयोग का उद्देश्य क्या है? यह मोर्चा किसके विरूद्ध बनाया जा रहा है? मनु इसे स्पष्ट नही करता। इस पहेली को सुलझाने और प्रश्नों का संतोषप्रद रीति से उत्तर देने के पहले एक हजार वर्ष का संपूर्ण इतिहास बताया जाना चाहिए।

जो इतिहास इस पहेली के समाधान की कुंजी प्रदान करता है, वह ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच वर्ग-युद्धों का इतिहास है।

अधिकांश रूढ़िवादी हिंदू वर्ग-युद्ध के उस इतिहास का विरोध करते हैं, जिसका प्रतिपादन कार्ल मार्क्स ने किया था और अगर उनसे यह कहा जाए कि मार्क्स अपने सिद्धांत की पुष्टि करने के लिए जो अकाट्य साक्ष्य खोज रहा था, वह संभवतः उनके अपने पूर्वजों के इतिहास में ही मिल जाएं तो वे अवश्य भौंचक्के रह जाएंगे। निश्चय ही ब्राह्मणों और क्षत्रियों में अनेक वर्ग जुड़ गए और प्राचीन हिंदू साहित्य में उन्हीं का उल्लेख[1] किया गया है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण थे। हमें ब्राह्मणों और राजाओं के बीच जो सभी क्षत्रिय थे, युद्धों के वृत्त उपलब्ध हैं। इनमें पहला युद्ध राजा वेण के साथ, दूसरा पुरुरवा के साथ, तीसरा नहुष के साथ, चौथा निमि के साथ और पांचवा सुमुख के साथ हुआ। हमें वशिष्ठ नामक ब्राह्मण और विश्वामित्र के बीच, जो साधारण क्षत्रिय थे राजा नहीं थे, हुए युद्ध का भी वर्णन मिलता है। हम कृतवीर्य के क्षत्रिय वंशजों द्वारा भृगु गोत्र के ब्राह्मणों का सामूहिक हत्या का वृतांत भी जानते हैं। इसके बाद हमें ब्राह्मणों के प्रतिनिधि के रूप में समस्त क्षत्रिय जाति का समूल नष्ट करने का वृतांत भी उपलब्ध है। ये युद्ध जिन विषयों को लेकर हुए, वे काफी व्यापक हैं। इनसे पता चलता है कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों में परस्पर कितनी कटुता थी। ऐसे भी युद्धों का वर्णन मिलता है जो इसी बात को लेकर हुए कि क्या क्षत्रिय को ब्राह्मण बनने का अधिकार है। इस प्रश्न को लेकर भी युद्ध हुए कि ब्राह्मण सत्ता के अधीन है अथवा नहीं। इस प्रश्न को

1. यह सारा वृत्त प्रो. म्यूर ने अपनी पुस्तक *ओरिजनल संस्कृत टैक्स्ट्स*, खंड 1 में संग्रहीत किया है।

लेकर भी युद्ध हुए कि कौन किसका पहले अभिवादन करे और कौन किसके जाने के लिए रास्ता दे। ये युद्ध, सत्ता, पद और प्रतिष्ठा के लिए लड़े गए युद्ध[1] थे।

इन युद्धों का परिणाम औरों के लिए तो नहीं, बल्कि ब्राह्मणों के लिए तो बिल्कुल स्पष्ट था। उन्होंने बड़ी-बड़ी गर्वोक्तियां की, लेकिन इसके बावजूद उन्हें यह अनुभव हो गया था कि क्षत्रियों का दमन करना उनके लिए असंभव है और क्षत्रियों का समूल नष्ट करने के लिए किए गए युद्धों के बावजूद ब्राह्मणों को कष्ट देने के लिए वे काफी संख्या में अभी भी बच रहे हैं। हमें ब्राह्मणों द्वारा कही गई इस अश्लील कहानी पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं और जिसे मनु के नाम से जोड़ दिया जाता है कि मनु के युग में क्षत्रियों की नई पीढ़ी उन लोगों की थी, जो परशुराम के द्वारा क्षत्रियों का संहार करने के बाद उनकी विधवाओं से ब्राह्मणों द्वारा पैदा हुए थे। किसी के चरित्र के बारे में मनगंढ़त कहानियां बनाना और उन्हें डराकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना एक ऐसा साध ान है जिसका उपयोग करने में ब्राह्मणों द्वारा पैदा हुए थे। किसी के चरित्र के बारे में मनगंढ़त कहानियां बनाना और उन्हें डराकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना एक ऐसा साध ान है जिसका उपयोग करने में ब्राह्मणों को कभी कोई संकोच नहीं हुआ। क्षत्रियों के विरुद्ध ब्राह्मणों की लड़ाई शुरू से ही एक मूर्ख व्यक्ति और एक धौंस जमाने वाले व्यक्ति के बीच की लड़ाई रही। ब्राह्मण चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को स्थापित करने के लिए क्षत्रियों के विरुद्ध लड़ रहे थे लेकिन यही चातुर्वर्ण्य व्यवस्था है, जिसने क्षत्रियों के लिए अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए और ब्राह्मणों के लिए इन्हें वर्जित रखा। इस सिद्धांत के अधीन ब्राह्मण सफलता की किस आशा में क्षत्रियों के विरुद्ध लड़ सकते थे? इस सच्चाई को पहचानने में ब्राह्मणों को अधिक समय नहीं लगना चाहिए था, जो टैलीरेंड ने नेपोलियन को बताई थी कि अस्त्र-शस्त्र देना तो सरल है, लेकिन उनको लेकर चुप बैठना बहुत ही कठिन है और यह कि चूंकि क्षत्रियों के पास अस्त्र-शस्त्र थे और ब्राह्मणों के पास नहीं थे, इसलिए क्षत्रियों के विरुद्ध युद्ध मौत के मुंह में जाना था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच इन युद्धों का प्रत्यक्ष परिणाम हुआ। लेकिन कुछ अन्य भी थे, जो ब्राह्मणों की दृष्टि से ओझल नहीं हो सके। जब ब्राह्मण और क्षत्रिय आपस में लड़ रहे थे, वैश्यों और शूद्रों पर रोकथाम रखने व उन्हें नियंत्रण में रखने वाला कोई नही बचा था। वे लोग सामाजिक समता की ओर बढ़ रहे थे और ब्राह्मणों और क्षत्रियों के स्तर को लगभग छू रहे थे। क्षत्रियों को परास्त करना ब्राह्मणों के लिए बहुत कठिन था और इस बात का खतरा बहुत ज्यादा था और वास्तविक भी था कि वैश्य और शूद्र उनसे आगे निकल जाएं। क्या ब्राह्मण क्षत्रियों के विरुद्ध लड़ाई जारी रखता और वैश्यों और शूद्रों के खतरे की उपेक्षा करता रहता? या क्या ब्राह्मण क्षत्रियों के विरुद्ध संघर्ष को, जिसमें सफलता मिलने की कोई आशा नही थी, छोड़ उनसे मैत्री करता और उनसे मिलकर वैश्यो और शूद्रों के बढ़ते हुए खतरे को खत्म करने के लिए मिला-जुला मोर्चा बनाता? क्षत्रियों के विरुद्ध युद्धों में जब ब्राह्मण को थक गया, तब उसने दूसरा विकल्प चुना। उसने अपने पराक्रमी शत्रु क्षत्रियों के साथ

1. देखिए होपकिन्स की पुस्तक *हिस्ट्री आफ दि रूलिंग रेसेज*

नए आदर्श, अर्थात अपने और क्षत्रियों के बाल वाले वर्णों और शूद्रों को गुलाम बनाने व उनका शोषण करने के लिए मैत्री करने का प्रयत्न किया। यह नया आदर्श उस समय तक स्वीकृत हो चुका था, जब शतपथ ब्राह्मण की रचना हो रही थी। *शतपथ ब्राह्मण* में हमें इसलिए आदर्श का वर्णन मिलता है और यह पूर्ण प्रतिष्ठित हो चुका था। यह आदर्श इतना प्रभावपूर्ण है कि मैं उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना चाहता हूं। शतपथ[1] का लेखक लिखता है :

> "तब उन्होंने पशुओं को (आह्वानीय[2]) वापस भेज दिया, पहले बकरा जाता है, फिर गधा और अंत में घोड़ा। अब यहां (आह्वानीय) के पास से वापस आते समय घोड़ा पहले, तब गधा, और फिर बकरा जाता है–घोड़ा क्षात्र (सामन्त वर्ग) का प्रतीक है। गधा-वैश्य और शूद्र का, और बकरा–ब्राह्मण का प्रतीक है, और चूंकि यहां से जाते समय घोड़ा पहले जाता है, इसलिए क्षत्रिय पहले जाता है, उसके बाद तीन अन्य जातियां, और चूंकि वहां से वापस आते समय, बकरा पहले आता है, इसलिए ब्राह्मण पहले आता है और उसके बाद तीन अन्य जातियां। और चूंकि गधा पहले नहीं जाता, चाहे यहां से वापस जाते समय या वहां से वापस आते समय हो, इसलिए ब्राह्मण और क्षत्रिय कभी भी वैश्य और शूद्र के पीछे नहीं जाते। वे क्रम चलते हैं, जिससे अच्छे और बुरे में भ्रांति न हो। इस प्रकार वह उन दोनों जातियों (वैश्य और शूद्र) को पुरोहित और सामंत वर्ग से घेरे रखता है। और उन्हें (अर्थात दोनों जातियों को) निरीह बनाए रखता है।"

क्षत्रियों के प्रति मनु के विस्मयजनक दृष्टिकोण का यहां समाधान हो जाता है। वह क्षत्रियों को अधीन बनाना चाहता है, लेकिन उनके विरुद्ध खुलकर युद्ध करने से डरता है। वह उन पर शासन करना चाहता है, लेकिन मित्र बनाना ज्यादा अच्छा अनुभव करता हैं।

इन युद्धों और संधियों ने मनु को यह शिक्षा दी कि ब्राह्मणों का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए क्षत्रियों को बल से अधीन बनाने की कोशिश करने से कोई लाभ नहीं होगा। यही एक आदर्श हो सकता है, जिसे सामने रखना होगा। लेकिन व्यवहार की राजनीति में यह एक असंभव आदर्श था। बिस्मार्क की तरह मनु जानता था कि राजनीति ऐसा खेल है जिसमें सब कुछ संभव हो जाता है। संभव यही था कि ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच वैश्य और शूद्रों के विरुद्ध एक आम मुद्दा और एक आम मोर्चा बनाया जाए और यही मनु ने किया। यहां दुख इस बात पर है कि यह धर्म के नाम पर किया गया लेकिन जिस किसी ने ब्राह्मणवाद को अच्छी तरह समझ लिया है, उसे इससें दुखी होने कि कोई बात नहीं। ब्राह्मणवाद के लिए धर्म, एक आवरण है जिसकी आड़ में वे लोभ और स्वार्थ की राजनीति करते आए है।

---

1. *इगलिंग, शतपथ ब्राह्मण, भाग* 3, 226-27
2. *आह्वानीय*

8

हिंदू समाज के आचार-विचार

इकसठ पृष्ठों की टाइप की हुई मूल अंग्रेजी की पांडुलिपि की उपलब्ध दूसरी प्रति में डा. अम्बेडकर द्वारा स्वयं जो शुद्धियां और संशोधन किए गए हैं, उन सभी को अंग्रेजी प्रकाशन और प्रस्तुत अध्याय में शामिल कर लिया गया है। 'मनुस्मृति और दि गोस्पल आफ काउंटर रिवोल्यूशन' शीषक से बाबा साहेब डा. अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को जो अलग से फाइल मिली, उसमें 'मनुस्मृति' पर विभिन्न शीर्षकों कें अंतर्गत कुछ टिप्पणियां लिखी मिली थीं। ये सभी टिप्पणियां 'दि मोरल्स आफ दि हाउस' (हिंदू समाज के आचार-विचार) शीर्षक निबंध में शामिल की गई मिली हैं। उन टिप्पणियों को अलग से मुद्रित करना पुनरावृत्ति मात्र लगता है। इसलिए उक्त टिप्पणियों को अलग से मुद्रित नहीं किया गया है —संपादक

I

हिंदुओं के आचार-विचार और धार्मिक सिंद्धांत स्मृतियों द्वारा निर्धारित हैं। ये स्मृतियां हिंदुओं के पवित्र साहित्य का एक अंग हैं। अगर हम हिंदुओं की नैतिकता और उनके धर्म को समझना चाहते हैं तब हमें स्मृतियों का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। स्मृतियों की संख्या कुछ कम नहीं हैं। साधारणतः अनुमान है कि उनकी कुल संख्या 108 है। स्मृतियों की इतनी बड़ी संख्या हमारी समस्या के समाधान में कोई कठिनाई नहीं पैदा कर सकती। इसका कारण यह हैं कि हालांकि स्मृतियां अनेक हैं, तो भी वे मूलतः एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। इनमें इतनी ज्यादा समानता है कि कभी-कभी इनको पढ़ना नीरस लगने लगता है। इनका स्रोत एक ही है। यह स्रोत है *मनुस्मृति* जो 'मानव धर्म शास्त्र' के नाम से भी प्रसिद्ध है। अन्य स्मृतियां *मनुस्मृति* की सटीक पुनरावृत्ति हैं। इसलिए हिंदुओं के

आचार-विचार और धार्मिक संकल्पनाओं के विषय में पर्याप्त अवधारणा के लिए *मनुस्मृति* का अध्ययन ही यथेष्ट है।

हम कह सकते हैं कि *मनुस्मृति* नियमों की एक संहिता है। यह कथन अन्य स्मृतियों के बारे में भी सच है। यह न तो नीतिशास्त्र है और न ही कोई धार्मिक ग्रंथ है। नियमों की किसी भी संहिता को नीतिशास्त्र या किसी धार्मिक ग्रंथ के रूप में ग्रहण करना नीतिशास्त्र, धर्म और नियम, इन तीनों को आपस में गड्डमड्ड कर देना है।

पहली बात तो यह है कि धर्म को कानून से अलग करना आधुनिक युग की देन है। प्राचीन समाज में कानून और धर्म एक होते थे। प्रो० मैक्समूलर[1] का कहना है कि हालांकि –

> "कानून स्वाभाविक रूप से समाज का आधार और ऐसा सूत्र प्रतीत होता है जो किसी राष्ट्र को आपस में बांधे रखता है। जो लोग और गहराई से विचार करते हैं, उन्हें यह बात जल्दी ही समझ में आ जाती है कि कानून, कम से कम प्राचीन कानून को अधिकार, शक्ति और जीवन धर्म से ही प्राप्त होती है..... यह विश्वास अनेक राष्ट्रों की प्राचीन परंपराओं में मिलता है कि साधारण मनुष्यों की अपेक्षा विधिकर्ता का देवी-देवताओ से अधिक घनिष्ठ संबंध था। *डिबयोडोरस साइकुलस* के एक प्रसिद्ध अनुच्छेद के अनुसार मिस्रवासियों का यह विश्वास था कि उनके कानून हर्मिस द्वारा मेनबिस को बताए गए थे, क्रेताउस का विश्वास था कि मिनोस को अपने कानून जेऊस से प्राप्त हुए, लैकेदामोनियन का विश्वास था कि लाइकुर्गुस को अपने कानून अपोलोन से उपलब्ध हुए थे। एरियनों के मतानुसार उनके विधिकर्ता जरथूस्त्र को अपने कानून पवित्र आत्मा से प्राप्त हुए। स्टो के अनुसार जमोलिक्सिस को अपने कानून देवी हेस्तिया से प्राप्त हुए और यहूदियों का मत है कि मोजेस को अपने कानून प्रभु इयास से प्राप्त हुए।"

सर हेनरी मेन्स[2] ने यह बात जितना जोर देकर कही, उतना शायद ही किसी और ने कहा हो, कि प्राचीन काल में धर्म दैवी शक्ति के रूप में जीवन के प्रत्येक पक्ष और प्रत्येक सामाजिक संस्था में अंतर्निहित था और उसकी पुष्टि करता था। वह धर्म के विषय में कहते हैं:

> "वह एक अलौकिक सर्वोच्च सत्ता थी, जिसका उद्देश्य उस समय की सभी प्रधान संस्थाओं, राज्य, जाति और परिवार को पवित्र रखना तथा एक-दूसरे के साथ परस्पर जोड़े रखना था।"

कानून को इस अलौकिक सर्वोच्च सत्ता से छुटकारा पाना बहुत दिनों तक संभव नहीं हो सका, लेकिन बाद में इसका संबंध धर्म से बिल्कुल टूट गया। फिर भी उसमें

1. *साइंस आफ रिलीजन*, पृ. 150-51
2. *एनसिएंट लॉ*, पृ. 6

बहुत से ऐसे चिन्ह अभी भी मिलते हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि मानव इतिहास के आरंभिक दिनों में इसका धर्म के साथ कितना अधिक संबंध था।

आधुनिक युग में ही धर्म और नैतिकता के बीच भेद किया जाने लगा है। धर्म और नैतिकता का एक-दूसरे के साथ इतना घनिष्ट संबंध है कि दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। सदाचार और नैतिकता तो व्यवहार का विषय है। प्रो. जैक्स[1] का जोर देकर कहना है कि नैतिकता की समस्या यही नहीं है कि लोग अच्छाई को समझें, बल्कि यह है कि लोग अच्छे रहें। यही नहीं कि जो उचित है, उसे वैज्ञानिक आधार दिया जाए, बल्कि यह है कि जो उचित है, वह किया भी जाए। जो अच्छा है और जो उचित है, उसकी परिभाषा करना ही सदाचार है। प्रो० जैक्स ठीक ही कहते हैं:

> "जब कभी हम सदाचार का अध्ययन उसके व्यवहार पक्ष की अनदेखी कर करते हैं, तब मुझे यही लगता है कि हम जो कुछ अध्ययन कर रहे हैं, वह सदाचार नहीं है। जब तक हम व्यवहार के क्षेत्र में नहीं जा पहुंचते, तब तक सदाचार का प्रश्न ही नहीं होता। संसार में सदाचार विषयक किसी भी सिद्धांत को शुरु करने से उसका प्रभाव तब तक कुछ भी नहीं होता, जब तक उसका व्यवहार करने के लिए उसके पीछे कोई प्रबल प्रेरणा नहीं हो। अच्छा जीवन, जैसा कि अरिस्टाटल ने कहा है, एक बड़ा ही कठिन कार्य है। यह तब भी एक कठिन कार्य है, जब हम मौजूदा नियमों के अनुसार ही जीवन यापन करते हों। लेकिन जब अच्छे जीवन के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मौजूदा मानकों को लांघकर जीवन यापन किया जाए, तब मुक्ति की अदम्य शक्ति के बिना यह कैसे हो सकता है?"
>
> गलत काम करने की मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति पर सिर्फ इस जानकारी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि मनुष्य को सही काम क्यों करना चाहिए—यह उन कठिनाइयों का समाधान नहीं है जो अच्छे जीवन के रास्ते में आती हैं।

जब तक कोई प्रेरक शक्ति सदाचार के साथ नहीं रहती, तब तक सदाचार निष्क्रिय रहता है। जो वस्तु सदाचार को प्रेरक शक्ति देती है, वह निस्संदेह धर्म है। यह ऊर्जा है जो प्रो० जैक्स के शब्दों में–

> "प्रेरणाओं का सृजन करती है। ये प्रेरणाएं इतनी सबल होती हैं कि उनसे अच्छा जीवन व्यतीत करने के मार्ग में आने वाली बड़ी-बड़ी दिक्कतें दूर हो जाती हैं चाहे वे देखने में सरल ही क्यों न हों, और ये इतनी पर्याप्त होती हैं कि जिनसे नैतिक आदर्श में निरंतर सुधार की प्रक्रिया जारी रहती है।"

प्रेरक बल के रूप में धर्म विभिन्न प्रकार से सदाचार की इच्छा को प्रबल बनाता है। कभी वह निषेध के रूप में होता है जिसके अधीन मृत्यु के बाद पुरस्कार या दंड का

1. *मोरल्स एंड रिलिजन–हिब्बर्ट जर्नल,* खंड 19 पृ. 615-21

विधान होता है, कभी प्रभु के संदेश के बतौर यह सदाचार के नियमों का निर्माण करता है, कभी इन नियमों में पवित्रता का भाव भर देता है कि लोग स्वतः इनका पालन करें। लेकिन ये सब केवल विभिन्न रूप हैं, जिनमें धर्म के द्वारा पैदा की गई प्रेरणा शक्ति व्यवहार में सदाचार की भावना बनाए रखती है। धर्म ऊर्जा है, जो सदाचार के चक्र को घुमाती है।

अगर नैतिकता और सदाचार कर्तव्य हैं, तब निस्संदेह *मनुस्मृति नीतिशास्त्र* का ग्रंथ है। जो *मनुस्मृति* को पढ़ने का कष्ट करेगा, वह यह स्वीकार करेगा कि इस ग्रंथ में अगर कोई विषय प्रधान है, तो वह कर्तव्यों का है। मनु सर्वप्रथम वह व्यक्ति था जिसने उन कर्तव्यों को व्यवस्थित और संहिताबद्ध किया, जिन पर आचरण करने के लिए हिंदू बाध्य थे। वह वर्णाश्रम धर्म और साधारण धर्म में भेद करता है। वर्णाश्रम धर्म विशिष्ट कर्तव्य हैं जिनका संबंध मनुष्य के जीवन में उसकी अवस्था से है। यह अवस्था उसके वर्ण या जाति और उसके आश्रम अथवा जीवन की विशिष्ट स्थिति से निर्धारित होती है। साधारण धर्म वे कर्तव्य हैं जिन्हें आयु, जाति या मत से प्रभावित किसी विशेष समुदाय या सामाजिक वर्ग या जीवन की किसी विशेष अवस्था या आयु का होने के कारण नहीं, वरन मनुष्य होने के नाते करने चाहिए। इस संपूर्ण ग्रंथ में कर्तव्यों के अतिरिक्त किसी और विषय की विवेचना नहीं है।

इस प्रकार *मनुस्मृति* कानून का ग्रंथ है, जिसमें धर्म और सदाचार को एक में मिला दिया गया है। चूंकि इसमें मनुष्य के कर्तव्य की विवेचना है, इसलिए यह आचार-शास्त्र का ग्रंथ है। चूंकि इसमें जाति का विवेचन है जो हिंदू धर्म की आत्मा है, इसलिए यह धर्म ग्रंथ है। चूंकि इसमें कर्तव्य न करने पर दंड की व्यवस्था गई, इसलिए यह कानून है। इसे ध्यान में रखते हुए अगर हम हिंदुओं के आचार-विचार के आदर्शों और उनकी धार्मिक संकल्पनाओं को जानने के लिए *मनुस्मृति* का सहारा लें, तब कोई गलत बात नहीं होगी।

यह कहना कि *मनुस्मृति* एक धर्मग्रंथ है, बहुत कुछ अटपटा लगता है। इसका कारण यह है कि हिंदू धर्म बहुत ही भ्रामक शब्द है। विभिन्न लेखकों ने इसकी परिभाषा विभिन्न प्रकार से की है।

सर डी. इबटसन[1] हिंदू धर्म की परिभाषा इस प्रकार करते हैं:

> " वंशानुगत पुरोहितों का धर्म जो ब्राह्मणों द्वारा संपन्न होता है, जो जाति नामक सामाजिक संस्था से शक्ति ग्रहण करता है और जो भारत में जन्मे धर्म के सभी पक्षों और विविधताओं को अपने में समेटे हुए है, जो विदेशों से आए ईसाई और

1. पंजाब सेन्सस रिपोर्ट, (1881), पैरा 214

इस्लाम धर्म और बाद में बौद्ध धर्म की शाखा-प्रशाखाओं से भिन्न है, जो शायद सिख धर्म से और जैन धर्म से, हालांकि बहुत संदेह है, भिन्न है।"

सर जे.ए. बेन्स[1] ने हिंदू धर्म की परिभाषा इस प्रकार की है:

"वह विपुल जनसंख्या जो न सिख है, न जैन, न बौद्ध या न घोर आत्मावादी, जो इस्लाम, प्राचीन पारसी, ईसाई या हिब्रू आदि धर्मों में शामिल नहीं हैं।"

सर एडबर्ड गैट[2] के लिए हिंदू धर्म–

"मत-मतांतरों का एक जटिल जीवाणु कोष है। इसमें एकेश्वरवाद, बहुदेव, सर्वेश्वरवाद, महादेव शिव और विष्णु, दुर्गा और लक्ष्मी तथा मातृकाओं, वृक्षों, शिलाओं और नदियों और छोटे-मोटे ग्राम देवताओं व देवियों के उपासक, वे लोग जो अपने देवी-देवताओं को बलि दे कर संतुष्ट करते हैं, और वे लोग जो किसी जीव की हिंसा नहीं करते, बल्कि वे लोग भी जो 'काटना' शब्द तक के प्रयोग को वर्जित समझते हैं, वे लोग जिनकी पूजा-विधि में मुख्यतः स्तुति और भजनों का समावेश होता है, और वे लोग जो धर्म के नाम पर गोपनीय रहस्यपूर्ण अनुष्ठान करते है, सभी लोग आते हैं।"

यह हिंदू धर्म की जटिलता का बहुत कुछ पूर्ण विवरण तो है, लेकिन यह अभी भी अपूर्ण है। इस सूची में उन लोगों को भी शामिल किया जाना चाहिए जो गौ की पूजा करते हैं, और वे लोग भी जो उसे खाते हैं, वे लोग भी जो प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते हैं, और वे लोग भी जो केवल एक ईश्वर की उपासना करते है और वे लोग भी जो मूर्तियों, दानवों, प्रेतों, पितरों, संतों और शूरवीरों के उपासक हैं।

ये वे उत्तर हैं, जो तीन जनगणना आयुक्तों ने सीधे सवाल के दिए कि हिंदू धर्म क्या है। बाकी लोगों को इसका उत्तर देना काफी कठिन लगा। जरा देखिए सर ए. लाइल इस प्रश्न का उत्तर किस प्रकार देते है। उन्होंने कैम्ब्रिज में सन 1891 ईस्वी में आयोजित अपने 'रीड व्याख्यान' में कहा था[3]:

"अगर मुझसे हिंदू धर्म की परिभाषा पूछी जाए, तब मेरे पास कोई सटीक उत्तर नहीं होगा। मैं संक्षेप में इसकी ऐसी कोई परिभाषा नहीं दे सकता जो इसके मूल सिद्धांतों और आस्थाओं को व्यक्त करती हो, जैसा कि मैं इतिहास प्रसिद्ध अन्य धर्मों की परिभाषा देते हुए करता। इसका कारण यह है कि 'हिंदू' शब्द केवल धर्म का परिचायक नहीं है। यह देश का भी नाम है और कुछ सीमा तक जाति का भी नाम है। जब हम ईसाई, या

1. सेन्सस आफ इंडिया रिपोर्ट (1881), पृ. 158
2. वही (1881), पृ. 158
3. एशियाटिक स्टडीज, खंड 2, पृ. 287-88

बौद्ध कहते हैं तब व्यापक अर्थ में हमारा आशय किसी विशेष धार्मिक संप्रदाय से होता है, हम जाति या स्थान का भेद नहीं करते। जब हम किसी रूसी या किसी फारसी की चर्चा करते हैं, तब हम देश या कुल का संकेत करते हैं और वहां धर्म या मत का अंतर हमारा अभिप्रेत नहीं होता। लेकिन जब कोई व्यक्ति मुझसे कहता है कि मैं हिंदू हूं, तब मैं जान जाता हूं कि वह तीनों बातों का एक साथ उल्लेख कर रहा है – धर्म, कुल और देश का।"

हिंदू धर्म के धार्मिक स्वरूप के बारे में सर अल्फ्रेड लायल कहते हैं:

"हिंदू धर्म बेतुके अंधविश्वासों, आचार-विचारों, उपासना पद्धतियों, आस्थाओं, रूढ़ियों और पौराणिक कथाओं की पेचीदा गुंजलक है, जिन्हें धर्म-ग्रंथो और ब्राह्मणों के निर्देशों ने मान्यता दे रखी है और जिनका प्रचार ब्राह्मणों के उपदेशों द्वारा होता है।"

"जिसे हिंदू, अथवा हिंदू समुदाय के अधिकांश लोग अमल में लाते हैं वही हिंदू धर्म है।"

अंत में, मैं एक हिंदू, श्री जी.पी. सेन, द्वारा दी गई परिभाषा को उद्धृत करता हूं जो न सिर्फ हिंदू हैं, बल्कि हिंदू धर्म के अध्येता भी हैं। श्री सेन *इंट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ हिंदूइज्म* नामक अपनी पुस्तक में लिखते हैं:

क्या हिंदू धर्म में कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है, जिसका सभी हिंदू अपने-अपने विभिन्न मतभेदों के बावजूद, पालन करना स्वेच्छया अपना कर्तव्य समझते हों? मुझे लगता है कि ऐसा सिद्धांत है और यह सिद्धात जाति का सिद्धांत है। इस बारे में मतभेद हो सकता है कि हिंदू धर्म में कौन-कौन से मूल तत्त्व हैं। लेकिन इस बात मे कोई मतभेद नहीं हो सकता कि हिंदू धर्म का एक मुख्य और अभिन्न अंग है जाति। प्रत्येक हिंदू – वह चाहे सिर्फ कानूनी हिंदू ही क्यों न हो, जाति में विश्वास करता है और इसी प्रकार प्रत्येक हिंदू की जो कानूनी हिंदू होने पर गर्व करता है, एक जाति होती है। हिंदू उसी प्रकार जाति में पैदा होता है, जिस प्रकार वह हिंदू धर्म में पैदा होता है। सच तो यह है कि कोई भी व्यक्ति हिंदू धर्म मे तब तक पैदा नहीं समझा जा सकता जब तक वह किसी जाति में पैदा न हुआ हो। जाति और हिंदू धर्म एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। प्रो० मैक्समूलर[1] का कहना है:

"आधुनिक हिंदू धर्म-जाति पर स्थित है, जैसे वह किसी चट्टान पर हो, जिसे कोई १भी तर्क हिला नहीं सकता।"

इसका तात्पर्य यह हुआ कि चूंकि मनु ने जाति का सिद्धांत निर्धारित किया है और चूंकि हिंदू धर्म के मूल में जाति का सिद्धांत स्थित है, अतः *मनुस्मृति* को धर्म ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

1. *साइंस आफ रिलिजन*, पृ. 28

II

मनु ने हिन्दुओं द्वारा अपनाएं जाने और उनका पालन किए जाने हेतु क्या नैतिक और धार्मिक सिद्धान्त प्रतिपादित किए? मनु ने आरंभ में हिन्दुओं को चार वर्णों या सामाजिक श्रेणियों में विभाजित किया। उसने हिन्दुओं को चार वर्णों में केवल विभाजित ही नहीं किया बल्कि उन्हें श्रेणीबद्ध भी किया, जो इस प्रकार हैं :

10.3 जाति की विशिष्टिता से, उत्पत्ति स्थान की श्रेष्ठता से, अध्ययन एवं व्याख्यान आदि द्वारा नियम के धारण करने से और यज्ञोपतीत संस्कार आदि की श्रेष्ठता से ब्राह्मण ही सब वर्णों का स्वामी है।

वह अपने तर्क को पुष्ट करते हुए निम्नलिखित कारण बताता है :—

1.93 ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने से, पहले उत्पन्न होने के कारण श्रेष्ठ होने से और वेद के धारण करने से धर्मानुसार ब्राह्मण ही सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है।

1.94 स्वयंम्भू उस ब्रह्मा ने हव्य तथा कव्य को पहुंचाने के लिए और सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा के लिए तपस्या कर सर्वप्रथम ब्राह्मण को ही अपने मुख से उत्पन्न किया।

1.95 जिस ब्राह्मण के मुख से देवता हव्य को तथा पितर कव्य को खाते है उस ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ प्राणी कौन होगा?

1.96 भूतों में प्राणी श्रेष्ठ है, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ है, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है।

मनु द्वारा दिए गए कारणों के अतिरिक्त ब्राह्मण प्रथम वर्ण का है क्योंकि वह ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है और देवताओं को हव्य तथा पितरों को कव्य पहुंचता है।

मनु ब्राह्मण की श्रेष्ठता का अन्य कारण भी बताता है। वह कहता है :—

1.98 ब्राह्मण की उत्पत्ति ही धर्म की नित्य देह है, क्योंकि वह धर्म के लिए उत्पन्न हुआ है और मोक्ष लाभ के योग्य होता है।

1.99 उत्पन्न हुआ ब्राह्मण पृथ्वी पर श्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि वह धर्म की रक्षा के लिए समर्थ है।

मनु अन्त में यह कहता है :

1.101 ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है, अपना ही दान करता है तथा दूसरे व्यक्ति ब्राह्मण की दया से सब पदार्थों का भोग करते हैं।

मनु के अनुसार :

1.100. पृथ्वी पर जो कुछ भी है, वह सब ब्राह्मणों का है, अर्थात ब्राह्मण अच्छे कुल में जन्म लेने के कारण इन सभी वस्तुओं का स्वामी है।

यह कहना कोई बड़ी बात नहीं कि मनु के अनुसार ब्राह्मण समस्त सृष्टि का स्वामी है। क्योंकि मनु यह चेतावनी देता है कि–

9.317. जिस प्रकार शास्त्रविधि से स्थापित अग्नि और सामान्य अग्नि, दोनों ही श्रेष्ठ देवता हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण चाहे वह मूर्ख हो या विद्वान, दोनों ही रूपों में श्रेष्ठ देवता है।

9.319. इस प्रकार ब्राह्मण यद्यपि निंदित कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। तथापि ब्राह्मण सब प्रकार से पूज्य हैं, क्योंकि वे श्रेष्ठ देवता हैं।

देवता होने के कारण ब्राह्मण कानून और राजा से ऊपर है। मनु आदेश देता है:

7.37. राजा प्रातःकाल उठकर ऋग्यजुः, साम के ज्ञाता और विद्वान (राजधर्म में) ब्राह्मणों की सेवा करें और उनके कहने के अनुसार कार्य करे।

7.38. वह वृद्ध ब्राह्मणों की प्रतिदिन सेवा करे जो वेद के ज्ञाता और शुद्ध हृदय हैं।

अंत में मनु कहता है:

11.35. इस प्रकार ब्रह्मा (विश्व के) सृष्टा, शास्ता, गुरु (और इसलिए सारी सृष्टि के) संरक्षक घोषित किए जाते हैं। कोई भी व्यक्ति उनके प्रति न कोई अशुभ और न कोई कठोर वचन कहे।

मनु संहिता में विभिन्न व्यवसायों के बारे में नियम दिए गए हैं। जिनका विभिन वर्गों को पालन करना चाहिए।

1.88. स्वयंभू मनु ने ब्राह्मणों के कर्तव्य वेदाध्ययन, वेद की शिक्षा देना, यज्ञ करना, अन्य को यज्ञ करने में सहायता देना और अगर वह धनी है, तब दान देना और अगर निर्धन है, तब दान लेना निश्चित किए।

1.89 प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद का अध्ययन करना, विषय में आसक्ति नहीं रखना, संक्षेप में क्षत्रियों के कर्त्तव्य हैं।

1.90. पशुपालन, दान देना, यज्ञ करना, शास्त्रों को पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज पर ऋण देना और खेती करना वैश्यों के कर्तव्य निश्चित या अनुमोदित किए गए।

1.91. ब्रह्मा ने शूद्रों के लिए एक ही मुख्य कर्तव्य निश्चित किया, अर्थात उक्त वर्गों की अनिंदित रहते हुए सेवा करना।

10.74. ऐसे ब्राह्मण जो उत्कृष्ट देवत्व प्राप्त करने के इच्छुक हैं और अपने कर्तव्य के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, वे छह कार्यों को क्रमानुसार पूर्णरूपेण निष्पादित करें।

10.75. वेदों का अध्ययन, अध्यापन-यज्ञ करना, अन्य को यज्ञ करने में सहायता देना, यदि पर्याप्त संपत्ति है तब निर्धनों को दान देना, यदि स्वयं निर्धन है तब पुण्यशील व्यक्तियों से दान लेना, ये छह कर्तव्य प्रथम उत्पन्न वर्ग (ब्राह्मणों) के हैं।

10.76. लेकिन ब्राह्मण के लिए निर्धारित इन छह कर्मों में से तीन कर्तव्य उसकी जीविका के लिए हैं —यज्ञ करने में सहायता देना, वेदों का अध्यापन और पुण्यशील से दान लेना।

10.77. तीन कर्तव्य ब्राह्मणों तक सीमित हैं। वे क्षत्रियों के लिए नहीं हैं– वेदों का अध्यापन, यज्ञ कराना और तीसरा, दान लेना।

10.78. ये तीन वैश्यों (विधि के तीन स्थाई नियम) के लिए भी वर्जित हैं, क्योंकि प्रजापति मनु ने ये कर्तव्य उन दोनों (सैनिक और वाणिज्यिक) वर्गों के लिए निश्चित नहीं किए हैं।

10.79. जीविका के लिए विशेष रूप से क्षत्रियों के कर्तव्य हैं। आयुध ग्रहण करना (अस्त्र और शस्त्र), वैश्यों के कर्तव्य हैं व्यापार, पशुपालन और कृषि, लेकिन अगले जन्म की दृष्टि से दोनों के कर्तव्य हैं —दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना।

मनु श्रेणी और व्यवसाय निश्चित करने के साथ कुछ वर्गों को कुछ विशेषाधिकार देता है और कुछ के लिए दंड निर्धारित करता है।

जहां तक विशेषधिकारों का संबंध है, विवाह से संबंधित विशेषाधिकारों पर पहले विचार कर लिया जाए। मनु कहता है:

3.12. द्विज वर्ग के लोगों का प्रथम विवाह समान वर्ग की स्त्री के साथ हो, लेकिन जो दुबारा विवाह करना चाहे तब क्रम के अनुसार वर्ग की स्त्री के साथ विवाह करे।

3.13. शूद्र स्त्री केवल शूद्र की पत्नी बन सकती है, वह और वैश्य स्त्री वैश्य पुरुष की, शूद्र और वैश्य स्त्री तथा क्षत्रिय स्त्री क्षत्रिय पुरुष की और ये तीनों वर्गों की स्त्री तथा ब्राह्मणी ब्राह्मण की पत्नी हो सकती है।

इसके बाद व्यवसाय में भी कुछ विशेषाधिकार हैं। ये विशेष अधिकार तब और भी स्पष्ट हो जाते है, जब मनु यह निश्चित करता है कि मनुष्य को अपने ऊपर विपत्ति पड़ने

पर क्या करना चाहिए:

10.81. लेकिन यदि ब्राह्मण अपने इस व्यवसाय से जिसका अभी उल्लेख किया गया है, जीवन-निर्वाह नहीं कर सके, तब क्षत्रिय के लिए निर्दिष्ट व्यवसाय को अपना कर जीवन-निर्वाह करे क्योंकि वह पद के अनुसार उसके बाद आता है।

10.82. यदि यह पूछा जाए, 'अगर वह इन दोनों व्यवसायों में से किसी भी एक व्यवसाय से अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सके तब क्या किया जाए' उत्तर है, वह वैश्य की जीवन-पद्धति अपना ले, स्वयं खेती करे और पशु-पालन करे।

10.83. परंतु जो ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य की जीवन-पद्धति के अनुसार जीवन यापन करता है, उसे कृषि (व्यवसाय) कर्म करना चाहिए। कृषि के बारे में हमेशा सतर्क रहना चाहिए (जिसमें) अनेक जीवों की हिंसा होती है और जो दूसरों, जैसे बैल आदि पर निर्भर करता है। अतः इससे यथासंभव बचना चाहिए और पशुपालन करना चाहिए।

10.84. कुछ लोग कृषि (खेती) को उत्तम कार्य कहते हैं किंतु परोपकारी व्यक्ति जीविका के इस साधन को हेय कहते हैं (क्योंकि) लोहे के मुख (फ़ार) लगा लकड़ी का उपकरण भूमि और उसमें रहने वाले जीवों को क्षति पहुंचाता है।

10.85. लेकिन जो व्यक्ति जीविका के उत्तम साधनों के अभाव में उचित व्यवसायों को नहीं अपना सकता, वह उन वस्तुओं की बिक्री कर धन अर्जित कर सकता है जो व्यापारी बेचते हैं, लेकिन इनमें निम्नलिखित वस्तुओं को शामिल न करे।

10.86. उन्हें सभी तरह का द्रव पदार्थ, पका अन्न, तिल के बीज, पत्थर, नमक-पशु और मनुष्य (दास-दासी) को बेचने का व्यापार नहीं करना चाहिए।

10.87. उन्हें बुना हुआ लाल रंग में रंगा कपड़ा, सनई से बना कपड़ा और छाल, ऊन (चाहे वह लाल रंग की न हो) फल, कंद और औषधि में काम आने वाले पेड़ पौधे (बेचने का व्यापार नहीं करना चाहिए)।

10.88. जल, लोहा, विष, मांस, सोम नाम की बेल, सभी तरह के इत्र, दूध, मधु, दही, घी, तिल का तेल, मोम, गुड़ और कुश का उन्हें व्यापार नहीं करना चाहिए।

10.89. सभी प्रकार के जंगली जंतु जैसे मृग आदि, भूख से व्याकुल जंगली जीव, पक्षी और मछली, मदिरा, नील, लाख और खुर वाले जानवर, इनका व्यापार नहीं करना चाहिए।

10.90. लेकिन ब्राह्मण किसान स्वेच्छापूर्वक तिल के बीज धार्मिक कृत्यों के लिए बेच सकता है जिसे यदि वह लाभ अर्जित करने की आशा से बहुत दिनों तक अपने

पास न रखना चाहे और जिसे उसने स्वयं पैदा किया हो।

10.91. यदि वह खाने, मलने और दान देने के अतिरिक्त तिलों का उपयोग किसी अन्य कार्य में करता है, तब वह अपने पितरों के सहित कीड़ा होकर कुत्ते की विष्ठा में गिरता है।

10.92. मांस, लाख या नमक बेचने से ब्राह्मण तत्काल पतित हो जाता है और लगातार तीन दिन दूध बेचने से वह शूद्र हो जाता है।

10.93. अन्य निषिद्ध वस्तुएं स्वेच्छापूर्वक बेचने से वह ब्राह्मण सात रात्रि में वैश्यत्व को प्राप्त होता है।

10.94 द्रव पदार्थ के बदले द्रव पदार्थ लेना-देना चाहिए, लेकिन नमक के बदले द्रव पदार्थ का लेन-देन नहीं करना चाहिए। पके अन्न के बदले पके अन्न, तिल के बदले धान का बराबर-बराबर लेन-देन करना चाहिए।

10.102. विपत्ति में पड़ने पर ब्राह्मण किसी भी व्यक्ति से दान ग्रहण कर सकता है क्योंकि कोई भी ऐसा धार्मिक नियम नहीं है जिसके आधार पर शुद्धता अशुद्ध घोषित की जा सके।

10.103. अनधिकारियों को वेदाध्ययन कराने, यज्ञ कराने या उनसे दान लेने से जो सामान्यतः अनुमोदित नहीं है, विपत्ति में पड़े ब्राह्मणों को कोई दोष नहीं होता क्योंकि वे अग्नि और जल के समान पवित्र हैं।

इसकी तुलना उस व्यवस्था से कीजिए जो मनु ने अन्य वर्गों के लिए विपत्ति पड़ने पर निर्धारित की है। मनु कहता है:

10.96. नीच वर्ग का जो मनुष्य अपने से ऊंचे वर्ग के मनुष्य की वृत्ति को लोभवश ग्रहण कर जीविका-यापन करे तो राजा उसकी सब संपत्ति छीनकर उसे तत्काल निष्कासित कर दे।

10.97. अपना धर्म, चाहे वह त्रुटिपूर्ण रीति से ही क्यों न पूरा किया जाए, दूसरे धर्म से श्रेष्ठ है जो चाहे कितनी ही पूर्ण रीति से क्यों न किया जाए क्योंकि जो व्यक्ति बिना किसी आवश्यकता के दूसरे वर्ण के धर्म का निर्वाह करता है, वह अपने धर्म से भी च्युत हो जाता है।

10.98. अपने धर्म (कार्यों) से जीवन निर्वाह न कर सकने वाला वैश्य यह विचार न कर कि क्या किया जाना चाहिए, शूद्र द्वारा करणीय धर्म (कार्य) कर सकता है, लेकिन जब वह समर्थ हो जाए तब उसे उस धर्म (कार्य) से निवृत्त हो जाना चाहिए।

10.99. द्विजों की सेवा करने की अभिलाषा वाले चतुर्थ वर्ग के व्यक्ति को यदि जीविका न मिले और उसकी पत्नी, पुत्र आदि भूख से पीड़ित हों, दस्तकारी से जीविका अर्जित करनी चाहिए।

10.121. यदि कोई शूद्र जीविका उपार्जन करना चाहता है और ब्राह्मण की सेवा नहीं कर सकता, तब वह क्षत्रिय की सेवा करे या यदि यह क्षत्रिय की अपने जन्म के कारण सेवा नहीं कर सकता, तब वह धनी वैश्य की सेवा कर अपनी जीविका का उपार्जन करे।

10.122. जो व्यक्ति ब्राह्मण की सेवा स्वर्ग प्राप्ति की कामना से या स्वयं अपनी जीविका, दोनों की अभिलाषा से करता है, तब उस ब्राह्मण का नाम उसके नाम के साथ जुड़ने से उसे निश्चित सफलता मिलती है।

10.123. ब्राह्मणों की सेवा करना ही शूद्रों का मुख्य कर्म कहा गया है, इसके अतिरिक्त वह शूद्र जो कुछ करता है, उसका कर्म निष्फल होता है।

10.124. ब्राह्मणों को चाहिए कि वे अपनी सेवा करने वाले शूद्र के लिए उसके काम करने की शक्ति, उत्साह और परिवार के निर्वाह के प्रमाण के अनुसार उसकी जीविका निश्चित करें।

10.125. जो कुछ पका धान्य बच जाए, वह उसे (शूद्र को) दिया जाए, जो वस्त्र उन्होंने पहन लिए हों, वे उसे दिए जाएं और उसे पुआल और खाट आदि दिया जाए।

10.126. लहसुन, प्याज आदि अन्य वर्जित सब्जी खाने से शूद्र को कोई पातक (दोष) नहीं होता, उसका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होना चाहिए, उसे धर्म-कार्य करने का अधिकार नहीं है, लेकिन अगर वह यज्ञ में पका हुआ अन्न धर्म-कार्य स्वरूप अर्पित करता है तो कोई निषेध नहीं है।

10.127. जो शूद्र अपने सारे कर्तव्य करने के इच्छुक हैं और यह जानते हुए कि उन्हें क्या करना चाहिए, अपने गृहस्थ-जीवन में अच्छे मनुष्यों की तरह आचरण करते हैं और स्तुति व प्रार्थना के अतिरिक्त और कोई धार्मिक पाठ नहीं करते और पातक कर्म-रहित हैं, वे प्रशंसित होते हैं।

10.128. दूसरों की निंदा न कर जो शूद्र द्विज के आचरण के अनुकूल आचरण करता है, वह इतना करने से ही अनिंदित हो, इस लोक में और अगले लोक में प्रशंसित होता है।

10.129. किसी भी शूद्र को संपत्ति का संग्रह नहीं करना चाहिए, चाहे वह इसके

लिए कितना ही समर्थ क्यों न हो, क्योंकि जो शूद्र धन का संग्रह कर लेता है उसे उसका मद हो जाता है और वह अपने उद्धत या उपेक्षापूर्ण व्यवहार से ब्राह्मणों को कष्ट पहुंचाता है।

अंत में मनु कहता है:

10.130. विपत्ति पड़ने पर जीविकोपार्जन के सबंध में चारों वर्णों के ये कर्तव्य हैं, जिन्हें विस्तार से कहा गया है और अगर ये वर्ण इन कर्तव्यों को सम्यक रीति से पूरा करें तब उन्हें श्रेष्ठ गति प्राप्त होगी।

कुछ के लिए ये विशेषाधिकार केवल सामाजिक नहीं थे, बल्कि वे आर्थिक भी थे:

8.35. जो व्यक्ति सच-सच यह कह देगा कि 'यह संपत्ति जो मैंने अपने पास रखी है' मेरी है, तो राजा उससे उस संपत्ति को प्राप्त करने के लिए उस संपत्ति का छठा या बारहवां भाग लेगा।

8.36. लेकिन जो व्यक्ति ऐसा झूठ-मूठ कहे, उस पर उसकी अपनी संपत्ति का अष्टमांश या जिस संपत्ति के बारे में झूठ-मूठ का दावा किया गया है, उसके मूल्य का कुछ भाग, जो न्यायोचित हो, जुर्माना किया जाए।

8.37. जिस किसी विद्वान ब्राह्मण को कहीं छिपाकर रखी गई संपत्ति प्राप्त होती है, वह उस सारी संपत्ति को ग्रहण कर ले क्योंकि वह सबका स्वामी है।

8.38. किंतु जो निधि प्राचीन-काल से भूमि में गड़ी राजा या किसी अन्य प्रजाजन द्वारा खोज निकाली जाए तब राजा उस निधि का अर्द्धांश ब्राह्मणों में वितरित करने के बाद शेष अर्द्धांश अपने कोष में रख ले।

9.323. लेकिन जिस राजा का अंत किसी असाध्य रोग के कारण निकट है, वह अपनी समस्त संग्रहीत संपत्ति और अपना राज्य अपने पुत्र को दे देगा और युद्ध में और युद्ध न हो, तब भोजन का त्याग कर अपनी मृत्यु का वरण करेगा।

7.127. खरीद और बिक्री की दरों, मार्ग की दूरी, भोजन और मिर्च, मसाले आदि का व्यय, माल लाने पर व्यय, व्यापार में शुद्ध लाभ का पता लगाकर राजा व्यापारियों से बेचने योग्य वस्तुओं पर कर देने के लिए कहे।

7.128. राजा अपने राज्य में उन करों को निरंतर लगाए जिनसे उसे और व्यापारी को विभिन्न कार्यों के लिए व्यय की उचित प्रतिपूर्ति हो सके।

7.129. जिस प्रकार जोंक, बछड़ा और मधुमक्खी अपना-अपना खाद्य थोड़ा-थोड़ा ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार राजा को प्रजा से वार्षिक कर लेना चाहिए।

7.130. राजा को पशु पर, स्वर्ण और चांदी पर, उसमें प्रतिवर्ष वृद्धि होने पर, पचासवां भाग, अनाज पर आठवां भाग, छटवां भाग या बारहवां भाग, मिटटी के अंतर और उसे पैदा करने के लिए आवश्यक श्रम के अनुसार कर लेना चाहिए।

7.131. उसे वृक्षों, मांस, मधु, घी, इत्र, औषधि पदार्थ, द्रवों, पुष्पों, कंद और फल पर प्रतिवर्ष वृद्धि का छठवां भाग भी लेना चाहिए।

7.132. एकत्रित पत्तियों, साग-भाजी, घास, चमड़े या बेंत से बने बर्तन, मिट्टी के बर्तन और पत्थर की बनी सभी चीजों पर (छठा भाग कर के रूप में वसूल करे)।

7.133. चाहे कोई राजा अपूर्ण इच्छाग्रस्त होकर मर भी क्यों न रहा हो तब भी वह वेदपाठी ब्राह्मण से कर न ले, न ऐसे ब्राह्मण को कष्ट दे जो उसके क्षेत्र में रह रहा हो और जो भूख से ग्रस्त हो।

7.134. जिस राजा के राज्य में विद्वान ब्राह्मण क्षुधाग्रस्त रहता है, उस राजा के राज्य में शीघ्र ही अकाल पड़ता है।

7.137. राजा अपने राज्य में रहने वाले लोगों से जो सामान्यतम व्यापार कर अपना जीविकोपार्जन करते हैं, वार्षिक कर के रूप में कुछ ग्रहण करे।

7.138. राजा उन लोगों से हर महीने एक दिन काम करवाए जो छोटे दस्तकार, कारीगर और मजदूर हैं और जो श्रम कर जीविकोपार्जन करते हैं।

8.394. राजा अंधे व्यक्ति से, मूर्ख से, अपंग से और सत्तर वर्ष के वृद्ध से और न उनसे जो विद्वान ब्राह्मणों के उपकार में रत हैं, किसी भी प्रकार का कर ले।

10.118. जो राजा युद्ध होने पर या आक्रमण होने पर आपात्काल में अपनी प्रजा से उसकी पैदावार का चतुर्थांश भी लेता है और यथाशक्ति अपनी प्रजा की रक्षा करता है, वह कोई पातक कर्म नहीं करता।

10.119. उसका मुख्य धर्म विजय प्राप्त करना है और उसे युद्ध से विमुख नहीं होना चाहिए, जिससे जहां वह शस्त्रास्त्र से व्यापारियों और किसानों की रक्षा करता है, वहां इस रक्षा पर व्यय की पूर्ति के लिए कानूनी तौर पर कर लगाए।

10.120. समृद्धि-काल में व्यापारियों पर उनके धन का बारहवां भाग और उनके निजी लाभ का पांचवां भाग कर रूप में होता है, विपत्ति में यह उनके धन का आठवां भाग या छठा भाग हो सकता है, जो औसत है। यह महान विपत्ति मे चौथा भाग भी हो सकता है, लेकिन उनके धन पर लाभ और अन्य चल संपत्ति पर बीसवां भाग अधिकतम कर है, सेवक वर्ग, कारीगर, बढ़ई आदि जो कोई कर नहीं देते हैं, उन्हें अपने श्रम से सहायता करनी चाहिए।

9.187. मृत व्यक्ति का निकटतम सपिंड जो, चाहे पुरुष हो या स्त्री, उसके बाद तीसरी पीढ़ी तक उसका उत्तराधिकारी होता है, सपिंड या उनकी संतान के न होने पर समानोदक (सजातीय) या दूर का संबंधी उत्तराधिकारी होता है, या आचार्य, शिष्य या साथ पढ़ा व्यक्ति मृत व्यक्ति का उत्तराधिकारी होता है।

9.188. इन सबके न होने पर तीनों वेदों में निष्णात ब्राह्मण जो शरीर और मन से शुद्ध हो, जिसके सब राग-द्वेष शांत हों, वे ही मृत व्यक्ति के कानूनी उत्तराधिकारी होते हैं, उन्हीं को ही पिंडदान करना चाहिए। इस प्रकार मृत व्यक्ति के लिए पिंडदान आदि की क्रिया विफल नहीं हो सकती।

9.189. ब्राह्मण की संपत्ति राजा द्वारा कभी भी नहीं ली जानी चाहिए, यह एक निश्चित नियम है, मर्यादा है। लेकिन अन्य जाति के व्यक्तियों की संपत्ति उनके उत्तराधिकारियों के न रहने पर राजा ले सकता है।

विभिन्न वर्गों को अपने सामाजिक जीवन का किस प्रकार निर्वाह करना चाहिए, इसकी मनु ने कुछ नियमों में व्याख्या की है। ये नियम हिंदुओं के नैतिक सिद्धांत के महत्वपूर्ण अंग है।

मनु निर्देश देता है:

10.3. जाति की विशिष्टता से, उत्पत्ति-स्थान की श्रेष्ठता से, अध्ययन एवं व्याख्यान आदि द्वारा नियम के धारण करने से और यज्ञोपवीत संस्कार अदि की श्रेष्ठता से ब्राह्मण ही सब वर्णों का स्वामी है।

9.317. जिस प्रकार शास्त्र विधि से स्थापित अग्नि और सामान्य अग्नि, दोनों ही श्रेष्ठ देवता हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण चाहे वह मूर्ख हो या विद्वान, दोनों ही रूपों में श्रेष्ठ देवता है।

9.319. इस प्रकार ब्राह्मण यद्यपि निंदित कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, तथापि ब्राह्मण सब प्रकार से पूज्य हैं, क्योंकि वे श्रेष्ठ देवता हैं।

7.35. राजा का सृजन इन सभी वर्णों और आश्रमों की रक्षा के लिए किया गया है जो शुरू से लेकर अंत तक अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं।

7.36. मैं क्रमानुसार उन सब कर्तव्यों के बारे में तुमसे कहूंगा जो शास्त्रानुसार राजा के द्वारा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए अपने अमात्यों की सहायता से अवश्य किए जाने चाहिएं।

7.37. राजा प्रातःकाल उठकर ऋग्यजुःसाम के ज्ञाता और विद्वान (राजधर्म में) ब्राह्मणों की सेवा करे और उनके कहने के अनुसार कार्य करे।

7.38. वह ब्राह्मणों का हमेशा आदर-सत्कार करे जो आयु और धर्म, दोनों दृष्टियों से वरिष्ठ हैं, जो वेदों के ज्ञाता हैं, जो काया और चित्त से शुद्ध हैं क्योंकि जो वरिष्ठ का आदर करता है, वह राक्षसों द्वारा भी हमेशा पूजित होता है।

9.313. राजा को घोरतम विपत्ति में भी ब्राह्मणों को क्रुद्ध होने के लिए उत्तेजित नहीं करना चाहिए, क्योंकि ब्राह्मण क्रोधित होने पर उस राजा को, उसकी सेना, हाथियों, घोड़ा, वाहनों को नष्ट कर सकते हैं।

ऐसे थे राजनीतिक जीवन में विविध संबंध। विभिन्न वर्णों में सामान्य सामाजिक संबधों के बारे में मनु ने निम्नलिखित नियम निर्धारित किए हैं:

3.68. गृहस्थ के यहां वध के पांच स्थान होते हैं जहां छोटे जीवों की हत्या हो सकती है: चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली, मूसल और जल का घट। उन्हें व्यवहृत करता हुआ वह पाप का भागी होता है।

3.69. इन क्रमिक स्थानों पर अज्ञानवश किए गए पापों से निवृत्ति के लिए महर्षियों ने पांच महायज्ञ प्रतिदिन करने का विधान गृहस्थों के लिए बताया है।

3.70. शास्त्रों का अध्यापन और अध्ययन ब्रह्मयज्ञ है, पिंड और जल तर्पन करना 'पितृयज्ञ'। हवन करना 'देवयज्ञ' है, *बलिवैश्वदेव* करना 'भूतयज्ञ' है तथा अतिथियों को भोजन आदि से सत्कार करना 'नृयज्ञ' है।

3.71. यथाशक्ति इन पांच महायज्ञों को नहीं छोड़ने वाला व्यक्ति गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी (पांचों पापों) के दोषों से मुक्त रहता है।

3.84. ब्राह्मण अपनी गृह-अग्नि में सभी देवों के लिए पकाए गए अन्न को विधिपूर्वक निम्नलिखित देवताओं को अर्पित करे।

यह अन्न जब देवताओं को अर्पित कर दिया जाए, तब उसके बाद की प्रक्रिया के बारे में मुन निर्देश देता है:

3.92. वह कुत्तों, जाति से बहिष्कृतों, चांडालों, पापजन्य रोग से ग्रस्त व्यक्तियों, कौओं, कीड़ा-मकोड़ों का अंश धीरे-धीरे पृथ्वी पर रख दे।

आतिथ्य संबंधी नियमों के बारे में मनु गृहस्थ को निर्देश देता है:

3.102. एक रात ठहरने वाला व्यक्ति अतिथि कहा जाता है, क्योंकि इतने थोड़े समय के लिए रहने से पूरी तिथि, अर्थात चंद्रमा के दिन के लिए भी नहीं ठहरता।

3.98. क्योंकि ब्राह्मण के मुख में स्थित अग्नि अर्पित करने से दाता विपत्ति और अन्य भंयकर पाप से मुक्त हो जाता है, ब्राह्मण का मुख ज्ञान और पुण्य से दीप्त रहता है।

3.107. श्रेष्ठ अतिथियों को श्रेष्ठ रूप में, निम्न को निम्न रूप में, समान को समान रूप में आसन, शैया आदि और तदनुसार जब तक वे रहें, तब तक सत्कार और आदर दिया जाए।

3.110. ब्राह्मण के घर आए हुए क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, परिचित मित्र या बांधव और गुरु 'अतिथि' नहीं कहे जाते।

3.111. यदि क्षत्रिय अतिथि धर्म से ब्राह्मण के घर आ जाए तब पूर्वोक्त ब्राह्मण अतिथियों को भोजन कराने के बाद उसे उसकी इच्छा के अनुसार भोजन कराया जाए।

3.112. अतिथि के रूप में वैश्य या शूद्र के आने पर वह उस पर दया प्रदर्शित करता हुआ अपने नौकरों के साथ भोज कराए।

समाज में एक वर्ण की अपेक्षा दूसरे वर्ण की स्थिति कैसी होगी, इस बारे में मनु ने जो नियम बनाए हैं, वे कम रोचक नहीं है। वह सामाजिक स्थिति के बारे में एक समीकरण बताता है:

2.135. विद्यार्थी ब्राह्मण को, जो चाहे दस वर्ष का ही क्यों न हो और क्षत्रिय को, जो चाहे एक सौ वर्ष की आयु का हो, पिता और पुत्र के रूप में समझे, इन दोनों में युवा ब्राह्मण को पिता समझ कर आदर दे।

2.136. धन-सम्पत्ति, बंधु, आयु, नैतिक आचार और पांचवे आध्यात्मिक ज्ञान के कारण मनुष्यों को आदर मिलता है, लेकिन इनमें जिसका उल्लेख सबसे अंत में हुआ है, वह सबसे अधिक पूजनीय है।

2.137. तीन उच्च वर्गों में जिस किसी भी व्यक्ति के पास उक्त पांच गुणों में संख्या और मात्रा की दृष्टि से अधिक गुण हों, वह व्यक्ति अधिक पूजनीय है, शूद्र भी यदि वह अपनी आयु के नवें दशक में प्रवेश कर रहा हो।

2.138. जो व्यक्ति किसी गाड़ी में बैठकर जा रहा हो, जो नब्बे वर्ष से अधिक आयु का हो, जो रोगग्रस्त हो, जो बोझ लेकर जा रहा हो, स्त्री को, जो स्नातक अपने गुरु के पास से आ रहा हो, राजकुमार और वर के लिए, रास्ता छोड़ देना चाहिए।

2.139. अगर कोई ऐसा अवसर आए कि बहुत से लोगों से एक साथ मिलना हो तब जो स्नातक हाल में घर वापस लौटा है, वह और राजकुमार, इन दोनों में से राजकुमार की अपेक्षा स्नातक को अधिक आदर देना चाहिए।

सामाजिक स्थिति के नियमों को अधिक स्पष्ट करने के लिए अभिवादन से संबंधित नियम यहां उद्धृत हैं:

> 2.121. जो युवक स्वभाववश वृद्ध जनों को प्रणाम करता और निरंतर उनकी सेवा करता है, उसे अपनी चार वस्तुओं में वृद्धि प्राप्त होती है–आयु, ज्ञान, यश और बल।
>
> 2.122. ब्राह्मण वृद्ध जनों को अपना नाम बताते हुए प्रणाम करें।
>
> 2.123. जो व्यक्ति संस्कृत भाषा का ज्ञान न होने के कारण अपने नाम का अर्थ नही जानते, उनसे विद्वान व्यक्ति यह कहे, 'यह मैं हूं' और आपको नमस्कार करता हूं, वह इसी प्रकार स्त्रियों का अभिवादन करे।
>
> 2.124. अभिवादन में अपने नाम के बाद संबोधन सूचक अव्यय 'भोः' का उच्चारण करे, क्योंकि ऋषियों ने 'भोः' शब्द को नामों का पूर्ण उच्चारित स्वरूप कहा है।
>
> 2.125. अभिवादन का उत्तर देते हुए ब्राह्मण से 'हे सौम्य! आयुष्मान हो' कहे तथा उसके नाम के अंतिम अक्षर के पूर्व वाले अकार स्वर का प्लुतोच्चारण करे।
>
> 2.126. जो ब्राह्मण अभिवादन के बाद प्रत्याभिवादन करना नहीं जानता, विद्वान ब्राह्मण उसका अभिवादन न करे, क्योंकि जैसा शूद्र है वैसा ही वह भी है।
>
> 2.127. किसी विद्वान व्यक्ति को कोई ब्राह्मण मिले तब उससे कुशल, क्षत्रिय मिले तब उसके अनामय, वैश्य मिले तब क्षेम और जब कोई शूद्र मिले तब उसके आरोग्य होने के बारे में पूछे।

मनु ने धर्म और धार्मिक संस्कारों और यज्ञकर्म के संबंध में जो व्यवस्थाएं दी हैं, वे उल्लेखनीय हैं:

> 3.68. गृहस्थ के यहां वध के पांच स्थान होते हैं या जहां छोटे जीवों की हत्या हो सकती है : चूल्हा, चक्की, झाडू, ओखली, मूसल, और जल का घट। उन्हें व्यवहृत करता हुआ वह पाप का भागी होता है।
>
> 3.69. इन क्रमिक स्थानों पर अज्ञानवश किए गए पापों से निवृत्ति के लिए महर्षियों ने पांच महायज्ञ प्रतिदिन करने का विधान गृहस्थों के लिए बताया है।
>
> 3.70. शास्त्रों का अध्यापन और अध्ययन 'ब्रह्मयज्ञ' है, पिंड और जल अर्पित करना 'पितृयज्ञ' है, हवन करना 'देवयज्ञ' है, बलिवैश्वदेव करना 'भूतयज्ञ' है तथा अतिथियों का भोजन आदि से सत्कार करना 'नृयज्ञ' है।
>
> 3.71. यथाशक्ति इन पांच महायज्ञों को नहीं छोड़ने वाला व्यक्ति गृहस्थाश्रम में

रहते हुए भी पांचों पापों के दोषों से मुक्त रहता है।

इसके बाद मनु यह निर्देश देता है कि सभी को संस्कार-लाभ का अधिकार प्राप्त नहीं है और सभी को यज्ञ-कर्म करने का समान अधिकार नहीं है।

वह संस्कार-कर्म और यज्ञ-कर्म के प्रसंग में स्त्रियों और शूद्रों की स्थिति निर्धारित करता है। स्त्रियों के सबंध में मनु कहता है:

2.66. उपनयन संस्कार को छोड़कर वही संस्कार स्त्रियों के लिए उतनी ही आयु के प्राप्त होने पर उसी क्रम से किए जाने चाहिएं जिससे काया शुद्ध हो सके, लेकिन ये संस्कार बिना वेद मंत्र के किए जाएं।

शूद्रों के संबंध में मनु कहता है:

10.127. जो शूद्र अपने सारे कर्तव्य करने के इच्छुक हैं और यह जानते हुए कि उन्हें क्या करना चाहिए, अपने गृहस्थ-जीवन में अच्छे मनुष्यों की तरह आचरण करते हैं और स्तुति व प्रार्थना के अतिरिक्त और कोई धार्मिक पाठ नहीं करते और पातक कर्म-रहित हैं, वे प्रशंसित होते हैं।

किसी व्यक्ति को यज्ञोपवीत पहनाना एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्कार है:

2.36. ब्राह्मण बालक का गर्भ से आठवें वर्ष, क्षत्रिय बालक का गर्भ से ग्यारहवें वर्ष और वैश्य बालक का गर्भ से बारहवें वर्ष पिता अपने शिशु का अपने वर्ण के अनुसार यह (यज्ञोपवीत) संस्कार कराए।

2.37. वेदाध्ययन और ज्ञानवार्धक्य-प्राप्ति आदि तेज के लिए ब्राह्मण बालक का गर्भ से पांचवे वर्ष में पराक्रम में वृद्धि के लिए, क्षत्रिय बालक का गर्भ से आठवें वर्ष में 'यज्ञोपवीत' संस्कार उसके पिता द्वारा कराना चाहिए।

2.38. गायत्री-सहित यज्ञोपवीत संस्कार में विलंब नहीं करना चाहिए, ब्राह्मण के सबंध में सोलह वर्ष तक, क्षत्रिय के सबंध में बाईस वर्ष तक और वैश्य के सबंध में चौबीस वर्ष तक (यह संस्कार हो जाना चाहिए)।

2.39. इसके बाद इन तीनों वर्णों के युवक जिनका उचित समय पर यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता है, व्रात्य या जातिच्युत हो जाते हैं, गायत्री भ्रष्ट हो जाते हैं और शिष्ट जनों से निंदित होते हैं।

जहां तक गायत्री का संबंध है, यह एक मंत्र है। मनु इसके महत्व को स्पष्ट करते हुए कहता है:

2.76. ब्रह्मा ने तीन वेदों से तीन अक्षरों को निकाला जो परस्पर मिलकर ओ3म

बनते हैं, इसके साथ तीन व्याहृतियों 'भू: भुवः स्वः' अर्थात पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग को भी निकाला।

2.77 परमेष्ठी, ब्रह्मा ने इन तीनों वेदों से निर्वचनीय पाठ की तीन मात्राओं को भी निकाला, जिसका आरंभ 'तत्' से होता है और जिसे सावित्री था गायत्री कहते हैं।

2.78. जो ब्राह्मण वेद जान लेगा, और इस अक्षर (ऊं) का प्रातःकाल और संध्या-काल दोनों समय मन में उच्चारण करेगा और इस पवित्र अक्षर के बाद तीन शब्दों का उच्चारण करेगा, उसे वेदविहित पुण्य की प्राप्ति होगी।

2.79. जो ब्राह्मण इन तीन (1. प्रणव-ॐ, 2. व्याहृति 'भूः, भुवः, स्वः' और सावित्री-'तत्') का प्रतिदिन एक सहस्त्र बार पाठ करेगा, वह एक मास में बड़े से बड़े पाप से मुक्त हो जाएगा, जैसे सांप अपनी केंचुल से मुक्त हो जाता है।

2.80. जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन अलौकिक शब्दों का पाठ और समय पर की जाने वाली क्रियाएं (अग्निहोत्र आदि) नहीं करेगा, वह पुण्यवानों के बीच निंदित होगा।

2.81. ऊँकार-पूर्विका (जिनके पहले 'ॐ' कार है, ऐसी) ये तीनों महाव्याहृतियां (भूः, भुवः, स्वः) अव्यय और त्रिपदा सावित्री वेद का मुख अथवा मुख्य भाग हैं।

2.82. जो व्यक्ति प्रतिदिन तीन वर्ष तक 'ॐ' कार सहित महाव्याहृतियों का जप करता है, वह वायु और ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

2.83. तीन अक्षर युक्त एकाक्षर (ॐ) ब्रह्म का प्रतीक है, ईश्वर का ध्यान कर श्वास रोकना (प्राणायाम) सर्वश्रेष्ठ तप है, लेकिन गायत्री से श्रेष्ठ कोई मंत्र नहीं, मौन की अपेक्षा सत्य भाषण श्रेष्ठ है।

2.84. वेदविहित सभी कर्म, यज्ञ और धार्मिक विधियां अपना-अपना फल देकर नष्ट हो जाती हैं, लेकिन जो नष्ट नहीं होता वह ॐ है, इसीलिए इसे अक्षर कहते हैं, क्योंकि यह परब्रह्म, अर्थात सृजित जीवों के पालक का प्रतीक है।

2.85. उसके पवित्र नाम का जप विधिविहित यज्ञों से दस गुना श्रेष्ठ है, अगर इसे कोई न सुन सके, तब सौ गुना श्रेष्ठ है और अगर यह केवल मानस रूप हो तब हजार गुना श्रेष्ठ है।

2.86. चारों घरेलू संस्कारों को जिनमें विधिविहित यज्ञ का विधान है, अगर एक में मिला दिया जाए तब वह गायत्री के जप द्वारा किए गए यज्ञ के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है।

> यह यज्ञोपवीत संस्कार पुनः जन्म के समान होता है।
>
> 2.147. व्यक्ति को अपना जन्म साधारण हुआ समझना चाहिए, क्योंकि यह जन्म उसके माता-पिता ने परस्पर सुख प्राप्त करने के बाद दिया और उसे यह जन्म माता के गर्भ में प्राप्त हुआ था।
>
> 2.148. लेकिन जो जन्म उसका आचार्य, जो संपूर्ण वेद जानता है, दिव्य माता गायत्री के द्वारा उसे प्राप्त कराता है, वह ही वास्तविक जन्म होता है, यह जन्म अजर और अमर होता है।
>
> 2.169. पहला जन्म असली मां से होता है, दूसरा जन्म यज्ञोपवीत धारण करने पर होता है और तीसरा जन्म यज्ञ-कर्म करने के बाद होता है। वेद के अनुसार ये उस व्यक्ति के जन्म होते हैं, जिसे सामान्यतः द्विज कहा जाता है।
>
> 2.170. इनमें दिव्य जन्म वह होता है जिसमें यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, ऐसे जन्म में गायत्री उसकी मां होती है और आचार्य उसका पिता होता है।

मनु ने यह संस्कार शूद्रों और स्त्रियों के लिए स्वीकृत नहीं किए हैं।

> 2.103. लेकिन जो प्रातःकाल इसका खड़े होकर और संध्या समय में बैठकर पाठ नहीं करता है, उसे शूद्र समझ कर प्रत्येक द्विज कर्म से बहिष्कृत कर देना चाहिए।

मनु शिक्षा और अध्ययन के संबंध में नियमों का उल्लेख करना नहीं भूलता। मनु ने सामूहिक शिक्षा के विषय में कुछ नहीं कहा है। मनु इसकी कोई उपयोगिता नहीं मानता और वह इस संबंध में राजा या शासन के लिए कोई कर्तव्य निश्चित नहीं करता। वह केवल धर्मग्रंथों, अर्थात वेदों के अध्ययन के बारे चिंतित रहा।

वेद का अध्ययन आचार्य से और उनकी सहमति से किया जाना चाहिए। कोई भी व्यक्ति वेद का स्वयं अध्ययन नहीं कर सकता। अगर वह ऐसा करता है, तब वह चोरी करने का अपराध करता है।

> 2.116. जो अपने आचार्य की सहमति के बिना वेद का ज्ञान प्राप्त करता है, वह शास्त्रों की चोरी करने का अपराध करता है और वह नरक में गिरता है।
>
> 9.18. स्त्रियों का वेद से कोई सरोकार नहीं होता। यह शास्त्र द्वारा निश्चित है। चूंकि इस संबंध में धर्मशास्त्र में कोई साक्ष्य नहीं है और इनके लिए प्रायश्चित का कोई विधान नहीं है, अतः जो स्त्रियां वेदाध्ययन करती हैं, वे पापयुक्त हैं, और असत्य के समान अपवित्र हैं, यह शाश्वत नियम है।
>
> 4.99. वह वेद का पाठ स्वराघात और अक्षरों के स्पष्ट उच्चारण के बिना न करे,

वह शूद्र की उपस्थिति में भी वेद-पाठ न करे, रात्रि के अंतिम प्रहर में पाठ आरंभ करने पर यदि वह थक जाए तो पुनः सो जाए।

यह निषेध तीनों उच्च वर्णों के व्रात्यों या जातिच्युत लोगों के लिए भी है। मनु कहता है:

2.40. ऐसे अपवित्र व्यक्तियों के साथ कोई भी ब्राह्मण वेदाध्ययन में या साहचर्य में कोई संबंध नहीं रखे, चाहे उस पर विपत्ति ही क्यों न आ जाए।

अयोग्य घोषित व्यक्तियों के लिए यज्ञ-कर्म करना या उन्हें वेद का अध्ययन कराना मनु द्वारा निषिद्ध था।

4.205. जो यज्ञ-कर्म वेद-पाठ के बिना हुआ हो, जो यज्ञ-कर्म बहुत सारे यज्ञ कराने वाले यज्ञकर्मी के द्वारा किया गया हो, जो यज्ञ-कर्म स्त्री या नपुंसक द्वारा कराया गया हो, उनमें ब्राह्मण कभी भी भोजन न करे।

4.206. जब वे लोग घी की आहुति देते हैं, तब वह सज्जनों की श्री की हानि करता है और देवताओं में अरुचि उत्पन्न करता है, इसलिए ऐसे यज्ञ-कर्म से वह सतर्क हो संपर्क नहीं रखे।

11.198. जो व्यक्ति जातिच्युत व्यक्तियों के लिए यज्ञ-कर्म कराता है या जो अपरिचित का दाहकर्म करता है या जो किसी अबोध की हत्या के निमित्त यज्ञादि करता है या जो अशुद्ध यज्ञ करता है जिसे अहिंसा कहते हैं, वह अपने पाप के प्रायश्चित स्वरूप तीन प्रजापत्य तपस्या करने के बाद शुद्ध होता है।

अब कानून के क्षेत्र में समानता विषय लेते हैं। जब वे साक्षी के रूप में प्रस्तुत होते हैं, तब मनु के अनुसार उनसे नीचे लिखी विधि के अनुसार शपथ कराई जाए:

8.87. न्यायकर्ता शुद्ध होकर प्रातःकाल अनेक आहूत द्विजों के साथ जो शुद्ध हों किसी मूर्ति के सामने जो देवत्व और ब्राह्मणों का प्रतीक हो –साक्षी अपने मुख उत्तर या पूर्व दिशा की ओर रखेंगे।

8.88. 'न्यायकर्ता' ब्राह्मण से 'कहो', क्षत्रिय से 'सत्य कहो' वैश्य से असत्य कहने पर 'गौ, बीज और सोना चुराने का पाप लगेगा' और शूद्र से 'असत्य कहने पर तुम्हें उक्त या जो भी मनुष्य कर सकता है वे सभी पाप लगेंगे, कहकर कार्य आरंभ करेगा।

8.113. 'न्यायकर्ता' ब्राह्मण को उसकी सत्यनिष्ठा की, क्षत्रिय को उसके अश्व या हाथी और उसके शस्त्रास्त्रों की, वैश्य को उसकी गौ, अन्न और सुवर्ण की, यांत्रिक या शूद्र व्यक्ति को उसके अपने सिर और सभी संभव अपराध की, अगर वह असत्य

बोले, शपथ दिलाए।

मनु ऐसे साक्षियों का भी विवेचन करता है जो झूठी गवाही देते हैः

8.122. विद्वानों ने ये दंड निर्धारित किए हैं, जिनका विधान महर्षियों ने झूठी गवाही देने के अपराध के लिए किया है, जिससे अन्याय रोका जा सके और अधर्म का निवारण हो सके।

8.123. न्याय प्रिय राजा तीनों निम्न वर्णों के व्यक्तियों पर झूठी गवाही देने पर पहले जुर्माना करे और अगर वे बार-बार ऐसा करें, तब अपने राज्य से निष्कासित कर दे, लेकिन ब्राह्मण को वह केवल निष्कासित करे।

लेकिन मनु ने वहां एक अपवाद का विधान किया हैः

8.112. रति या विवाह प्रस्ताव के समय स्त्री से, गौ द्वारा घास या फल खा लेने पर, यज्ञ के लिए समिधा ले लेने पर, या ब्राह्मण के रक्षणार्थ आश्वासन देने पर, यदि झूठी शपथ ली जाए तब वह घोर पातक कर्म होता है।

कानूनी कार्रवाई के समय संबंधित पक्ष की स्थिति की व्याख्या मनु ने कुछ उदाहरण देकर की है, जो कुछ महत्वपूर्ण फौजदारी मामलों से संबंधित है। मानहानि या अपराध लीजिए। मनु कहता हैः

8.267. जो क्षत्रिय किसी ब्राह्मण की मानहानि करेगा तो उस पर सौ पण, वैश्य पर डेढ़ सौ या दो सौ पण का आर्थिक दंड लगेगा, लेकिन उस प्रकार के अपराध के लिए यांत्रिक या शूद्र को कोड़े लगाए जाएं।

8.268. कोई ब्राह्मण यदि किसी क्षत्रिय से कटु वचन कहे तब पचास पण, वैश्य से कहे तब पचीस पण और शूद्र व्यक्ति से कहे तब बारह पण लिए जाएं।

अपमान करने का अपराध लीजिए। मनु कहता हैः

8.270. यदि कोई शूद्र किसी द्विज को गाली देता है तब उसकी जीभ काट देनी चाहिए, क्योंकि वह ब्रह्मा के निम्नतम अंग से पैदा हुआ है।

8.271. यदि वह तिरस्कारपूर्वक उनके नाम और वर्ण का उच्चारण करता है, जैसे वह यह कहे 'देवदत्त तू नीच ब्राह्मण है' तब दश अंगुल लंबी लोहे की छड़ उसके मुख में कील दी जाए।

8.272. अगर वह अभिमानपूर्वक ब्राह्मणों को उनके कर्तव्य के बारे में निर्देश दे, तब राजा उसके मुख और कानों में गरम तेल डलवाए।

गाली देने का अपराध लीजिए। मनु कहता है:

8.276. यदि ब्राह्मण और क्षत्रिय आपस में एक-दूसरे को गाली दें, तब यह अर्थदंड विद्वान राजा द्वारा निश्चित किया जाए, जो ब्राह्मण पर न्यूनतम और क्षत्रिय पर औसत होगा।

8.277. जैसा कि ऊपर कहा गया है जीभ, काटने के दंड को छोड़कर ऐसा ही दंड वैश्य और शूद्र के आपस में एक-दूसरे को गाली देने पर दिया जाए, यह दंड का शाश्वत नियम है।

मारपीट करने के अपराध को लीजिए। मनु कहता है:

8.279. निम्न कुल में पैदा कोई भी व्यक्ति यदि अपने से श्रेष्ठ वर्ण के व्यक्ति के साथ मारपीट करे और उसे क्षति पहुंचाएं, तब उसका अंग कटवा दिया जाए, या क्षति के अनुपात में न्यूनाधिक अंग कटवा दिया जाए, यह मनु का आदेश है।

8.280. यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध हाथ या लाठी उठाए, तब उसका हाथ कटवा दिया जाए और अगर कोई व्यक्ति गुस्से में किसी दूसरे व्यक्ति को लात से मारे, तब उसका पैर कटवा दिया जाए।

मिथ्या दर्प का अपराध लीजिए। मनु के अनुसार :

8.281. निम्नतम वर्ण का व्यक्ति यदि ढिठाई से उच्चतम व्यक्ति के आसन पर साथ-साथ बैठे, तब राजा उसकी पीठ को तपाए गए लोहे से दगवा कर अपने राज्य से निष्कासित कर दे, या उसके नितंब को कटवा दे।

8.282. यदि वह गर्व से उस पर थूक दे तब राजा दोनों ओंठों को, पेशाब कर दे तब उसके लिंग को और अगर उसकी ओर अपान वायु निकाले तब उसकी गुदा को कटवा दे।

8.283. यदि वह ब्राह्मण को उसकी शिखा से या उसके दोनों पैरों से या उसकी श्मश्रु से या गर्दन से या अंडकोष से पकड़े, तब राजा निस्संकोच उसके दोनों हाथ कटवा दे।

8.359. यदि शूद्र वर्ण का कोई व्यक्ति ब्राह्मण की स्त्री के साथ व्यभिचार करता है, तब वह प्राणदंड के योग्य होता है, क्योंकि चारों वर्णों की पत्नियों की निश्चय विशेष सुरक्षा की जानी चाहिए।

8.366. यदि शूद्र वर्ग का कोई व्यक्ति उच्च वर्ग में जन्म लेने वाली किसी किशोरी के साथ प्रेम करता है, तब उसे शारीरिक दंड दिया जाए, लेकिन जो समान वर्ग वाली किशोरी के साथ प्रेम करे और उस किशोरी का पिता स्वीकार करे, तब वह

उसे उचित उपहार आदि देकर उसके साथ विवाह करेगा।

8.374 यदि कोई यांत्रिक या शूद्र द्विज की स्त्री के साथ जो अपने घर पर रक्षित हो या अरक्षित हो, तब उसे इस प्रकार दंड दिया जाए। यदि वह अरक्षित थी तब उसका आधा या सारा लिंग कटवा दिया जाए और यदि वह रक्षित थी और द्विज अनुपस्थित था, तब उसकी सारी संपत्ति, यहां तक कि उसका जीवन भी छीन लिया जाए।

8.375. ब्राह्मण की रक्षित पत्नी के साथ व्यभिचार करने पर वैश्य को एक वर्ष तक जेल में रखने के बाद उसकी संपत्ति जब्त कर ली जाए, ऐसा ही कर्म करने पर क्षत्रिय को एक हजार पण का आर्थिक दंड दिया जाए और उसका सिर गधे के मूत्र से मुंडवा दिया जाए।

8.376. यदि कोई वैश्य या क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ग की स्त्री के साथ व्यभिचार करे और जिसकी रक्षा करने वाला उसका पति घर पर न हो, तब राजा वैश्य को पांच सौ पण और क्षत्रिय को एक हजार पण का आर्थिक दंड दे।

8.377. ये दोनों यदि किसी ऐसी ब्राह्मणी के साथ अपराध करें जो न केवल रक्षित हो, बल्कि सदगुणों के लिए प्रतिष्ठित हो, तब उन्हें शूद्र वर्ग के व्यक्ति की तरह दंड दिया जाए, या उन्हें सूखी घास या फूंस में जलाया जाए।

8.382. ये कोई वैश्य किसी क्षत्रिय की रक्षित स्त्री के साथ, या कोई क्षत्रिय किसी वैश्य की स्त्री के साथ व्यभिचार करें, तब ये दोनों वैसा ही दंड पाने के अधिकारी हैं, जो आरक्षित ब्राह्मणी के प्रसंग में दिया जाता है।

8.383. किंतु यदि कोई ब्राह्मण इन दोनों वर्णों की रक्षित स्त्री के साथ व्यभिचार करता है, तब उसको एक सहस्त्र पण का आर्थिक दंड दिया जाना चाहिए, ऐसा ही अपराध शूद्र वर्ग की स्त्री के साथ करने पर क्षत्रिय या वैश्य को भी एक हजार पण का आर्थिक दंड दिया जाना चाहिए।

8.384. यदि कोई वैश्य क्षत्रिय वर्ग की किसी स्त्री के साथ व्यभिचार करता है और वह अरक्षित हो, तब उसको पांच सौ पण और यदि कोई क्षत्रिय इस प्रकार का अपराध करता है, तब पेशाब से उसका सिर मुंडवा दिया जाए या उसको उक्त आर्थिक दंड दिया जाए।

8.385. यदि कोई ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र वर्ग की किसी अरक्षित स्त्री के साथ व्यभिचार करता है, तब वह पांच सौ पण का आर्थिक दंड देगा और यदि वह किसी अन्त्यज जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार करता है, तब एक हजार पण का आर्थिक दंड देगा।

मनु ने विभिन्न अपराधों के लिए जो योजना बनाई, उससे इस विषय पर कुछ रोचक तथ्य प्रकाश में आते हैं:

8.379. ब्राह्मण वर्ग के व्यभिचार करने वाले व्यक्ति को मृत्यु-दंड न देकर अपकीर्तिकर उसका सिर मुंडवाने का विधान है, जब कि अन्य वर्ग के व्यक्ति के लिए मृत्यु-दंड तक का विधान है।

8.380. राजा ब्राह्मण का वध नहीं करेगा, चाहे उसने कितने ही भयंकर अपराध क्यों न किए हों। वह उसे अपने राज्य से उसकी सारी संपदा सहित निष्कासित कर दे और उसके शरीर को कोई क्षति न होने दे।

11.127. क्षत्रिय वर्ग के पुण्यशील व्यक्ति की सोद्देश्य हत्या करने का पाप उस पाप का चौथाई होता है, जो ब्राह्मण की हत्या करने पर होता है। वैश्य की हत्या करने पर केवल आठवां और शूद्र की हत्या करने पर जो अहर्निश अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है, यह पाप सौलहवां अंश होता है।

11.128. लेकिन यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय की बिना किसी दुर्भावना के हत्या करता है, तब अपने समस्त धार्मिक कृत्यों को करने के बाद ब्राह्मणों को एक सांड सहित एक सहस्त्र गाएं दे।

11.129. या वह ब्राह्मण की हत्या करने पर की जाने वाली तपस्या को तीन वर्ष तक इंद्रियों और क्रियाओं को संयमित करते हुए करे, अपनी जटाओं को बढ़ने दे, नगर से दूर रहे, किसी पेड़ के नीचे अपना निवास बनाए।

11.130. यदि वह बिना किसी दुर्भावना के ऐसे वैश्य की हत्या करता है जिसका आचरण शुद्ध है, तब वह यही प्रायश्चित एक वर्ष तक करे या ब्राह्मणों को एक सौ गाय और एक सांड दे।

11.131. यदि किसी शूद्र की बिना किसी उद्देश्य हत्या करता है, तब वह यही प्रायश्चित करे या वह ब्राह्मणों को दस सफेद गाएं और एक सांड दे।

8.381. इस पृथ्वी पर ब्राह्मण-वध के समान दूसरा कोई बड़ा पाप नहीं है। अतः राजा ब्राह्मण के वध का विचार मन में भी न लाए।

8.126. राजा एक जैसे अपराधों की बारंबारता, उनके स्थान और समय, अपराधी के दंड का भुगतान करने या दंड को भोग सकने के सामर्थ्य और स्वयं अपराध पर विचार करने और निश्चय करने के बाद केवल उनको दंड दे, जो इसके भागी हैं।

8.124. ब्रह्मा के पुत्र मनु ने दंड के दस स्थानों को निर्दिष्ट किया है जो तीन

निम्न वर्ग के व्यक्तियों के लिए उचित हैं, लेकिन इनमें से प्रत्येक में ब्राह्मण राज्य से निष्कासित कर दिया जाए।

8.125. उपस्थ (मूत्रमार्ग), पेट, जीभ, हाथ, और पांचवां दोनों पैर, आंख, नाक, दोनों कान, संपत्ति और मृत्यु-दंड के मामले में संपूर्ण शरीर।

धार्मिक संस्कारों और यज्ञ-कर्म के संबंध में अधिकारों और कर्तव्यों के विषय पर मनु के विचार उल्लेखनीय हैं:

2.28. यह शरीर वेदाध्ययन से, धर्म का आचरण करने से, यज्ञ करने से, त्रैविद्य नामक संस्कार से, देवताओं और पितरों का तर्पण करने से, पुत्रोत्पादन करने से, पांच महायज्ञों से, पवित्र कर्म करने से ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बनाया जाता है।

3.69. क्रमानुसार उक्त स्थानों पर अज्ञानवश पाप करने के कारण प्रायश्चित करने के लिए महर्षियों ने प्रतिदिन पांच महायज्ञ करने का गृहस्थाश्रमियों के लिए विधान किया है।

3.70. वेद का अध्ययन और अध्यापन 'ब्रह्म' है, पिंडदान और जल का तर्पण करना 'पितृयज्ञ' है, हवन का 'देवयज्ञ' है, जीवों को चावल या अन्य अन्न देना 'भूतयज्ञ' है तथा अतिथियों का आदर करना 'नृयज्ञ' है।

3.71. यथाशक्ति इन पांच महायज्ञों को नहीं छोड़ने वाला व्यक्ति निरंतर गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी पंच सूना (पाच पाप) के दोषों से मुक्त रहता है।

ये सब मनु के आदेश हैं। नियम कभी भी पूर्ण नहीं होते कि सभी बातें आ जाएं। इनमें कुछ न कुछ शंका अवश्य बनी रहती है। मनु इस कमी को जानता था और उसने आपातस्थिति के आने के लिए व्यवस्था की है:

12.108. जब कभी कोई विशेष स्थिति उत्पन्न हो जाए जो किसी नियम के अधीन नियंत्रित न होती हो, तब कौन-सा नियम व्यवहृत किया जाए, ऐसी समस्या के होने पर उत्तर यह है, 'जिस नियम का ब्राह्मण भली-भांति प्रतिपादन करे, वही नियम अकाट्य नियम समझा जाएगा।'

12.109. वे ब्राह्मण पूर्ण प्रशिक्षित हैं, जिन्होंने शास्त्रों को वेद और उनकी शाखाओं अर्थात वेदांग, मीमांसा, न्याय, धर्म-शास्त्रों, पुराणों का अध्ययन किया है और इनमें से वे दृष्टांत निर्दिष्ट कर सकते हैं, जो नियमानुसार हों।

12.113. यदि अधिक ब्राह्मण एकत्र न किए जा सकें, तब एक ही ब्राह्मण का निर्णय जो वेद के सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञाता है, सर्वोच्च सत्ता का नियम माना जाना चाहिए, उसे नहीं जो ऐसे अनेक व्यक्तियों द्वारा व्यक्त किया गया हो, जिन्हें शास्त्रों का

ज्ञान नहीं है।

मनु के नियम शाश्वत हैं। इसलिए यह प्रश्न ही नहीं उठता कि इनमें किसी प्रकार के परिवर्तन किए जाएं। मनु के समक्ष तो केवल यह प्रश्न विचारणीय था कि इस व्यवस्था को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाए।

8.410. राजा वैश्य वर्ण के प्रत्येक व्यक्ति को व्यापार करने, या ऋण देने, या कृषि और पशुपालन का कार्य करने और शूद्र वर्ण को द्विजों की सेवा में रहने के लिए आदेश दे।

8.418. राजा वैश्यों और शूद्रों को अपना-अपना कार्य करने के लिए बाध्य करने के बारे में सावधान रहे, क्योंकि जब ये लोग अपने कर्तव्य से विचलित हो जाते हैं, तब वे इस संसार को अव्यवस्थित कर देते हैं।

अगर कोई राजा अपना यह कर्तव्य नहीं पूरा करता है, तब वह अपराध है और नियम में दंडनीय है।

8.335. पिता, आचार्य, मित्र, मां, पत्नी, पुत्र, परिवार का पुरोहित, इनमें से कोई भी अगर अपने कर्तव्य में दृढ़ नहीं है, राजा के लिए अदंडनीय नहीं है।

8.336. जहां निम्न जाति का कोई व्यक्ति एक पण से दंडनीय है, उसी अपराध के लिए राजा एक सहस्त्र पण से दंडनीय है और वह यह जुर्माना ब्राह्मणों को दे या नदी में फेंक दे, यह शास्त्र का नियम है।

यदि कोई राजा इस व्यवस्था को नहीं मानता और कार्यान्वित नहीं करता, तब शासन करने का उसका अधिकार छीन लिया जा सकता है। मनु ऐसे राजा के विरुद्ध विद्रोह करने की अनुमति देता है।

8.348. जब ब्राह्मणों के धर्मचरण में बलात व्यवधान होता हो, तब द्विज शस्त्रास्त्र ग्रहण कर सकते हैं,और तब भी जब द्विज वर्ग पर कोई भयंकर विपत्ति आ जाए।

विद्रोह करने के अधिकार शूद्र वर्ण को नहीं, बल्कि केवल तीन उच्च वर्णों गया है। यह बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि इस व्यवस्था के कार्यान्वयन से इन्हीं तीन वर्णों को लाभ होता है। लेकिन कल्पना कीजिए कि अगर इस व्यवस्था को समाप्त करने में क्षत्रिए वर्ण राजा की सहायता करें, तब क्या किया जा सकता है? मनु सभी वर्णों; विशेष रूप से क्षत्रियों को दंड देने का अधिकार ब्राह्मणों को देता है।

11.31. ब्राह्मण, जो धर्म ज्ञाता होता है, किसी के किसी भी अपराध की शिकायत

राजा से न करे, क्योंकि वह अपनी ही शक्ति से उन सभी लोगों को दंडित कर सकता है, जो उसे क्षति पहुंचाते हैं।

11.32. उसकी निजी शक्ति जो केवल उसी पर निर्भर करती है, राजकीय शक्ति से प्रबल होती है जो कि दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर है। अतः ब्राह्मण अपनी शक्ति के द्वारा ही अपने शत्रुओं का दमन कर सकता है।

11.33. वह निस्संकोच शक्तिशाली मंत्रों का प्रयोग कर सकता है जो अथर्वन को प्राप्त हुए और जो उसके द्वारा अंगिरस को दिए गए, क्योंकि वाणी ही ब्राह्मण का शस्त्रास्त्र है, जिससे वह अपने शत्रुओं का विनाश कर सकता है।

9.320. यदि कोई क्षत्रिय ब्राह्मण के विरुद्ध सभी अवसरों पर हिसंक ढंग से शस्त्र उठाता है तो उसे स्वयं वह ब्राह्मण दंड देगा, क्योंकि क्षत्रिय मूल रूप से ब्राह्मण से ही पैदा हुआ है।

ब्राह्मण जब तक शस्त्रास्त्र न ग्रहण करे, तब तक क्षत्रिय को किस प्रकार दंडित कर सकता है? मनु इसे जानता था, अतः वह क्षत्रियों को दंडित करने के लिए ब्राह्मणों को शस्त्रास्त्र ग्रहण करने का अधिकार देता है।

12.100. वेदज्ञाता मनुष्य सेनापतित्व, राज्य, दंडप्रणेतृत्त्व (न्यायाधीश आदि होने) और संपूर्ण लोकों के स्वामित्व के योग्य है।

मनु चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का इतना प्रबल पक्षधर है कि उसने यह मौलिक परिवर्तन करने में कोई कमी नहीं रखी। ब्राह्मण द्वारा शस्त्रास्त्र ग्रहण करने का आग्रह एक मौलिक परिवर्तन है जो मनु पूर्व विद्यमान् नहीं था। ब्राह्मण द्वारा शस्त्रास्त्र ग्रहण न किए जाने का बड़ा कठोर नियम था। मनु पूर्व आपस्तम्ब धर्म सूत्र में यह नियम निम्नानुसार वर्णित है:

1.10.29.6. ब्राह्मण अपने हाथ में चाहे उसे जांचने की ही इच्छा क्यों न हो शस्त्र ग्रहण नहीं करेगा।

मनु के उत्तराधिकारी बौद्धायन ने अपने सूत्र में उसमें और संशोधन किया:

2.24.18. गौ की रक्षा हेतु ब्राह्मण, अथवा वर्ण के विषय में भ्रांति होने पर ब्राह्मण और वैश्य भी शस्त्रास्त्र ग्रहण कर सकते हैं, जो धर्म–सम्मत और हर कीमत पर मान्य है।

9

भगवत्गीता पर निबंधः प्रतिक्रांति की दार्शनिक पुष्टिः कृष्ण और उनकी गीता

'एसेज आन दि भगवत्गीता' (भगवत्गीता पर निबंध) के पहले पृष्ठ पर डा. अम्बेडकर ने अपने हस्ताक्षर कर रखे हैं। अगले बयालीस पृष्ठों में विराट पर्व और उद्योग पर्व पर विश्लेषणात्मक टिप्पणियां और इस निबंध की विषय-सूची दी गई है। यह विषय-सूची पुस्तकों की योजना के अंतर्गत मुद्रित है। डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को प्राप्त फाइल में 'फिलासोफिक डिफेंस आफ काउंटर-रिवोल्यूशन--कृष्ण एंड हिज गीता' (प्रतिक्रांति की दार्शनिक पुष्टिः कृष्ण और उनकी गीता) शीर्षकनिबंध की टाइप की हुई दो प्रतियां मिली थीं। इस निबंध का अंतिम वाक्य अपूर्ण मिला है। इस निबंध के टाइप किए गए पृष्ठों की कुल संख्या चालीस है। विराट पर्व और उद्योग पर्व पर टिप्पणियां अगले अध्यायों में सम्मिलित की गई हैं–संपादक

प्राचीन भारत के साहित्य में *भगवत्गीता* का क्या स्थान है? क्या यह हिंदू धर्म का उसी प्रकार का एक धर्मग्रंथ है, जिस प्रकार ईसाई धर्म की *बाइबिल* है। हिंदू इसे अपना धर्मग्रंथ मानते हैं। अगर यह धर्मग्रंथ है, तब यह वस्तुतः क्या शिक्षा देता है? यह किस सिद्धांत का प्रतिपादन करता है? इस विषय पर जो विद्वान कुछ कहने के लिए सक्षम हैं, उन्होंने इस प्रश्न के जो उत्तर दिए हैं, वे एक-दूसरे से इतने भिन्न हैं कि सचमुच आश्चर्य होता है। बोटलिंग्क[1] लिखते हैं :

---

1. रिर्चाड्स गार्बे द्वारा अपने इंट्रोडक्शन टू दि *भगवत्गीता* में उद्धृत (इंडियन एंटीक्वैरी 1918 परिशिष्टांक)।

"*गीता* में उच्च और सुंदर भाव तो हैं, लेकिन इसके साथ कुछ दुर्बल पक्ष भी हैं। यह दुर्बल पक्ष हैं, परस्पर विरोधी उक्तियां (टीकाकारों ने जिन्हें क्षम्य समझा है और जिन्हें टीका करते समय छोड़ देने की कोशिश की है), जगह-जगह पुनरावृत्तियां, अतिशयोक्तियों, असंगतियां और नीरस उक्तियां।"

होपकिन्स[1] *भगवत्गीता* को उसकी महत्वपूर्णता और महत्वहीनता, तर्कपूर्णता और तर्कहीनता के कारण हिंदू साहित्य की एक विलक्षण कृति मानते हैं... आदिम दार्शनिक सिद्धांतों का अटपटा समुच्चय।

वह अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैः

"हालांकि इस दैवी गीत में यत्र-तत्र ऊर्जा और संगीत की भव्यता है, तो भी वर्तमान काव्यकृति के रूप में यह एक अशक्त रचना है। एक ही बात को बार-बार कहा गया है। शब्दावली में और अर्थ में परस्पर विरोध के अनगिनत उदाहरण हैं, जितने कि पुनरावृत्तियों के। ये इतने अधिक हैं कि हर किसी को तब आश्चर्य होता है जब इस कृति के बारे में यह कहा जाता है कि—यह अद्भुत गीत है, जो रोमांच पैदा कर देता है।"

होट्जमैन[2] कहते हैः

"यह (भगवत्गीता) सर्वेश्वरवादी कविता का वैष्णव संस्करण है।"

गार्बे[3] लिखते हैंः

"इस कविता की समग्र प्रकृति विन्यास और रचना की दृष्टि से मुख्यतः आस्तिक है। कृष्ण नाम के एक इष्ट देवता मानवीय रूप में उपस्थित हो अपने मत की व्याख्या करते हैं और अपने श्रोता को यह आदेश देते हैं कि वह अपने कर्तव्यों का पालन करने के साथ-साथ सर्वप्रथम उनमें भक्ति रखे और अपने-आपको समर्पित कर दे... और इस देवता के साथ-साथ—जिसे यथासंभव इष्ट रूप में व्यक्त किया गया है और जो सारी कविता में प्रमुख है—सर्वोच्च सिद्धांत के रूप में अक्सर निवयैक्तिक तटस्थ ब्रह्म की सत्ता भी, जो परम है, स्पष्ट प्रतीत होती है। कृष्ण कभी यह कहते हैं कि मैं ही परमात्मा हूं जिसने समस्त विश्व और प्राणियों की सृष्टि की है और जो सबका नियामक है, कभी वह ब्रह्म और माया (भ्रम) के वेदांत की व्याख्या करते हैं और कहते हैं कि मानव प्राणी का चरम लक्ष्य इस सांसारिक भ्रम से मुक्ति पाना और ब्रह्म रूप हो जाना है। ये दोनों सिद्धांत—ईश्वरवाद और सर्वेश्वरवाद—एक-दूसरे

1. *रिलिजन आफ इंडिया*, पृ. 390-400
2. गार्बे द्वारा उद्धृत
3. *इंट्रोडक्शन टू भगवत्गीता*

में मिला दिए गए हैं, एक-दूसरे का अनुगमन करते हैं,कभी एक-दूसरे से सर्वथा पृथक हो जाते हैं, और कभी ये पूरी तरह अपृथक, और कभी थोड़ा-बहुत पृथक रहते हैं। ऐसा भी नहीं है कि किसी एक को निम्न या बाह्य दिखाया गया हो और दूसरे को उच्च या गुप्त सिद्धांत। यह भी कहीं नहीं बताया गया है कि सत्य के ज्ञान के लिए ईश्वरवाद आरंभिक उपाय है या यह उसका प्रतीक है और वेदांत का सर्वेश्वरवाद स्वतः (चरम) सत्य है, लेकिन ये दोनों विचारधाराएं लगभग पूरे पाठ में इस प्रकार दिखाई गई हैं कि वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है, न तो शाब्दिक और न तत्वतः।"

श्री तेलंग[1] का कहना है:

"गीता में कई ऐसे स्थल हैं, जिनका एक-दूसरे के साथ मेल बिठाना कठिन है और इनमें संगत बिठाने की कोई कोशिश भी नहीं की गई है। उदाहरणार्थ, अध्याय 7 के श्लोक 16 में कृष्ण अपने भक्तों को चार श्रेणियों में विभाजित करते हैं, इनमें से एक श्रेणी उनकी है जो 'ज्ञानी' हैं, जिनके बारे में कृष्ण कहते हैं कि वह उन्हें 'अपना ही रूप' मानते हैं। इस परम पद पर पहुंचे हुए व्यक्ति के बारे में कुछ कहने के लिए इससे अधिक उपयुक्त शब्दावली शायद ही मिल सकती थी। और अध्याय 6 के श्लोक 46 में हमें यह पढ़ने को मिलता है कि भक्त न केवल तपस्वी से, बल्कि ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है। भाष्यकार इस श्लोक में 'ज्ञानी' शब्द की इंस प्रकार व्याख्या कर अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं कि ये वे व्यक्ति हैं, जिन्होंने शास्त्रों और उनके सारार्थ में ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यह कोई ऐसी टिप्पणी नहीं है, जिस पर विचार करना आवश्यक है। यहां शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है और इन परिस्थितियों में मैं इसे स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हू। दूसरी ओर अध्याय 4 के श्लोक 39 से यह व्यक्त होता है कि भक्ति की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठतम है– यह एक उच्चतर अवस्था है, जहां भक्ति के द्वारा पहुंचा जा सकता है, भक्ति एक सोपान है। *गीता* में अध्याय 12 के श्लोक 12 में ध्यान को ज्ञान की तुलना में वरीयता दी गई है। मुझे ऐसा लगता है कि इसकी संगति भी अध्याय 7 के श्लोक 16 के साथ नहीं बैठती। एक और उदाहरण लीजिए। *गीता* में अध्याय 4 के श्लोक 14 में कहा गया है कि ईश्वर (कृष्ण) किसी के पाप या पुण्य का भागी नहीं है। लेकिन अध्याय 9 के श्लोक 24 में कृष्ण अपने को सभी यज्ञों का 'भोक्ता और प्रभु' बताते हैं। तब यह प्रश्न उठता है कि परमात्मा उसका भोग कैसे कर सकता है, जो उसे प्राप्त ही नहीं होता। अध्याय 9 के श्लोक 29 में पुनः कृष्ण घोषणा करते हैं कि मेरे लिए न कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय है। लेकिन अध्याय 12

1. *भगवत्गीता* (एस.ई.बी.) इंट्रोडक्शन, पृ. 11

का अंतिम श्लोक तो इसके ठीक विपरीत है। इस अध्याय में अनेक श्लोक एक साथ मिलते हैं, जिनमें कृष्ण भावपूर्ण रीति से कहते दिखाए गए हैं कि ऐसा-ऐसा व्यक्ति मुझे प्रिय है। उसी प्रकार उन श्लोकों में, जहां कृष्ण अपने आध्यात्म का सार प्रस्तुत करते हैं, वह अर्जुन से कहते हैं कि तुम मुझे प्रिय हो। कृष्ण यह भी कहते हैं कि उन्हें वह भक्त प्रिय है, जो *गीता* के रहस्य को परब्रह्म के संदर्भ में उद्घाटित करता है।[1] हम इस उद्धरण का कि कृष्ण को न कोई प्रिय है न अप्रिय, अध्याय 16 के श्लोक 18 और बाद के श्लोकों में कृष्ण की ही उक्तियों के साथ किस प्रकार मेल बिठा सकते हैं? वहां राक्षसी प्रवृत्ति वाले लोगों के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह उनके प्रति किसी प्रिय भाव का द्योतक नहीं है, जब कृष्ण कहते हैं, 'मैं ऐसे लोगों को असुर योनि में फेंक देता हूं, जहां से वे कष्टों और निकृष्टतम गति में जा गिरते हैं।' ऐसे व्यक्तियों का वर्णन उन्हें 'न अप्रिय, न प्रिय' कहकर करना शायद ही उचित हो। मुझे ऐसा लगता है कि *गीता* में ये अंसगतियां वास्तविक असंगतियां हैं और ऐसी नहीं हैं कि जिनकी व्याख्या न की जा सके, बल्कि मेरा विचार है कि, और जैसा कि प्रो. मैक्स मूलर कहते हैं, यह ऐसी मनःस्थिति को दिखाती है, जहां व्यक्ति सत्य के बारे में अनुमान मात्र लगा रहा होता है, न कि उस मनःस्थिति को जहां एक पूर्ण और सुगठित दर्शन-सिद्धांत की व्याख्या की जा रही होती है। इस बात का तनिक भी संकेत नहीं है कि लेखक को इन असंगतियों की जानकारी है। जैसा कि विभिन्न उद्धरणों से पता चलता है, और मैं इसी निष्कर्ष पर पहुंचा हूं, किसी प्रसंग-विशेष पर विचार करते समय कुछ अर्द्धसत्यों को इधर और कुछ उधर बिखेर दिया गया है। लेकिन इन विभिन्न अर्द्धसत्यों को, जो स्पष्टतः एक-दूसरे से मेल नहीं खाते, एक जगह सुव्यवस्थित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। अगर ऐसा किया गया होता, तब ये सारी की सारी असंगतियां विलीन हो गई होतीं।"

यह विचार उन विचारकों के हैं, जिन्हें आधुनिक कहा जा सकता है। अगर हम पुराने रूढ़िवादी पंडितों के विचारों को पढ़ें, तब हमें भिन्न-भिन्न मत मिलेंगे। एक मत यह है कि *भगवत्गीता* किसी विशेष धार्मिक संप्रदाय का ग्रंथ नहीं है, और इसमें मोक्ष प्राप्ति के तीनों मार्गों का समान रूप से निर्वचन किया गया है। ये मार्ग हैं– (1) कर्म मार्ग, (2) भक्ति मार्ग, और (3) ज्ञान मार्ग। यह ग्रंथ मोक्ष प्राप्ति के तीनों मार्गों की उपयोगिता का उपदेश देता है। ये पंडितगण अपने इस मत की पुष्टि में कि *गीता* में प्रत्येक मार्गों की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है, यह कहते हैं कि इस ग्रंथ के 18 अध्यायों में से अध्याय 1 से 6 तक ज्ञान मार्ग, अध्याय 7 से 12 तक कर्म मार्ग और अध्याय 12 से 18 तक भक्ति मार्ग का उपदेश मिलता है। इनकी यह धारणा है कि *गीता* मोक्ष प्राप्ति

1. अध्याय 7 के श्लोक 17 को भी देखिए, जहां कृष्ण को ज्ञानवान व्यक्ति प्रिय बताया गया है।

के तीनों ही मार्गों को उचित बताती है।

इन पंडितों के दृष्टिकोण से नितांत भिन्न दृष्टिकोण शंकराचार्य और श्री तिलक का है। दोनों ही विद्वानों को परंपरावादी लेखकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। शंकराचार्य का दृष्टिकोण यह था कि *भगवत्गीता* में ज्ञान मार्ग का उपदेश दिया गया है और ज्ञान मार्ग ही मोक्ष का एक मात्र सही मार्ग है। श्री तिलक[1] अन्य विद्वानों में से किसी विद्वान के दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। वे इस दृष्टिकोण का खंडन करते हैं कि *गीता* में अनेक विसंगतियां हैं। वे उन पंडितों से भी सहमत नहीं हैं जो कहते हैं कि *भगवत्गीता* मोक्ष के तीन मार्गों को उचित मानती हैं। शंकराचार्य के समान उनका अभिमत है कि *भगवत्गीता* निश्चित सिद्धांत के बारे में उपदेश देती है। परंतु उनका मत शंकराचार्य से भिन्न है और उनकी धारणा है कि *गीता* ने कर्म योग का नहीं, बल्कि ज्ञान योग का उपदेश दिया है।

गीता में जो कुछ कहा गया है, उसके बारे में इतने भिन्न-भिन्न मतों का होना केवल आश्चर्य की बात नहीं है। कोई भी व्यक्ति यह पूछ सकता है कि विद्वानों में इतना मतभेद क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर में मेरा निवेदन है कि विद्वानों ने ऐसे लक्ष्य की खोज की है जो मिथ्या है। वे इस अनुमान पर *भगवत्गीता* के संदेश की खोज करते हैं कि *कुरान*, *बाइबिल* अथवा *धम्मपद* के समान गीता भी किसी धार्मिक सिद्धांत का प्रतिपादन करती है। मेरे मतानुसार यह अनुमान ही मिथ्या है। *भगवत्गीता* कोई ईश्वरीय वाणी नहीं है, इसलिए उसमें कोई संदेश नहीं है और इसमें किसी संदेश की खोज करना व्यर्थ है। निस्संदेह यह प्रश्न पूछा जा सकता है: यदि भगवत्गीता कोई ईश्वरीय वाणी नहीं है, तो फिर यह क्या है? मेरा उत्तर है कि *भगवत्गीता* न तो धर्म ग्रंथ है, और न ही यह दर्शन का ग्रंथ है। *भगवत्गीता* ने दार्शनिक आधार पर धर्म के कतिपय सिद्धांतों की पुष्टि की है। यदि कोई व्यक्ति इस आधार पर *भगवत्गीता* को धर्मग्रंथ अथवा दर्शन का ग्रंथ कहता है, तो वह अपने मुंह मियां मिट्ठू बन सकता है। परंतु यह वस्तुतः दोनों में से एक भी नहीं है। इस ग्रंथ में दर्शन का प्रयोग धर्म की पुष्टि के लिए किया गया है। मेरे प्रतिद्वंद्वी केवल राय बताने से ही संतुष्ट नहीं होगें। वे इस बात पर बल देंगे कि मैं अपनी स्थापना को विशिष्ट तथ्यों का संदर्भ देकर सिद्ध करूं। यह कोई कठिन बात नहीं है। वास्तव में यह सबसे सरल कार्य है।

भगवत्गीता का अध्ययन करने पर सबसे पहली बात जो हमें मिलती है, वह यह कि इसमें युद्ध को संगत ठहराया गया है। स्वयं अर्जुन ने युद्ध तथा संपत्ति के लिए लोगों की हत्या करने का विरोध किया। कृष्ण ने युद्ध तथा युद्ध में हत्याओं की दार्शनिक आधार पर पुष्टि की। युद्ध की यह दार्शनिक पुष्टि *भगवत्गीता* के अध्याय 2 के श्लोक 2 से 28 तक दी गई है। युद्ध की दार्शनिक पुष्टि तर्क की दो कसौटियों पर आधारित है। पहला तर्क यह है कि संसार नश्वर है तथा मनुष्य मृत्युधर्मी है। वस्तुओं का अंत होना

1. देखिए, गीता रहस्य (दूसरा संस्करण), खंड 2, अध्याय 14, स्फुट

निश्चित है। मनुष्य की मृत्यु निश्चित है। जो बुद्धिमान हैं, उनके लिए इस बात से क्या अंतर पड़ेगा कि मनुष्य की स्वाभाविक मृत्यु होती है अथवा वह हिंसा के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त करता है? जीवन अस्वाभाविक है, इस बात पर आंसू क्यों बहाए जाएं कि उसका अंत हो गया है? मृत्यु अनिवार्य है, फिर इस बात पर क्यों विचार किया जाए कि मृत्यु किस प्रकार हुई? दूसरा तर्क प्रस्तुत करते हुए युद्ध की आवश्यकता को सिद्ध किया गया है और यह सोचना भ्रम है कि शरीर और आत्मा एक हैं। वे अलग-अलग हैं। वे केवल स्पष्ट रूप से अलग-अलग ही नहीं, परंतु वे दोनों अलग-अलग इसलिए हैं कि शरीर नश्वर है, जब कि आत्मा अमर और अविनाशी है। जब मृत्यु होती है तो शरीर का अंत हो जाता है। आत्मा का कभी भी विनाश नहीं होता। और आत्मा कभी भी नहीं मरती, यहां तक कि वायु इसे सुखा नहीं सकती, अग्नि इसे जला नहीं सकती, और हथियार इसे काट नही सकते। इसलिए यह कहना भूल है कि जब व्यक्ति मर जाता है, तो उसकी आत्मा भी मर जाती है। वास्तव में स्थिति यह है कि शरीर मर जाता है। उसकी आत्मा मृत शरीर को उसी प्रकार त्याग देती है, जैसे व्यक्ति अपने पुराने वस्त्रों को त्याग देता है—वह नए वस्त्र धारण करता है तथा अपना जीवन बिताता है। चूंकि आत्मा कभी भी नहीं मरती है, अतः व्यक्ति की हत्या होने से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए युद्ध और हत्या-जनित पश्चाताप अथवा संकोच, यही *भगवत्‌गीता* का तर्क है।

एक अन्य सिद्धांत जिसे *भगवत्‌गीता* में प्रस्तुत किया गया है, वह चातुर्वर्ण्य की दार्शनिक पुष्टि है। निस्संदेह *भगवत्‌गीता* में बताया गया है कि चातुर्वर्ण्य ईश्वर का सृजन है और इसलिए यह अति पवित्र है। परंतु *गीता* में यह इस कारण वैध नहीं बताया गया है। इसके लिए दार्शनिक आधार प्रस्तुत किया गया है तथा उसे मनुष्य के स्वाभाविक और जन्मजात गुणों के साथ जोड़ दिया गया है। *भगवत्‌गीता* में कहा गया है कि पुरुष के वर्ण का निर्धारण मनमाने ढंग से नहीं हुआ है। परंतु उसका निर्धारण मनुष्य के स्वाभाविक और जन्मजात गुणों[1] के आधार पर किया जाता है।

भगवत्‌गीता में तीसरा सिद्धांत कर्म योग की दार्शनिक पृष्ठभूमि बताकर प्रस्तुत किया गया है। *भगवत्‌गीता* के अनुसार कर्म मार्ग का अर्थ है मोक्ष के लिए यज्ञ आदि संपन्न करना। *भगवत्‌गीता* में कर्म योग का प्रतिपादन किया गया है और इस हेतु उन बातों का निराकरण किया गया हैं जो अनावश्यक रूप से कर्मयोग में पैदा हो गई हैं, जिन्होंने उसे ढक दिया है और विकृत कर दिया हैं। पहली बात है, अंधविश्वास। *गीता* का उद्देश्य कर्म योग की आवश्यक शर्त के रूप में बुद्धि योग[2] के सिद्धांत का निरूपण कर उस अंधविश्वास को समाप्त करना है। यदि व्यक्ति स्थित प्रज्ञ, अर्थात् संयत बुद्धि हो जाए तो कर्मकांड करना कोई गलत बात नहीं है। दूसरा दोष यह है कि कर्मकांड के पीछे

1. *भगवत्‌गीता*, 4.13
2. वही, 2, 39-53

स्वार्थ निहित था और यही स्वार्थ कर्म-संपादन के लिए प्रेरणा रहा। इस दोष के निराकरण के लिए *भगवत्गीता* में अनासक्ति, अर्थात् कर्म के फल की इच्छाा किए बिना कर्म[1] के संपादन के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। *गीता* में कर्म मार्ग[2] की पुष्टि यह तर्क प्रस्तुत करके की गई है कि अगर इसके मूल में बुद्धि योग हो और कर्म के कारण किसी फल की इच्छा की भावना न हो, तो कर्म कांड के सिद्धांत में कोई त्रुटि नहीं है। इसी क्रम में अन्य सिद्धांतों के संबंध में विचार करना उचित ही है कि *गीता* में दार्शनिक आधार पर इनकी पुष्टि किस प्रकार की गई है, जो पहले अस्तित्व में ही नहीं थे। परंतु यह तभी हो सकता है, यदि कोई व्यक्ति भगवत्गीता पर कोई शोध प्रबंध लिखे। यह इस अध्याय के कार्य-क्षेत्र के परे की बात है, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय साहित्य में *गीता* के समुचित महत्व का आकलन करना है। इसलिए मैंने मुख्य-मुख्य सिद्धांतों को चुना है, ताकि मैं अपनी व्याख्या की पुष्टि कर सकूं। निश्चित ही मेरी व्याख्या को लेकर दो और प्रश्न हो सकते हैं। *भगवत्गीता* में जिन सिद्धांतों की दार्शनिक पुष्टि की गई है, वे किन व्यक्तियों के हैं? *भगवत्गीता* के लिए इन सिद्धांतों की पुष्टि करना क्यों आवश्यक हो गया था?

प्रथम प्रश्न से प्रारंभ किया जाए। *गीता* में जिन सिद्धांतों की पुष्टि की गई है, वे प्रतिक्रांति के सिद्धांत हैं जो प्रतिक्रांति की बाइबिल, अर्थात जैमिनि कृत पूर्वमीमांसा में वर्णित हैं। इस तर्क को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। यदि कोई कठिनाई है, तो यह मुख्यतः कर्म योग शब्द का गलत अर्थ करने से संबंधित है। *भगवत्गीता* के अधिकांश भाष्यकार 'कर्म योग' शब्द का अनुवाद ' कार्य' और ' ज्ञान योग' शब्द का अनुवाद ' ज्ञान' करते हैं और *भगवत्गीता* पर यह समझकर विचार करते हैं कि इसमें सामान्य रूप में ज्ञान और कर्म में तुलना और उनके अंतर का विवेचन किया गया है। यह बिल्कुल गलत है। *भगवत्गीता* का उद्देश्य कर्म बनाम ज्ञान विषय पर कोई सामान्य या दार्शनिक चर्चा करना नहीं है। वास्तव में *गीता* का संबंध विशेष विषय से है, सामान्य विषय से नहीं है। कर्मयोग अथवा कर्म के बारे में *गीता* का आशय उन सिद्धांतों से है, जो जैमिनि के कर्मकांड में दिए गए हैं और ज्ञान योग अथवा ज्ञान का आशय उन सिद्धांतों से है, जो बादरायण के ब्रह्म सूत्र में दिए गए हैं।*गीता* में कर्म की चर्चा का आशय कर्म या अकर्म, निवृत्तिवाद या प्रवृत्तिवाद से नहीं है, सामान्य अर्थ में इस चर्चा का आशय धार्मिक अनुष्ठान तथा उनके पालन से है, और जिसने भी *गीता* को पढ़ा है, वह इस बात से इंकार नहीं करेगा। *गीता* को एक ऐसे दल की प्रचार सामग्री (पेम्फलेट) के स्तर से ऊंचा उठा कर लिखने का प्रयास किया गया, जो क्षुद्र विवाद में उलझ गया था और जिससे ऐसा लगे कि यह उच्च दर्शन के विषयों पर लिखा गया कोई अच्छा-खासा भाष्य

---

1. *भगवत्गीता*, 2, 47
2. यह भगवत्गीता, 2, 48 में निष्कर्ष के रूप में मिलता है।

हो। इसलिए कर्म और ज्ञान शब्दों के अर्थ का विस्तार किया गया और इन्हें सामान्य शब्दों के रूप में ग्रहीत किया गया। देशभक्त भारतीयों के इस रहस्य के लिए मुख्य दोष श्री तिलक को दिया जाना चाहिए। इसका परिणाम यह हुआ है कि इन गलत अर्थों ने लोगों को भ्रम में डाल दिया और वे यह विश्वास करने लगे कि *भगवत्‌गीता* एक स्वतंत्र स्वतः पूर्ण ग्रंथ है तथा इसका उस साहित्य से कोई संबंध नहीं है, जो इस ग्रंथ से पूर्व था। परंतु यदि कोई व्यक्ति कर्म योग शब्द के अर्थ को वैसा ही ग्रहण करना चाहता है, जैसा कि *भगवत्‌गीता* में दिया गया है, तो वह व्यक्ति इस बात से सहमत हो जाएगा कि *भगवत्‌गीता* में कर्म योग के बारे में कोई अन्य बात नहीं कही गई है, परतु वहां आशय कर्मकांड के उन सिद्धांतों से हैं, जिनका प्रतिपादन जैमिनि द्वारा किया गया था तथा जिन्हें *गीता* द्वारा पुनर्जीवित और पुष्ट करने का प्रयास किया गया है।

अब दूसरे प्रश्न पर विचार किया जाए। *भगवत्‌गीता* में प्रतिक्रांति के सिद्धांतों की पुष्टि करना क्यों आवश्यक समझा गया? मैं सोचता हूं कि इसका उत्तर सरल है। यह इसलिए किया गया जिससे इन सिद्धांतों की बौद्ध धर्म के जबरदस्त प्रभाव से रक्षा की जा सके और यही कारण है कि *भगवत्‌गीता* की रचना की गई। बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश दिया। उन्होंने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया, अपितु ब्राह्मणों को छोड़कर अधिकांश लोगों ने अहिंसा को जीवन-शैली के रूप में स्वीकार भी कर लिया था। उनके मन में हिंसा के प्रति घृणा पैदा हो चुकी थी। बुद्ध ने चातुर्वर्ण्य के विरुद्ध उपदेश दिए। उन्होंने चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत का खंडन करने के लिए बड़ी कटु उपमाएं दीं। चातुर्वर्ण्य का ढांचा चरमरा गया। चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था उलट-पुलट थी। शूद्र और महिलाएं संन्यासी हो सकते थे, ये ऐसी प्रतिष्ठा थी, जिससे प्रतिक्रांति ने उन्हें वंचित कर दिया। बुद्ध ने कर्मकांड और यज्ञ कर्म की भर्त्सना की । उन्होंने इस आधार पर भी उनकी भर्त्सना की कि इन कर्मों के पीछे अपनी स्वार्थ-सिद्धि की भावना छिपी हुई थी। इस आक्रमण के विरुद्ध प्रतिक्रांतिवादियों का क्या उत्तर था? केवल यही कि ये बातें वेदों के आदेश हैं, वेद भम्रातीत हैं, अतः इन सिद्धांतो के बारे में शंका नहीं की जानी चाहिए।

बौद्ध-काल में, जो भारत का सबसे अधिक प्रबुद्ध ओर तर्कसम्मत युग था, ऐसे सिद्धांतों के लिए कोई स्थान नहीं था, जो अविवेक, दुराग्रह, तर्कहीन और अस्थिर धारणाओं पर आश्रित हों। जो लोग अहिंसा पर उसे एक जीवन-शैली मानकर विश्वास करने लगे थे और जो उसे जीवन में नियम के रूप में अपना चुके थे, उनसे इस सिद्धांत को स्वीकार करने की आशा किस प्रकार की जा सकती थी कि हत्या करने पर क्षत्रिय को पाप इसलिए नहीं लग सकता क्योंकि वेदों में ऐसा करना उसका कर्तव्य बताया गया है। जिन लोगों ने सामाजिक एकता के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया था तथा जो व्यक्ति के गुणों के आधार पर समाज का पुनर्निमाण कर रहे थे, वे श्रेणीबद्ध करने वाले चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत और केवल जन्म के आधार पर व्यक्तियों के वर्गीकरण को क्यों स्वीकार करते, क्योंकि

वेदों ने ऐसा कहा है? जिन लोगों ने बुद्ध के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया था कि समाज में सभी दुख तृष्णा के कारण हैं, अथवा जिसे संग्रह की प्रवृत्ति कहा जाता है, वे उस धर्म को क्यों स्वीकार करते जो लोगों को यज्ञादि कर्म (बलि) से लाभ प्राप्ति करने के लिए इसलिए प्रेरित करता है कि ऐसा करना वेद-सम्मत है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बौद्ध धर्म के तेजी से बढ़ते प्रभाव से जैमिनि के प्रतिक्रांति सिद्धांत डगमगा उठे थे और वे चकनाचूर हो जाते, यदि उन्हें *भगवत्‌गीता* का समर्थन न प्राप्त होता, और जो उन्हें *भगवत्‌गीता* से मिला भी था। *भगवत्‌गीता* द्वारा दिए गए प्रतिक्रांतिवादी सिद्धांतों की दार्शनिक पुष्टि किसी भी प्रकार से अकाट्य नहीं है। *भगवत्‌गीता* द्वारा इस बात की दार्शनिक आधार पर पुष्टि करना, कि क्षत्रिय का कर्तव्य हत्या करना है, एक बचकानी बात है। यह कहना कि हत्या करना हत्या नहीं है, क्योंकि जिसकी हत्या की जाती है, वह शरीर की है, और वह आत्मा की नहीं है। यह हत्या-कर्म का ऐसा बचाव है, जिसे कभी भी नहीं सुना गया है। यदि कृष्ण को अपने उस मुवक्किल की ओर से अधिवक्ता के रूप में उपस्थित होना पड़ता जिस पर हत्या का मुकदमा चलाया जा रहा है और वे *भगवत्‌गीता* में बताए गए सिद्धांत को उस अपराधी के बचाव के लिए प्रस्तुत करते, तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि उन्हें पागलखाने में भेज दिया जाता। इसी प्रकार *भगवत्‌गीता* में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के सिद्धांत की पुष्टि करना भी बचकाना कार्य है। कृष्ण इस सिद्धांत की पुष्टि सांख्य के गुण सिद्धांत के आधार पर करते हैं। परंतु कृष्ण को अपनी त्रुटि का अनुभव नहीं होता। चातुर्वर्ण्य में चार वर्ण होते हैं, परंतु सांख्य के अनुसार गुणों की संख्या तीन है। चार वर्णों की व्यवस्था को उस दर्शन पर किस प्रकार आधारित किया जा सकता है, जिसमें तीन से अधिक वर्णों को मान्यता ही नहीं दी गई है? *भगवत्‌गीता* में प्रतिक्रिया के सिद्धांतों की दार्शनिक आधार पर पुष्टि करने के लिए जो यह सारा प्रयास किया गया है, वह बहुत ही बचकाना है और इसके बारे में एक क्षण भी गंभीर रूप में विचार करने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी इसमें संदेह नहीं है कि *भगवत्‌गीता* की सहायता के बिना प्रतिक्रांति अपने सिद्धांतों की निस्सारता के कारण कभी की समाप्त हो गई होती। *भगवत्‌गीता* की यह भूमिका क्रांतिकारियों को चाहे जितनी भी शरारतपूर्ण लगे, लेकिन इसमें काई संदेह नहीं कि *भगवत्‌गीता* ने प्रतिक्रांति को पुनर्जीवन प्रदान किया और यदि प्रतिक्रांति आज भी जीवित है तो यह उस दार्शनिक पुष्टि के आडंबर के कारण है, जो इसे *भगवत्‌गीता* से प्राप्त हुई है– यह सब कुछ वेद-विरुद्ध और यज्ञ-विरुद्ध है। जैसा कि *भगवत्‌गीता* के अन्य अंशों से यह बात विदित होगी कि वेदों और शास्त्रों (16.23-24: 17.11-13.24) के प्राधिकार के विरुद्ध नहीं है। यह यज्ञ (3.9-15) की अनिवार्यता के विरुद्ध नहीं है। यह दोनों के महत्व को पुष्ट करती है। इस प्रकार जैमिनि की पूर्व-मिमांसा और *भगवत्‌गीता* में किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं है। यदि कुछ विशेष बात है तो यह कि *भगबत्‌गीता* अधिक दृढ़ता से प्रतिक्रांति का समर्थन करती हैं, जब कि जैमिनि कृत पूर्व-मीमांसा ने इतना सर्मथन नहीं किया है। यह विशिष्ट इसलिए है

कि यह प्रतिक्रांति को दार्शनिक सिद्धांत देती है और इसलिए उसका आधार स्थाई है, जैसा कि पहले कभी नहीं था और उसके बिना प्रतिक्रांति का अस्तित्व बना रहना भी संभव नहीं था। जैमिनि की पूर्व-मीमांसा की तुलना में *भगवत्‌गीता* की दार्शनिक पुष्टि अधिक विशिष्ट है, और *भगवत्‌गीता* का यह दार्शनिक समर्थन है जो प्रतिक्रांति के केंद्रीय सिद्धांत, अर्थात चातुर्वर्ण्य को प्रदान करती है। चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत की पुष्टि तथा व्यवहार में उसका अनुपालन ही *भगवत्‌गीता* की मूल भावना प्रतीत होती है। कृष्ण यह कहकर संतुष्ट नहीं होते कि चातुर्वर्ण्य गुण-कर्म पर आधारित हैं और वह इससे भी आगे बढ़ जाते हैं और दो आदेश देते हैं। पहला आदेश अध्याय 3, श्लोक 26 में दिया गया है। कृष्ण कहते हैं: ज्ञानी व्यक्ति को प्रतिवाद कर अज्ञानी व्यक्ति के मन में संदेह उत्पन्न नहीं करना चाहिए जो कर्मकांड का अनुसरण करता हो, जिसमें निश्चय ही चातुर्वर्ण्य के नियम भी सम्मिलित हैं। अर्थात हमें लागों को उत्तेजित नहीं करना चाहिए कि कहीं वे कर्मकांड के सिद्धांत और उसमें शामिल अन्य बातों के विरोध में न उठ खड़े हों। दूसरा आदेश *भगवत्‌गीता* के अध्याय 18, श्लोक 41-48 में दिया गया है। इसमें कृष्ण ने कहा है कि प्रत्येक को अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्तव्य करना चाहिए और उन्हें अन्य कोई कर्तव्य नहीं करना चाहिए तथा वह उन लोगों को चेतावनी देते हैं, जो उनकी पूजा करते हैं तथा उनके भक्त हैं कि ये लोग केवल भक्ति करने से ही मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकेंगे, बल्कि इसके लिए उन्हें भक्ति के साथ उन कर्तव्यों को भी करना होगा, जो उनके वर्ण के लिए निर्धारित हैं। संक्षेप में, शूद्र चाहे कितना ही महान भक्त क्यों न हो, यदि उसने शूद्र के कर्तव्य का उल्लंघन किया है, अर्थात उसने उच्च वर्गों के लोगों की सेवा में जीवनयापन नहीं किया है, तो उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। मेरी दूसरी स्थापना यह है कि *भगवत्‌गीता* का मुख्य आशय जैमिनि को नया समर्थन देना था और इसके कम से कम वे अंश जो जैमिनि के सिद्धांतों की दार्शनिक आधार पर पुष्टि करते है, वे जैमिनि की पूर्व-मीमांसा के बाद और जब जैमिनि के सिद्धांत कार्यान्वित हो चुके थे, तब लिखे गए थे। मेरी तीसरी स्थापना यह है कि कि बौद्ध धर्म के क्रांतिकारी और तार्किक विचारों के प्रहार के फलस्वरूप *भगवत्‌गीता* के द्वारा प्रतिक्रांति के सिद्धांतों की दार्शनिक आधार पर पुष्टि की जानी आवश्यक हो गई थी।

अब मैं उन आपत्तियों को लेता हूं, जो मेरी स्थापनाओं की वैधता के संबंध में उठाई जा सकती हैं। मुझसे कहा जा सकता है कि जो मैं यह कहता हूं कि *भगवत्‌गीता* का प्रणयन-काल बौद्ध धर्म और जैमिनि की पूर्व-मीमांसा के बाद का है, वह केवल अनुमान है और इस अनुमान के पीछे कोई प्रमाण नहीं है। मैं इस तथ्य से अवगत हूं कि मेरी स्थापना अधिकांश भारतीय विद्वानों के द्वारा स्वीकृत दृष्टिकोण के विपरीत है, जिनका आग्रह यह स्वीकार करने में है कि *भगवत्‌गीता* की रचना अतिप्राचीन-काल की है और

यह बौद्ध धर्म तथा जैमिनि से पूर्ववर्ती है, न कि इस बात की खोज करने में है कि *भगवत्गीता* का संदेश क्या है और मानव-जीवन के मार्गदर्शक के रूप में उसका क्या मूल्य है। यह बात विशेषकर श्री तेलंग और श्री तिलक के बारे में खरी उतरती है। परंतु जैसा कि गार्बे[1] ने लिखा है –"तेलंग के लिए जैसा कि प्रत्येक हिंदू के संबंध में है जो चाहे कितना ही प्रबुद्ध क्यों न हो, *भगवत्गीता* को अतिप्राचीन समझना, आस्था की बात है और जहां यह भावना प्रबल हो, वहां आलोचना हो ही नहीं सकती।"

प्रोफेसर गार्बे कहते हैं:

> "*गीता* के प्रणयन काल को निश्चित करने का कार्य प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा, जिसने इस समस्या को हल करने का निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया है, एक बहुत ही कठिन कार्य कहा गया है और यह कठिनाई (हर तरह से) तब और भी बढ़ जाती है, जब इस समस्या को दुहरे रूप में प्रस्तुत किया जाता है, अर्थात मूल *गीता* के प्रणयन-काल के साथ-साथ उसके संशोधन करने के समय को भी निश्चित करना। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस मामले में प्रायः हम किसी निश्चित निर्णय पर न पहुंच कर केवल संभावनाओं पर ही पहुंच सकेंगे।"

ये संभावनाएं क्या हैं? मुझे कोई संदेह नहीं कि ये संभावनाएं मेरे शोध प्रबंध के पक्ष में हैं। वास्तव में, मैं जितना विचार कर सकता हूं, उनके विरुद्ध कुछ भी नहीं है। इस प्रश्न की जांच करने में सर्वप्रथम *गीता* से ही सीधा साक्ष्य प्रस्तुत करता हूं, जिसमें यह बताया गया है कि *गीता* का प्रणयन जैमिनि की पूर्व-मीमांसा और बौद्ध धर्म के बाद हुआ।

भगवत्गीता का अध्याय 3, श्लोक 9-13 का विशेष महत्व है। इस संबंध में यह सत्य है कि *भगवत्गीता* में जैमिनि नाम का कोई संदर्भ नहीं दिया गया है, न मीमांसा का नाम ही दिया गया है। परंतु क्या इसमें कोई संदेह है कि *भगवत्गीता* के अध्याय 3, श्लोक 9-18 में उन सिद्धांतों का वर्णन है, जो जैमिनि की पूर्व मीमांसा में दिए गए हैं? यहां तक कि श्री तिलक[2] भी, जो *भगवत्गीता* की प्राचीनता में विश्वास करते हैं, यह स्वीकार करते हैं कि *भगवत्गीता*, पूर्व-मीमांसा के सिद्धांतों का परीक्षण करती है। इस तर्क को प्रस्तुत करने का एक अन्य तरीका है। जैमिनि ने शुद्ध और सरल कर्म योग का उपदेश दिया है। दूसरी ओर *भगवत्गीता* ने अनासक्ति कर्म का उपदेश दिया है। इस प्रकार *गीता* एक ऐसे सिद्धांत का उपदेश देती है, जिसे आमूल संशोधित कर दिया गया है। *भगवत्गीता* कर्म योग में संशोधन ही नहीं करती, अपितु कुछ कठोर शब्दों[3] में शुद्ध और सरल कर्म योग के समर्थकों की आलोचना करती है। यदि *गीता* जैमिनि से पूर्व का ग्रंथ है, तो पाठक जैमिनि से यह आशा करेगा कि वह *भगवत्गीता* की आलोचना करते और समुचित उत्तर देते, परंतु हमें *भगवत्गीता* के इस अनासक्ति कर्म योग के संबंध में जैमिनि मे कोई संदर्भ

---

1. इंट्रोडक्शन (इंडियन एंटीक्वैरी परिशिष्टांक) भूमिका, पृ. 30
2. गीता रहस्य, खंड 2, 916-922
3. भगवत्गीता, 2,42-46 और 18.66

नहीं मिलता। ऐसा क्यों है? इसका यही उत्तर है कि यह संशोधन जैमिनी के बाद किया गया और उनसे पहले नहीं किया गया था– यह सरलतापूर्वक सिद्ध कर देता है कि *भगवत्गीता* की रचना जैमिनि की पूर्व-मीमांसा के बाद की गई।

हालांकि *भगवत्गीता* में पूर्व-मीमांसा का कोई उल्लेख नहीं है, लेकिन इसनें बादरायण के ब्रह्म सूत्र[1] का भी नाम से उल्लेख किया गया है। ब्रह्मसूत्र का यह संदर्भ अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे प्रत्यक्षतः यह निष्कर्ष निकलता है कि *गीता* की रचना ब्रह्म सूत्र के बाद की गई है।

श्री तिलक[2] यह स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म सूत्रों का यह जो उल्लेख किया गया है, उसका आशय स्पष्ट और निश्चित रूप से उसी ग्रंथ से है, जो अब हमें उपलब्ध है। यह उल्लेखनीय है कि श्री तेलंग[3] ने इस विषय की सरसरी चर्चा की है और बताया है कि *भगवत्गीता* में जिस ब्रह्मसूत्र का उल्लेख किया गया है, वह वर्तमान ग्रंथ से भिन्न है। वह इस इतने महत्वपूर्ण वक्तव्य की पुष्टि के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करते, पर वह श्री वेबर[4] के अनुमान के आधार पर दिए गए वक्तव्य पर विश्वास करते हैं– जो उनके *ट्रीटाइज इन इंडियन लिटरेचर* नामक ग्रंथ की पाद-टिप्पणी में उल्लिखित है और बिना किसी साक्ष्य–जिसमें यह कहा गया है कि *भगवत्गीता* में ब्रह्म सूत्र का उल्लेख नाम की अपेक्षा जातिवाचक है। श्री तेलंग के इस मत का कारण कोई विशेष उद्देश्य रहा होगा, ऐसा कहना उचित नहीं है। परंतु यह कहना अनुचित नहीं है कि श्री तेलंग[5] ने ब्रह्मसूत्र के इस संदर्भ को जिस रूप में स्वीकार किया है, वह वेबर पर आश्रित हैं, जो इस विंटरनिट्ज के मत को स्वीकार करते हैं कि ब्रह्म सूत्र की रचना 500 ईसवी में हुई थी। अगर वह और गहराई में गए होते, तब उनके अभीष्ट मत का खंडन हो गया होता। *भगवत्गीता* की प्राचीनता का इस प्रकार इस निष्कर्ष की पुष्टि के लिए हमारे पास प्रचुर आंतरिक साक्ष्य है कि *गीता* का प्रणयन जैमिनि की पूर्व-मीमांसा और बादरायण के ब्रह्म सूत्र के बाद हुआ।

क्या *भगवत्गीता* बौद्ध मत के पूर्व की रचना है? यह प्रश्न श्री तेलंग द्वारा उठाया गया था। अब हम दूसरी बात पर आते हैं। शाक्य मुनि के महान सुधारों के संबंध में *गीता* की स्थिति क्या है? यह प्रश्न विशेषकर बौद्ध सिद्धांतों और *गीता* के सिद्धांतों में

1. भगवत्गीता, 13.4
2. *गीता रहस्य*, 2.749
3. भगवत्गीता, (एस.बी.ई.) इंट्रोडक्शन, पृ.31
4. *हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर*, पृ. 242
5. दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि श्री तेलंग ने शीघ्र ही इस संदर्भ को स्वीकार कर लिया क्योंकि उनका यह मत था कि *ब्रह्म सूत्र* प्राचीन ग्रंथ है। देखिए *गीता रहस्य*, खंड 2

उल्लेखनीय समानता के संदर्भ में बहुत ही रोचक है, जिसके बारे में हमने अपने अनुवाद की पाद-टिप्पणियों में ध्यान आकृष्ट किया है। लेकिन इस प्रश्न को हल करने के लिए दुर्भाग्य से अपेक्षित तथ्य नहीं मिलते। यह अवश्य है कि प्रो. विल्सन का विचार है कि *गीता*[1] में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के चिह्न मिलते हैं लेकिन उनकी यह धारणा बौद्धों और चार्वाकों या भौतिकवादियों के बीच पाए जाने वाले मतभेद पर आश्रित थी।[2] इस संदर्भ के अलावा हमारे पास कोई दूसरा विश्वसनीय प्रमाण नहीं है। *गीता* में बौद्ध धर्म का उल्लेख नहीं है, यह एक 'नकारात्मक तर्क' है और अपर्याप्त है। यह तर्क मेरे विचार से, संतोषजनक भी नहीं है, हालांकि जैसा कि मैंने अन्यत्र कहा है,[3] '*गीता* में जो कुछ कहा गया है उनमें से कुछ बातें बौद्ध धर्म के समनुरूप हैं।' हालांकि *गीता* में उसके पूर्ववर्ती विचारकों के चिह्न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में मिलते हैं, लेकिन इस प्रश्न के तथ्यों के बारे में एक दृष्टिकोण ऐसा है, जो मेरे विचार में उस निष्कर्ष की पुष्टि करता है, जिस पर उक्त नकारात्मक तर्क के द्वारा पहुंचा जा सकता है। बुद्ध जिन तथ्यों के कारण ब्राह्मण धर्म का विरोध करते हैं, वह वेदों के वास्तविक अधिकार और वर्णों में अंतर के बारे में सही दृष्टिकोण को लेकर हैं। सैद्धांतिक चिंतन के अनेक क्षेत्रों में बौद्ध धर्म अभी भी पुराने ब्राह्मणवाद का एक रूप है।[4] यह विभिन्न समनुरूपताओं के आधार पर, जिनकी ओर हमने ध्यान आकृष्ट किया है, स्पष्ट हो जाता है। अब इन दोनों आधारों पर *गीता* स्वतः उन विचारों के प्रति प्रतिरोध का प्रतिनिधित्व करती है, जो उसके रचना-काल के समय विद्यमान था। बौद्ध धर्म की तरह *गीता* वेदों को पूर्णतः अस्वीकृत नहीं करती, बल्कि उन्हें एक ओर टिका देती है। *गीता* वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन नहीं करती। यह वर्ण व्यवस्था को कुछ कम निराधार बताती है। इसलिए इन दोनों अनुमानों में से एक अनुमान इन तथ्यों के आधार पर युक्तियुक्त लगता है। या तो *गीता* और बौद्ध धर्म, दोनों एक ही और समनुरूप आध्यात्मिक क्रांति की अभिव्यक्ति हैं जिसने उस समय के धर्म के ढांचे को हिला दिया था, इसमें *गीता* आरंभ की स्थिति या इस क्रांति का आरंभिक रूप थी या बौद्ध धर्म ब्राह्मणवाद पर हावी होने लगा था और *गीता* उसे पुष्ट करने का एक प्रयास थी, अर्थात *गीता* में उन पक्षों पर ध्यान दिया गया जो निर्बल थे, निर्बलतर पक्ष पहले ही त्यागे जा चुके थे। मैं बाद वाली स्थिति को स्वीकार नहीं करता। इसका कारण यह है कि हालांकि *गीता* का रचनाकार वेदों की सत्ता को चुनौती देता है, तो भी *गीता* में प्राचीन हिंदू व्यवस्था

---

1. एसेज आन संस्कृत लिटरेचर, खंड 3, पृ. 150
2. इस बारे में इंट्रोडक्टरी एसेज टू अवर गीता इन वर्स, पृ. 11 पर क्रमशः हमारा मत देखें।
3. *इंट्रोडक्शन टू गीता इन इंग्लिश वर्स*, पृ. 5 क्रमशः
4. मैक्स मूलर के हिब्बर्ट लैक्चर्स, पृ. 137, वेबर्स इंडियन लिटरेचर, पृ. 288-89; राइस डेविड्स का बुद्ध धर्म पर उत्कृष्ट लघु ग्रंथ, पृ. 151 और डेविड की पुस्तक का पृ. 83 भी देखें।

पर सशक्त प्रहार के प्रति कोई समर्थन के संकेत नहीं मिलते। इसके अलावा यह बात भी है कि ऐसा करते समय वह वही करता है, जो उसके पहले किया गया, या जो उसके समकालिक कर रहे थे। ये तथ्य उक्त नकारात्मक तर्क के निष्कर्ष को पुष्ट करते हैं। मेरे विचार में बौद्ध धर्म उच्च आध्यात्मिक विषयों पर वैसी ही अभिव्यक्ति है, जैसी कि हमें उपनिषद और *गीता* में मिलती है।[1]

मैंने इस उद्धरण को पूरा-पूरा इसलिए उद्धृत किया है कि ऐसा ही सभी हिंदू विद्वानों का मत है। उनमें से कोई भी यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि *भगवत्‌गीता* किसी भी रूप में बौद्ध धर्म से प्रभावित है। ये विद्वान इसे अस्वीकार करने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं कि *गीता* ने बौद्ध धर्म से कुछ ग्रहण किया है। यही दृष्टिकोण प्रो.राधाकृष्णन का और श्री तिलक का भी है। जब कभी *भगवत्‌गीता* और बौद्ध धर्म में बहुत अधिक विचारों के साम्य होने की बात उठती है, तब उसे अस्वीकार कर दिया जाता है, और यह तर्क दिया जाता है कि यह उपनिषदों से ग्रहण किया गया है। यह प्रतिक्रांतिकारियों की ठेठ निम्न कोटि की वृत्ति है कि वे बौद्ध धर्म को कोई भी श्रेय नहीं प्रदान करना चाहते।

इस मनोवृत्ति से उन सभी को भारी दुख पहुंचता है, जिन्होंने *भगवत्*गीता और बौद्ध सुत्तों का तुलनात्मक अध्ययन किया है, क्योंकि यदि इस कथन में कोई सत्यता है कि *गीता* में सांख्य दर्शन भरा हुआ है, तो इस कथन में उससे भी अधिक सत्यता है कि *गीता* बौद्ध विचारों से भरी हुई है।[2] यह समानता केवल विचारों में ही नहीं, बल्कि भाषा में भी हैं। यह कुछेक उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा कि यह कहां तक सच है।

भगवत्‌गीता में ब्रह्म-निर्वाण[3] पर विवेचन किया गया है। कोई व्यक्ति ब्रह्म-निर्वाण तक किन साधनों से होकर पहुंच सकता है, वे *भगवत्‌गीता* में इस प्रकार बताए गए हैं: (1) श्रद्धा (अपने में विश्वास), (2) व्यवसाय (दृढ़ निश्चय), (3) स्मृति (लक्ष्य का स्मरण), (4) समाधि (मन लगाकर चिंतन), और (5) प्रज्ञा (अंतर्दृष्टि या यथातथ्य ज्ञान)।

गीता ने निर्वाण सिद्धांत कहां से लिया? निश्चय ही यह सिद्धांत उपनिषदों से नहीं

---

1. तुलना कीजिए वेबर की *हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर*, पृ. 285। श्री डेविड की पुस्तक *बुद्धिज्म* में पृ. 94 पर हमें प्रामाणिक बौद्ध कृति से संदर्भ मिलता है, जिसमें आत्मा का वर्णन मिलता है। इसकी तुलना *गीता* में दिए गए तद्‌विषयक सिद्धांत से कीजिए। हम देखते हैं कि दोनों इंद्रियों आदि के साथ आत्मा के तादात्म्य को अस्वीकृत करते हैं। *गीता* आत्मा को इन से भिन्न स्वीकार करती है। बौद्ध धर्म इसे भी अस्वीकृत करता है और इंद्रियों के अतिरिक्त किसी सत्ता को नहीं मानता।
2. इस विषय पर कश्मीर के मुख्य न्यायधीश श्री एस.डी. बुद्धिराजा, एम.ए., एल.एल.बी. की *भगवत्‌गीता* की तुलना कीजिए। लेखक ने *गीता* और बौद्ध धर्म में पाठ्‌यमूलक समानता की ओर ध्यान आकृष्ट करने की बार-बार कोशिश की है।
3. मैक्स मूलर, *महापरिनिब्बान सुत्त*, पृ. 63

लिया गया है, क्योंकि किसी भी उपनिषद में निर्वाण शब्द का उल्लेख नहीं है। यह संपूर्ण विचारधारा बौद्धों की है और यह बौद्ध धर्म से ली गई है। यदि इस संबंध में किसी को संदेह है तो उसे *भगवत्गीता* के ब्रह्म-निर्वाण की तुलना बौद्ध धर्म की निर्वाण संबंधी अवधारणा से करनी चाहिए, जिसका विवेचन *महापरिनिब्बान सुत्त* में किया गया है। हम देखेंगे कि ये दोनों एक हैं जिसे *गीता* में ब्रह्म-निर्वाण के लिए निर्धारित किया है। क्या यह सत्य नहीं है कि *भगवत्गीता* ने निर्वाण की अपेक्षा ब्रह्म-निर्वाण की संपूर्ण अवधारणा कहीं से ग्रहण की है और ऐसा यह विचार बौद्ध धर्म से लिए गए इस तथ्य को छिपाने के लिए किया गया है?

एक अन्य उदाहरण लीजिए। अध्याय 7 के श्लोक 13-20 में इस बात का विवेचन किया गया है कि कृष्ण को कौन प्रिय है, वह व्यक्ति जो ज्ञानी है, वह व्यक्ति जो कर्म करता है अथवा वह व्यक्ति जो भक्त है। कृष्ण कहते हैं कि उनको भक्त प्रिय है, परंतु वह यह भी कहते हैं कि उसमें भक्ति के शुद्ध गुण होने चाहिएं। सच्चे भक्त के क्या गुण होते हैं? कृष्ण के अनुसार, सच्चा भक्त वही है जो–(1) मैत्री (निश्छल सहानुभूति), (2) करुणा (दया), (3) मुदित (सहानुभूतिपूर्ण आनंद), और (4) उपेक्षा (अंतबंधता) का आचरण करता है। *भगवत्गीता* में सच्चे भक्त के ये लक्षण कहां से लिए गए हैं? यहां भी इसका स्रोत बौद्ध धर्म ही है। यदि कोई व्यक्ति प्रमाण चाहता हैं तो वह *महापदान सुत्त*[1] और *तेविज्जा सुत्त*[2] से इसकी तुलना करें, जहां बुद्ध उन 'भावनाओं' (मानसिक प्रवृत्तियों) का उपदेश देते हैं, जो हृदय को संयमित करने के इच्छुक व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं। इस तुलना से यह सिद्ध हो जाएगा कि यह संपूर्ण विचारधारा बौद्ध धर्म से ली गई है और यह शब्दशः अंगीकार की गई है।

तीसरा उदाहरण लीजिए। अध्याय 13 में *भगवत्गीता* में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विषय का विवेचन किया गया है। *भगवत्गीता* के श्लोक 7-11 में कृष्ण ने यह बताया है कि ज्ञान क्या है और अज्ञान क्या है, जो इस प्रकार है–

" दंभरहितता (दीनता), निरहंकार, अहिंसा अथवा अहानिकारक, क्षमा, आर्जव (स्पष्टता), गुरु भक्ति, शुचिता, दृढ़ता, आत्म-संयम, इंद्रिय संबंध विषयों में अनिच्छा, अहं का प्रभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से संबंधित दुख और पाप पर विचार, ममत्व का अभाव, पुत्र, पत्नी, घर, शरीर तथा अन्य से अनासक्ति, प्रिय और अप्रिय दोनों स्थितियों में समभाव, मुझमें एकाग्र चिंतन सहित अनन्य भक्ति, पृथक स्थान का सेवन (एकांत में मनन, ध्यान), सांसारिक मनुष्यों की समाज के प्रति विरक्ति, आत्म से संबंधित ज्ञान का निरंतर मनन, तत्व (सांख्य दर्शन) के सही आशय का बोध या अनुभव, यह सब ज्ञान कहलाता है, इससे विपरीत जो कुछ भी है, वह अज्ञान है।"

---

1. देखिए, *महापदान सुत्त*
2. देखिए, *तेविज्जा सुत्त*

जिस किसी को बुद्ध के सिद्धांतों की थोड़ी बहुत भी जनकारी है, क्या वह यह इंकार कर सकता है कि *भगवत्गीता* के इन श्लोकों में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों की शब्दशः पुनरोक्ति नहीं की गई है?

भगवत्गीता में अध्याय 13 के श्लोक 5,6,18,19 में विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत कर्म की नवीन प्रतीकात्मक व्याख्या की गई है, जैसे (1) यज्ञ (बलि), (2) दान (उपहार), (3) तप (प्रायश्चित), (4) भोजन, और (5) स्वाध्याय (वैदिक अध्ययन)। प्राचीन विचारों की इस नवीन व्याख्या का स्रोत क्या है? इसकी तुलना उससे की जाए जो *मज्झिम निकाय* 286,16 में बुद्ध के द्वारा कहा गया है। क्या कोई इसमें संदेह कर सकता है कि कृष्ण ने अध्याय 17 के श्लोक 5,6,18,19 में बुद्ध के शब्दों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं किया है?

मैंने सैद्धांतिक दृष्टि से जो महत्वपूर्ण उद्धरण चुने हैं, ये उनके कुछेक उदाहरण हैं। जो लोग इस विषय के अध्ययन करने में रुचि रखते हैं, वे *गीता* और बौद्ध धर्म के बीच समानताओं के उन संदर्भों को देख सकते हैं, जो श्री तेलंग ने *भगवत्गीता* के अपने संस्करण की पांद-टिप्पणियों में दिए हैं तथा अपनी जिज्ञासा का समाधान कर सकते हैं। परंतु मैंने जो उदाहरण दिए हैं, वह यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि *भगवत्गीता* में बौद्ध धर्म की विचारधारा का कितना अधिक समावेश है और *भगवत्गीता* ने बौद्ध धर्म से कितना अधिक ग्रहण किया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि *भगवत्गीता* की रचना सोद्देश्य रूप में बौद्ध धर्म के सुत्तों (सूत्रों) के आधार पर की गई है। इसमें जो कथोपकथन हैं, वह बुद्ध के सुत्त (सूत्र) हैं। बौद्ध धर्म ने महिलाओं और शूद्रों के उद्धार का आश्वासन दिया था। इसी प्रकार कृष्ण ने भी महिलाओं और शूद्रों को उद्धार का आश्वासन दिया है। बौद्ध धर्मावलंबियों का कहना हैः 'मैं बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाता हूं।' ठीक इसी प्रकार कृष्ण कहते हें, 'सभी धर्मों को त्याग दो और स्वयं को मुझे समर्पित कर दो।' जितनी समानता बौद्ध धर्म और *भगवत्गीता* में मिलती है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

मैंने यह बताया कि *गीता* पूर्व-मीमांसा के बाद की और बौद्ध धर्म के भी बाद की रचना है। मैं अपनी स्थापना को समाप्त कर सकता था। परंतु मैं अनुभव करता हूं कि यह संभव नहीं है, क्योंकि मेरी स्थापना के विरुद्ध एक तर्क शेष है, जिसका उत्तर दिया जाना आवश्यक है। यह भी तिलक का तर्क है। यह एक बुद्धिकौशल है। श्री तिलक यह अनुभव करते हैं कि *भगवत्गीता* और बौद्ध धर्म, दोनों में विचारों और उनकी अभिव्यक्ति में अनेक समानताएं हैं। चूंकि बौद्ध धर्म *भगवत्गीता* से प्राचीन है, अतः यह स्वाभाविक है कि *भगवत्गीता* की स्थिति ऋणी की है और बौद्ध धर्म की ऋणदाता की है। यह सीधी सी बात श्री तिलक को रुचिकर नहीं है और उन सभी लोगों को भी नहीं सुहाती जो प्रतिक्रांति को उचित मानते हैं। उन सभी के लिए यह प्रतिष्ठा का प्रश्न है कि प्रतिक्रांति को क्रांति का ऋणी नहीं होना चाहिए। इस कठिनाई को दूर करने के लिए श्री तिलक

ने एक नई बात खोज निकाली। उन्होंने हीनयान बौद्धधर्म और महायान बौद्धधर्म के बीच अंतर बताया है तथा यह कहा कि महायान बौद्ध धर्म भगवत्गीता के बाद अस्तित्व में आया और यदि बौद्ध धर्म तथा *भगवत्गीता* के बीच कोई समानताएं हैं तो *भगवत्गीता* से महायान बौद्ध धर्मावलंबियों के द्वारा विचार ग्रहण किए जाने के कारण हैं। इससे दो प्रश्न उठते हैं। महायान बौद्ध धर्म की उत्पत्ति की क्या तिथि है? भगवत्गीता की रचना की तिथि क्या है? श्री तिलक का तर्क एक बुद्धिकौशल और चतुराई है। परंतु इसमें कोई सार नहीं है। पहले तो यह मौलिक नहीं है। यह विंटरनिट्ज[1] और केर्न[2] द्वारा सरसरी तौर पर की गई कतिपय टिप्पणियों के आधार पर हैं। ये टिप्पणियां उनकी पाद-टिप्पणियों में मिलती हैं। इनमें कहा गया है कि *भगवत्गीता* और महायान बौद्ध धर्म में कुछ समानताएं हैं और यह समानताएं *भगवत्गीता* से ग्रहण किए गए विचारों के आधार पर हैं। इन टिप्पणियों की पुष्टि में विंटरनिट्ज, केर्न अथवा श्री तिलक द्वारा किसी विशेष अनुसंधान का साक्ष्य नहीं दिया गया है। यह सभी टिप्पणियां इन अनुमानों के आधार पर हैं कि *भगवत्गीता* महायान बौद्ध धर्म से पूर्व की रचना है।

इसके बाद मेरे सामने प्रश्न *भगवत्गीता* के रचना-काल का है और *भगवत्गीता* की तिथि के प्रश्न पर विचार करना है, और इस प्रश्न पर विशेषकर उस मत के संदर्भ में विचार किया जाना है, जो श्री तिलक ने प्रस्तुत किया है। श्री तिलक[3] का मत है कि *गीता*, *महाभारत* का एक भाग है और इन दोनों का रचयिता व्यास नामक एक ही लेखक है, जिसने इन दोनों की रचना की थी। इसलिए गीता का रचना-काल वही होना चाहिए, जो *महाभारत* का रचना-काल है। श्री तिलक का यह तर्क है कि *महाभारत* शक संवत् से कम से कम 500 वर्ष पूर्व रचा गया, जिसका आधार यह है कि *महाभारत* की कथाएं मेगस्थनीज को पता थीं, जो चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में ग्रीक राजदूत के रूप में लगभग 300 वर्ष ईसा पूर्व मे भारत आए थे। शक संवत् 78 ईसवी में प्रारंभ हुआ। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि *भगवत्गीता* की रचना 422 ईसा पूर्व की गई थी। वर्तमान *गीता* के रचना-काल के बारे में यही उनका मत है। उनके मतानुसार मूल *गीता*, *महाभारत* की अपेक्षा कुछ शताब्दियों पुरानी होनी चाहिए। यदि *भगवत्गीता* में दी गई परंपरा पर विश्वास किया जाए कि *भगवत्गीता* में धर्म की शिक्षा प्राचीन-काल में नर द्वारा नारायण को दी गई थी, तो ऐसी स्थिति में *महाभारत* की रचना की तिथि के बारे में श्री तिलक का मत तर्कसंगत नहीं है। पहली बात तो यह है कि यहां यह अनुमान किया गया है कि संपूर्ण *भगवत्गीता* और संपूर्ण *महाभारत* की रचना एक ही बार, एक ही समय और एक ही व्यक्ति द्वारा की गई। परंपरा और इन दोनों ग्रंथों में प्राप्त अंतः साक्ष्य की दृष्टि से इस अनुमान का कोई औचित्य नहीं है। अगर हम *महाभारत* तक अपने विचार-विमर्श

---

1. *हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर* (अंग्रेजी अनुवाद), खंड 2, पृ. 229, पाद टिप्पणी
2. *मैनुअल आफ इंडियन बुद्धिज्म*, पृ. 122 पाद-टिप्पणी।
3. *गीता रहस्य*, खंड 2, पृ. 791-800

को सीमित रखें, तो पता चलेगा कि श्री तिलक द्वारा किया गया अनुमान सुपरिचित भारतीय परंपराओं के नितांत विरुद्ध है। यह परंपरा *महाभारत* की रचना को तीन चरणों में विभाजित करती है– (1) *जय,* (2) *भारत,* और (3) *महाभारत*– और प्रत्येक भाग को अलग-अलग लेखक की कृति बताती है। इस परंपरा के अनुसार व्यास *महाभारत* के प्रथम संस्करण के लेखक थे, जिसे '*जय*' कहा जाता है। द्वितीय संस्करण का नाम *भारत* है। परंपरा इसे वैशम्पायन का लिखा बताती है। यह परंपरा एक पुष्ट परंपरा थी। इसकी पुष्टि प्रोफेसर होपकिन्स के अनुसंधानों द्वारा होती है, जो *महाभारत* के अंतःसाक्ष्य के परीक्षण पर आधारित है। प्रोफेसर होपकिन्स[1] के अनुसार *महाभारत* की रचना कई चरणों में हुई। प्रोफेसर होपकिन्स[2] का कहना है कि प्रथम चरण में यह केवल पांडु महाकाव्य था। इसमें उपदेशात्मक सामग्री नहीं थी और उसमें उन वीरों से संबंधित कथा और आख्यान थे, जिन्होंने *महाभारत* के युद्ध में भाग लिया था। प्रोफेसर होपकिन्स का कहना है कि यह रचना 400-200 ईसा पूर्व में हुई होगी। दूसरे चरण में इस महाकाव्य की पुनर्रचना हुई और इसमें उपदेश आदि और पुराणों से सामग्री का समावेश किया गया। यह 200 ईसा पूर्व और 200 ईसवी के मध्य हुआ। (1) तीसरे चरण में पहले चरण की कृति को साथ में मिलाकर दूसरे चरण की कृति में बाद के पुराणों को शामिल किया गया, और (2) संवर्द्धित अनुशासन पर्व को शांति पर्व से अलग किया गया है तथा एक अलग पर्व बना दिया गया। यह 200 से 400 ईसवी के बीच हुआ। प्रोफेसर होपकिन्स इन तीनों चरणों के अतिरिक्त एक और चरण, अर्थात यदा-कदा हुए विस्तार की अंतिमावस्था बताते हैं। यह 400 ईसवी के बाद में हुआ। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पहले प्रो. होपकिन्स ने उन सभी तर्कों का अनुमान और उन पर विवेचन कर लिया था, जो श्री तिलक ने दिए हैं, जैसे पाणिनि[3] की कृति और गृह्य सूत्रों[4] में *महाभारत* का उल्लेख। श्री तिलक ने जो नए साक्ष्य दिए हैं और जिन पर प्रो. होपकिन्स ने विचार ही नहीं किया था, वे दो हैं। इस तरह का पहला साक्ष्य वह है, जिसमें कुछ विवरण दिए गए हैं। इनके बारे में यह बताया जाता है कि ये मेगस्थनीज[5] के हैं, जो चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में ग्रीक राजदूत बनकर आया था। दूसरे साक्ष्य खगोलीय हैं[6] जो आदि पर्व में मिलते हैं। इनमें उत्तरायण का उल्लेख है जो श्रवण नक्षत्र से प्रारंभ होता है। श्री तिलक ने जो तथ्य मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर दिए हैं, उन्हें अस्वीकार नहीं किया जा सकता और उनसे यह सिद्ध हो सकता है कि मेगस्थनीज के समय में, अर्थात 300 ईसा पूर्व शौरसैनी समाज में कृष्ण भक्ति संप्रदाय था, परंतु इससे यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि *महाभारत* की

---

1. *दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया,* पृ. 398
2. वही, पृ. 398
3. वही, पृ. 395
4. वही, पृ. 390
5. *गीता रहस्य,* पृ. 79
6. *वही,* पृ. 789

रचना हो चुकी थी। यह नहीं हो सकता। इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि मेगस्थनीज ने जिन आख्यानों-कथाओं का उल्लेख किया है, वे *महाभारत* से ली गई हैं। इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि ये आख्यान और कथाएं और कहानियां जनसमूह में व्याप्त नहीं थीं और *महाभारत* के लेखक तथा ग्रीक राजदूत, दोनों ने ही इस अपार सामग्री का चयन नहीं किया था।

श्री तिलक का खगोलीय साक्ष्य काफी ठोस हो सकता है। उनका यह कथन सच है[1] कि *अनुगीता* में यह कहा गया है कि विश्वामित्र ने श्रवण (मा.भा.अश्व. 44.2. और आदि .71.34) से नक्षत्र की गणना प्रारंभ की थी। समीक्षकों द्वारा इस तथ्य की व्याख्या की गई है और उन्होंनें यह बताया है कि उस समय उत्तरायण का प्रारंभ श्रवण नक्षत्र से हुआ था और इसमें मतभेद करना उचित नहीं है। वेदांग ज्योतिष के अनुसार उत्तरायण धनिष्ठा नक्षत्र में सूर्य के आने पर प्रारंभ होता है। खगोलीय गणना के अनुसार धनिष्ठा नक्षत्र में सूर्य के आने पर उत्तरायण के आरंभ होने का समय शक संवत् शुरू होने के लगभग 1500 वर्ष पूर्व का होना चाहिए। लेकिन खगोलीय गणना के अनुसार उत्तरायण का एक नक्षत्र पूर्व प्रारंभ होने के लिए एक हजार वर्ष का समय लगाता है। इस गणना के अनुसार उत्तरायण श्रवण नक्षत्र में सूर्य के आने पर प्रारंभ होना चाहिए । यह शक सवंत् से पूर्व लगभग 500 वर्ष का समय होता है। यह निष्कर्ष तब उचित था, यदि यह सत्य होता कि संपूर्ण *महाभारत* एक ग्रंथ के रूप मे एक ही समय और एक ही व्यक्ति द्वारा रचा गया था। यह भी बताया गया है कि इस अनुमान के लिए कोई प्रमाण नहीं है। अतः श्री तिलक के खगोलीय साक्ष्य के आधार पर *महाभारत* की रचना-तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती। यह साक्ष्य *महाभारत* के उस भाग की भी रचना-तिथि के निर्धारण में प्रयोग किया जा सकता है, जो इसके द्वारा प्रभावित है। इस प्रसंग में *महाभारत* का आदि पर्व उल्लेखनीय है। इन्हीं कारणों से महाभारत की रचना की तिथि के संबध में श्री तिलक का सिद्धांत सटीक नहीं बैठता। वास्तव में *महाभारत* जैसी कृति के लिए कोई भी एक तिथि के निर्धारण करने का प्रयत्न व्यर्थ ही समझा जाना चाहिए, जो धारावाहिक कथा के रूप में अंतराल देकर दीर्घ-काल तक लिखा जाता रहा था। हम यही कह सकते हैं कि *महाभारत* की रचना 400 ईसा पूर्व से लेकर 400 ईसवी तक की गई। इस निष्कर्ष से वह प्रयोजन पूरा नहीं होता, जो श्री तिलक का अभीष्ट है। कुछ विद्वानों को यह अवधि भी बहुत कम लगती है। कहा जाता है[2] कि वन पर्व के 190 वें अध्याय में उल्लिखित एडूकों की व्याख्या गलत की गई है और उसका अर्थ बौद्ध स्तूप लगाया गया, जब कि इसका आशय ईदगाहों से है, जिनका निर्माण मुसलमान आक्रमणकारियों ने मुस्लिम धर्म में परिवर्तित किए गए लोगों के लिए किया था। यदि यह व्याख्या सही है तो इससे यह सिद्ध होगा कि *महाभारत* के कुछ भाग मौहम्मद गौरी

1. गीता रहस्य, 2, पृ. 789
2. धर्मानंद कोसांबी, *हिंदी संस्कृति आणि अहिंसा* (मराठी), पृ. 156

के आक्रमणों के समय अथवा उसके बाद लिखे गए थे।

अब मैं *भगवत्गीता* की रचना-तिथि के बारे में श्री तिलक की स्थापनाओं को लेता हूं। वास्तव में उनकी स्थापना में दो तर्क अंतर्निहित हैं। प्रथम, *गीता महाभारत* का एक भाग है। इन दोनों का रचना-काल एक ही है और वे दोनों ग्रंथ एक ही व्यक्ति के द्वारा रचे गए हैं। उनका दूसरा तर्क यह है कि जो *भगवत्गीता* आज उपलब्ध है, वह वैसी ही मिलती है, जैसी कि शुरू में लिखी गई थी। मैं इन दोनों तर्कों को अलग-अलग लेता हूं जिसर कोई भ्रांति न हो।

गीता को *महाभारत* के साथ उसकी रचना के संबंध में सहयोजित करने में श्री तिलक का उद्देश्य नितांत स्पष्ट है। वह *महाभारत* के रचना-काल के आधार पर, जो उनके अनुसार ज्ञात है, *गीता* का रचना-काल निर्धारित करना चाहते हैं जो अज्ञात है। खेद है कि श्री तिलक ने जिस आधार पर *महाभारत* और *भगवत्गीता* के बीच निकट संबंध स्थापित करने का प्रयास किया है, वह उनके सिद्धांत का सबसे दुर्बल पक्ष है। अगर हम यह स्वीकार करें कि *गीता महाभारत* का भाग इसलिए है कि इन दोनों ही ग्रंथों के रचियता व्यास हैं और यही श्री तिलक का तर्क है तो यह कल्पना को सच समझने जैसी बात होगी। इस तर्क में यह स्वीकार कर लिया जाता है कि व्यास किसी व्यक्ति विशेष का नाम है जो काफी प्रसिद्ध रहा है। यह उस तथ्य से स्पष्ट है कि हमारे सम्मुख व्यास *महाभारत* के रचयिता हैं, व्यास पुराणों के रचयिता हैं, व्यास *भगवत्गीता* के रचयिता हैं और यही व्यास ब्रह्म सूत्रों के भी रचयिता हैं। इसलिए यह बात सच नहीं मानी जा सकती कि वही व्यास इन सभी ग्रंथों के रचयिता हैं, जो शताब्दियों तक अलग-अलग लिखे गए। हम सभी जानते हैं कि धार्मिक लेखक अपना नाम छिपाकर उसके बदले किसी पूज्य नाम का उपयोग करके किस प्रकार अपनी कृति को प्रतिष्ठित करा देते हैं और उन दिनों छद्मनाम या उपनाम के रूप में व्यास नाम का उपयोग करना उनका स्वभाव बन गया था। यदि *गीता* के रचयिता व्यास हैं तो कोई दूसरा ही व्यक्ति होना चाहिए, जिसने व्यास नाम का उपयोग किया है।

एक अन्य तर्क भी है जो *भगवत्गीता* और *महाभारत* की एक ही काल में रचना किए जाने के श्री तिलक के सिद्धांत का विरोध करता है। *महाभारत* में 18 पर्व हैं। इसके अलावा 18 पुराण भी हैं। यह आश्चर्यजनक बात है कि *भगवत्गीता* में भी 18 अध्याय हैं। प्रश्न यह है कि यह एक जैसा क्यों है? इसका उत्तर यह है कि प्राचीन भारतीय लेखक कुछ नामों और कुछ संख्याओं के बारे में यह समझते थे कि ये अधिक पवित्र हैं। इस तथ्य का उदाहरण व्यास का नाम और 18 की संख्या है, परंतु *भगवत्गीता* के अध्यायों को 18 तक निर्धारित करने में जो कुछ ऊपरी तौर से दिखता है, उसकी अपेक्षा कोई और विशेष बात है। किसने 18 को पवित्र संख्या निर्धारित किया। क्या *महाभारत* ने या *गीता* ने

18 तक निर्धारित करने में जो कुछ ऊपरी तौर से दिखता है, उसकी अपेक्षा कोई और विशेष बात है। किसने 18 को पवित्र संख्या निर्धारित किया। क्या *महाभारत* ने या *गीता* ने? यदि *महाभारत* ने इसे पवित्र संख्या निर्धारित किया, तब *गीता महाभारत* के बाद ही रची गई। यदि *भगवत्गीता* ने इसे पवित्र संख्या निर्धारित किया, तो *महाभारत* की रचना *गीता* के बाद होनी चाहिए। स्थिति चाहे कुछ भी क्यों न हो, इन दोनों ग्रंथों की रचना एक ही समय में नहीं की गई होगी।

इस विवेचन को, हो सकता है, श्री तिलक के पहले प्रस्ताव की दृष्टि से निर्णायक स्वीकार न किया जाए, परंतु एक तर्क है जिसे मैं निर्णायक समझता हूं। मेरा संकेत *महाभारत* और *भगवत्गीता* में कृष्ण की तुलनात्मक स्थिति की ओर है। *महाभारत* में कृष्ण को कहीं भी भगवान नहीं बताया गया है, जो सभी लोगों को मान्य थे। स्वयं *महाभारत* में ही यह दिखाया गया है कि जन-समुदाय कृष्ण को प्रथम 'स्थान देने के लिए भी तैयार नहीं था। राजसूय यज्ञ में जब धर्मराज ने अतिथियों के सत्कार के समय कृष्ण को प्राथमिकता देनी चाही, तब शिशुपाल ने, जो कृष्ण का निकट संबंधी था, कृष्ण का विरोध किया और उन्हें अपशब्द भी कहे। उन्होंने उन्हें निम्न वंश में पैदा हुआ ही नहीं कहा, परंतु उन्हें चरित्रहीन और ऐसा षड्यंत्रकारी कहा जिसने विजय के लिए युद्ध के नियमों का भी उल्लंघन किया। स्वयं *महाभारत* के गदा पर्व में इसका उल्लेख है कि कृष्ण के ये कुकृत्य इतने घृणित लेकिन सत्यतापूर्ण हैं कि जब दुर्योधन कृष्ण के सामने इनका बखान करता है तब दोषारोपण सुनने के लिए स्वर्ग से देवता आ गए जो दुर्योधन ने कृष्ण के विरुद्ध लगाए थे और उन अभियोगों के सुनने के बाद उन्होंने अपनी सहमति के प्रतीक स्वरूप पुष्पों की वर्षा की कि ये अभियोग पूर्ण सत्य हैं और सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। दूसरी ओर *भगवत्गीता* में कृष्ण को सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, पवित्र, प्रिय और सद्गुण के सार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये दोनों रचनाएं, जिनमें एक ही व्यक्तित्व का परस्पर विरोधी आकलन का इस प्रकार से उल्लेख है, एक ही लेखक द्वारा एक ही काल में नहीं लिखी जा सकतीं। खेद की बात है कि श्री तिलक *भगवत्गीता* को बौद्ध-काल के पूर्व की रचना सिद्ध करते समय इस महत्वपूर्ण तथ्य को बिल्कुल ही भूल गए।

श्री तिलक का दूसरा तर्क भी निर्मूल है। *भगवत्गीता* के रचना-काल को निर्धारित करने का कार्य मृगमरीचिका के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस तर्क की विफलता निश्चित है। इसका कारण यह है कि *गीता* अकेली पुस्तक नहीं, जिसे एक ही लेखक ने लिखा होगा। इस ग्रंथ में अलग-अलग अध्याय हैं जिन्हें अलग-अलग लेखकों ने अलग-अलग समय पर रचा है।

प्रोफेसर गार्बे एकमात्र ऐसे विद्वान हैं, जिन्होंने इस प्रकार परीक्षण किया जाना

आवश्यक समझा है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि *भगवत्गीता* ने अलग-अलग चार भाग हैं। वे एक-दूसरे से इतने भिन्न हैं कि आज जिस स्थिति में यह ग्रंथ विद्यमान है, उसमें इन्हें सरलता से निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(i) मूल *गीता* चारणों द्वारा वर्णित या गाई गई वीर-गाथा मात्र है कि अर्जुन किस प्रकार युद्ध करने के लिए तैयार नहीं था तथा कृष्ण ने उन्हें युद्ध करने के लिए किस प्रकार प्रेरित किया और अर्जुन ने यह बात मान ली, आदि-आदि। यह कौतूहल भरी कहानी रही होगी, परंतु इसमें कुछ भी धार्मिक अथवा दार्शनिक नहीं था।

मूल *गीता* अध्याय 1, अध्याय 2 और अध्याय 11 के श्लोक 32-33 में मिलती है जिसमें कृष्ण ने अपने तर्क का समापन इस प्रकार किया है :

"मेरे साधन बनो, मेरी इच्छा का पालन करो। युद्ध-जन्य पाप और अनिष्ट की चिंता मत करो, वही करो जैसा कि मैं कहूं। धृष्ट मत बनो।"

यही वह तर्क है जिसका कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए बाध्य करने के लिए प्रयोग किया था और प्रेरणा और आग्रह भरे इसी तर्क ने अर्जुन को राजी कर लिया था। कृष्ण ने संभवतः यह धमकी दी होगी कि अगर उसने युद्ध नहीं किया तो वह बल प्रयोग करेंगे। कृष्ण द्वारा अपने विश्व रूप का अहंकार जताना इस बल प्रदर्शन का केवल एक रूप है। इसी सिद्धांत के आधार पर वर्तमान *गीता* में विश्व रूप से संबंधित अध्याय का मूल *भगवत्गीता* का एक भाग होना संभव हो सकता है।

(ii) मूल *भगवत्गीता* में प्रथम क्षेपक उसी अंश का एक भाग है जिसमें कृष्ण को ईश्वर कहा गया है और उन्हें भागवत धर्म में परमेश्वर कहा गया है। *गीता* का यह भाग वर्तमान *भगवत्गीता* के उन श्लोकों में मिलता है जहां भक्ति योग का विवेचन है।

(iii) मूल *भगवत्गीता* में दूसरा क्षेपक वह भाग है जहां उस पूर्व-मीमांसा के सिद्धांतों की पुष्टि के रूप में सांख्य और वेदांत दर्शन का वर्णन है जो उनमें पहले नहीं था। *गीता* प्रारंभ में एक ऐतिहासिक आख्यान था जिसमें कृष्ण भक्ति बाद में समाविष्ट कर दी गई। *भगवत्गीता* में दर्शन संबंधी अंश बाद में जोड़ा गया, यह मूल संवाद की शैली और उसके क्रम से सरलतापूर्वक सिद्ध किया जा सकता है।

अध्याय 1, श्लोक 20-47 में अर्जुन उन कठिनाइयों का वर्णन करते हैं। अध्याय 2 में कृष्ण अर्जुन द्वारा बताई गई कठिनाइयों को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार तर्क-वितर्क का क्रम चलता है। कृष्ण का प्रथम तर्क श्लोक दो और तीन में दिया गया है जिसमें कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि उसका यह आचरण अकीर्तिकर है और आर्य के लिए अशोभनीय है, वह अपुरुषोचित कार्य न करे, यह उसकी जो उनके मर्यादा के प्रतिकूल है। इस तर्क का अर्जुन ने जो उत्तर दिया है, वह श्लोक 4 से 8 तक वर्णित है।

श्लोक 4 और 5 में अर्जुन कहता है कि 'मैं भीष्म और द्रोण की हत्या कैसे कर सकता हूं जो सर्वोच्च आदर के पात्र हैं। इनकी हत्या करने की अपेक्षा भिक्षार्जन करके जीवन यापन करना श्रेयस्कर है। मैं इन वृद्ध और पूज्य जनों का वध कर राज्य-सुख भोगने के लिए जीवनयापन नहीं करना चाहता।' श्लोक 6 से 8 तक अर्जुन कहता है: 'इन दो में क्या श्रेयस्कर है, यह मैं नहीं जानता। क्या हमें कौरवों का समूल नाश करना श्रेयस्कर है अथवा उनके द्वारा हमें पराजित होना श्रेयस्कर है।' अर्जुन के इस प्रश्न का जो उत्तर कृष्ण ने दिया, वह 11 से 39 तक के श्लोकों में मिलता है। इस उत्तर में कृष्ण यह प्रतिपादित करते हैं (1) कि शोक करना अनुचित है क्योंकि सारी वस्तुएं नाशवान होती हैं, (2) यह धारणा असत्य है कि व्यक्ति मर जाता है क्योंकि आत्मा शाश्वत है, और (3) उसे युद्ध करना चाहिए क्योंकि क्षत्रिय का कर्त्तव्य युद्ध करना होता है।'

जो भी व्यक्ति इस संवाद को पढ़ता है, उसके मन में निम्नलिखित विचार आते हैं:

(1) अर्जुन ने जो प्रश्न प्रस्तुत किए, वे दार्शनिक प्रश्न नहीं हैं। वे स्वाभाविक प्रश्न हैं जो ऐसे लौकिक व्यक्ति द्वारा किए गए हैं जो सांसारिक समस्याओं से जूझ रहा है।

(2) कुछ सीमा तक कृष्ण इन प्रश्नों को स्वाभाविक प्रश्न मानते हैं और इनका नितांत स्वाभाविक उत्तर भी देते हैं।

(3) यह संवाद एक नया मोड़ ले लेता है। अर्जुन ने जब कृष्ण को यह सूचित कर दिया कि वह निश्चय ही युद्ध नहीं करेगा तब वह एक नया प्रश्न करता है और यह संदेह व्यक्त करता है कि कौरवों को मारना श्रेयस्कर है अथवा उनके हाथों मारा जाना श्रेयस्कर है।

यह परिवर्तन सोद्देश्य किया गया जिससे कृष्ण युद्ध की दार्शनिक दृष्टि से पुष्टि कर सकें जो अर्जुन के कथन के संदर्भ में अनावश्यक था।

(4) इसके बाद श्लोक 31 से 38 तक कृष्ण की वाणी मृदु हो जाती है। वह प्रश्न को स्वाभाविक बताते हैं और अर्जुन से युद्ध करने के लिए कहते हैं क्योंकि क्षत्रिय का कर्त्तव्य युद्ध करना है।

कोई भी पाठक इससे यह समझ सकता है कि वेदांत-दर्शन का विवेचन नितांत अप्रासंगिक है और बाद में जोड़ा गया है। जहां तक सांख्य-दर्शन का संबंध है, स्थिति बड़ी ही स्पष्ट है। अर्जुन के प्रश्न न करने पर भी इसका अक्सर विवेचन किया गया है। जब कभी इसका किसी प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रतिपादन किया गया है, तब उस प्रश्न का युद्ध से कोई संबंध नहीं है। इससे यह पता चलता है कि *भगवत्‌गीता* का दार्शनिक अंश मूल *गीता* के अंश नहीं हैं परंतु इन्हें बाद में जोड़ा गया है और उनके लिए स्थान देने के लिए अर्जुन से कुछ नवीन, समुचित और प्रमुख प्रश्न करवाए गए हैं जिनका युद्ध

की लौकिक समस्याओं से कोई संबंध नहीं है।

(iv) मूल *भगवत्गीता* के तीसरे क्षेपक में वे श्लोक आते हैं, जिसमें कृष्ण को ईश्वर के स्तर से परमेश्वर के स्तर पर पहुंचा दिया गया है। यह क्षेपक अध्याय 10 और 15 में मिलता है।

जैसा कि मैंने कहा था कि *भगवत्गीता* के रचना-काल का सटीक निर्धारण करना व्यर्थ का कार्य है और इसकी तभी कोई उपयोगिता हो सकती है, जब हर क्षेपक के रचना-काल का पता लगाने की कोशिश की जाए। अगर इस दिशा में प्रयत्न किया जाए तब, जैसा कि मैंने कहा, दर्शन-रहित मूल *गीता महाभारत* के मूल पाठ, अर्थात *जय* का भाग हो सकती है। मूल *भगवत्गीता* में पहला क्षेपक जिसमें कृष्ण को ईश्वर के रूप में व्यक्त किया गया है, मेगस्थनीज के कुछ बाद के समय का होना चाहिए जब कृष्ण केवल जनजातियों के ईश्वर थे।[1] यह कितने बाद का समय है, इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह काफी बाद का समय होना चाहिए क्योंकि यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि शुरू में कृष्ण मत के प्रति ब्राह्मणों की मैत्री नहीं थी। वस्तुतः वे इसके विरोधी थे।[2] ब्राह्मणों को कृष्ण पूजा स्वीकार करने में कुछ समय अवश्य लगा होगा।[3]

मूल *भगवत्गीता* में दूसरा क्षेपक वह अंश है जहां सांख्य और वेदांत का विवेचन है। यह जैमिनि और बादरायण के सूत्रों के बाद रखे जाने चाहिए जिसका कारण दिया जा रहा है। इन सूत्रों के रचना-काल के बारे में प्रो. जैकोबी ने सतर्कतापूर्वक जांच की है।[4] उनका कहना है कि इन सूत्रों की रचना लगभग 200 से 300 ईसवी के बीच हुई।

मूल *भगवत्गीता* में तीसरा क्षेपक, जहां कृष्ण को ऊंचा उठाकर परमेश्वर का दर्जा दिया है, गुप्त सम्राटों के शासन-काल में जोड़ा गया होगा। इसका कारण स्पष्ट है। जिस प्रकार शक सम्राटों ने महादेव को अपना इष्ट देवता स्वीकार किया था उसी प्रकार गुप्त

---

1. डा० भंडारकर अपनी पुस्तक *शैविज्म एंड वैष्णविज्म* (शैववाद और वैष्णववाद) में कहते हैं, 'यदि वासुदेव कृष्ण की उपासना प्रथम मौर्य सम्राट के राज्य-काल में प्रचलित थी तो यह उपासना मौर्य वंश की स्थापना से बहुत पूर्व काल से ही शुरू हुई होनी चाहिए।' यह एक ऐसा अपवादित कथन है जिस पर कोई टिप्पणी नहीं की जा सकती। परंतु मुझे ऐसा लगता है कि जनजातीय ईश्वर के रूप में कृष्ण और विश्वव्यापी ईश्वर के रूप में कृष्ण के बीच अंतर किया जाना चाहिए। जनजातीय ईश्वर के रूप कृष्ण का वही समय हो सकता है जिसका सुझाव डा० भंडारकर ने दिया है लेकिन यह उनके विश्वव्यापी रूप में पूजे जाने का नहीं हो सकता। *गीता* में हम उनके दूसरे रूप से संबंधित है।
2. देखें, श्याम शास्त्री मेमोरियल वोल्यूम।
3. कृष्ण मत का विरोध बहुत बाद में शंकराचार्य जैसों ने भी किया।
4. अमेरिकन ओरिएंटल सोसायटी की पत्रिका में दि डेट्स आफ दि फिलोसोफिकल सूत्राज आफ दि ब्राह्मणाज शीर्षक लेख, खंड 31, 1911

वंश के सम्राटों ने कृष्ण–वासुदेव को अपना इष्टदेव स्वीकार कर लिया था। ब्राह्मणों ने, जिनके लिए धर्म एक व्यापार था और जो कभी भी एक ईश्वर के प्रति निष्ठावान नहीं रहे, अपने शासकों को प्रसन्न करने के लिए उनके इष्टदेव को एक उच्च और शक्तिशाली परमेश्वर के रूप में स्वीकार कर उसकी पूजा करनी आरंभ कर दी। अगर यह सही व्याख्या है तब मूल भगवत्गीता में यह क्षेपक 400 से 464 ई. के बीच जोड़ा गया होगा।

इन सब प्रमाणों से इस मत को सिद्ध करने में सहायता मिलती है कि *भगवत्गीता* को बौद्ध धर्म से पूर्व की रचना बताने के प्रयत्न सफल नहीं हो सकते। यह उन लोगों की हवाई कल्पना का नतीजा है जिन्हें बुद्ध और उनके क्रांतिकारी सिद्धांतों के प्रति तिरस्कार की भावना पीढ़ी दर पीढ़ी चली आई है। इतिहास इसे सिद्ध नहीं करता। इतिहास इस बात को बड़ी ही स्पष्टतापूर्वक सिद्ध करता है कि *भगवत्गीता* के वे अंश जिनका कुछ सैद्धांतिक महत्व है, हर प्रकार से बौद्ध सिद्धांतों और जैमिनि और बादरायण के सूत्रों के काफी बाद के हैं।

रचना-काल के बारे में विवेचन से केवल यही सिद्ध नहीं होता कि *भगवत्गीता* हीनयान बौद्ध धर्म के, बल्कि यह भी सिद्ध होता है कि महायान बौद्ध धर्म के भी बाद की है। प्रायः लोगों की यह धारणा है कि महायान बौद्ध धर्म का उद्भव बाद में हुआ था। कहा जाता है कि इसका उद्भव 100 ईसवी में हुआ, जब कनिष्क ने बौद्ध धर्म में आपसी मतभेद पर निर्णय करने के लिए तृतीय बौद्ध परिषद का आयोजन किया था। यह नितांत भ्रम है।[1] यह कहना सच नहीं कि परिषद होने के बाद बौद्ध धर्म के एक नए संप्रदाय का जन्म हुआ। जो कुछ हुआ, वह यह कि जो लोग वृद्ध हो चले थे, उनके लिए व्यंग्य के रूप में कुछ नए नाम चल पड़े। श्री किमूर का कहना है कि महायान बौद्धों के उस वर्ग का नाम है जिन्हें महासंघिक कहा जाता था। महासंघिकों का यह संप्रदाय उससे बहुत पहले बन गया था जितना कि कहा जाता है। अगर जनश्रुति पर विश्वास किया जाए तब हम कह सकते हैं कि बुद्ध के परिनिर्वाण के 236 वर्ष बाद अर्थात 307[2] ईसा पूर्व पाटलिपुत्र में बौद्ध सिद्धांतों को निश्चित करने के लिए हुई प्रथम बौद्ध परिषद के बाद यह अस्तित्व में आया और इस संप्रदाय ने बौद्ध धर्म के थेरवाद संप्रदाय के विरोध का नेतृत्व किया जिसे बाद में तिरस्कार स्वरूप हीनयान (अर्थात निम्न पथ के अनुगामी) कहा गया। जिस समय महासंघिकों का, जिन्हें बाद में महायानवादी कहा गया, उदय हुआ, उस समय *भगवत्गीता* का कहीं पता भी नहीं था।

---

1. इस सारे विषय पर देखिए, *ए हिस्टोरिकल स्टडी आफ दि टर्म्स हीनयान एंड महायान* और *दि ओरिजिन आफ महायान बुद्धिज्म*, लेखक रीकन किमूर, कलकत्ता यूनिवर्सिटी 1927.

2. यह तब है जब बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि 543 ईसा पूर्व की मान ली जाए, लेकिन अगर उनके परिनिर्वाण की तिथि 453 ईसा पूर्व मानी जाती है तब यह 217 ईसा पूर्व होगी।

महायानियों ने *भगवत्‌गीता* से क्या ग्रहण किया? वास्तव में ये *भगवत्‌गीता* से ग्रहण ही क्या कर सकते थे? जैसा कि श्री किमूर बताते हैं—बौद्ध धर्म के प्रत्येक संप्रदाय की चिंता कम से कम तीन मुख्य सिद्धांतों को लेकर थी— 1. ऐसे सिद्धांत जिनमें ब्रह्मांड के अस्तित्व का विवेचन हो, 2. ऐसे सिद्धांत जिनमें बुद्ध के उपदेशों का विवेचन हो, और 3. जो मानव-जीवन की अवधारणा से संबंधित हो। महायान इसके लिए कोई अपवाद नहीं था। महायान बुद्ध के उपदेशों के अतिरिक्त *भगवत्‌गीता* से कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकता था। विभिन्न सिद्धांतों को लेकर इनके दृष्टिकोण में इतना अंतर है कि वह संभावना भी समय के अंतर के कारण नहीं दीखती।

पूर्ववर्ती विवेचन मेरी स्थापना के विरुद्ध किए जा सकने वाले अकेले इस आरोप को पूर्णतः खंडित कर देता है, अर्थात *भगवत्‌गीता* अति प्राचीन है, बौद्ध-काल से पहले रची गई थी और इसलिए इसका जैमिनि की पूर्व-मीमांसा से कोई संबंध नहीं है और इसमें उनके प्रतिक्रियावादी सिद्धांतों की दार्शनिक आधार पर पुष्टि करने का प्रयत्न नहीं किया गया है।

सार रूप में, मेरी स्थापना के तीन पक्ष हैं। दूसरे शब्दों में, इसमें तीन भाग हैं। पहला यह कि *भगवत्‌गीता* मूलतः प्रतिक्रांति की उसी वर्ण की कृति है जैसी जैमिनि की पूर्व-मीमांसा नामक कृति है—प्रतिक्रांति की आधिकारिक *बाइबिल*। कुछ लोग अध्याय 2 के 40 से 46 तक के श्लोकों का सहारा लेते हैं और यह विचार व्यक्त करते हैं कि *भगवत्‌गीता*......।

(हमारे पास इस लेख की जितनी भी प्रतियां उपलब्ध हैं, उनमें यह लेख इसी स्थान पर अधूरा छोड़ दिया गया है जैसा कि उपर्युक्त वाक्य से स्पष्ट है) —संपादक

10

विराट पर्व और उद्योग पर्व की विश्लेषणात्मक टिप्पणियां

विराट पर्व

1. कौरवों ने पांडवों के अस्तित्व का पता लगाने के लिए गुप्तचर भेजे, परंतु वे गुप्तचर दुर्योधन के पास लौट आते हैं और बताते हैं कि वे पांडवों का पता लगाने में असमर्थ हैं। ये दुर्योधन की आज्ञा के अभिलाषी हैं कि अब क्या किया जाए ? —(विराट पर्व, अध्याय-25)

2. दुर्योधन अपने सलाहकारों से परामर्श करता है। कर्ण ने कहा कि अन्य गुप्तचर भेजे जाएं। दुःशासन ने कहा कि पांडव समुद्र पार चले गए होंगे। परंतु उनकी खोज की जाए।—(वही, अध्याय-26)

3. द्रोण ने कहा कि पांडवों को हराना अथवा उन्हें नष्ट करना संभव नहीं है। वे तपस्वी के वेष में होंगे, अतः सिद्धों और ब्राह्मणों को गुप्तचर के रूप में भेजा जाए। (वही, अध्याय-27)

4. भीष्म द्रोण का समर्थन करते हैं।—(वही, अध्याय-28)

5. कृपाचार्य ने भीष्म का समर्थन किया और कहा—पांडव हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं। परतु बुद्धिमान लोग छोटे शत्रुओं की भी अवहेलना नहीं करते हैं। जब वे अज्ञातवास में हैं तो आप अभी से जाकर सेनाओं को एकत्र करें।—(वही, अध्याय-29)

6.इसके बाद त्रिगढ़ के सम्राट सुशर्मा ने एक अलग विषय प्रस्तुत किया। उसने बताया कि कीचक के बारे में 'मैंने' सुना है कि उसका निधन हो गया है, जो सम्राट विराट का सेनापति था। सम्राट विराट हमें अत्यधिक कष्ट देने वाला है। कीचक के निधन के बाद विराट को बहुतअधिक दुर्बल होना चाहिए।विराट के साम्राज्य पर क्यों न आक्रमण किया जाए? यह सबसे उपयुक्त समय है। कर्ण ने भी सुशर्मा का समर्थन किया। पांडवों के बारे में चिंता क्यों की जाए? ये पांडव धन और सेना से वंचित हैं तथा परास्त हैं। उनके

बारे में परेशान क्यों हुआ जाए? वे अब तक मौत की गोद में चले गए होंगे। इस खोज-अभियान का त्याग कर दिया जाए और सुशर्मा की योजना को अमल में लाया जाए।—(वही, अध्याय-30)

7. सुशर्मा विराट पर आक्रमण करता है। सुशर्मा विराट की गायों को ले आता है। गायों के चरवाहे विराट को यह सूचना देते हैं और सम्राट से आग्रह करते हैं कि सुशर्मा का पीछा किया जाए तथा गायों की रक्षा की जाए।—(वही, अध्याय-31)

8. विराट युद्ध के लिए तैयार हो गया। इस बीच विराट के छोटे भाई शतनीक ने सुझाव दिया कि अकेले जाने के बजाय वह अपने साथ कनक (सहदेव), बल्लभ (युधिष्ठिर), शांतिपाल (भीम) और ग्रांथिक (नकुल) को अपने साथ ले लें, ताकि वे सुशर्मा से युद्ध करने में उनकी सहायता करें। विराट ने इस सुझाव पर अपनी सहमति प्रकट की और वे सभी गए। (वही, अध्याय-31)

9. सुशर्मा और विराट के बीच युद्ध।—(वही, अध्याय-32)

10. युधिष्ठिर विराट की रक्षा करता है।—(वही, अध्याय-33)

11. विराट नगरी में घोषणा होती है कि उनके सम्राट सुरक्षित हैं।—(वही, अध्याय-34)

विराट नगरी में कौरवों का प्रवेश

12. जब सम्राट विराट सुशर्मा का पीछा कर रहे थे, तभी दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा, शकुनि, दुःशासन, विविनशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख, दुशल और अन्य योद्धाओं के साथ विराट नगरी में घुस गए तथा विराट की गायों को पकड़ कर ले जाने लगे। चरवाहे सम्राट विराट के महल में आए और उन्हें यह समाचार दिया। उन्हें सम्राट को खोजने की आवश्यकता नहीं हुई, उन्हें सम्राट का पुत्र उत्तर मिल गया। इसलिए उन्होंने उसे ही यह समाचार दिया।—(वही, अध्याय-35)

13. उत्तर ने गर्व से कहा कि वह अर्जुन से श्रेष्ठ है और वह उनकी रक्षा कर लेगा। परंतु उसकी यह शिकायत थी कि उसका कोई सारथी नहीं है। द्रौपदी ने उसे बताया कि किसी समय ब्रह्मानंद अर्जुन का सारथी था। उससे क्यों न कहा जाए? उसने कहा कि उसके पास साहस नहीं है, अतः उसने द्रौपदी से निवेदन किया कि वह स्वयं जाकर उस सारथी से कहे। आप अपनी छोटी बहन मनोरमा से क्यों नहीं कहते। इसलिए उसने मनोरमा से कहा कि वह ब्रह्मानंद को ले आए।—(वही, अध्याय-36)

14. मनोरमा ब्रह्मानंद को अपने भाइयों के पास ले जाती है और उत्तर उसे अपना सारथी बनने के लिए प्रेरित करता है। ब्रह्मानंद ने स्वीकृति दे दी और कौरवों के समक्ष उत्तर का रथ संभाल लिया। —(वही, अध्याय-37)

15. कौरवों की सेना देखकर उत्तर ने रथ छोड़ दिया और भागना प्रारंभ कर दिया। अर्जुन ने उसे रोक लिया। कौरवों ने यह देखकर संदेह करना प्रारंभ किया कि यह व्यक्ति अर्जुन होगा। अर्जुन ने उससे कहा कि इसमें भयभीत होने की कोई बात नहीं है।–(वही, अध्याय-38)

16. अर्जुन अपना रथ शामी वृक्ष तक ले गया। इसे देखकर द्रोण ने कहा कि इस व्यक्ति को अर्जुन ही होना चाहिए। यह सुनकर कौरव अधिक बेचैन हो गए। परंतु दुर्योधन ने कहा कि यदि द्रोण सही हैं, तो यह समाचार हमारे लिए सुखद है क्योंकि तेरहवें वर्ष से पूर्व ही पांडवों का पता लग गया है और उन्हें 12 वर्ष के लिए फिर बनवास का दंड भोगना पड़ेगा।–(वही, अध्याय-39)

17. अर्जुन, उत्तर से शामी वृक्ष पर चढ़ने के लिए कहता है तथा शस्त्र नीचे डालने को कहता है।–(वही, अध्याय-40)

18. उत्तर द्वारा शामी वृक्ष पर शव होने का संदेह करना।–(वही, अध्याय-41)

19. शस्त्रों को देखकर उत्तर का **हतप्रभ** होना।–(वही, अध्याय-42)

20. अर्जुन द्वारा शस्त्रों का वर्णन।–(वही, अध्याय-43)

21. पांडवों के आवास के बारे में उत्तर की पूछताछ।–(वही, अध्याय-44)

22. वृक्ष से उतरते हुए उत्तर।–(वही, अध्याय-45)

23. हनुमान के चिह्न के साथ रथ। द्रोण इस बात से आश्वस्त हो जाते हैं कि वह अर्जुन ही है। कौरवों की सेना को अपशकुन दिखाई देते हैं।–(वही, अध्याय-46)

24. दुर्योधन सैनिकों को प्रोतसाहित करता है, जो द्रोण के यह कहने पर भयभीत हो गए थे कि वह अर्जुन है। द्रोण के प्रति कर्ण की भर्त्सना और दुर्योधन को यह सुझाव कि द्रोण को मुख्य सेनापति के पद से हटा दिया जाए।–(वही, अध्याय-47)

25. कर्ण ने गर्व से यह घोषित किया और प्रतिज्ञा की कि वह अर्जुन को परास्त कर देगा।–(वही, अध्याय-48)

26. कृपाचार्य ने कर्ण को आत्मश्लाघी बनने और गर्व दिखाने पर चेतावनी दी। शास्त्रों द्वारा युद्ध को बुरा माना **गया** है।–(वही, अध्याय-49)

27. अश्वत्थामा कर्ण और दुर्योधन की भर्त्सना करता है, क्योंकि उन्होंने द्रोण की झूठी निंदा की है।–(वही, अध्याय-50)

28. अश्वत्थामा ने कर्ण और दुर्योधन को अपशब्द कहे, क्योंकि उन्होंने द्रोण की निंदा

की। कर्ण ने उत्तर दिया, 'अंततोगत्वा मैं केवल सूत हूं।' परंतु अर्जुन ने उसी प्रकार दुर्व्यवहार किया है , जिस प्रकार राम ने बाली के साथ किया था।–(वही, अध्याय-50)

29. भीष्म, द्रोण और कृप द्वारा अश्वत्थामा को चुप कर दिया गया तथा दुर्योधन और कर्ण ने द्रोण से क्षमा याचना की।– (वही, अध्याय-51)

30. भीष्म का निर्णय कि पांडवों ने अपने बनवास के 13 वर्ष पूरे कर लिए हैं।–(वही, अध्याय-52)

31. अर्जुन ने कौरवों की सेना को परास्त कर दिया।–(वही, अध्याय-53)

32. अर्जुन कर्ण के भ्राता को पराजित करता है। अर्जुन, कर्ण को हराता है और कर्ण भाग जाता है।–(वही, अध्याय–54)

33. अर्जुन कौरवों की सेना का विनाश कर देता है तथा कृपाचार्य के रथ का विध्वंस कर देता है।–(वही, अध्याय-55) .

34. देवता लोग आकाश में आ गए और उन्होंने अर्जुन तथा कौरवों की सेना के बीच घमासान युद्ध देखा।–(वही, अध्याय-56)

35. कृप और अर्जुन के मध्य युद्ध और कृप का युद्ध के मैदान से भाग जाना। –(वही, अध्याय-57)

36. द्रोण और अर्जुन के मध्य युद्ध और द्रोण का युद्ध के मैदान से भाग जाना। –(वही, अध्याय-58)

37. अश्वत्थामा और अर्जुन के मध्य युद्ध।–(वही, अध्याय-59)

38. कर्ण और अर्जुन के मध्य युद्ध।–(वही, अध्याय-60)

39. अर्जुन द्वारा भीष्म पर आक्रमण।–(वही, अध्याय-61)

40. अर्जुन कौरवों के सैनिकों को मौत के घाट उतारता है।–(वही, अध्याय-62)

41. भीष्म की पराजय और उसका युद्ध के मैदान से पलायन।–(वही, अध्याय-64)

42. कौरवों के सैनिकों का मूर्छित हो जाना। भीष्म का यह कहना कि वे अपने गृह को लौट जाएं।–(वही, अध्याय-66)

43. कौरव सैनिक अभय से अर्जुन के समक्ष आत्म समर्पण करते हुए। उत्तर और अर्जुन विराट नगरी लौट आते हैं।– (वही, अध्याय–67)

44. विराट अपनी राजधानी में प्रवेश करता है तथा प्रजा उसका सम्मान करती

है।–(वही, अध्याय-68)

45. पांडव सम्राट की सभा में प्रवेश करते हैं।–(वही, अध्याय-69)

46. अर्जुन अपने भाइयों का परिचय विराट से करवाता है।–(वही, अध्याय-71)

47. अर्जुन के पुत्र और विराट की पुत्री का विवाह–(वही, अध्याय-72)

48. उसके बाद पांडव विराट नगरी को छोड़ देते हैं और वे उपप्लव नगरी में रहने लगते हैं।–(वही, अध्याय-72)

49. इसके बाद अर्जुन अपने पुत्र अभिमन्यु, वासुदेव और यादव को अनृत देश से लाता है।–(वही, अध्याय-72)

50. युधिष्ठर के मित्र सम्राट काशिराज और शल्य दो अक्षौहिणी सेनाओं के साथ आते हैं। इसी प्रकार यज्ञसेन द्रुपदराज एक अक्षौहिणी सेना के साथ आता है। द्रौपदी के सभी पुत्र अजिक्य, शिखंडी, धृष्टद्युम्न भी आ गए।–(वही, अध्याय-72)

उद्योग पर्व

1. अभिमन्यु के विवाह के बाद यादव तथा पांडव सम्राट विराट की सभा में एकत्र हुए। कृष्ण उन्हें संबोधित करते हैं कि भविष्य में क्या करना है। हमें वही करना चाहिए जो कौरवों और पांडवों, दोनों के ही हित में हो। धर्म कुछ भी स्वीकार कर सकता है। यहां तक कि एक गांव भी धर्म स्वीकार कर सकता है। यदि उसे दुर्योधन का पूरा सम्राज्य भी दिया जाए तो वह उसे स्वीकार नहीं करेगा। अभी तक पांडवों ने नीति का पालन किया है। परंतु यदि कौरव अनीति का पालन करते हैं, तो पांडवों को कौरवों का नाश करने में कोई हिचक नहीं होगी। किसी को भी इस तथ्य से भयभीत नहीं होना चाहिए कि पांडव अल्पसंख्यक हैं। उनके मित्र हैं जो उनकी सहायता करने आ जाएंगे। हमें कौरवों की इच्छा का पता करना चाहिए। मेरा सुझाव है कि हमें दुर्योधन के पास एक संदेशवाहक भेजना चाहिए और उससे यह कहा जाए कि वह अपने साम्राज्य का एक भाग पांडवों को दे दे।–(उद्योग पर्व, अध्याय-1)

2. बलराम कृष्ण के सुझाव का समर्थन करता है, परंतु आगे कहता है कि यह धर्म की भूल थी, जब कि वह जानता था कि वह शकुनि के हाथों से पराजित हो रहा है। इसलिए कौरवों के साथ युद्ध न करके यह ठीक होगा कि संधि-वार्ता से जो कुछ भी मिले, उसे प्राप्त करना चाहिए।–(वही, अध्याय-2)

3. सात्यकी उठ खड़े हुए और उन्होंने बलराम की प्रवृत्ति की भर्त्सना की।–(वही, अध्याय-3)

4. द्रुपद ने सात्यकी का समर्थन किया। द्रुपद इस बात पर सहमत हो गए कि वह

अपने पुरोहित को संदेशवाहक के रूप में भेजेंगे।—(वही, अध्याय-4)

5. कृष्ण ने द्रुपद का समर्थन किया और वह द्वारका चले जाते है। द्रुपद और विराट द्वारा आमंत्रित सभी सम्राट आ पहुंचते हैं। इसी प्रकार दुर्योधन द्वारा जिन सम्राटों को आमंत्रित किया गया, वे भी पहुंच गए।—(वही, अध्याय-5)

6. द्रुपद अपने पुरोहित को निर्देश देता है कि उसे सभा में किस प्रकार बोलना है तथा इस मामले को सुलझाना है।—(वही, अध्याय-6)

7. अर्जुन और दुर्योधन, दोनों ही द्वारका जाते हैं तथा युद्ध के लिए उनसे सहायता की याचना करते हैं। उसने कहा कि वह उन दोनों की सहायता करेगा। मैं एक को अपनी सेना दे सकता हूं और दूसरे के साथ अकेला रह सकता हूं। आप यह चुनें कि आपको क्या चाहिए। दुर्योधन ने सेना को चुना।अर्जुन ने कृष्ण को चुना।—(वही, अध्याय-7)

8. शल्य का बृहद् सेना के साथ पांडवों के पास आना। दुर्योधन उसे निम्न वर्ग का मानता है। शल्य और पांडवों की बैठक। पांडव शल्य से निवेदन करते हैं कि युद्ध में कर्ण को हतोत्साह किया जाए। शल्य के साथ समझौता।—(वही, अध्याय-8)

9. अध्याय-9—असंगत।

10. अध्याय-10—असंगत।

11. अध्याय-11—असंगत।

12. अध्याय-12—असंगत।

13. अध्याय-13—असंगत।

14. अध्याय-14—असंगत।

15. अध्याय-15—असंगत।

16. अध्याय-16—असंगत।

17. अध्याय-17—असंगत।

18. अध्याय-18—असंगत।

19. सात्यकी अपनी सेना सहित पांडवों के पास आता है और भागदत्ता दुर्योधन के पास जाता है।—(वही, अध्याय-19)

20. द्रुपद का पुरोहित कौरवों की सभा में प्रवेश करता है। पुरोहित ने कहा कि पांडव कौरवों के कुकृत्यों को भूल जाने के लिए तैयार हैं और उनके साथ संधि करना चाहते हैं। उसने बताया कि पांडवों के पास भारी सेना है फिर भी वे संधि करना चाहते हैं।—(वही, अध्याय-20)

21. भीष्म पुरोहित का समर्थन करता है। कर्ण आपत्ति करता है। भीष्म और कर्ण के बीच वाद-विवाद। धृतराष्ट्र सुझाव देता है कि संजय को उनकी ओर से समझौता करने के लिए भेजा जाए।–(वही, अध्याय-21)

22. धृतराष्ट्र संजय को पांडवों के पास भेजता है और उससे कहता है कि इस अवसर पर जो भी उचित समझो, वही कहो जिससे दोनों के बीच शत्रुता न बढ़े।–(वही, अध्याय-22)

23. संजय का पाडवों के पास जाना।–(वही, अध्याय-23)

24. संजय और युधिष्ठिर के बीच बातचीत।–(वही, अध्याय-24)

25. संजय युद्ध की निंदा करता है।–(वही, अध्याय-25)

26. धर्म का कहना है, 'मैं समझौता करने के लिए तैयार हूं, यदि कौरव हमारे इंद्रप्रस्थ साम्राज्य को हमें वापस कर दें।–(वही, अध्याय-26)

27. गुरुजन का वध करना और साम्राज्य को प्राप्त करना अधर्म है। यदि कौरव बिना युद्ध के किसी साम्राज्य को वापस करने से इंकार करते हैं तो यह अच्छा रहेगा कि आप वृष्णि और अंधक के साम्राज्य में भिक्षा मांगकर जीवनयापन करें। –(वही, अध्याय-27)

28. इस अध्याय में कहा गया है कि क्या संजय उन्हें धर्म के विरुद्ध कार्य करने अथवा धर्म के विरुद्ध किए गए कार्य का दोषी मानता है। संजय कहता है कि 'मैं स्वधर्म अथवा क्षमा को चाहता हूं।'–(वही, अध्याय-28)

29. कृष्ण संजय से कहते हैं कि युद्ध क्यों वैध है और संजय को बताते हैं कि वह धृतराष्ट्र को उनके विचारों से अवगत करा दें।–(वही, अध्याय-29)

30. संजय कौरवों के पास आता है और दुर्योधन को युद्ध करने के लिए कहता है। दुर्योधन को या तो इंद्रप्रस्थ पांडवों को वापस कर देना चाहिए अथवा युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए।–(वही, अध्याय-30)

31. संजय दुर्योधन से कहता है कि वह स्वयं जीवित रहे और उन्हें जीवित रहने दे। यदि वह इंद्रप्रस्थ वापस नहीं कर सकता तो उन्हें कम से कम पांच गांव दे देने चाहिए।–(वही, अध्याय-31)

32. संजय रात्रि में धृतराष्ट्र के पास पहुंचता है और उससे कहता है कि मैं प्रातः धर्म के संदेश को बताऊंगा।–(वही, अध्याय-32)

33. धृतराष्ट्र बेचैन होता है और उस संदेश के बारे में जानना चाहता हैं जो संजय लाया है। इसलिए वह संजय को शीघ्र बुलाता है। संजय उनका संदेश देता है और कहता

है कि साम्राज्य का उनका भाग उन्हें देकर समझौता कर लिया जाए।—(वही, अध्याय-33)

34. धृतराष्ट्र विदुर को अमंत्रित करता है और उसका परामर्श मांगता है। उसका परामर्श यह है कि पांडवों को उनके साम्राज्य का भाग दे दिया जाए।—(वही, अध्याय—34)

35. अध्याय-35—असंगत।

36. असंगत। विदुर का कहना है कि दोनों पक्षों को मित्र होना चाहिए।—(वही, अध्याय-36)

37. अध्याय-37—असंगत।

38. अध्याय-38-असंगत।

39. धृतराष्ट्र विदुर से कहता है कि मैं दुर्योधन को छोड़ नहीं सकता, यद्यपि वह बुरा है।—(वही, अध्याय-39)

40. विदुर चातुर्वर्ण्य का वर्णन करता है।—(वही, अध्याय-40)

41. धृतराष्ट्र विदुर से ब्रह्मा के बारे में पूछता है। वह कहता है कि मैं नहीं बता सकता, क्योंकि मैं शूद्र हूं। इसके बाद सनत सुजाता आता है।—(वही, अध्याय-42)

42. ब्रह्म विद्या के बारे में धृतराष्ट्र और सनत सुजाता में परस्पर वार्तालाप होता है।—(वही, अध्याय-42)

43. सनत सुजाता और धृतराष्ट्र के बीच एक ही विषय पर विचार-विमर्श किया जाता है।—(वही, अध्याय-43)

44. ब्रह्म विद्या पर सनत सुजाता के विचार।—(वही, अध्याय-44)

45. सनत सुजाता योग का उपदेश देता है।—(वही, अध्याय-45)

46. सनत सुजाता आत्मा के बारे में बताता है।—(वही, अध्याय-46)

47. कौरव संजय द्वारा लाए गए संदेश को सुननेके लिएसभा में आते है।—(वही अध्याय—47)

48. संजय संदेश सुनाता है। (संदेश का, विशेषकर वह अंश, जो अर्जुन ने कहा था)।—(वही, अध्याय—48)

49. भीष्म द्वारा कृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा। कर्ण क्रोधित हो उठता है।द्रोण भीष्म का समर्थन करता है और समझौता करने का परामर्श देता है।—(वही, अध्याय-49)

50. धृतराष्ट्र संजय से मालूम करता है कि पांडवों और उनके कौन-कौन मित्र हैं तथा उनकी कितनी शक्ति है?संजय उलाहना देता है तथा उत्तर देता है।–(वही,अध्याय–50)

51. धृतराष्ट्र भीष्म के पराक्रम का विचार करता है और चिंतित होता है।–(वही, अध्याय-51)

52. धृतराष्ट्र अर्जुन के पराक्रम का विचार करता है और चिंतित होता है।–(वही, अध्याय-52)

53. धृतराष्ट्र धर्म और उसके मित्रों के पराक्रम का विचार करता है। वह अपने पुत्रों से कहता है कि वे पांडवों के साथ संधि कर लें।–(वही, अध्याय-53)

54. संजय कौरवों की पराजय की भविष्यवाणी करता है।–(वही, अध्याय-54)

55. दुर्योधन कहता है कि पांडव हमें पराजित नहीं कर सकते, क्योंकि हमारा सैन्य-बल अधिक है।–(वही, अध्याय-55)

56. संजय पांडवों द्वारा सेना की सुव्यवस्था का वर्णन करता है।–(वही, अध्याय-56)

57. संजय यह बताता है कि पांडवों ने कौरवों के योद्धाओं को मौत के घाट उतारने की किस प्रकार की योजना तैयार की है। दुर्योधन कहता है कि वह पांडवों से भयभीत नहीं है कि वे कौरवों को पराजित कर देगें। कौरवों के पास अधिक सेना है।–(वही, अध्याय-57)

58. धृतराष्ट्र दुर्योधन से कहता है कि वह युद्ध न करे। दुर्योधन शपथ लेता है कि वह युद्ध से विमुख न होगा। धृतराष्ट्र रो पड़ता है।–(वही, अध्याय-58)

59.धृतराष्ट्र संजय से कहता है कि वह उसे बताए कि कृष्ण और अर्जुन के बीच क्या वार्तालाप हुआ?–(वही, अध्याय-59)

60. धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को बताया कि देवता पांडवों की सहायता करेंगे और कौरवों का विनाश कर देंगे।–(वही, अध्याय-60)

61. दुर्योधन कहता है कि वह इससे भयभीत नहीं है।–(वही, अध्याय-61)

62. कर्ण कहता है कि वह स्वयं अर्जुन का वध करने में सक्षम है।–(वही, अध्याय-62)

63. दुर्योधन कहता है कि वह कर्ण पर निर्भर होकर युद्ध कर रहा है और उसे भीष्म, द्रोण आदि पर उतना विश्वास नहीं है।– (वही, अध्याय–63)

64. विदुर दुर्योधन से कहता है कि शत्रुता त्याग दे। (वही, अध्याय–64)

65. धृतराष्ट्र दुर्योधन की भर्त्सना करता है।–(वही, अध्याय-65)

66. संजय अर्जुन का संदेश धृतराष्ट्र को बताता है।–(वही, अध्याय–66)

67. जो सम्राट कौरवों के सभागार में एकत्र हुए थे, वे अपने-अपने गृहों को लौट गए। व्यास और गांधारी विदुर के साथ आते हैं। व्यास ने संजय से कहा कि वह धृतराष्ट्र को वह सभी बताए, जो उसे कृष्ण के वास्तविक स्वरूप और अर्जुन के बारे में ज्ञात है।–(वही, अध्याय-67)

68. संजय धृतराष्ट्र को कृष्ण के बारे में बताते हैं।–(वही, अध्याय-68)

69. धृतराष्ट्र दुर्योधन से कहता है कि वह कृष्ण के आगे आत्म-समर्पण कर दे। दुर्योधन इंकार करता है। गांधारी दुर्योधन से अपशब्द कहती है।–(वही,अध्याय–69)

70. कृष्ण के अलग-अलग नाम और उनका मूल।–(वही, अध्याय-70)

71. धृतराष्ट्र कृष्ण को समर्पित हो जाता है।–(वही, अध्याय-71)

72. युधिष्ठिर और कृष्ण में सवाद। युधिष्ठिर बताता है कि संजय ने उससे कहा है कि धृतराष्ट्र पर विश्वास न किया जाए। युधिष्ठिर संपत्ति के महत्व पर बल देता है। क्षात्रधर्म के बारे में बताता है तथा उसके पालन की आवश्यकता पर बल देता है। कृष्ण स्वयं कौरवों के पास जाने का सुझाव देता है। युधिष्ठिर को वह विचार अच्छा नहीं लगता, परंतु वह यह कहता है कि कृष्ण जो कहते हैं, वही सर्वोत्तम है।–(वही, अध्याय-72)

73. कृष्ण धर्म को वह रहस्य बताते हैं, जो उनके मन में है। कृष्ण धर्म से कहते हैं कि कौरवों के साथ मधुर वचन कहने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे अन्य कई कारण हैं कि आपको कौरवों के साथ समझौता क्यों नहीं करना चाहिए। इस बात पर बल देना है कि कौरवों ने द्रौपदी को कितना अपमानित किया? इसलिए हे धर्म! उनको मारने में न हिचकिचाओ।–(वही, अध्याय-73)

74. भीम कृष्ण से कहता है कि कौरवों के साथ सौहार्द्र से बातचीत की जाए।–(वही, अध्याय-74)

75. कृष्ण भीम का उपहास करते हैं।–(वही, अध्याय-75)

76. भीम युद्ध करने के लिए अपना मन पक्का कर लेते हैं।–(वही, अध्याय-76)

77. कृष्ण भीम को दैव और पौरुष का अंतर समझाते हैं।–(वही, अध्याय-77)

78. अर्जुन कृष्ण से कहता है कि 'क्षमा', अर्थात युद्ध न करने पर विचार किया जाए।–(वही, अध्याय-78)

79. कृष्ण का अर्जुन से संवाद। मैं शांति के समझौते के लिए प्रयत्न करूंगा। यदि वह समझौता संभव नहीं हो तो युद्ध करने के लिए तैयार रहना। मैं दुर्योधन को धर्म

की उस सहमति के बारे में नहीं बताऊंगा कि वह पांच गांव स्वीकार करने के लिए सहमत है।—(वही, अध्याय-79)

80. नकुल कृष्ण से कहता हैं, जो सर्वश्रेष्ठ हो, वही किया जाए।—(वही, अध्याय-80)

81. सहदेव कृष्ण से मिलता है तथा कहता है कि कौरवों के साथ युद्ध किया जाए। सत्यकी ने कहा कि यहां जितने भी योद्धा एकत्र हुए हैं, वे सभी सहदेव के विचार से सहमत हैं।—(वही, अध्याय-81)

82. द्रौपदी कृष्ण से भेंट करती है और उन्हें बताती है कि वह तब तक संतुष्ट नहीं होगी, जब तक दुर्योधन का विनाश नहीं हो जाता। कृष्ण उसे आश्वासन देते हैं।—(वही, अध्याय-82)

83. अर्जुन और कृष्ण के बीच अंतिम बैठक होती है। अर्जुन क्षमा, अर्थात शांति के लिए भरसक प्रयत्न करता है। युधिष्ठिर कृष्ण से कहते हैं कि कुंती को आश्वासन दिया जाए। कृष्ण अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए जाते हैं।—(वही, अध्याय-83)

84. कृष्ण जब हस्तिनापुर जाते हैं, तो मार्ग में उन्हें अच्छे और बुरे शकुन होते दिखाई पड़ते हैं।—(वही, अध्याय-84)

85. दुर्योधन कृष्ण के लिए हस्तिनापुर की यात्रा में स्थान-स्थान पर विश्रामालय बनवाते हैं।—(वही, अध्याय-85)

86. धृतराष्ट्र विदुर से पूछते हैं कि कृष्ण को कौन-कौन से उपहार दिए जाए।—(वही, अध्याय-86)

87. विदुर धृतराष्ट्र से कहते हैं कि वह कृष्ण को पांडवों से अलग नहीं मानते।—(वही, अध्याय-87)

88. दुर्योधन का कहना है कि कृष्ण पूज्य हैं। परन्तु यह समय नहीं है कि उनकी पूजा की जाए। भीष्म दुर्योधन से कहते हैं कि पांडवों के साथ समझौता कर लिया जाए। दुर्योधन की इच्छा कृष्ण से साक्षात्कार करने की है। भीष्म दुर्योधन का घोर विरोध करता है।—(वही, अध्याय-88)

89. कृष्ण हस्तिनापुर में प्रवेश करते हैं। धृतराष्ट्र से भेंट। वे विदुर के यहां ठहरते हैं।—(वही, अध्याय-89)

90. कुंती और कृष्ण की भेंट। कुंती अपने दुख से आहत है, कृष्ण उसको सांत्वना देते हैं। कुंती कृष्ण से कहती है: (1) मेरे पुत्रों से कहो कि वे अपने साम्राज्य के लिए युद्ध करें। (2) मैं द्रौपदी के लिए दुखी हूं।—(वही, अध्याय-90)

91. कौरव कृष्ण को भोजन करने के लिए बुलाते हैं। कृष्ण इंकार कर देते है। कृष्ण विदुर के साथ भोजन करते हैं।

92. विदुर कृष्ण से कहता है कि वह नहीं चाहता कि कृष्ण कौरवों के बीच जाएं।–(वही, अध्याय-92)

93. कृष्ण विदुर को बताते हैं कि कौरव उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं। मैं केवल यहां इसलिए आया हूं क्योंकि क्षमा, अर्थात शांति पुण्यकार्य है।–(वही, अध्याय-93)

94. कृष्ण कौरवों के सभागार में प्रवेश करते हैं।–(वही, अध्याय-94)

95. कृष्ण सभा को संबोधित करते हैं। उन्होंने कौरवों से कहा कि पांडव शांति और युद्ध, दोनों के लिए ही तैयार हैं। उन्हें उनका आधा साम्राज्य दे दिया जाए।–(वही, अध्याय-95)

96. जामदग्नि दंभ के विरोध में एक कहानी कहता है।–(वही, अध्याय-96)

97. मातलि आख्यान। (वही, अध्याय-97-105)

98. नारद का दुर्योधन को परामर्श।–(वही, अध्याय-106)

99. गाल्व आख्यान।–(वही, अध्याय-106-123)

100. धृतराष्ट्र कृष्ण से कहता है कि वह दुर्योधन को परामर्श दे।–(वही, अध्याय-124)

101. भीष्म का दुर्योधन को परामर्श। द्रोण का समर्थन। विदुर दुर्योधन की भर्त्सना करते हैं। धृतराष्ट्र का परामर्श।–(वही, अध्याय-125)

102. भीष्म और द्रोण दूसरी बार दुर्योधन को समझाते हैं।–(वही, अध्याय-126)

103. दुर्योधन यह घोषणा करता है कि पांडवों को कुछ भी नहीं दिया जाएगा। –(वही, अध्याय-127)

104. कृष्ण दुर्योधन की भर्त्सना करते हैं। दुर्योधन सभा त्याग देता है। दुःशासन का भाषण। कृष्ण भीष्म को चेतावनी देते हैं।–(वही, अध्याय-128)

104. धृतराष्ट्र विदुर से कहते हैं कि गांधारी को सभागार में लाया जाए। दुर्योधन वापस आता है। गांधारी उससे कहती हैं कि साम्राज्य का आधा भाग पांडवों को दिया जाए।–(वही, अध्याय-129)

104. दुर्योधन सभा का त्याग करता है। उसका इरादा है कि कृष्ण का वध कर दिया जाए। सात्यकि धृतराष्ट्र को इस गुप्त कुचक्र की सूचना देता है। कृष्ण का भाषण। धृतराष्ट्र दुर्योधन को सभा में फिर बुलाता है, उसे चेतावनी देता है। विदुर द्वारा

भर्त्सना।–(वही, अध्याय-130)

105. भगवान का विश्व रूप दर्शन, धृतराष्ट्र को दिव्य चक्षु प्राप्त होते हैं। कृष्ण सभा छोड़ देते हैं और कुंती के पास जाते हैं।–(वही, अध्याय-131)

106. कृष्ण कुंती से कहते हैं कि सभा में क्या-क्या हुआ। कुंती कृष्ण से कहती है कि क्षत्रियों के लिए युद्ध अनिवार्य है। इससे बढ़ कर और कोई धर्म नहीं है।–(वही, अध्याय-132)

107. कुंती अपने मत को पुष्ट करने के लिए कृष्ण से विदुला की कहानी कहती है।–(वही, अध्याय-133)

108. विदुला की कहानी।–(वही, अध्याय-134)

109. विदुला की कहानी।–(वही, अध्याय-135)

110. विदुला की कहानी।–(वही, अध्याय-136)

111. कुंती की अपने पुत्रों को सलाह। कृष्ण का कर्ण को परामर्श और कृष्ण का उपप्लव्य नगरी के लिए प्रस्थान।–(वही, अध्याय-137)

112. भीष्म और द्रोण द्वारा दुर्योधन को परामर्श।–(वही, अध्याय-138)

113. भीष्म का दुख। द्रोण फिर दुर्योधन को परामर्श देता है।–(वही, अध्याय-139)

114. धृतराष्ट्र और संजय के मध्य वार्तालाप। कर्ण को कृष्ण परामर्श देता है।–(वही, अध्याय-140)

115. कर्ण का कृष्ण को उत्तर।–(वही, अध्याय-141)

116. कृष्ण का कर्ण को आश्वासन, पांडवों की विजय होगी।–(वही, अध्याय-142)

117. कर्ण को अपशकुन होते हैं। पांडवों को समाप्त करने का उसका दृढ़ निश्चय। उसका गृह को प्रस्थान।–(वही, अध्याय-143)

118. विदुर और पृथु के मध्य वार्तालाप। उसे पता चलता है कि दुर्योधन युद्ध करने के लिए दृढ़ है। कुंती का दुख। कर्ण को उसके मूल के बारे में बताने की इच्छा। कुंती नदी के किनारे जाती है।–(वही, अध्याय-144)

119. कुंती कर्ण से भेंट करती है। वह कर्ण को उसके मूल के बारे में बताती है तथा उससे निवेदन करती है कि वह पांडवों के साथ हो जाए।–(वही, अध्याय-145)

120. सूर्य कुंती से प्रस्ताव का समर्थन करता है। कर्ण उसको अस्वीकार कर देता है अर्जुन को छोड़कर सभी पांडवों को बचाने का वचन देता है।–(वही, अध्याय-146)

121. कृष्ण पांडवों के पास जाते हैं। युधिष्ठिर पूछता है कि कौरव-सभा में क्या-क्या हुआ। (वही, अध्याय–147)

122. कृष्ण पूरी कहानी सुनाता है।– (वही, अध्याय–147, 148, 149, 150)

123. पांडवों की सेना के सेनापति की नियुक्ति। कुरुक्षेत्र में पांडवों की सेना का प्रवेश।– (वही, अध्याय–151)

124. सेना को रसद पहुंचाने के लिए पांडवों की व्यवस्था के विवरण।– (वही, अध्याय–152)

125. कौरवों की ओर प्रबंध। हमारी सेना को कल प्रातः ही कुरुक्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए।– (वही, अध्याय–153)

126. धर्म को यह भय है कि वह युद्ध करने के लिए गया तो वह अपने नैतिक औचित्य से गिर जाएगा। कृष्ण ने उसे संतुष्ट किया। अर्जुन ने कहा कि तुम्हें युद्ध करना चाहिए।– (वही, अध्याय–154)

127. दुर्योधन की सेना का विवरण।–(वही, अध्याय-155)

128. भीष्म को कौरव सेना का सेनापति बनाया गया।– (वही, अध्याय-156)

कर्ण इससे नाराज होते है। वह निर्णय करता है कि भीष्म की मृत्यु होने तक वह कौरव सेना की बागडोर नहीं सम्भालेगा।

129. कृष्ण पांडवों की सेना के सेनापति बन जाते हैं।– (वही, अध्याय-157)

130. बलराम तीर्थयात्रा पर यह कहकर चले जाते हैं कि मैं कौरवों को नष्ट होते नहीं देखना चाहता।

131. रुक्मिणी को न तो अर्जुन चाहता है और न दुर्योधन चाहता है अतः वह घर चली जाती है।– (वही, अध्याय-158)

132. संजय और धृतराष्ट्र के बीच वार्तालाप। वह धृतराष्ट्र को दोषी ठहराता है।– (वही, अध्याय–159)

133. पांडवों की सेना हिरण्यवती नदी के किनारे ठहरी हुई है। दुर्योधन पांडवों को आक्रमण के लिए ललकारता है और कृष्ण कहते हैं कि यदि तुम युद्ध कर सकते हो तो युद्ध करो।– (वही, अध्याय-160)

134. उल्का संदेश लेकर जाता है।– (वही, अध्याय-164)

135. क्रोधित पांडव गुस्सें से भरे संदेश भेजते हैं। वे कल से युद्ध आरंभ करने का आदेश देते है।– (वही, अध्याय-162)

11

ब्राह्मण बनाम क्षत्रिय

इसकी पांडुलिपि में टाइप किए हुए तेतालीस फुलस्केप पृष्ठ हैं। इसके मूल शीर्षक 'ब्राह्मिन्स एंड क्षत्रियाज एंड दि काउंटर-रिवोल्यूशन' (ब्राह्मण व क्षत्रिय तथा प्रतिक्रांति) के कवर पर डा. अम्बेडकर द्वारा संशोधित शीर्षक 'ब्राह्मिन्स वर्सेज क्षत्रियाज' (ब्राह्मण बनाम क्षत्रिय) दिया गया है। यह निबंध पूर्ण लगता है–संपादक

हिंदुओं के धर्मग्रंथों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच अनेक संघर्षों के वृतांत मिलते है, यहां तक कि इन संघर्षों में अपने-अपने हितों की रक्षा के लिए एक-दूसरे का रक्तपात भी किया गया मिलता है।

जो सबसे पहला उल्लेख मिलता है, वह राजा वेन का है। वेन एक क्षत्रिय राजा था। ब्राह्मणों के साथ उसके संघर्ष का उल्लेख अनेक लेखकों ने किया है। निम्नलिखित वृतांत *हरिवंश* से लिया गया है।

"प्राचीन-काल में अत्रि के गोत्र में प्रजापति (प्राणियों का स्वामी), धर्म का रक्षक हुआ जिसका नाम अंग था।[1] उसका उस जैसा ही पुत्र था, जिसका नाम प्रजापति वेन था। उसकी मां का नाम सुनीता था, जो मृत्यु की पुत्री थी। वह धर्म के प्रति उदासीन था। मृत्यु की पुत्री के इस पुत्र ने अपने नाना से प्राप्त दोष के कारण अपने धर्म की उपेक्षा की, और माया के वशीभूत हो आसक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लग गया। इस राजा ने धर्मविहीन आचरण की पद्धति प्रतिष्ठित की, वेदोक्त मर्यादा का उल्लंघन कर वह न्यायविहीन कार्यों में रुचि रखने लगा। उसके शासन में लोग धर्मग्रंथों का अध्ययन न करते हुए और यज्ञ के अंत में होतृ द्वारा उच्चरित होने वाले मंत्रादि के बिना जीवनयापन करने लगे, जिससे देवताओं को यज्ञ में होमे गए सोम का पान होना समाप्त हो गया।"

'कोई भी यज्ञ या पूजा नहीं होगी–यह उस प्रजापति का कठोर संकल्प था। उसका विनाश निकट आ रहा था। उसने घोषणा की–मैं यज्ञ में आराध्य हूं, यज्ञ भी मैं हूं, मेरे

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 302-303

लिए यज्ञ अर्पित किया जाए तथा मेरे लिए ही नैवेद्य अर्पित किया जाए। धर्म की मर्यादाओं का अतिक्रमण वाले राजा से, जो अपने लिए उस पद का दंभ करने लगा जिसका वह पात्र नहीं था, तब मरीचि के नेतृत्व में सभी बड़े-बड़े ऋषियों ने उससे कहा, 'हम सब एक महान (दीर्घसत्र) यज्ञ करने जा रहे हैं जो अनेक वर्षों तक चलेगा। हे वेन, आप अधर्म का आचरण न करें, यह धर्म की सनातन रीति नहीं है। निस्संदेह, आप हर दृष्टि से अत्रि वंश के प्रजापति हैं और आपने प्रजा की रक्षा करने का दायित्व लिया है।' जब इन बड़े-बड़े ऋषियों ने इस प्रकार कहा तब उस मूर्ख वेन ने, जिसे उचित-अनुचित का विवेक नहीं था, उन पर हंसकर कहा, 'मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन धर्म का नियामक है? इस पृथ्वी पर वेद, वीर्य, तप और सत्य में मेरे समान दूसरा कौन है? आप लोग मोहग्रस्त और विवेकहीन हैं और यह नहीं जानते कि मैं ही सभी जीवों और धर्मों का उत्पत्ति स्थल हूं। आपको ज्ञात होना चाहिए कि यदि मैं चाहूं तो इस पृथ्वी को उलट-पलट दूं या इसे जल से आप्लावित कर दूं या आकाश और पृथ्वी को मिला कर एक कर दूं।' जब वेन अपने मोह और दंभ के कारण वश मैं नहीं किया जा सका, तब सभी ऋषि क्रोध में भर उठे। उन्होंने उस बलवान और दुर्धर्ष राजा को पकड़ लिया और उसकी बांई जांघ को रगड़ डाला। इस जांघ के रगड़े जाने पर इससे श्याम वर्ण का एक पुरुष प्रकट हुआ, जो ठिगना था। वह डरा हुआ थां। वह हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। अत्रि ने उसे भय से कांपता हुआ देख उससे कहा, 'निषीथ' (बैठ जाओ)। वह निषाद वंश का प्रवर्तक हुआ और धीवरों का जनक भी हुआ, जो बेन के विकार से उत्पन्न हुए।'

दूसरा उदाहरण पुरुरवा का है। वह एक और क्षत्रिय राजा था। वह इला का पुत्र और मनु वैवस्वत का पौत्र था। उसका ब्राह्मणों के साथ संघर्ष हो गया। इस संघर्ष का विवरण *महाभारत* के आदि पर्व में मिलता है जो निम्नलिखित है:

'इसके बाद इला से मेधावी पुरुरवा का जन्म हुआ।[1] जैसा कि हमने सुना है, वह उसकी माता भी थी और पिता भी। उसने महासागर में तेरह द्वीपों में राज्य किया। उसकी सारी प्रजा देव थी। वह स्वंय भी प्रख्यात था। पुरुरवा को सत्ता का मद हो गया। तब उसने ब्राह्मणों से बैर मोल ले लिया और भारी प्रतिरोध के बावजूद भी उसने उनके सारे रत्न छीन लिए। इस पर स्वर्ग से सनतकुमार आए और उन्होंने उसे चेतावनी दी, जिसे उसने अनसुनी कर दिया। इस पर ब्राह्मणों ने क्रुद्ध होकर उसे शाप दिया। जिसके परिणामस्वरूप शक्ति के मद में विमूढ़ हुए इस राजा की मृत्यु हो गई।'

तीसरा संघर्ष नहुष और ब्राह्मणों के बीच हुआ जो कुछ अधिक गंभीर था। नहुष पुरुरवा का पौत्र था। *महाभारत* में इसका दो स्थानों पर उल्लेख है। एक बार वन पर्व में और

---

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 307

दूसरी बार उद्योग पर्व में। निम्नलिखित विवरण *महाभारत* के उद्योग पर्व से लिया गया है:

'वृत्रासुर वध के पश्चात इंद्र को ग्लानि हुई कि उन्होंने एक ब्राह्मण की हत्या कर दी है।[1] (क्योंकि वृत्र को ब्राह्मण कहा जाता था) इस कारण वह जल में छिप गया। देवराज के लुप्त हो जाने पर स्वर्ग और पृथ्वी, सभी जगह अव्यवस्था फैल गई। ऋषियों और देवताओं ने तब नहुष से राजा बनने के लिए निवेदन किया। आरंभ में उसने स्वयं को निर्बल बता कर अनिच्छा प्रकट की, किंतु उनके बहुत कहने पर उसने यह उच्च पद ग्रहण कर लिया। इस पद की प्राप्ति से पूर्व वह सद्जीवन व्यतीत करता था। किंतु अब वह भोग और विलास में लिप्त रहने लगा। यहां तक कि वह इंद्र की पत्नी इंद्राणी को पाने की भी कामना करने लगा, जिसे उसने संयोगवश देख लिया था। रानी अंगिरस बृहस्पति की शरण में गई, जो देवताओं के गुरु थे। उन्होंने उसे अभयदान दिया। इस हस्तक्षेप के विषय में सुनकर नहुष उत्तेजित हो उठा। परंतु देवताओं ने उसे शांत कर दिया और परस्त्री गमन के दोषों की ओर संकेत किया, परंतु उसने एक न मानी और कामासक्त नहुष अपनी बात पर अड़ा रहा कि इस संबंध में वह स्वयं इंद्र से घट कर नहीं था।'

'इंद्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ ऋषि के जीवित रहते हुए दुराचार किया था। 'तुमने उसे रोका क्यों नही? इंद्र ने अन्य अनेक पाशविक और अधार्मिक कृत्य किए हैं, उसने अनेक छल प्रपंच किए हैं। तब तुमने उसे क्यों नहीं रोका?' नहुष के कहने पर वे तब इंद्राणी को लाने गए। परंतु बृहस्पति ने उसे नहीं सोंपा। बृहस्पति के कहने पर इंद्राणी ने नहुष को कुछ मोहलत देने के लिए राजी कर लिया कि वह अपने पति की खोज-खबर कर ले। यह अनुरोध स्वीकार कर लिए जाने पर वह अपने पति की खोज पर निकल पड़ी और उपश्रुति (रात्रि की देवी और रहस्य उदघाटक) की सहायता से उसने हिमालय के उत्तर में जाकर इंद्र को ढूंढ लिया, जो वहां पर महासागर में स्थित एक महाद्वीप में स्थित एक झील में उग रहे कमल की नाल में अत्यंत सूक्ष्म रूप में छिपा हुआ बैठा था। उसने नहुष की कुत्सित मनोवृत्ति के विषय में इंद्र को बताया और उससे कहा कि वह अपनी शक्ति का उपयोग करे और उसकी रक्षा करे। नहुष की अधिक शक्ति को देखते हुए इंद्र ने तुरंत कोई कदम उठाने से मना कर दिया। परंतु उसने अपनी पत्नी को एक सुझाव दिया, जिसके अनुसार नहुष को उसके पद से नीचे गिराया जा सकता था। उसने उससे यह कहा कि वह नहुष से यह कहे कि वह उस पालकी पर चढ़कर आए जिसे ऋषि ढो रहे हों, तो वह उसके सम्मुख स्वयं को सहर्ष समर्पित कर देगी।'

'इंद्राणी ने नहुष से कहा –'हे देवताओं के राजा, मैं चाहती हूं कि आपका वाहन ऐसा हो जो सर्वथा नवीन हो जैसा न विष्णु के पास हो, न रुद्र के पास और न ही असुरों और राक्षसों के पास। हे देव! सभी प्रमुख ऋषि परस्पर मिलकर आपकी पालकी उठाएं। इससे मुझे सुख मिलेगा। नहुष ने गर्व में भरकर इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और अपनी प्रशंसा करते हुए उसने यह उत्तर दिया,– 'मैं इतना निर्बल नहीं हूं कि जो ऋषि मुनियों को अपनी पालकी का वाहक न बना सकूं। मैं महाशक्ति का अनन्य भक्त हूं, भूत, भविष्य और वर्तमान का स्वामी हूं। यदि मैं क्रुद्ध हो जाऊं तो पृथ्वी ठहर नहीं सकती। सब कुछ मुझ पर निर्भर है........ इसलिए हे देवी! तुम जो कहती हो उसे मैं पूरा करूंगा। सप्तऋषि और सभी ब्रह्मऋषि मुझे ढोएंगे। हे सुंदरी! मेरा प्रताप और मेरा ऐश्वर्य देखना।' तदनुसार उस दुरात्मा, अधर्मी, अत्याचारी, मदांध स्वेच्छाधारी ने ऋषियों को अपने वाहन में जोत दिया और चलने का आदेश दिया। इंद्राणी तब फिर बृहस्पति के पास गई। उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि नहुष अपनी क्रोधाग्नि से स्वयं भस्म हो जाएगा। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि मैं आततायी के इस विनाश और इंद्र के छिपने के स्थान का पता लगाने के लिए स्वयं एक यज्ञ करूंगा।

'इसके बाद इंद्र की खोज करने और उन्हें बृहस्पति के पास लाने के लिए अग्नि को भेजा गया। बृहस्पति ने इंद्र को आने पर बताया कि उसकी अनुपस्थिति में क्या-क्या हुआ। जिस समय इंद्र कुबेर, यम, सोम और वरुण के साथ नहुष के विनाश की बात सोच रहे थे, तभी अगस्त्य ऋषि आए और इंद्र को उसके प्रतिद्वंद्वी के पतन की सूचना देकर बधाई दी। उन्होंने इस प्रकार कहाः 'पापी नहुष को ढोते हुए जब देवता और शुभ्र ब्राह्मण ऋषिगण थकने लगे तो उन्होंने नहुष से एक कठिनाई हल करने के लिए कहाः वासव! आप सभी योद्धाओं में श्रेष्ठ हैं। क्या आप उन ब्राह्मण मंत्रों को श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं, जो पशुओं की बलि के समय पढ़े जाते हैं? 'नहीं' नहुष ने कहा। उसकी मति भ्रष्ट हो गई थी। ऋषियों ने प्रतिवाद किया और कहा – ' तुमने अधर्म में फंसकर धर्म-परायणता गंवा दी है। हम इन मंत्रों को श्रेष्ठ समझते हैं, जिनका हमारे पूर्व-महर्षि पाठ करते थे। तब (अगस्त्य ने आगे कहा) नहुष ने अधर्म से प्रेरित होकर मेरे सिर पर लात मारी। इसके परिणामस्वरूप राजा का गौरव समाप्त हो गया और उसका ऐश्वर्य विलीन हो गया। वह तुरंत घबरा उठा और भयाक्रांत हो उठा। मैने उससे कहा, अरे बेवकूफ, तूने उन ब्राह्मण मंत्रों का निरादर किया है जो प्राचीन ऋषियों द्वारा रचे गए हैं और जो ब्राह्मण ऋषियों के द्वारा प्रयुक्त होते रहे हैं। तूने मेरे सिर पर लात मारी है। तूने ब्राह्मण ऋषियों से चाकरी करवाई है और अपने ढोने के लिए ऋषियों से पालकी उठवाई है। तेरी कुवासना के फलस्वरूप तेरे सारे पुण्य नष्ट हो गए हैं। तेरा पतन हो जाए तू स्वर्ग से गिरकर पृथ्वी पर जा और सहस्त्रों वर्षों तक एक अजगर के रूप में जीवन बिता। जब यह अवधि समाप्त होगी, तू स्वर्ग में आ सकेगा।' इस प्रकार वह पापी देवताओं के राजा के

पद से च्युत हो गया। हे इंद्र! अब हमें सुखी होना चाहिए क्योंकि ब्राह्मणों का शत्रु नष्ट हो गया है। तुम तीनों लोकों की सत्ता संभालो। वहां के प्राणियों की रक्षा करो। हे शचीपति, अपनी इंद्रियों को वश में रख अपने शत्रुओं का नाश करो और ऋषियों का आर्शीवाद प्राप्त करो।'

चौथा उदाहरण निमि का है। निमि इक्ष्वाकु के पुत्रों में से एक था। ब्राह्मणों के साथ उसके संघर्ष का वर्णन *विष्णुपुराण* में मिलता है, जो इस प्रकार है:

निमि ने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से एक यज्ञ का पौरोहित्य करने का अनुरोध किया, जो एक सहस्त्र वर्ष तक चलने वाला था।[1] वशिष्ठ ने उत्तर दिया, मैंने पहले ही इंद्र को एक यज्ञ का पौरोहित्य करने का वचन दे रखा है, जो पांच सौ वर्ष तक चलेगा। राजा ने कुछ भी नहीं कहा। वशिष्ठ चले गए और उन्होंने यह अनुमान लगाया कि राजा ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। लौटने पर उन्होंने देखा कि निमि ने यज्ञार्थ गौतम (जो वशिष्ठ के समान ब्रह्मर्षि थे) और अन्य ऋषियों को नियुक्त कर रखा है। उनको राजा की ओर से इस बात की कोई सूचना नहीं दी गई थी यह देखकर उन्हें क्रोध हो आया। उन्होंने राजा को जो उस समय सोया हुआ था, शाप दिया कि उसका शरीरांत हो जाए। जब निमि जागे तब उन्हें पता चला कि उन्हें बिना किसी सूचना दिए शाप दिया गया है। उन्होंने वशिष्ठ को ऐसा ही शाप देकर उसका प्रतिकार किया और वह मृत्यु को प्राप्त हो गए। निमि के शरीर को सुरक्षित रख दिया गया। जिस यज्ञ को निमि ने शुरू किया था, उसकी समाप्ति के बाद देवताओं ने ऋषियों के अनुरोध पर यह इच्छा प्रकट की कि निमि को पुनरुज्जीवित कर दिया जाए। लेकिन निमि ने इसे अस्वीकार कर दिया। तब देवताओं ने निमि को उसकी इच्छा के अनुसार सभी जीवित प्राणियों की आंखों में प्रस्थापित कर दिया। इसी कारण सभी प्राणी अपनी आंखे खोलते और बंद करते हैं (निमिष का अर्थ पलक का उठना और गिरना होता है)।'

पांचवां प्रसंग वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच विवाद का है। वशिष्ठ ब्राह्मण पुरोहित थे और विश्वामित्र एक क्षत्रिय थे। उनकी हार्दिक इच्छा ब्रह्मर्षि बनने की थी। निम्न उद्धरण *रामायण* से है जिससे यह पता चलता है कि वह ब्रह्मर्षि क्यों बनना चाहते थे। 'कहते हैं कि प्राचीन काल में कुश नाम का एक राजा था।[2] वह प्रजापति का पुत्र था। कुश का एक पुत्र था, जिसका नाम कुशनाभ था। वह गाधि का पिता था। गाधि विश्वामित्र का पिता था। विश्वामित्र ने सहस्त्रों वर्ष पृथ्वी पर राज्य किया। एक बार जब वह पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर रहा था, वह वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में पहुंचे जहां अनेक संत, ऋषि, मुनि और भक्त सुखपूर्वक रहते थे। उसे पहले तो वहां ब्रह्मा के पुत्र का आतिथ्य ग्रहण

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 316
2. वही, खंड 1, पृ. 397-400

करने में संकोच हुआ, किंतु बाद में उसने अपने साथियों सहित उनका आतिथ्य ग्रहण कर लिया। विश्वामित्र उनकी विलक्षण गौ पर मुग्ध हो गया, जिसने सभी को भोजन में स्वादिष्ट व्यंजन उपलब्ध कराए थे। विश्वामित्र ने पहले तो यह कहा कि एक लाख गौ के बदले वह गौ उनकों सौंप दी जाए। उसने कहा कि यह गौ रत्न-स्वरूप है और चूंकि रत्न राजा की संपत्ति होती है अतः इस गौ पर उसका अधिकार है। जब इस कीमत को स्वीकार नहीं किया गया, तब राजा ने और भी कीमत देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन इसका कोई असर नहीं पड़ा। तब वह कृतघ्नतापूर्वक और बलपूर्वक बोला कि यह गौ उसे ले जाने दी जाए, वह बलपूर्वक इस गौ को ले जाएगा। जब वह ऐसा करने लगा, तब वह गौ उसके परिचारकों से अपने को छुड़ाकर अपने स्वामी के पास आ गई और उससे बोली–तुम मुझे त्याग रहे हो। उसने उत्तर दिया कि वह उसे नहीं त्याग रहा है, लेकिन राजा उससे कहीं अधिक शक्तिशाली है। गौ ने उत्तर दिया, ' लोग क्षत्रिय को बलशाली नहीं समझते । ब्राह्मण अधिक शक्तिशाली होते हैं। ब्राह्मणों का बल अतुलनीय है। विश्वामित्र यद्यपि बहुत शक्तिशाली हैं, लेकिन वह आप से अधिक शक्तिशाली नहीं हैं। आप में अपूर्व बल है। आप मुझे ले चलें। आपने ब्रह्मशक्ति से बल अर्जित किया है। मैं इस दुराचारी राजा के गर्व, शक्ति और प्रयत्नों को विफल कर दूंगी।' उसने रंभा-रंभा कर सैंकडों पहल्व पैदा कर दिए, जिन्होंने विश्वामित्र के समस्त दल का नाश कर दिया। ये पहल्व विश्वामित्र द्वारा एक-एक कर मौत के घाट उतार दिए गए। तब उसने शक और यवन पैदा किए, जो अत्यंत बलशाली और सशस्त्र भी थे। उन्होंने राजा की सेना का संहार कर दिया। राजा ने इन्हें भी पछाड़ दिया। तब उस गौ ने रंभा कर अपने शरीर से विभिन्न जातियों के योद्धा उत्पन्न कर दिए। इन योद्धाओं ने विश्वामित्र की सारी सेना, पदातिकों, हाथियों, अश्वों, रथों आदि को नष्ट कर दिया। तब राजा के सैंकड़ों पुत्र विभिन्न शस्त्र धारण कर क्रोध में भर वशिष्ठ की ओर झपटे, लेकिन वे सभी ऋषि के मुख से निकलने वाली आग में झुलस कर भस्म हो गए। विश्वामित्र इस प्रकार अब निस्सहाय हो गया। उसने अपने एक पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बना दिया और वह हिमालय् की ओर चला गया, जहां वह तप करने लग गया। उसने वहां भगवान शंकर के दर्शन किए। उन्होंने उसकी प्रार्थना पर उसे युद्धकला की विभिन्न शाखाओं-प्रशाखाओं की शिक्षा दी और दैवी अस्त्र प्रदान किए, जिनके बल पर उसने वशिष्ठ के आश्रम को उजाड़ डाला और वहां के निवासी भागने लगे। वशिष्ठ ने तब विश्वामित्र को चुनौती दी और उन्होंने अपने ब्रह्मदंड को उठा लिया। विश्वामित्र ने भी अपने आग्नेयास्त्र को उठा लिया और अपने शत्रु को ललकारा। वशिष्ठ ने उसे अपनी शक्ति के प्रदर्शन की चुनौती दी और कहा कि वह उसके गर्व को शीघ्र चूर्ण कर देंगे। वह बोले, 'क्षत्रिय के बल और ब्राह्मण के बल में यह तुलना कैसी ? नीच क्षत्रिय, मेरा ब्रह्मतेज देख।' तब गाधि के पुत्र के द्वारा फेंका गया आग्नेयास्त्र ब्राह्मण के दंड से परास्त हो गया, जैसे अग्नि जल से शांत हो जाती है। विश्वामित्र द्वारा तब बहुत से दैवी प्रक्षेपास्त्र, जैसे ब्रह्मपाश,

कालपाश, वरुणपाश और विष्णु चक्र तथा शिव का त्रिशूल अपने शत्रु पर फेंके गए। लेकिन ब्रह्मा के पुत्र ने इन सभी को अपनी प्रबल गदा के आघात से चूर्ण कर दिया। अंत में उस योद्धा ने ब्रह्मा का भयंकर अस्त्र फेंका, जिस पर सभी देवता स्तब्ध रह गए। यह अस्त्र भी ब्राह्मण ऋषि का कुछ न कर सका । वशिष्ठ ने अब रौद्र रूप धारण कर लिया था। उनके शरीर के हर छिद्र से अग्नि और धुआं निकल रहा था। उनके हाथ में ब्रह्मदंड निर्धूम अग्नि पिंड या यमराज का दंड जैसा लग रहा था। ऋषि-मुनियों द्वारा शांत किए जाने पर, जिन्होंने उनको अपने प्रतिद्वंद्वी से श्रेष्ठ घोषित किया, वशिष्ठ ने अपने क्रोध को शांत किया। विश्वामित्र तब कराहते हुए बोला, क्षत्रिय के बल को धिक्कार है। ब्राह्मण की शक्ति ही शक्ति है। ब्राह्मण के एक ही दंड द्वारा मेरे समस्त शस्त्रास्त्र नष्ट हो गए।

'इस प्रकार पराजित राजा के लिए इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता कि वह इस असहाय, हीन अवस्था में मौन धारण कर ले, या वह ब्रह्मत्व के पद को प्राप्त करने के लिए अपनी उन्नति का प्रयत्न करे। उसने अंतिम विकल्प को चुना। 'इस पराभव पर पूर्ण विचार कर मैं अपनी इंद्रियों और चित्त को अपने वश में कर कठोर तप करूंगा, जो मुझे ब्राह्मणत्व के पद पर ले जाएगा।' वह अत्यंत विषण्ण तथा संतप्त हो अपने शत्रु के प्रति घृणा का भाव भर आर्तनाद करता अपनी पत्नी के साथ दक्षिण की ओर चला आया और अपने संकल्प को पूरा करने लग गया। एक सहस्त्र वर्ष बाद ब्रह्मा प्रकट हुए और उन्होंने यह घोषणा की कि उसने राजर्षि का पद प्राप्त कर लिया है। उसकी कठोर तपस्या के फलस्वरूप लोग उसे राजर्षि के पद को प्राप्त हुआ समझने लगे।'

ऐसा प्रतीत होता है कि यह संघर्ष सुदास नाम के राजा के शासनकाल में शुरू हुआ था, जो इक्ष्वाकु वंश के थे। वशिष्ठ सुदास के कुल-पुरोहित थे। किसी कारण से, जो स्पष्ट नहीं, बताया जाता है कि सुदास ने विश्वामित्र को अपना कुल-पुरोहित नियुक्त कर दिया। इससे विश्वामित्र और वशिष्ठ के बीच बैर हो गया। एक बार यह बैर-भाव हो जाने पर दीर्घ समय तक चलता रहा।

दोनों के बीच इस संघर्ष ने विचित्र मोड़ ले लिया। यदि विश्वामित्र किसी विवाद में फंस जाते हैं तो वशिष्ठ बीच में आ कूदते और विश्वामित्र का विरोध करने लगते। वह एक-दूसरे को नीचा दिखाने जैसा कार्य था।

इस संबंध में पहली घटना सत्यव्रत से संबंधित है, जिसका एक नाम त्रिशंकु भी था। इस कथा का वर्णन *हरिवंश* में हुआ है, जो निम्नलिखित है:

'इस बीच वशिष्ठ राजा (सत्यव्रत के पिता) और अपने बीच यजमान और पुरोहित का संबंध होने के कारण अयोध्या नगर, राज्य और रनिवास का प्रबंध करने लग गए।[1]

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 377-378

लेकिन सत्यव्रत या तो मूर्खतावश या दैवी प्रेरणा वश वशिष्ठ से निरंतर अधिकाधिक क्रुद्ध रहने लगा, जिन्होंने उसके पिता को किसी (उचित) कारण से उसे राज्याधिकार से वंचित करने से नहीं रोका था। सत्यव्रत बोला–विवाह संस्कार तभी वैध होता है जब सप्तपदी हो जाए। जब मैने उस सुंदरी का हरण किया था, तब यह सप्तपदी नहीं हुई थी, लेकिन वशिष्ठ ने, जो धर्म के नियम जानते हैं, मेरी कोई सहायता नहीं की। इस प्रकार सत्यव्रत मन ही मन वशिष्ठ के प्रति क्रुद्ध रहने लगा, जिन्होंने एक दृष्टि से वही किया जो उचित था। न सत्यव्रत ने अपने पिता द्वारा आरोपित मौन व्रत को (उसके औचित्य को) समझा.... जब उन्होंने इस कठिन तप का समर्थन किया, तब उन्होंने यह समझा कि उन्होंने उसके परिवार की प्रतिष्ठा को बचा लिया है। पूज्य मुनि वशिष्ठ ने (जैसा कि ऊपर कहा गया है) उसके पिता को उसे राज्याधिकार से वंचिंत करने से नहीं रोका, बल्कि उन्होंने उसके पुत्र को राजा बनाने का निश्चय कर लिया। जब वह शक्तिमान राजकुमार बारह वर्षों की कठिन तपस्या पूरी कर रहा था और उसके पास खाने के लिए कुछ भी नहीं था, तभी उसकी दृष्टि वशिष्ठ की गौ पर पड़ी जो सभी प्रकार की मनोकामना पूरी करती है। उसने क्रोध, विभ्रम, दुर्बलता के वशीभूत और भूख से पीड़ित हो तथा दस कर्तव्यों की उपेक्षा कर उसकी हत्या कर दी...और उसका मांस अपने खानेकेलिए रखलिया तथा कुछ मांस विश्वामित्र के पुत्र को भी खाने के लिए दिया। यह सुनकर वशिष्ठ उस पर कुपित हो गए और उन्होंने शाप देकर उसका नाम त्रिशंकु रख दिया, क्योंकि उसने तीन प्रकार के पाप किए थे। जब विश्वामित्र अपने आश्रम में लौटे, तब वह उस जीविका को देखकर संतुष्ट हुआ जो उसकी पत्नी को मिलती थी और उन्होंने त्रिशंकु से वर मांगने के लिए कहा। जब ऐसा कहा गया, तब त्रिशंकु ने सदेह स्वर्ग जाने का वर मांगा। बारह वर्षों तक अनावृष्टि के सभी कष्ट समाप्त हो गए। मुनि (विश्वामित्र) ने त्रिशंकु को उसके पिता की राजगद्दी पर बिठाया और उसके निमित्त यज्ञ किया। पराक्रमी कौशिक ने देवताओं और वशिष्ठ[1] द्वारा प्रतिरोध किए जाने के बावजूद राजा को सदेह स्वर्ग में प्रतिष्ठित कर दिया।'

हरिवंश के अनुसार

'जो पापाचार किए गए थे, उनके परिणामस्वरूप इंद्र ने बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं की।[2] उस समय विश्वामित्र अपनी पत्नी और पुत्रों को छोड़कर समुद्र तट पर तप करने चले गए। उनकी पत्नी अभावों से पीड़ित हो अपने दूसरे पुत्र को एक सौ गांवों के बदले

1. जैसा कि हरिवंश में एक दूसरी जगह वर्णन आता है कि त्रिशंकु को उसके पिता ने कुवासना से प्रेरित हो कर एक नागरिक की पत्नी का हरण करने के अपराध में घर से बाहर कर दिया और वशिष्ठ ने इस निष्कासन को रोकने के लिए कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया। यह प्रसंग इसी ओर संकेत करता है।
2. म्यूर, खंड 1, पृ. 376-377

बेचना चाहती थी, जिससे वह अन्य पुत्रों का भरण-पोषण कर सके। लेकिन सत्यव्रत के द्वारा बीच में हस्तक्षेप करने पर ऐसा न हो सका। सत्यव्रत ने उसके पुत्र को छुड़ा लिया और उनके परिवार को जंगली पशुओं का मांस देकर उनकी रक्षा कीऔरअपने पिता की आज्ञा के अनुसार बारह वर्षों तक कठिन तप किया।

जिस दूसरी घटना में इन दोनों को एक-दूसरे का प्रतिद्वंद्वी दिखाया गया है, वह त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र की है। यह कथा *विष्णुपुराण* और *मार्कण्डेय* पुराण में आती है। यह कथा इस प्रकार है:

'एक बार जब राजा शिकार खेल रहा था तब उसने किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनी जो ऐसा लगता था कि वह (आवाज) उन विधाओं (सांइसेज) की थी, जिनको क्रोधोन्मत्त तपस्वी ऋषि विश्वामित्र उस रीति से अपने अधिकार में कर लेना चाहते थे, जिस रीति से किसी ने भी नहीं किया था। और इसलिए ये विधाएं उनके बल से भयभीत होकर विलाप कर रही थीं। निर्बल की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म होता है। इस कारण, और गणेश देवता से प्रेरित हो, जो उसके शरीर में प्रवेश कर गए थे। हरिचन्द्र ने कहा– 'कौन पापी है जो मुझे बल और तेजस्विता से दीप्तमान के रहते अपने वस्त्रों में आग लगा रहा है। शीघ्र ही उसके अंग-प्रत्यंग को मेरे धनुष से निकलने और समस्त आकाश को प्रदीप्त करने वाले बाण बेधकर रख देंगे और वह चिर निंद्रा में सो जाएगा।' यह चुनौती सुनकर विश्वामित्र उत्तेजित हो उठे। उनके क्रोध के परिणामस्वरूप सभी विधाएं मृत हो गईं, और हरिश्चन्द्र अश्वत्थ वृक्ष के पत्ते की तरह कांपते हुए विनयपूर्वक बोले कि मैंने तो राजा के रूप में केवल अपने कर्तव्य का पालन किया है जो इस प्रकार वर्णित है-श्रेष्ठ ब्राह्मणों और अल्प साधन वाले व्यक्तियों को दान देना, निर्बल की रक्षा करना और शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध करना। विश्वामित्र तब उससे ब्राह्मण के रूप में दान मांगते हैं और एक ही वस्तु के मिलने पर मनु संतुष्ट होने की बात करते हैं। राजा उन्हें वचन देता है कि वह अपनी इच्छानुसार इन वस्तुओं में से कोई भी वस्तु चुन लें–सुवर्ण, पुत्र, पत्नी, काया, राज्य, सौभाग्य। ऋषि पहले तो राजसूय यज्ञ के लिए दान मांगते हैं। राजा के स्वीकार करने और अन्य वस्तुएं भी दान करने का वचन देने पर ऋषि उनसे उनको, उनकी पत्नी व पुत्र को छोड़कर समस्त पृथ्वी पर स्थित राज्य मांगते हैं, जिसमें शेष सभी कुछ शामिल होगा। वह उनसे उनकी समस्त संपत्ति मांगते हैं जो उनके पास है या जहां भी वह जाएंगे तब उनके पास होगी। हरिश्चन्द्र सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। विश्वामित्र तब उनसे अपने समस्त आभूषण उतारने, वल्कल वस्त्र पहनने और पत्नी शैव्या तारामती तथा पुत्र सहित राज्य छोड़ने के लिए कहते हैं। जब वह जाने लगते हैं, तब ऋषि उनको रोकते हैं और उनसे दान की दक्षिणा मागते है जो उन्हें अभी तक नही मिली है। राजा उत्तर देते हैं कि उनके पास उनकी पत्नी और पुत्र

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 376-77

को छोड़कर कुछ भी नहीं है। विश्वामित्र राजा से कहते हैं कि उन्हें तो दक्षिणा देनी ही होगी। और ब्राह्मणों को दान देने की प्रतिज्ञा पूरी न करने पर उनका विनाश हो जाएगा। अभागा राजा इस प्रकार धमकाए जाने पर एक महीने की अवधि में दक्षिणा चुकता कर देने का वचन देता है और अपनी प्रजा को बिलखता छोड़कर अपनी पत्नी के साथ यात्रा पर निकल पड़ता है, जिसने ऐसे कष्ट पहले कभी नहीं भोगे थे। जब वह राज्य छोड़ते समय अपने पुरजनों के विलाप पर कुछ देर के लिए रुकता है, तब विश्वामित्र आते हैं और राजा के द्वारा देर करने और रुकने पर क्रुद्ध होकर अपने दंड से रानी पर प्रहार करते हैं और राजा अपनी पत्नी को उसका हाथ खींचते हुए आगे निकल जाते हैं। इसके बाद हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी और पुत्र के साथ यह सोच कर काशी आते हैं कि यह तो शिव की संपत्ति होने के कारण पावन नगरी है और यह किसी मर्त्य के अधिकार में नहीं होगी। यहां वह देखता है कि निष्ठुर विश्वामित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और अनुग्रह की अवधि के पूरी होने के पूर्व ही दक्षिणा देने का हठ करने के लिए तैयार खड़े हैं। इस विकट स्थिति में रानी शैब्या सिसकते हुए राजा से कहती है कि वह उसे बेच दें। यह प्रस्ताव सुनकर राजा मूर्छित हो जाता है। यह देखकर उसकी पत्नी भी मूर्छित हो जाती है। जब ये दोनों मूर्छित पड़े हुए होते हैं, तभी उनका भूख से पीड़ित पुत्र भी कष्ट से चिल्लाने लगता है, पिता जी! पिता जी! मुझे रोटी दो, मां! मां! कुछ भोजन दो। मैं भूख से व्याकुल हूं। मेरी जीभ भी सूख रही है। इसी बीच विश्वामित्र वहां वापस आते हैं और हरिश्चन्द्र के शरीर पर जल छिड़क कर उसे होश में लाते हैं तथा दक्षिणा देने के लिए पुनः पुनः हठ करते हैं। राजा फिर बेहोश हो जाता है, वह पुनः होश में लाया जाता है। ऋषि उसे धमकाते हैं और कहते है कि अगर वह सूर्यास्त होने के पूर्व अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करेगा तो वह उसे शाप दे देगें। अपनी पत्नी के बार-बार अनुरोध करने पर राजा उसे बेच देने के लिए राजी हो जाता है और कहता है, 'यदि मैं इतने निकृष्ट शब्द का उच्चारण कर सकता हूं तब क्रूर और अभागे क्या कुछ नहीं कर सकते।' वह फिर नगर में जाता है और अपने को कोसता हुआ अपनी रानी को दासी के रूप में बेचने के लिए बोली लगाता है। एक धनाढ्य वृद्ध ब्राह्मण उसकी बोली लगाता है तथा उसकी कीमत देकर अपने घर में दासी के रूप में रख लेता है। उसका पुत्र अपनी मां को ले जाता हुआ देखकर उसके पीछे-पीछे रोता और मां-मां चिल्लाता हुआ भागता है। जब वह अपनी मां के पास आता है, तब वृद्ध ब्राह्मण, जिसने उसकी मां को खरीदा है, उसे लात मारता है। लेकिन वह अपनी मां को आगे जाने नहीं देता और लगातार मां-मां चिल्लाता है। रानी तब ब्राह्मण से कहती हैं, 'दया कीजिए, मेरे स्वामी। इस बच्चे पर भी दया कीजिए। उसके बिना मैं आपके किसी काम न आ सकूंगी। मेरी दीनता पर दया कीजिए। मुझे मेरे पुत्र से अलग मत कीजिए, जैसे गौ को उसके बछड़े से अलग नहीं किया जाता है। ब्राह्मण मान जाता है और कहता है, 'यह धन लो और इस लड़के को मुझे सौंप दो। जब ब्राह्मण अपनी खरीदी हुई संपत्ति को लेकर दूर चला जाता है, तब

विश्वामित्र पुनः आते हैं और अपनी मांग दुहराते हैं। जब विपत्तिग्रस्त हरिश्चन्द्र उस थोड़े से धन को, जो उन्हें अपनी पत्नी और पुत्र को बेचने से प्राप्त हुआ था, विश्वामित्र को देते हैं, तब वह क्रुद्ध होकर कहते हैं– दुष्ट क्षत्रिय, यदि तुम यह समझते हो कि यह दक्षिणा मेरे उपयुक्त है, तब तुम मेरे कठोर तप, निष्कलंक ब्रह्मत्व, पुण्य, प्रताप और मेरे वेदाध्ययन की शुचिता का शीघ्र अनुभव करोगे। हरिश्चन्द्र उन्हें ओर दक्षिणा देने का वचन देते हैं और विश्वामित्र उन्हें उस दिन के शेष समय में चुकता करने की अनुमति देते हैं। भयभीत और त्रस्त राजा जब अपने को बेचना चाहता है, तब वीभत्स और क्रूर चांडाल के रूप में धर्म प्रकट होते हैं और जो भी कीमत राजा अपनी लगाता है, उस पर उसे खरीदने के लिए तैयार हो जाते हैं। हरिश्चन्द्र इस निकृष्ट कर्म को करने से इंकार कर देते हैं और कहते हैं कि इस दुर्भाग्य को स्वीकार करने की अपेक्षा, वह अपने उत्पीड़क के शाप की अग्नि में भस्म हो जाना श्रेयस्कर समझते हैं। विश्वामित्र पुनः आते हैं और कहते हैं कि वह चांडाल द्वारा कीमत के रूप में दिए जा रहे प्रचुर धन को क्यों नहीं स्वीकार कर लेते। जब हरिश्चन्द्र यह कारण बताते है कि वह सूर्यवंश की संतान है। तब विश्वामित्र उन्हें यह कहकर धमकाते हैं कि अगर वह अपने वचन को उक्त धनराशि स्वीकार कर पूरा नहीं करते, तब वह उन्हें शाप दे देगें। हरिश्चन्द्र अनुनय करते हैं कि उन्हें यह नीच कर्म करने के लिए बाध्य न किया जाए और अपने ऋण को चुकाने के लिए वह विश्वामित्र का दास बनने के लिए तैयार हैं। इस पर ऋषि कहते हैं– 'अगर तुम मेरे दास हो तब, मैं तुम्हें इसी रूप में एक लाख मुद्राओं के बदले चांडाल को बेचता हूं।'

'चांडाल सहर्ष यह धन चुकता कर देता है और दुखी हरिश्चन्द्र को अपने निवास स्थान पर ले जाता है। चांडाल उसे श्मशान जाकर कफन चुराने का काम करने के लिए कहता है। वह बताता है कि इससे उसे 2/6 भाग प्राप्त होगा जो उस (चांडाल) का होगा और 1/6 भाग राजा को मिलेगा। राजा ने इस भयानक क्षेत्र में नीच कर्म करते हुए बारह वर्ष व्यतीत किए, जो उसे सौ वर्षों के बराबर लगे। वह तब सो जाता है। उसे अपने जीवन के विषय में अनेक स्वप्न आए। जब वह जागा तब उसकी पत्नी अपने पुत्र का अंतिम संस्कार कराने आई, जो सर्पदंश से मर गया था। पहले तो पति-पत्नी ने एक-दूसरे को नहीं पहचाना, क्योंकि उनकी आकृति कष्ट सहते-सहते विकृत हो गई थी। हरिश्चन्द्र ने उसके विलाप से तुरंत पहचान लिया कि यह उसकी पत्नी ही है, जो दुर्भाग्य की मारी हुई है। वह बेहोश हो जाता है। रानी भी उसे पहचान लेती है, वह भी बहोश हो जाती है। जब उनकी मूर्छा भंग होती है, तब वे दोनों रोने लगते हैं। पिता अपने पुत्र की मृत्यु पर और रानी अपने पति की अधोगति पर रोती है। वह उसके गले से लिपट जाती और कहती है, ' मैं विभ्रम में हूं, क्या यह स्वप्न है या यथार्थ है? यदि यह यथार्थ है, तब उन्हें धर्म का बोध हो रहा है, जो इसका आचरण करते हैं।' हरिश्चन्द्र को अपने पुत्र की चिता में आग लगाने से पहले स्वामी के लिए शुल्क न लेने के लिए हिचक होती

है, लेकिन बाद में वह हर परिणाम को भुगतने और ऐसा करने का निश्चय कर लेता है और अपने को ढाढस दिलाता है कि 'यदि मैंने दान दिए हैं और ऋषि-मुनियों को मेरे यज्ञ-कर्म आदि से संतोष हैं, तब मैं स्वर्ग में अपने पुत्र और अपनी पत्नी से जाकर मिलूंगा।' रानी भी उसी प्रकार मरने का निर्णय कर लेती है। जब हरिश्चन्द्र अपने पुत्र को चिता पर रखकर भगवान श्री नारायण कृष्ण, परमात्मा का स्मरण और ध्यान कर रहे थे, तभी धर्म के आगे-आगे सभी देवतागण विश्वामित्र के साथ वहां उपस्थित हो गए। धर्म राजा को आवेश में कठोर कर्म करने से वर्जित करने लगे। इंद्र ने घोषणा की कि राजा, उसकी पत्नी और उसके पुत्र ने अपने सत्कर्म से स्वर्ग जीत लिया है। देवताओं ने आकाश से अमृत व पुष्पों की वर्षा की और राजा का पुत्र पुनः जीवित हो उठा तथा स्वस्थ हो गया।

'स्वर्गिक वस्त्र और मालाओं से आभूषित हो राजा और रानी ने अपने पुत्र को गले लगा लिया। हरिश्चन्द्र ने कहा कि जब तक मुझे अपने स्वामी चांडाल की अनुमति नहीं मिल जाती और उनको प्रचुर धन नहीं दे देता, तब तक मैं स्वर्ग नहीं जा सकता। धर्म तब राजा को यह रहस्य बताते हैं कि मैंने स्वयं ही चाण्डाल का स्वरूप धारण कर रखा था। तब राजा पुनः कहता है कि मैं तब तक यहां से विदा नहीं ले सकता, जब तक मेरी प्रजा को मेरे साथ स्वर्ग चलने की अनुमति नहीं होती, क्योंकि मेरे पुण्य में उसका भी अंश है, चाहे वह एक दिन के लिए ही चले। इसे इंद्र स्वीकार करते हैं। विश्वामित्र राजा के पुत्र रोहिताश्व को राज-सिंहासन पर आसीन कराते हैं और तब हरिश्चन्द्र, उनके साथी और अनुयायी एक साथ स्वर्गारोहण करते हैं। इस चरमोत्कर्ष के बाद जब वशिष्ठ ने यह वृतांत गंगा के जल में बारह वर्षों तक निवास करने के बाद सुना, जो हरिश्चन्द्र के कुल पुरोहित थे, तो वह उस क्लेश के कारण बहुत क्रुद्ध हुए जो ऐसे श्रेष्ठ राजा को भोगना पड़ा, जिसके गुणों और ईश्वर तथा ब्राह्मण भक्ति की वह प्रशंसा करते थे। उन्होंने कहा कि जब विश्वामित्र ने उनके अपने सौ पुत्रों का वध किया था, तब उन्हें इतना क्रोध नहीं आया था। उन्होंने विश्वामित्र को बगुला बन जाने का शाप दे दिया। उन्होने कहा कि वह दुष्ट व्यक्ति, ब्राह्मणद्रोही, मेरे शाप से बुद्धिमान जीवों के समाज से बहिष्कृत हो जाए तथा अपनी बुद्धि खोकर वक बन जाए। विश्वामित्र ने इसके बदले वशिष्ठ को शाप दे दिया और उन्हें अरि नामक पक्षी बना दिया। इन नए रूपों में दोनों में भयंकर युद्ध हुंआ। अरि आकाश में दो सहस्त्र योजन अर्थात–18,000 मील ऊपर उड़ सकता था और वक 3,090 योजन तक ही उड़ सकता था। जब अरि ने अपने पंजों से आक्रमण किया, तब वक ने भी अपने प्रतिद्वंद्वी पर वैसे ही आक्रमण किया। इन दोनों के डैनों की फड़फड़ाहट से भयंकर चक्रावातआए, पर्वत चूर्ण होने लगे, सारी पृथ्वी कांपने लगी, समुद्र में जल तट के ऊपर की तरफ चढ़ने लगा, पृथ्वी टूटकर पाताल की ओर जाने लगी। इन दोनों के युद्ध से अनेक जीवों की मृत्यु हो गई। इस भयंकर अव्यवस्था को

देखकर वहां सभी देवताओं सहित ब्रह्मा उपस्थित होते हैं और दोनों प्रतिद्वंद्वियों को युद्ध बंद करने का आदेश देते हैं। इस आदेश पर दोनों को भंयकर क्रोध हो उठता है, लेकिन ब्रह्मा उनको उनके मूल रूप में प्रतिष्ठित कर देते है और परस्पर शांति रखने की सलाह देते हैं।

एक अन्य प्रकरण जिसमें ये एक-दूसरे के विरोधी दिखाए गए हैं, अयोध्या के राजा अम्बरीष से संबंधित है। कथा इस प्रकार है:[1]

अम्बरीष एक यज्ञ करा रहा था तो इंद्र बलि पात्र को उठा ले गया। पुरोहित ने कहा कि यह एक अमंगल है जो प्रकट करता है कि राजा का शासन कुशासन-ग्रस्त है और इसके लिए बहुत बड़े प्रायश्चित की जरूरत है, और वह प्रायश्चित है, मानव की बलि। काफी तलाश के बाद राजर्षि अम्बरीष एक ब्रह्मर्षि ऋचीक के पास गए, जो भृगु के वंशज थे। अम्बरीष ने ऋचीक से कहा कि वह बलि के लिए अपना एक पुत्र बेच दे, जिसके लिए उन्हें एक लाख गौएं दी जाएगी। ऋचीक ने उत्तर दिया कि वह अपने ज्येष्ठ पुत्र को नही बेचेंगे, उनकी पत्नी ने कहा कि वह छोटे बेटे को नहीं बेचेगी। उसने कहा कि बड़े पुत्र पर सामान्यतः पिता का दुलार होता है और छोटे पर माता का। तब मझले पुत्र शुनःशेप ने कहा कि इस प्रकार तो उसी को बेचा जाना है और राजा से कहा कि वह उसे ले चलें। एक लाख गाय, एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएं, ढेर सारे आभूषण शुनःशेप के बदले में दिए गए। जब वे पुष्कर होकर जा रहे थे, तो अपने मामा विश्वामित्र से मिले जो अन्य ऋषियों के साथ वहां यज्ञ कर रहे थे। शुनःशेप उनकी गोदी में गिर पड़ा और उसने अपने मामा से अपनी विवशता का वर्णन करते हुए दया की भीख मांगी।

'विश्वामित्र ने उसे सांत्वना दी और अपने पुत्रों पर इस बात के लिए दबाव डाला कि उनमें से कोई एक शुनःशेप के स्थान पर बलि चढ़ जाए। इस प्रस्ताव पर मधुसयंद और राजर्षि के दूसरे पुत्र सहमत न हुए। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि आप यह कैसे कह सकते हैं कि आपका अपना पुत्र बलि चढ़ जाए और उसके स्थान पर किसी अन्य को बचा लिया जाए? हम इसे ठीक नहीं समझते। यह इसी प्रकार हुआ जैसे कि कोई अपना ही मांस खाए। राजर्षि को इस पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपने पुत्रों को शाप दिया कि वे अत्यंत नीच जातियों में पैदा हों, जैसे वशिष्ठ के पुत्र उत्पन्न हुए हैं और वे हजारों वर्षों तक कुत्ते का मांस खाएं। तब उन्होंने शुनःशेप से कहा कि जब तुम रस्सियों से बंध जाओ, तुम्हारे गले में लाल डोरी पड़ी हो, जब तुम्हें सुगंधित लेप चढ़ाए जाएं और जब विष्णु के बलि स्तंभ के निकट ले जाया जाए, तब तुम अग्नि से प्रार्थना करना और अम्बरीष के यज्ञ में इन दो श्लोकों को पढ़ना। तुमको सफलता मिलेगी।

---

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 405-407

'जब शुनःशेप को ये दो श्लोक प्राप्त हो गए, तब वह तुरंत अंबरीष के पास गया ओर उससे तुरंत यज्ञ-स्थल के लिए चलने का आग्रह किया। जब उसे यज्ञ के खंभे से बांधा गया और उसे लाल वस्त्र पहनाए गए तो उसने इंद्र और उसके अनुज विष्णु की स्तुतियों में वे श्लोक पढ़े। सहस्राक्ष इंद्र इन गुप्त श्लोकों से प्रसन्न हुआ और उसने शुनःशेप को चिरंजीवी रहने का वरदान दिया।'

अंतिम प्रकरण, जिसमें इन दोनों की प्रतिद्वंद्विता का संकेत मिलता है, वह राजा कल्माषपाद से संबंधित हैं। इसका वर्णन *महाभारत* के आदिपर्व में इस प्रकार किया गया है:

'कल्माषपाद इक्ष्वाकु वंश का राजा था। विश्वामित्र उसके राजपुरोहित बनना चाहते थे, लेकिन राजा वशिष्ठ को चाहता था। एक बार जब राजा मृगया पर गया और उसने बहुत से पशु-पक्षियों का शिकार कर लिया, तब वह बहुत थक गया। उसे भूख और प्यास लग आई। उसने वशिष्ठ के सौ पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र शक्ति को रास्ते से हट जाने को कहा। ऋषि ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'वह रास्ता मेरा है। हे राजन, सभी लोग कहते हैं कि राजा को चाहिए कि वह ब्राह्मण के लिए रास्ता खाली कर दे। यह अनादि नियम है।' दोनों में से कोई पक्ष दूसरे को रास्ता देने को तैयार नहीं था। विवाद बढ़ता गया। तब राजा ने मुनि पर अंकुश चला दिया। मुनि ने जैसा कि अन्य मुनि क्रुद्ध होने पर कहते हैं, राजा को नरभक्षी हो जाने का शाप दे डाला। उस समय कल्माषपाद के पौरोहित्य पद को लेकर विश्वामित्र और वशिष्ठ के बीच शत्रुता चल रही थी। विश्वामित्र राजा के पीछे-पीछे चल रहे थे। जब राजा शक्ति के साथ विवाद में उलझा हुआ था तब, वह उसके पास गया। जब उसने अपने प्रतिद्वंद्वी के पुत्र को देखा तो वह छिप गया और मौके की तलाश में उनके पास से निकल गया । राजा शक्ति की अनुनय-विनय करने लगा, लेकिन विश्वामित्र उनमें समझौता नहीं होने देना चाहता था। अतः उसने एक राक्षस को आदेश दिया कि वह राजा के शरीर में प्रवेश कर ले। ब्रह्मर्षि के पाप और विश्वामित्र का आदेश, दोनों के प्रभाव से राक्षस ने आदेश का पालन किया। विश्वामित्र ने देखा कि उसका उद्देश्य पूरा हो गया, तब वहां से चल दिया। रास्ते में राजा को एक भूखा ब्राह्मण मिला। उसने अपने रसोइए के हाथों (जो कुछ अन्य वस्तुएं नहीं ला सकता था) खाने के लिए नरमांस भेजा। उसने उसे वैसा ही शाप दिया, जैसा शक्ति ने दिया था। अब तो शाप द्विगुणित हो गया। राजा के खा लेने के कारण शक्ति उसका पहला शिकार बना। विश्वामित्र की प्रेरणा से वशिष्ठ के अन्य पुत्रों को भी यही भोगना था। विश्वामित्र ने शक्ति को मरा हुआ देखकर राक्षस को वशिष्ठ के अन्य पुत्रों की ओर भी प्रेरित किया। इस प्रकार उस भयकर राक्षस ने उन पुत्रों का भी भक्षण कर लिया, जो शक्ति से छोटे थे, जैसे कोई सिंह वन में छोटे छोटे पशुओं का भक्षण कर लेते हैं। विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्रों के किए गए विनाश को सुनकर वशिष्ठ ने धैर्य बनाए रखा, जैसे विशाल पर्वत

को पृथ्वी धारण कर रखे हो। उन्होंने अपने ही नाश का ध्यान किया, लेकिन कौशिकों को विनष्ट करने की कल्पना नहीं की। उस ब्रह्मर्षि ने मेरू की चोटी से छलांग लगा ली। लेकिन वह चट्टान पर ऐसे गिरे, जैसे कोई रुई के ढेर पर गिरता है। उन्होंने जब यह देखा कि मैं मरने से बच गया हूं, तब वह जंगल में जल रही विशाल अग्नि में प्रवेश कर गए। यह आग भयंकर रूप से जल रही थी, लेकिन यह भी उन्हें नहीं जला सकी और पूरी तरह से ठंडी पड़ गई। तब वे अपने गले में चट्टान को बांधकर समुद्र में कूद पड़े, लेकिन वहां तरंगों ने उन्हें सूखे तट पर लाकर फेंक दिया। वह तब अपनी कुटिया में चले आए। वहां उन्होंने उसे सूनी और निर्जन पाया। तब पुनः दुख से भर गए और बाहर निकल आए। उन्होंने देखा कि वर्षा होने से विपाशा में बाढ़ आ गई है और वह अपने तट पर बहुत से पेड़ों को उखाड़ती बह रही है। उन्होने उसमें डूबने की सोची और अपने हाथ-पैरों को बांध उसमें डुबकी लगा ली। लेकिन नदी ने उनके सारे बंधन तोड़ दिए और सूखे तट पर ला दिया। इस नदी का नाम उन्हीं का दिया हुआ है। उन्होनें इसके बाद शतद्रु (सतलुज) नदी को देखा और उन्होंने उसमें छलांग लगा ली। नदी में घड़ियाल आदि थे। यह ब्रह्मर्षि को, जो अग्नि के समान दीप्तमान थे, देखकर सैकड़ों दिशाओं में बहने लगी, जिससे इसका यह नाम पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप यह पुनः सूखे तट पर आ गए। उन्होंने जब यह देखा कि वह अपने को नहीं मार सकते, तब वह पुनः अपने आश्रम को लौट गए।'

'इन दोनों में एक दूसरे के प्रति व्यापक शत्रुता के ये कुछ विशेष उदाहरण हैं। यह शत्रुता बड़ी भीषण थी। यहां तक कि विश्वामित्र वशिष्ठ की हत्या तक के लिए तैयार थे। इसका वर्णन *महाभारत* के शल्य पर्व में मिलता हैं। महाभारतकार लिखता है:

'विश्वामित्र और ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के बीच अपनी-अपनी तपस्या में भी भारी शत्रुता थी।[1] वशिष्ठ का एक स्थानुतीर्थ मे विशाल आश्रम था। उसके पूर्व में विश्वामित्र का आश्रम था। दोनों तपस्वी प्रतिदिन एक-दूसरे से बढ़ चढ़कर आहुतियां देते थे। विश्वामित्र वशिष्ठ के प्रभुत्व को देखकर बहुत अधिक ईर्ष्या रखते थे। वह गहरे सोच में डूब गए। उनका विचार इस प्रकार था: 'सरस्वती नदी अपनी धारा के साथ वशिष्ठ ऋषि को, जो जप करने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं , मेरे पास बहाकर ले आएगी, जब यह श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे पास आएगा, तो मैं निश्चित रूप से उसका वध कर दूंगा।' ऐसा संकल्प करके विश्वामित्र ने जब अपनी आंखें खोलीं, तो वे क्रोध से जल उठीं और उन्होंने नदियों की देवी का आह्वान किया। वह देवी सरस्वती उनके पास आई तो वह बड़ी आशंकित हुई, क्योंकि वह उनकी शक्ति से अवगत थी। कांपती हुई वह हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ी हो गई , जैसे कि किसी स्त्री का पति उसके सामने मार डाला गया हो। वह बड़ी दुखी

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 420-422

थी। उन्होंने उनसे पूछा कि मैं आपकी क्या सेवा करूं । उत्तेजित मुनि बोले–' वशिष्ठ को तुरंत मेरे पास लाओ, मैं उसका वध करूंगा। कमल लोचनी देवी ने हाथ जोड़कर भय से ऐसे कांपने लगी जैसे तेज हवा में लताऐं कांपती हैं, किंतु विश्वामित्र ने यद्यपि उनकी दशा देख ली थी, फिर भी अपना आदेश दोहराया। सरस्वती जानती थी कि उनका संकल्प कितना पापमय है और वशिष्ठ की शक्ति भी अपरिमेय है। वह कांपती हुई वशिष्ठ की ओर चली गई। वह सोच रही थी कि उसे कहीं दोनों मुनियों का शाप न झेलना पड़े। जो-कुछ विश्वामित्र ने कहा था, उसने वह वशिष्ठ को बताया। उसका लटका हुआ, पीला और चिंतित चेहरा देखकर वशिष्ठ ने कहा, ' हे नदियों की देवी! जो तुझे कहना है, कह। मुझे निस्संकोच विश्वामित्र के पास ले चल। कहीं वह तुझे शाप न दे दे। दयालु ऋषि की वाणी सुनकर सरस्वती ने सोचा कि वह किस प्रकार बुद्धिमानी का कार्य कर सकती है। उसने मन में विचार किया कि वशिष्ठ मेरे प्रति सदैव दयालु रहे हैं। मुझे इनका कल्याण करना चाहिए। फिर उन्हें विश्वामित्र का ख्याल आया, जो उसके किनारे पर यज्ञ कर रहे थे। उसने सोचा कि यह एक अच्छा अवसर है। अपनी तेज धार से सरस्वती ने अपने किनारे को काट डाला। इस प्रकार मित्र और वरुण (वशिष्ठ के पुत्र) को बहाकर नीचे की ओर ले गई। और जब वह उसे इस तरह बहा कर ले जा रही थी, तो ऋषि ने नदी की पूजार्चना की। हे सरस्वती! तू ब्रह्मकुंड से निकली है और अपनी श्रेष्ठ धाराओं के रूप में सारे संसार मे विचरती है। तू आकाश में निवास करती है। तू बादलों के माध्यम से वर्षा करती है। तू ही सभी नदियों का स्वरूप है। तुझमें पालक शक्ति, मेधा और प्रकाश है, तू वाणी है, तू स्वाहा है, ये सारा संसार तेरा दास है, तू सभी प्राणियों की आश्रयदाता है।

' वशिष्ठ को सरस्वती द्वारा निकट लाते देख विश्वामित्र शस्त्र तलाश करने लगे, जिससे वे वशिष्ठ का वध कर सकें। उनके क्रोध को देखते हुए कि कहीं ब्रह्महत्या न हो जाए, यह सोच कर सरस्वती वशिष्ठ को पूर्वी दिशा में दूर ले गई। इस तरह दोनों ऋषियों के आदेश का पालन तो हो गया, लेकिन विश्वामित्र की मनोकामना पूर्ण नहीं हुई। जब विश्वामित्र ने देखा कि वशिष्ठ इस प्रकार बचा लिए गए हैं, तो वे क्रोध से अधीर हो उठे और नदी से इस प्रकार बोले– 'हे नदियों की देवी! तूने मुझे चकमा दिया, जा तेरा पानी रक्त में बदल जाएगा, जो केवल राक्षसों के उपयोग में ही आ सकेगा। सरस्वती को जब ऐसा शाप मिला, तो एक वर्ष तक उसमें रक्तिम जल बहता रहा। राक्षसों के लिए उसकी धारा तीर्थस्थल बन गई, विशेष रूप से वह स्थान जहां से वशिष्ठ को बहाया गया था। राक्षस इस रक्त को नाचते-गाते पीने लगे, जैसे कि उन्हें स्वर्ग मिल गया हो। कुछ समय पश्चात जब वहां कुछ ऋषि आए, तो वे रक्तिम जल को देखकर भयभीत हो गए, जिसे राक्षस उपयोग में ला रहे थे। तब उन्होने इस नदी की रक्षा का विचार किया।'

ये उदाहरण कुछ ऐसे हैं, जो एक विशिष्ट ब्राह्मण और एक विशिष्ट क्षत्रिय के बीच व्यक्तिगत संघर्ष के हैं। आगे अब जो उदाहरण दिए जा रहे हैं, वे एक ओर ब्राह्मणों और दूसरी ओर क्षत्रियों के बीच वर्ग या जातिगत संघर्ष से संबंधित है। ये केवल संघर्ष ही नहीं थे, और न इन्हें जातीय संघर्ष जैसा कहना ही ठीक है। ये संघर्ष वर्ग-संघर्ष थे, जो एक वर्ग ने दूसरे वर्ग की जड़ें खोदने के लिए किए थे। *महाभारत* में ऐसे दो वर्ग संघर्षों का वर्णन है। पहला संघर्ष हैहय क्षत्रियों और भार्गव ब्राह्मणों के बीच का है। यह संघर्ष हैह्य राजा 'कृतीवर्य' के समय में हुआ। *महाभारत* के आदि पर्व में इसका वर्णन इस प्रकार है:

एक राजा था, जिसका नाम कृतवीर्य था।[1] इस राजा का पुरोहित भृगु था, जो वेदों में पारंगत था। राजा की कृपा से उसके राजपुरोहित के पास प्रचुर धन-धान्य हो गया। जब वह दिवंगत हो गया तो उसके वंशजों को धन की आवश्यकता पड़ी। वे धन मांगने भृगुओं के पास गए, जिनकी संपन्नता से वे अवगत थे। कुछ भृगुओं ने अपनी संपत्ति जमीन में गाड़ रखी थी। क्षत्रियों के डर के कारण ब्राह्मणों को दान दे दी थी। एक बार ऐसा हुआ कि जब कोई क्षत्रिय जमीन खोद रहा था, तो उसे एक भृगु के घर में गड़ा धन प्राप्त हुआ। उस क्षत्रिय ने दूसरे क्षत्रियों को एकत्र किया और उन सबने उस कोष को देखा। इस पर वे उत्तेजित हो गए, और उन्होंने सभी भृगुओं का वध कर दिया, जिनको वे तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। क्षत्रियों ने ब्राह्मणों के गर्भस्थ शिशुओं का भी वध कर दिया। विधवाएं हिमालय पर्वत की ओर भाग गईं। उनमें से एक ने अपने अजन्मे शिशु को अपनी जंघा में छिपा लिया। एक ब्राह्मण ने जब क्षत्रियों को इसकी सूचना दी तो वे उसे मारने पहुंच गए, किंतु वह अपनी माता की जंघा से बाहर निकल आया और अपनी दीप्ति से आक्रमणकारियों को अंधा बना दिया। कुछ काल तक पहाड़ों में भटकने के बाद उन्होंने उस बालक की माता से विनयपूर्वक अपनी दृष्टि लौटाने का अनुरोध किया। किंतु उसने कहा कि वे उसके विलक्षण शिशु और्व के पास जाएं, जिसमें सभी वेदों और छहों वेदांग समाहित हैं, क्योंकि उसी ने अपने संबंधियों के वध के प्रतिकार स्वरूप उनको निर्वस्त्र किया और उनकी दृष्टि छीनी हैं और वही उनकी दृष्टि उन्हें लौटा सकता है। तदनुसार वे उसके पास गए और उनकी दृष्टि उन्हें वापस मिल गई। और्व ने सारी सृष्टि के विनाश के लिए तपस्या की, क्योंकि वह भृगुओं के विनाश का प्रतिरोध लेना चाहता था। इसलिए वह तपस्या करने लगा। इस पर देवताओं, असुरों, मानवों में खलबली मच गई। तब उसके पितृगण प्रकट हुए और उन्होंने उससे कहा कि वह अपना संकल्प त्याग दें, क्योंकि वे क्षत्रियों से कोई प्रतिशोध नहीं लेना चाहते हैं। इसका कारण भृगुओं की निर्बलता भी नहीं है कि वे क्षत्रियों के द्वारा किए गए हत्याकांड

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 448-49

को भूल जाएं। उन्होंने कहा कि जब हम अपनी वृद्धावस्था से ऊब चुके थे तो हम स्वंय यह चाहते थे कि क्षत्रिय हमारी हत्या कर दें। किसी भृगु के घर में जो धन छिपा था, वह भी घृणा उत्पन्न करने के लिए जान-बूझकर छिपाया गया था, ताकि क्षत्रिय भड़क उठें। हम सब स्वर्ग में आना चाहते थे। हमें धन से कोई लेना-देना नही था। उसके पितरों ने कहा कि उन्होंने यह उपाय सोचा, क्योंकि वे आत्म-हत्या का पाप नही करना चाहते थे। और अंत में उन्होंने और्व से कहा कि वह अपना क्रोध त्याग दे और उस पाप का भागी न बने जो वह सोच रहा है। उन्होंने कहा–हे पुत्र! क्षत्रियों का विनाश न कर, और न ही सातों लोकों को नष्ट कर । अपने क्रोध का दमन कर जो तेरी तपस्या को निष्फल कर देगा। किंतु और्व ने उत्तर दिया कि वह अपने वचन को व्यर्थ नहीं जाने देगा। जब तक उसका क्रोध किसी का विनाश नहीं करेगा तो वह स्वयं ही अपने क्रोध की चपेट में आ जाएगा और उसने न्याय, औचित्य तथा कर्तव्य की साक्षी देकर अपने पितरों की दयाशीलता का प्रतिवाद किया। किंतु उसके पितरों ने उसे समझा लिया और कहा कि वह अपने क्रोध की अग्नि को समुद्र में छोड़ दे , जहां वह जल में जंतुओं का विनाश कर देगी और इस प्रकार उसके वचन की पूर्ति भी जो जाएगी।'

दूसरा वर्ग युद्ध, और जो विनाशकारी भी था, भार्गव ब्राह्मणों ने हैहय क्षत्रियों के विरुद्ध छेड़ा था। इसमें भार्गव ब्राह्मणों के नेता परशुराम थे। परशुराम के जन्म की कथा *विष्णु पुराण* में इस प्रकार आती है:

गाधि की पुत्री सत्यदती का विवाह ऋचीक नाम के एक वृद्ध ब्राह्मण से हुआ, जो भृगु वंश का था।[1] इसका उद्देश्य यह था कि उससे जो पुत्र उत्पन्न हो, उसमें ब्राह्मण के गुण विद्यमान हों। ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिए चावल, जौ, दाल, घी और दूध से युक्त चारू नामक भोजन तैयार कराया। इसी प्रकार का पदार्थ उसने अपनी पत्नी की माता के लिए भी तैयार कराया। उनका विचार था कि वह भी एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करें, जिसमें योद्धा के गुण विद्यमान हों। किंतु सत्यवती की मां ने अपनी पुत्री को समझा-बुझा कर उसका भोजन अपने भोजन के साथ बदल दिया। जब उसके पति घर लौटे तो अपनी पत्नी से यह जानकर बहुत कुपित हुए।'

मैं उसके कथन को मूल रूप से नीचे उद्धृत कर रहा हूं:

'हे पापी स्त्री, तूने यह क्या कर दिया। मुझे तेरा शरीर भयानक प्रतीत होता हैं। अवश्य ही तूने अपनी माता के लिए तैयार किए चारू भोजन को खाया है। यह ठीक नहीं हुआ । मैंने उसमें वीरों के सभी गुण, संपूर्ण पराक्रम, शूरता और बल की संमत्ति का आरोपण किया था। तुम्हारे भोजन में शांति, ज्ञान, तितिक्षा आदि संपूर्ण ब्राह्मणोचित गुणों का समावेश किया था। उनका विपरीत उपयोग करने से तेरे जो पुत्र होगा, वह

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 349-350

अति भयानक, युद्धप्रिय और हत्या-कर्म में प्रवृत्त क्षत्रियों जैसा आचरण करने वाला होगा और तुम्हारी माता के शांतिप्रिय और ब्राह्मणों का आचरण करने वाला पुत्र होगा। यह सुनते ही सत्यवती ने अपने पति के चरण पकड़ लिए और कहा–भगवन्, मैंने अज्ञान से ही ऐसा किया है। मुझ पर दया कीजिए और ऐसा कीजिए कि मेरा पुत्र ऐसा नही हो, जैसा कि आपने वर्णन किया है। भले ही वैसे गुण वाला पौत्र हो जाए। इस पर मुनि ने कहा ऐसा ही होगा।

'तदन्तर उसने जमदग्नि को जन्म दिया और उसकी माता ने विश्वामित्र को उत्पन्न किया। सत्यवती कौशिकी नाम की नदी हो गई। जमदग्नि ने इक्ष्वाकु वंश की रेणु की कन्या रेणुका से विवाह किया। उस से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम परशुराम था।'

महाभारत के वन पर्व में परशुराम के परिवार का और भी ब्यौरा मिलता है, जो निम्नलिखित है:

'जमदग्नि और सत्यवती के पांच पुत्र थे।[1] उनमें सबसे छोटा पुत्र परशुराम था, जो उग्र स्वभाव का था। उसने अपने पिता की आज्ञा से अपनी माता का वध कर दिया था, जो कुवासना में ग्रस्त होने के कारण पवित्र नहीं रह गई थी। उसके चार भाइयों ने अपनी मां का वध करना अस्वीकार कर दिया था और इस कारण अपने पिता के शाप के कारण उनका तेज नष्ट हो गया था। किंतु परशुराम के आग्रह पर उसके पिता ने उनकी माता को पुनः जीवित कर दिया और उसके भाइयों को उनकी शक्ति लौटा दी थी। परशुराम मातृहत्या के पाप से मुक्त हो जाता है और अपने पिता से चिरायु होने का वरदान प्राप्त करता है।'

दूसरा जाति-युद्ध राजा कार्त्तवीर्य के पुत्र हैहय वंशीय राजा अर्जुन के शासन काल में हुआ था। इस संघर्ष का आरंभ ब्राह्मणों से हुआ, जो अपने कुछ विशेषाधिकारों और शक्तियों पर बल दे रहे थे और अर्जुन तिरस्कारयुक्त शब्दों द्वारा उनकी भर्त्सना कर रहा था। *महाभारत* के अनुशासन पर्व में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है:

'तब सूर्य के समान चमकते हुए तेजस्वी रथ पर चढ़कर अपने पराक्रम के नशे में उन्मत्त होकर वह बोला – वीरता, साहस, ख्याति, शूरता, शक्ति और बल की दृष्टि से कौन मेरी बराबरी कर सकता है?[2] जब वह अपनी बात कह चुका तब उसे संबोधित करते हुए आकाशवाणी हुई, हे मूर्ख, क्या तू नहीं जानता कि ब्राह्मण क्षत्रिय से उत्तम होता है। क्षत्रिय अपनी प्रजा पर जो शासन करता है, वह ब्राह्मण की सहायता से करता है। अर्जुन ने उत्तर दिया, यदि मैं चाहूं तो सृष्टि कर सकता हूं और यदि में क्रुद्ध हो जाऊं तो सभी जीवों का विनाश कर दूं। कोई ब्राह्मण कार्य, विचार या शब्द में मुझसे श्रेष्ठ नही है। पहला सिद्धांत यह है कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और दूसरा यह कि क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं।

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 450
2. म्यूर खंड 1, पृष्ठ-454

तुमने इन दोनों के बारे में बताया, लेकिन इन दोनों में अंतर है। ब्राह्मण क्षत्रियों पर निर्भर होते हैं और क्षत्रिय ब्राह्मणों पर निर्भर नहीं होते। ब्राह्मण क्षत्रियों पर अत्याचार करते हैं और इसके लिए वेदों का सहारा लेते हैं। प्रजा की रक्षा, अर्थात न्याय क्षत्रिय का धर्म है। ब्राह्मणों को उनसे जीविका प्राप्त होती है, तब ब्राह्मण क्षत्रियों से श्रेष्ठ क्यों कर हो सकते है? मैं आज से उन सभी ब्राह्मणों को अपने अधीन रखूंगा जो भिक्षा पर निर्भर करते हैं और जो अपने को श्रेष्ठ समझते हैं। चूंकि गायत्री ने आकाश में सत्य कहा है अतः मैं उन अनुशासनहीन ब्राह्मणों को अपने वश में करूंगा, जो मृग की खाल पहनते हैं। उन तीनों लोकों में कोई भी, चाहे वह कोई देव हो या मानव, मुझे राजसिंहासन से च्युत नहीं कर सकता, जिसके कारण मैं प्रत्येक ब्राह्मण से श्रेष्ठ हूं।'

'यह सुनकर वायु देवता प्रकट हुए और अर्जुन से बोलेः 'तुम इस दूषित भावना को त्याग दो और ब्राह्मणों का आदर करो।[1] यदि तुम इनका अहित करोगे तो तुम्हारे राज्य में विप्लव मच जाएगा। वे तुम्हें पराजित कर देंगे, वे तुम्हें अपने अधीन कर लेंगे। वे तुम्हें तुम्हारे राज्य से निष्कासित कर देंगे। कृतवीर्य ने पूछाः आप कौन है? वायु ने उत्तर दियाः 'मैं देवताओं का दूत वायु हूं। मैं तुम्हें तुम्हारे हित की बात बता रहा हूँ।' कृतवीर्य ने कहाः 'हे वायुदेव, ऐसी बात बता रहे हो यह कह कर आपने ब्राह्मणों के प्रति भक्ति और अनुराग का परिचय दिया है। यह बताइए कि क्या ब्राह्मण पृथ्वी पर उत्पन्न किसी भी जीव के समान है? या यह बताइए कि यह परम श्रेष्ठ ब्राह्मण क्या वायु जैसा है? अग्नि जल के समान है, या सूर्य, या आकाश जैसा है?

इसके पश्चात वायु ने अनेक उदाहरण दिए, जिनमें ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बताई गई थी। इस पर अर्जुन ने ब्राहमणों के प्रति अपना बैर-भाव त्याग दिया और वह उनका मित्र बन गया। अनुशासन पर्व में उसने कहा :–

'मैं सदा ब्राह्मणों के हित में उनके साथ में रहता हूं।[2] मैं ब्राह्मणों के लिए समर्पित हूं। और सदा उनकी इच्छाओं के अनुरूप कार्य करता हूं। और यह दत्तात्रेय (एक ब्राह्मण) की ही अनुकंपा है कि मुझे यह शक्ति और ख्याति प्राप्त हुई है और मैं धर्म-परायण हूं।'

दूसरे चरण में परशुराम का उल्लेख है, जिन्होंने क्षत्रियों का संहार किया था। शांति पर्व में इस प्रकरण का वर्णन इस प्रकार है :

'अर्जुन एक विनम्र और धर्मपरायण और दयालु स्वभाव का राजा था। इसलिए उसने किसी को कष्ट देने की बात कभी नहीं सोची।[3] परंतु उसके पुत्र हठधर्मी और अत्याचारी थे, इस कारण वे उसकी मृत्यु का कारण बन गए। वे अपने पिता को बताए बिना जमदग्नि

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 454
2. म्यूर, खंड 1, पृ. 473
3. वही, पृ. 454-455

का बछड़ा ले आए। इसके परिणामस्वरूप परशुराम ने अर्जुन पर आक्रमण किया और उसकी भुजाएं काट दीं। उसके पुत्र ने जमदग्नि का वध कर दिया। अपने पिता का वध किए जाने पर परशुराम उत्तेजित हो उठे और यह प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी से क्षत्रियों का विनाश कर दूंगा। उसने अपने शस्त्र उठाए और अर्जुन के सभी पुत्र-पौत्रों तथा हैहय वंश के हजारों क्षत्रियों का विनाश कर दिया और पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दिया। इस तरह जब वे क्षत्रियों का विनाश कर चुके, तब उनके मन में करुणा उत्पन्न हुई और वे वन चले गए। कई हजार वर्षों के बीत जाने के बाद इस वीर का, जो स्वभावतः क्रोधी था, रैभ्य के पुत्र और विश्वामित्र के पौत्र ने भरी सभा में इन शब्दों द्वारा उपहास उड़ाया– 'क्या ये प्रतर्दन तथा अन्य व्यक्ति वीर नहीं हैं, जो ययाति के नगर के यज्ञ में उपस्थित हुए हैं? क्या ये क्षत्रिय नहीं हैं? आप अपने संकल्प को पूर्ण करने में असफल रहे और इस सभा में व्यर्थ ही गर्व करते हैं। आप क्षत्रियों के डर के कारण पर्वत पर चले गए,जब कि पृथ्वी पर क्षत्रियों के सैकड़ों वंशज शासन करते आ रहे हैं।' यह शब्द सुनकर परशुराम ने अपने हथियार उठाए। जो सैकड़ों क्षत्रिय बच गए थे, वे अब शक्तिशाली राजा बन गए थे। परशुराम ने इन सभी का उनकी संतति सहित वध किया और अनगिनत शिशु, जो गर्भस्थ थे, उनको भी मार डाला। फिर भी कुछ शिशुओं को उनकी माताओं ने बचा लिया।'

जो पाठक क्षत्रियों के बाद का इतिहास पढ़ने में रुचि रखते हैं, वे आदि पर्व का यह अंश देखें:

'इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर देने वाले जमदग्नि के पुत्र महेन्द्र पर्वत पर, जो सबसे उत्तम पर्वत था, तपस्या में लीन हो गए।[1] जब उन्होंने धरती को क्षत्रिय-विहीन कर दिया था तो क्षत्रियों की विधवाएं ब्राह्मणों के पास आईं और उनसे संतति की याचना की। तब धर्म परायण ब्राह्मणों ने निष्काम भाव से उन स्त्रियों के साथ सहवास किया जो बाद में गर्भवती हो गईं और उन्होंने वीर क्षत्रिय लड़के-लड़कियों को जन्म दिया, जिससे क्षत्रिय जाति आगे भी रहे। इस प्रकार जो क्षत्रिय उत्पन्न हुए, वे क्षत्रिय स्त्रियों से ब्राह्मणों के जाए हैं, उनकी संख्या बढ़ती गई। फिर ब्राह्मणों से हीन चार वर्णन बने।'

इन दोनों जातियों के बीच इस शत्रुता में एक दूसरे को चुनौतियां दी जाती रहीं, जिससे यह प्रकट होता है कि दोनों पक्षों में क्रोधाग्नि जल रही थी। राजा निमि द्वारा ब्राह्मणों को अपने रथ में जोतना और घोड़ों की तरह उनसे अपना रथ खिंचवाना, इससे यह प्रकट होता है कि क्षत्रिय ब्राह्मणों का निरादर करने के लिए कितने कृतसंकल्प थे। कृतवीर्य अर्जुन ने ब्राह्मणों को जो चुनौती दी, उससे पता चलता है कि वह ब्राह्मणों

1. म्यूर, खंड 1, पृ. 451-452

को नीचा दिखाना चाहते थे। ब्राह्मण भी ऐसी चुनौती देने में नहीं चूकते थे। उन्होंने भी क्षत्रियों को चुनौतियां दी कि वे ब्राह्मणों को उत्तेजित न करें। यह ब्राह्मणों के दूत वायु के उस कथन से स्पष्ट है जो उन्होंने अर्जुन कृतवीर्य से संवाद के समय तब कहा था, जब उसने ब्राह्मणों को चुनौती दी थी। वायु ने अर्जुन को बताया कि अत्रि ने समुद्र में मूत्र त्याग कर उसका जल किस प्रकार खारा कर दिया था, किस प्रकार दंडकों को ब्राह्मणों ने राज सिंहासन से उतार दिया था। अकेले ब्राह्मण और्व ने किस प्रकार तालजंघ के सभी क्षत्रियों का संहार कर दिया था। ब्राह्मणों की मारक शक्ति क्षत्रियों से ही नहीं, बल्कि देवों से भी श्रेष्ठ है। वायु अर्जुन से देवताओं पर ब्राह्मणों की विजय का वर्णन करते हैं। उन्होंने बताया कि वरुण किस प्रकार सोम की पुत्री भद्रा और अंगिरस कुल के उतथ्य ब्राहमण की पत्नी का हरण कर ले गया। किस प्रकार उतथ्य ने अपने शाप से धरती पर अकाल ला दिया था और किस प्रकार वरुण को उतथ्य के सामने झुकना पड़ा तथा उसकी पत्नी लौटानी पड़ी। वायु ने बताया कि किस प्रकार एक बार देवों पर असुरों ने विजय प्राप्त कर ली, असुरों और दानवों ने मिलकर देवों को सभी आहुति कर्म से वंचित कर दिया, उनके गौरव को विनष्ट कर दिया, तब वे ब्राह्मण अगस्त्य के पास गए और उन्होने संरक्षण देने कि लिए प्रार्थना की, और किस प्रकार अगस्त्य ऋषि ने दानवों को स्वर्ग और पृथ्वी से निकाल कर दक्षिण की ओर खदेड़ दिया और देवताओं को उनका राज्य वापस दिलाया। वायु ने अर्जुन को यह भी बताया कि एक बार जब आदित्यगण यज्ञ कर रहे थे और उनका खल नामक दानवों के साथ संघर्ष हुआ जो हजारों की संख्या में उनका वध करने आए थे। किस प्रकार आदित्यगण इन्द्र के पास पहुंचे, और इन्द्र ने दैत्यों के साथ स्वयं युद्ध किया किंतु फिर भी आदित्यों को विजय नहीं दिला सके तो वे ब्रह्मऋषि वशिष्ठ से सहायता लेने गए, तब किस प्रकार वशिष्ठ ने आदित्यों पर दया करके दानवों को जीवित भस्म किया और आदित्यों की रक्षा की। उन्होंने अर्जुन को फिर बताया कि किस प्रकार दानवों ने देवों के साथ युद्ध किया और किस प्रकार भयंकर अंधेरे में घेरकर देवों का वध किया। किस प्रकार देवों ने ब्राह्मण अत्रि से कहा कि वह चंद्रमा का रूप धारण करके सूर्य का प्रकाश उत्पन्न कर दें। अत्रि ने ऐसा ही किया और दानवों से देवों की रक्षा की। ब्राह्मणों की प्रभुता के बारे में अंतिम प्रकरण वायु ने अर्जुन को बताया कि किस प्रकार च्यवन ऋषि ने इंद्र को इस बात के लिए विवश किया कि अश्विनी पुत्रों को समकक्ष स्वीकार किया जाए और समानता के प्रतीक के रूप में उनके साथ सोमपान किया जाए। और जब इन्द्र ने ऐसा करने से इंकार कर दिया तो उसे धरती और आकाश दोनों स्थानों से बहिष्कृत होना पड़ा। और इस प्रकार उन्होंने मद नाम के राक्षस की रचना की और देवों को इंद्र सहित उसके मुख में धकेल दिया। फिर किस प्रकार च्यवन ने इंद्र को यह स्वीकार करने कि लिए विवश किया कि अश्विनी समान पद के अधिकारी हैं, उनके साथ इंद्र को सोमपान कराया और अंत में किस प्रकार इंद्र ने च्यवन के सम्मुख आत्मसमर्पण किया।

वायु ने ब्राह्मणों की प्रभुता के बारे में केवल यही नहीं कहा, उन्होंने और भी काफी, कुछ कहा। प्रत्येक बार उसने अर्जुन को एक उदाहरण बताया, जिसमें ब्राह्मणों की महत्ता का वर्णन था, और अंत में अर्जुन से एक प्रश्न पूछा 'क्या तुम बता सकते हो कि कौन क्षत्रिय उस ब्राह्मण से श्रेष्ठ है, जिसका प्रसंग दिया गया है? सोचकर ऐसे क्षत्रिय का नाम बताओ जो श्रेष्ठता में उनके समान हो। मुझे बताओ कि कोई क्षत्रिय क्या अत्रि की समानता कर सकता है।'

ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच यह वर्ग-संघर्ष युगों-युगों तक चलता रहा होगा। इस पृष्ठभूमि में इस वर्ग-युद्ध के प्रति मनु का दृष्टिकोण बहुत ही विचित्र लगता है।

मनुस्मृति के निम्नलिखित श्लोकों पर विचार कीजिए:

4.135. जो समृद्धिशाली होना चाहता है उसे चाहिए कि वह क्षत्रिय, सांप और विद्वान ब्राह्मण की कभी भी उपेक्षा न करे, चाहे वह कितने ही निर्बल क्यों न हों।

4.136. क्योंकि ये तीनों अनाहत होने पर उसे पूर्ण रूप से विनष्ट कर देंगे, अतः बुद्धिमान मनुष्य को चहिए कि वह कभी इनकी उपेक्षा न करे।

10.322 ब्राह्मण के बिना क्षत्रिय संपन्न नहीं हो सकता, क्षत्रिय के बिना ब्राह्मण समृद्ध नहीं होता। ब्राह्मण और क्षत्रियों का निकट संबंध है। इसलिए वे इस लोक और पर-लोक में समृद्ध होते हैं।

यहां यह स्पष्ट है कि मनु इन दोनों के बीच मेल करा देना चाहता है। मनु किसके विरुद्ध ब्राह्मणों और क्षत्रियों को आपस में मिलाना चाहता है? क्या यह प्रयास इसलिए था कि ये दोनों पिछली शत्रुता को भूल जाएं या इसलिए था कि किसी अनुचित उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये किसी षड्यंत्र में परस्पर मिल जाएं। वे क्या परिस्थितियां थी, जिन्होंने मनु को इस बात के लिए विवश किया कि वे ब्राह्मणो को यह सलाह दें कि वे क्षत्रियों के साथ युगों पुराने अपने वैमनस्य को भूल जांए और सहायता के लिए आगे आएं। ये परिस्थितियां बहुत ही कठिन और अनिवार्य रही होंगी, क्योंकि दोनों वर्गों के बीच मैत्री का कोई आधार नहीं बचा था। ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की जी भर के निंदा की। उनकी प्रतिष्ठा को खुलेआम यह कह कर चोट पहुंचाई कि क्षत्रिय ब्राह्मणों की अवैध संतान हैं, जो उन्होने क्षत्रिय विधवाओं से जन्मी है। क्षत्रियों की भावनाओं को आघात पहुंचाने के लिए ब्राह्मणों ने क्षत्रियों से यह भी कहलवा लिया कि वीरता में भी ब्राह्मण क्षत्रियों से श्रेष्ठ हैं, जैसा कि भीष्म से कहलाया गया :

ब्राह्मणों की शक्ति देवताओं का भी संहार कर सकती है जो इस संसार के स्वामी कहे जाते हैं।[1] कोई ब्राह्मण चाहे चन्दन का तिलक लगाता हो, अथवा कीचड़ में सन गया हो, चाहे वह भोजन करता हो, या व्रत रखता हो, रेशमी टाट लपेट कर रहता हो

---

1 म्यूर खंड-1 पृष्ठ-473-474

या मृग चर्म धारण किए हुए हो, वह सांसारिक को दैविक और दैविक को सांसारिक बना सकता है, क्रुद्ध होने पर वह नयी सृष्टि कर सकता है। ब्राह्मण देवाधिदेव हैं और कारणों के कारण हैं । अज्ञानी ब्राह्मण भी देवता है और ज्ञानी ब्राह्मण तो देवताओं से बढ़ कर हैं, जैसे विशाल महासागर है।

इन सब तथ्यों से यह बड़ा ही रहस्यपूर्ण लगता है कि ब्राह्मणों का अचानक पतन, क्षत्रियों को जीतने के लिए उनका यह असफल प्रयास क्यों कर हुआ? इस रहस्य का कारण क्या हो सकता है?

12

शूद्र और प्रतिक्रांति

डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को मूल अंग्रेजी की पांडुलिपि में फुलस्केप टाइप किए हुए इक्कीस पृष्ठ प्राप्त हुए थे। प्रथम पृष्ठ पर शीर्षक 'शूद्रांज एंड दि काउंटर रिवोल्यूशन' (शूद्र और प्रतिक्रांति) दिया गया है और आगे के पृष्ठों पर सामग्री इसी शीर्षक से शुरू होती है। ये सभी पृष्ठ बिखरे और एक-दूसरे से नत्थी किए हुए मिले हैं। दुर्भाग्य से केवल इक्कीस पृष्ठ उपलब्ध हैं और बाद के पृष्ठ लगता है कि खो गए हैं–संपादक

शूद्रों की स्थिति के विषय में मनु के नियम अध्ययन के लिए एक बहुत ही रोचक विषय हैं। इसका सीधा-सा कारण यह है कि इन नियमों ने हिंदुओं की मनोवृत्ति को ढाला और शूद्रों के प्रति उनके दृष्टिकोण को निर्धारित किया, जो इस समय और हर युग में सबसे अधिक संख्या में हिंदू समाज के अंग रहे हैं। इन नियमों को नीचे अलग-अलग शीर्षकों में वर्णित किया गया है, जिससे पाठकों को उस स्थिति की पूरी-पूरी जानकारी मिल सके, जो मनु ने शूद्रों के समाज को दी है।

4.61. मनु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थों को आदेश देता है– ' वे उस देश में न रहें जहां शासक शूद्र हों'। शूद्र सम्मानित व्यक्ति नहीं समझा जाए, क्योंकि मनु नियम बताता है :

9.24. ब्राह्मण कभी भी यज्ञ (करने) के लिए, अर्थात धार्मिक कार्यों के लिए शूद्र से कभी भी धन नहीं मानेगा। शूद्रों के साथ वैवाहिक संबंध प्रतिबंधित थे। शेष तीन वर्णों में से किसी भी वर्ण की नारी के साथ विवाह निषिद्ध था। उच्च वर्ण की नारी के साथ शूद्र को कोई भी संबंध रखने का अधिकार नहीं था और उसके साथ यदि कोई शूद्र जार कर्म करता है, तो इस अपराध के लिए मनु ने उसे मृत्यु दंड का प्रावधन किया है।

8.374. जो शूद्र उच्च वर्ण की किसी रक्षित[1] या अरक्षित नारी के साथ संभोग करता है , उसे निम्नलिखित रीति के आधार पर दंड दिया जाएगा :

यदि वह अरक्षित थी तब उसका अपराधी अंग कटवा दिया जाए। यदि वह सुरक्षित थी तब उसे दंड दिया जाए और उसकी संपत्ति अधिग्रहीत कर ली जाए।

पद के संबंध में मनु निर्धारित करता है:

8.20. कोई भी ब्राह्मण जो जन्म से ब्राह्मण है, अर्थात जिसने न तो वेदों का अध्ययन किया है और न वेदों द्वारा अपेक्षित कोई कर्म किया है, वह राजा के अनुरोध पर उसके लिए धर्म का निर्वचन कर सकता है, अर्थात न्यायाधीश के रूप में कार्य कर सकता है, लेकिन शूद्र यह कभी भी नहीं कर सकता, चाहे (वह कितना ही विद्वान क्यों न हो)।

8.21. जिस राज्य में उसका राजा दर्शक की भांति केवल देखता रहता है और उसकी उपस्थिति में शूद्र न्याय का विचार करता है, वह राज्य उसी प्रकार अधोगति को प्राप्त होता है, जिस प्रकार गाय दलदल में नीचे की ओर धंस जाती है।

8.272 अगर कोई शूद्र अहंकारवश ब्राह्मणों को धर्मोपदेश देने की धृष्टता करता है, तो राजा को चाहिए कि वे उसके मुंह और कान में खौलता तेल डलवा दे।

शूद्रों द्वारा ज्ञान ग्रहण करने के संबंध में मनु की व्यवस्थाएं निम्न प्रकार हैं:

3.156. जो शूद्र शिष्यों को अध्ययन कराता है और जिस किसी का शिक्षक शूद्र होता है, वह शूद्र को नियुक्त करने के कारण अयोग्य हो जाते हैं।

4.99. उसे शूद्र की उपस्थिति में......... वेदों का कभी भी पाठ नहीं करना चाहिए।

वेदाध्ययन करने पर शूद्रों को दंडित करने के संबंध में मनु के परवर्ती लेखक तो और भी कठोर हैं। उदाहरण के लिए, कात्यायन का कहना है कि यदि कोई शूद्र वेद वाक्य सुन ले अथवा वेद के एक शब्द का भी उच्चारण करे, तो राजा उसकी जिह्वा को दो भागों में चिरवा दे और उसके कान में पिघला हुआ गरम सीसा डलवाए।

शूद्रों द्वारा संपत्ति रखे जाने के संबंध में मनु की व्यवस्था निम्नांकित है:

10.129. (धनोपार्जन में) समर्थ होने पर भी शूद्र को धन का संग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि नीच पुरुष, जिसने धन का संग्रह कर लिया है, अंहकारी हो जाता है।

8.417. यदि ब्राह्मण अपनी जीविकोपार्जन के लिए कष्ट में है तो वह निस्संकोच

1. रक्षित का अर्थ है किसी संबंधी के संरक्षण, में, और अरक्षित का अर्थ है, अकेले रहना।

अपने शूद्र की संपत्ति को अधिग्रहीत कर लें

शूद्र केवल एक ही व्यवसाय कर सकता है। मनु के अटल नियमों में यह भी एक अटल नियम है। मनु कहता है:

1.91. ब्रह्मा ने शूद्रों के लिए एक ही व्यवसाय नियत किया है–विनम्रतापूर्वक तीन अन्य वर्गों (अर्थात) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना।

10.121. अगर शूद्र (ब्राह्मणों की सेवा कर जीवन निर्वाह करने में असमर्थ है) जीविका निर्वाह करना चाहता है, तब वह क्षत्रिय की सेवा करे, या वह धनी वैश्य की सेवा कर अपनी जीविका के लिए धन अर्जन करे।

10.122. लेकिन वह (शूद्र) ब्राह्मणों की सेवा या तो स्वर्ग प्राप्त करने या दोनों के लिए (इस जीवन और अगले जीवन के लिए) करें, क्योंकि जो ब्राह्मण का सेवक कहलाता है, वह अपनी सभी अभिलाषाएं पूरी कर लेता है।

10.123. ब्राह्मणों की सेवा करना ही शूद्रों का एक उत्तम कर्म कहा गया है, क्योंकि इसके अतिरिक्त वह जो-कुछ करता है, उसका उसे कोई फल नहीं मिलता।

मनु इस बात के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता कि शूद्रों से दास कर्म कराने के लिए किसी करार का सहारा लिया जाए। यदि कोई शूद्र सेवा करने से इंकार करता है, तो उससे बलपूर्वक कार्य कराने का विधान है, जो इस प्रकार है:

8.413. प्रत्येक ब्राह्मण शूद्र को दास-कर्म करने के लिए बाध्य कर सकता है, चाहे उसने उसे खरीद लिया हो अथवा नहीं, क्योंकि शूद्रों की सृष्टि ब्राह्मणों का दास बनने के लिए ही की है।

10.124. ब्राह्मणों को चाहिए कि वे अपने परिवार (की संपत्ति) में से उसे (शूद्र को) उसकी योग्यता, उसके परिश्रम तथा उन व्यक्तियों की संख्या के अनुसार, जिनका उसे (शूद्र को) भरण-पोषण करना है, उचित जीविका निश्चित करे।

10.125 उसे (शूद्र को) बचा खुचा अन्न, घर-गृहस्थी का पुराना सामान दिया जाए।

मनु का कहना है कि शूद्र को चाहिए कि वह अन्य के साथ बातचीत और व्यवहार में विनम्र रहे।

8.270. जो शूद्र द्विज को दारुण वचन कह उसकी निंदा करता है, उसकी जिह्वा को काटकर फेंक देना चाहिए, क्योंकि वह जन्म से नीच है।

8.271. यदि वह (शूद्र) इनके (द्विजों के) नाम और जाति का इन द्विजातियों के नाम तथा जाति का उच्चारण कर कटु वचन अपमानजनक रीति से उच्चारण करता है

तब उसके मुख में दहकती हुई लोहे की दस अंगुल लंबी गरम कील घुसेड़ दी जाए।

मनु इतने से ही संतुष्ट नहीं है। वह कहता है कि शूद्र का यह निम्न स्तर इस वर्ण के व्यक्तियों के नामों और उपनामों में परिलक्षित हो। मनु कहता है:

2.31 ब्राह्मण के नाम का प्रथम अंश मंगल सूचक, क्षत्रिय का शक्ति सूचक, वैश्य का धन सूचक, और शूद्र का कुछ ऐसा हो जो तिरस्कार सूचक हो ।

2.32. ब्राह्मण के नाम का द्वितीयांश सुख-शांति सूचक, क्षत्रिय का रक्षा सूचक वैश्य का सौभाग्य सूचक और शूद्र का दास भाव सूचक होगा।

मनु से पहले शूद्रों की क्या स्थिति थी? मनु शूद्रों का निरूपण इस प्रकार करता है, जैसे वे बाहर से आने वाले अनार्य थे। किंतु उन्हें वे सामाजिक अथवा धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं होने चाहिए। दुर्भाग्य तो यह है कि लोगों के मन में यह धारणा घर कर गई है कि शूद्र अनार्य थे। किंतु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि प्राचीन आर्य साहित्य में इस संबंध में रंच मात्र भी कोई आधार प्राप्त नहीं होता।

जब हम आर्यों के धार्मिक ग्रंथों को पढ़ते है, तब हमें उनमें विभिन्न समुदायों और वर्गों का नामोल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम आर्यों का उल्लेख मिलता है, जिनमें चार वर्ग कहे गये हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनके अतिरिक्त और इनसे भिन्न थे (1) असुर, (2) सुर अथवा देव, (3) यक्ष, (4) गंधर्व, (5) किन्नर, (6) चारण, (7) अश्विनी, और (8) निषाद।

निषाद जंगल के निवासी थे और आदिम और असंस्कृत थे। गंधर्व, यक्ष, किन्नर, चारण और अश्विनी वर्ग के समुदाय थे। असुर शब्द प्रजातीय नाम है, जो विभिन्न जनजातियों के लिए दिया गया। ये जन-जातियां अपने-अपने विशिष्ट नामों से पुकारी जाती हैं, जैसे दैत्य, दानव, दस्यु, कलंज, कलेय, कालिन, नाग, निवात—कवच, पुलोम, पिशाच और राक्षस। हम यह नहीं कह सकते कि सुर और देव भी असुर की भांति विभिन्न जन-जातियों के नाम थे। हम केवल देव समुदायों के प्रमुख देवों को जानते हैं। इनमें से जो अधिक प्रसिद्ध हैं, वे हैं– ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य, इंद्र, वरुण, और सोम आदि ।

इन जातियों, अर्थात आर्यों, असुरों और देवों के और इनके बीच परस्पर संबंध के बारे में अनेक विलक्षण मान्यताएं मुख्यतः सायणाचार्य के भाष्य की भ्रांतिपूर्ण व्याख्या के कारण ज्ञानवान व्यक्तियों तक के मन में भी बैठ गई हैं। यह विश्वास किया जाता है कि असुर मानव नहीं थे। उन्हें भूत-पिशाच समझा गया है, जो आर्यों को रात होने पर सताया करते थे। सुर अथवा देव प्रकृति की शक्तियों के काव्यात्मक प्रतीक कहे गए, आर्यों के संबंध में यह धारणा है कि वे गोरे रंग के, नुकीली नाक वाले, गौर वर्ण के मनुष्य थे और उसमें इसका बहुत अभिमान था। दस्युओं के बारे में

कहा गया है कि शूद्र का दूसरा नाम दस्यु है। यह भी कहा गया है कि शूद्र भी भारत के आदि निवासी थे। इनका रंग काला और नाक चपटी होती थी। जब आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया तो उन्होंने इन्हें पराजित कर दिया और इन्हें अपना दास बना लिया और दासता के चिह्न के रूप में इन्हें ' दस्यु' नाम दिया। कहा जाता है कि ' दस्यु' शब्द दास शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है, गुलाम।[1]

ये सारी धारणाएं निराधार हैं। असुर और सुर, दोनों आर्यों के समान मनुष्य थे। असुर और सुर, दोनों के पिता कश्यप थे। कथा है कि दक्ष प्रजापति की साठ कन्याएं थी, जिनमें से तेरह कन्याओं का विवाह कश्यप के साथ हुआ था। कश्यप की तेरह पत्नियों में से एक दिति और दूसरी थी, अदिति। जो दिति से उत्पन्न हुए, वे दैत्य अथवा असुर कहलाए और जिनका जन्म अदिति से हुआ, वे सुर अथवा देव कहलाए। इन दोनों के बीच बहुत दिनों तक पृथ्वी पर आधिपत्य के लिए भीषण युद्ध हुआ। इसमें संदेह नहीं कि यह एक पौराणिक कथा है। बेशक, यह पौराणिक कथा है, लेकिन यह भी एक इतिहास है और पौराणिक इतिहास अतिशयोक्ति में कहा गया इतिहास ही होता है।

आर्य कोई प्रजाति नहीं थी। आर्य कुछ व्यक्तियों का एक समूह था। उनको आपस में बांधे रखने का सूत्र एक विशिष्ट संस्कृति को बनाए रखने में उनका स्वार्थ था, जिसे आर्य संस्कृति कहा जाता है। जो भी व्यक्ति आर्य संस्कृति को स्वीकार कर लेता , वह आर्य कहलाता था। चूंकि यह कोई प्रजाति नहीं थी, अतः इसके लिए वर्ण और आकृति का कोई मापदंड नही था, जिसे आर्य कहा जा सकता। आर्यों में काले रंग और चपटी नाक वाला कोई वर्ग ऐसा नहीं था, जो अपने आपको उनसे भिन्न कहता हो।[2]

आर्यों और दस्युओं में विभाजन और परस्पर वैर वर्ण के प्रति पूर्वाग्रह के कारण रहा यह धारणा वर्ग और अनास्, इन दो शब्दों के गलत अर्थ लगाए गए जाने के कारण पैदा हुई, जिनका प्रयोग दस्युओं के प्रसंग में किया गया। 'वर्ण' शब्द का अर्थ रंग और अनास् का अर्थ बिना नाक वाला लगाया गया। ये दोनों अर्थ गलत हैं। वर्ण का अर्थ जाति और अनास् को यदि संधि-विच्छेद करें, अर्थात् अन+आस पढें तो इसका अर्थ होगा, मुख या आकृति रहित। यह कहना कि आर्यों में वर्ण के प्रति पूर्वाग्रह था जिसके कारण इनकी पृथक सामाजिक स्थिति बनी, कोरी बकवास होगी। अगर कोई ऐसे लोग थे जिनमें वर्ण के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं था, तो वह आर्य थे और यह इसलिए था कि इनका कोई प्रमुख वर्ण नहीं था, जिसके आधार पर वे अपने को अलग-अलग रखते ।

यह कहना गलत है कि दस्यु प्रजाति के कारण अनार्य थे। दस्यु भारत की आर्यों

---

1. निरुक्त के अनुसार दास का अर्थ है नष्ट करना।
2. इस संपूर्ण विषय पर पुरुषार्थ खंड, पृ. 13 पर श्री सातवलेकर का सिद्धांतपूर्ण विवेचन देखिए।

से पूर्व की कोई आदिम जाति भी नहीं थी। दस्यु आर्य संप्रदाय के सदस्य थे किंतु उन्हें कुछ ऐसी धारणाओं और आस्थाओं का विरोध करने के कारण आर्य संज्ञा से रहित कर दिया गया जो आर्य संस्कृति का आवश्यक अंग थी। इस धारणा का कि दस्यु प्रजाति के कारण अनार्य हैं, कैसे जन्म हुआ, यह समझना कठिन है।

ऋग्वेद में इंद्र कहते हैं कि ' मैंने कवि नामक व्यक्ति के हितार्थ अपने वज्र से संहार किया है, मैंने सुरक्षा के साधनों का उपयोग कर कूप की सुरक्षा की है, मैने संरक्षण के साधनों से कूप को बचाया है, मैंने सुष्न के संहार के लिए वज्र का उपयोग किया, मैंने दस्युओं को आर्य की संज्ञा से वंचित किया।' (ऋग्वेद, 10.49)

इंद्र के इस कथन से अधिक सकारात्मक और निश्चित प्रमाण और कोई नहीं हो सकता कि दस्यु आर्य ही थे। इसके अतिरिक्त एक और प्रमाण, अनेक अत्याचारों के कारण इंद्र को दंडित किया जाना भी है। इंद्र को जिन अत्याचारों के कारण दंडित किया गया, उसमें से एक यह भी है कि इंद्र ने वृत्र का वध किया था। वृत्र दस्युओं का नायक था। यदि दस्यु आर्य न होते तो इंद्र पर ऐसा आरोप लगाना अकल्पनीय है।

यह सोचना भी गलत है कि आर्य आक्रमणकारियों ने शूद्रों पर विजय प्राप्त की। पहली बात तो यह है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि आर्य भारत में बाहर से आए और उन्होंने यहां के निवासियों पर आक्रमण किया था। इस बात की पुष्टि के लिए प्रचुर प्रमाण हैं कि आर्य भारत के मूल निवासी थे। दूसरी बात यह है कि इस बात का कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता कि आर्यों और दस्युओं के बीच कभी कोई युद्ध हुआ हो, और दस्युओं का शूद्रों से कोई लेना-देना नहीं था। तीसरी बात यह है कि इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि आर्य कोई शक्तिशाली लोग थे, जिनके पास पर्याप्त बल था। जो कोई भारत में आर्यों का इतिहास देवों के साथ उनके संबंध के प्रसंग में पढ़ता है, उसे उनके उस संबंध का स्मरण हो जाता है जो सामंती युग में सामंत और उनके अधीनों के बीच होते थे। देव सांमत होते थे और आर्य उनके अधीन थे। आर्य लोग जो आहुतियां देते थे, उनका स्वरूप कुछ ऐसा ही है, जैसे देवों को शुल्क दिया जा रहा हो। देवों के प्रति आर्यों की अधीनता का कारण यह था कि उनके संरक्षण के बिना वे असुरों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे। इस प्रकार यह कल्पना करना कठिन है कि ऐसे अशक्त लोगों ने शूद्रों पर विजय प्राप्त की थी। अंतिम बात यह है कि शूद्रों के विषय में दो बातें स्पष्ट हैं। इस बात से कोई सहमत नहीं है कि उनका रंग काला और नाक चपटी थी। न ही किसी ने इस बात को स्वीकार किया है कि वे आर्यों द्वारा कभी पराजित किए गए या गुलाम बनाए गए थे। आर्यों और दस्युओं को एक ही मानना गलत बात है। वे बराबर के लोग थे। किंतु सांस्कृतिक रूप में वे एक-दूसरे से बिल्कुल

भिन्न थे।[1] दस्यु इस अर्थ में अनार्य थे कि वे अलग हो गए और उन्होंने आर्य-संस्कृति का विरोध किया। दूसरी ओर, शूद्र आर्य ही थे, अर्थात वे जीवन की आर्य-पद्धति में विश्वास रखते थे। शूद्रों को आर्य स्वीकार किया गया था और कौटिल्य के अर्थशास्त्र तक में उन्हें आर्य कहा गया है।

शूद्र आर्य समुदाय के अभिन्न, जन्म-जात और सम्मानित सदस्य थे। यह बात यजुर्वेद में उल्लिखित एक स्तुति से पुष्ट होती है जो प्रार्थना के रूप में कही गई है। यह इस प्रकार है: ' हे ईश्वर! हमारे पुरोहितों को वैभव दो। हमारे शासकों को संपन्न करो! वैश्यों और शूद्रों को समृद्ध करो। मुझे समृद्ध करो।'

यह एक उल्लेखनीय प्रार्थना है, उल्लेखनीय इस कारण, क्योंकि इससे पता चलता है कि शूद्र आर्य समुदाय का सदस्य होता था और वह उसका सम्मानित अंग था।

राजा के राज्याभिषेक के समय शूद्रों को भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान आंमत्रित किया जाता था। यह बात *महाभारत* में दिए गए पांडवों के ज्येष्ठ भाई युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के वर्णन से पुष्ट होती है। शूद्र ने राजतिलक के समय समारोह में भाग लिया था। नीलकंठ नामक एक प्राचीन विद्वान के अनुसार, जो राज्याभिषेक समारोह का वर्णन करते हैं, 'चार प्रमुख मंत्री, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ने नए राजा का अभिषेक किया। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ण के प्रमुखों और छोटी जातियों के प्रमुखों ने भी पवित्र जल से राजा का अभिषेक किया। इसके पश्चात द्विजों ने जयघोष किया।' वैदिक युग के पश्चात और मनु के पूर्व जन-प्रतिनिधियों का एक वर्ग होता था, जिन्हें रत्नी कहा जाता था। राजा के राज्यारोहण के समय वे विशेष भूमिका निभाते थे। उन्हें रत्नी इसलिए कहा जाता था कि उनके पास रत्न होते थे, जो प्रभुता का प्रतीक होता था। राजा को प्रभुता तभी प्राप्त होती थी, जब रत्नीगण उसे सत्ता के प्रतीक स्वरूप रत्न भेंट करते थे। वह प्रभुता प्राप्त होने के उपरांत प्रत्येक रत्नी के घर जाता था और उसे उपहार देता था। महत्वपूर्ण बात यह है कि शूद्र भी एक रत्नी था।

प्राचीन समय में शूद्र दो महत्वपूर्ण राजनीतिक संस्थाओं के सदस्य हुआ करते थे, जिन्हें जनपद और पौर कहा जाता था, और वे इन संस्थाओं के सदस्य होने के कारण ब्राह्मण तक से विशेष सम्मान के अधिकारी होते थे।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्राचीन आर्य समाज में शूद्रों ने उच्च राजनीतिक गौरव प्राप्त किया था। वे राज्य के मंत्री बन सकते थे। *महाभारत* में इसका प्रमाण मिलता है। महाभारतकार अपनी स्मृति के आधार पर 37 मंत्रियों की एक सूची का उल्लेख करता है, उसमें चार मंत्री ब्राह्मण, आठ मंत्री क्षत्रिय, इक्कीस मंत्री वैश्य और तीन मंत्री शूद्र

---

1. शुक्ल यजुर्वेद, पृ. 200

तथा एक मंत्री सूत था।

शूद्रों ने अपनी प्रगति राज्य में मंत्री बन जाने तक ही सीमित नहीं रखी, वे राजा भी बने। कोई शूद्र राजा बन सकता है या नहीं, इस बारे में मनु ने जो धारणा व्यक्त की है, वह शूद्रों के विषय में ऋग्वेद में वर्णित कथा के एकदम विपरीत है। सुदास के शासन की जब कभी चर्चा की जाती है, वह वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच इस बात के लिए भयकर प्रतिस्पर्धा के प्रसंग में की जाती है कि उनमें से कौन उसका राजपुरोहित बनेगा। यह विवाद इस बात को लेकर उठा कि किसे पुरोहित या राजा बनने का अधिकार है। वशिष्ठ ने, जो ब्राह्मण थे, और जो पहले से ही सुदास के पुरोहित थे, यह व्यवस्था की कि राजा का पुरोहित केवल ब्राह्मण हो सकता है, जबकि विश्वामित्र ने, जो एक क्षत्रिय थे, यह कहा कि इस पद पर क्षत्रिय का अधिकार है। विश्वामित्र अपने उद्देश्य में सफल हुए और वह सुदास के पुरोहित बन गए। यह विवाद निस्संदेह स्मरणीय है क्योंकि इसका संबंध एक ऐसे प्रश्न से है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। हालांकि इसके परिणाम स्वरूप ब्राह्मण स्थाई रूप से राज-पुरोहित के पद से वंचित नहीं किये जा सके, किन्तु इसमें कोई संदेह नही है कि यह घटना सामाजिक इतिहास की शायद एक महत्वपूर्ण घटना है जो हमें प्राचीन ग्रंथों में मिलती है। दुर्भाग्य से इस बात की ओर किसी का ध्यान नहीं गया , न ही किसी ने यह गंभीरतापूर्वक सोचा कि वह राजा कौन था? सुदास पैजवन का पुत्र था और पैजवन दिवोदासका पुत्र था, जो काशी का राजा था। सुदास का वर्ण क्या था? अगर लोगों को यह बताया जाए कि सुदास नामक राजा एक शूद्र था तो बहुत कम लोगों को विश्वास होगा। किन्तु यह एक यथार्थ है और इसका प्रमाण *महाभारत* में उपलब्ध है[1] जहां शांति पर्व में पैजवन का प्रसंग आया है। वहां यह कहा गया है कि पैजवन एक शूद्र था। यहां सुदास की कथा से आर्यों के समाज में शूद्रों की स्थिति के बारे में नई रोशनी मिलती है। इससे पता चलता है कि शूद्र भी राजा हो सकता था और शासन कर सकता था। इससे यह भी पता चलता है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय एक शूद्र राजा के अधीन कार्य करने में किसी अपमान का अनुभव नही करते थे, बल्कि उनमें राजा का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धा थी और उसके यहां वैदिक कर्म करने के लिए तैयार रहते थे।

यह नहीं कहा जा सकता कि बाद के युग में कोई शूद्र राजा नहीं हुआ। बल्कि इसके विपरीत ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि मनु के पूर्व शूद्र राजाओं के दो साम्राज्य थे। नंदों ने, जो शूद्र थे, ईसा पूर्व 413 से ईसा पूर्व 322शताब्दी तक राज्य किया। इसके पश्चात् मौर्य हुए, जिन्होंने ईसा पूर्व 322 से ईसा पूर्व 183 शताब्दी तक शासन किया; वे भी शूद्र थे।[2] इस बात को सिद्ध करने के लिए कि शूद्रोंने कितना ऊंचा स्थान प्राप्तकिया

1. *जायसवाल-हिंदू पालिटी खण्ड-२, पृष्ठ-148*

2. *म्यूर, संस्कृत टैक्ट्स, खंड १, पृ. 366*

अशोक के दृष्टांत से बढ़ कर क्या दृष्टांत हो सकता है जो भारत का सम्राट ही नहीं था, बल्कि वह शूद्र भी था और उसका साम्राज्य वह साम्राज्य था जिसे शूद्रों ने बनाया था।

वेदों का अध्ययन करने के बारे में शूद्रों के अधिकारों के प्रश्न पर *छांदोग्य उपनिषद* उल्लेखनीय है। इसमें जानश्रुति नामक एक व्यक्ति की कथा आती है, जिसे वेद-विद्या का ज्ञान रैक्व नामक आचार्य ने दिया था। वह व्यक्ति एक शूद्र था। यदि यह एक सत्य कथा है तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि एक समय ऐसा भी था, जब अध्ययन के संबंध में शूद्रों पर कोई प्रतिबंध नहीं था।

केवल यही बात नहीं थी कि शूद्र वेदों का अध्ययन कर सकते थे। कुछ ऐसे शूद्र भी थे, जिन्हें ऋषि-पद प्राप्त था और जिन्होंने वेद मंत्रों की रचना की। कवष एलूष[1] नामक ऋषि की कथा बहुत ही महत्वपूर्ण है। वह एक ऋषि था और *ऋग्वेद* के दसवें मंडल में उसके रचे हुए अनेक मंत्र हैं।[2] वैदिक कर्म में और यज्ञादि करने के बारे में शूद्रों की आध्यात्मिक क्षमता के प्रश्न पर जो सामग्री मिलती है, वह निम्नलिखित है। पूर्व मीमांसा के प्रणेता जैमिनि[3] ने बदरी नामक एक प्राचीन आचार्य का उल्लेख किया है, जिनकी कृति अनुपलब्ध है। यह इस मत के व्याख्याता थे कि शूद्र भी वैदिक यज्ञ करा सकते हैं। *भारद्वाज श्रौत सूत* (5.28) में स्वीकार किया गया है कि विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो वैदिक यज्ञ के लिए आवश्यक तीन पवित्र अग्नियों को उत्पन्न कर सकता है। *कात्यायन श्रौत सूत्र* (1 और 5) का भाष्यकार यह स्वीकार करता है कि कुछ वैदिक ऋचायें ऐसी हैं, जिनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि शूद्र वैदिक कर्म करने के योग्य हैं। *शतपथ ब्राह्मण* (1.1.4.12) में आचार विषयक एक नियम का उल्लेख है, जिसका आचरण यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण को करना होता था। यह उस विधि के संबंध में है जिसके अनुसार पुरोहित को हविष्कूट (यज्ञ कराने वाले व्यक्ति) को संबोधित करना चाहिए। यह नियम इस प्रकार है: एहि (यहां आओ) यह ब्राह्मणों के लिए कहा गया है। आगहि (आगे बढ़ो) यह वैश्यों के लिए है। आद्रव (जल्दी आओ) यह राजन्य (क्षत्रिय) के संबंध में है और आधाव (भाग कर) आओ, यह शूद्र के लिए है।

शतपथ ब्राह्मण[4] में ऐसा प्रमाण मिलता है कि शूद्र सोम यज्ञ करा सकता था और देवताओं का पेय सोम ग्रहण कर सकता था। इसमें कहा गया है कि सोम यज्ञ में 'पयोव्रत' (केवल दुग्ध पान करने का व्रत) के स्थान पर शूद्र के लिए 'मस्तु' (दही का पानी)

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण, खंड 2, पृ. 112,
2. मैक्समूलर-एनशिएंट संस्कृत लिट्रेचर (1860),
3. काणे कृत *हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र,* में उद्धृत
4. वही

निर्धारित था। एक अन्य स्थान पर *शतपथ* ब्राह्मण[1] कहता है:

'चार वर्ण हैं: ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य और शूद्र। इसमें से कोई भी ऐसा नही है जो सोम का तिरस्कार करता हो। यदि उनमें से कोई ऐसा करता है तो उसे प्रायश्चित करना होगा।'

इससे पता चलता है कि शूद्रों के लिए सोमपान करने की अनुमति ही नहीं थी, वरन् यह शूद्र सहित सभी के लिए अनिवार्य था। परंतु अश्विनी कुमारों की कथा में इस बात का निश्चित प्रमाण मिलता है कि शूद्र को दैवी सोम के पान करने का अधिकार था।

यह कथा[2] इस प्रकार है कि एक बार अश्विनी कुमारों की दृष्टि सुकन्या पर पड़ी जिसने स्नान किया ही था और जो निर्वस्त्र थी। वह तरुणी थी और उसका विवाह च्यवन नामक ऋषि से हुआ था जो विवाह के समय इतने वृद्ध हो चुके थे कि उनकी मृत्यु कभी भी हो सकती थी। अश्विनी कुमार सुकन्या के सौंदर्य को देख उस पर मुग्ध हो गए और उन्होंने उससे कहा कि 'तुम हम में से किसी को भी अपना पति चुन लो, तुम्हें अपनी युवावस्था व्यर्थ में गंवाना शोभा नहीं देता।' उसने यह कहकर इंकार कर दिया कि 'मैं एक पतिव्रता स्त्री हूं'। अश्वनी कुमारों ने उससे फिर कहा और उसे इस बार एक लालच दिया 'हम स्वर्ग से आए प्रख्यात चिकित्सक हैं। हम तुम्हारे पति को युवा और सुंदर बना देंगे। इसलिए तुम हममें से किसी को भी अपना पति बना लो।' वह अपने पति के पास गई और उसने इस प्रस्ताव के बारे में अपने पति को बताया। च्यवन ने सुकन्या से कहा, 'तुम ऐसा ही करो,' और बात तय हो गयी। और अश्विनी कुमारों ने च्यवन को युवक बना दिया। तब ये प्रश्न उठा कि क्या अश्विनी कुमार सोम के अधिकारी हैं, जो देवताओं का पेय है। इंद्र ने इस पर आपत्ति की और कहा कि अश्विनी कुमार शूद्र हैं और इसलिए वे सोम के अधिकारी ही नहीं हैं। च्यवन ने, जो अश्विनी कुमारों से यौवन प्राप्त कर चुके थे, इंद्र की इस आपत्ति का खंड्न किया और उसे अश्विनी कुमारों को सोम देने के लिए विवश किया।

उस समय यदि शूद्र को अपने से संबंधित यज्ञ-कर्म करने की अनुमति नहीं थी, तो इन सब प्रावधानों का कोई अर्थ नहीं हो सकता था। ऐसे भी प्रमाण हैं कि शूद्र स्त्री ने अश्वमेध[3] नामक यज्ञ में भाग लिया था। जहां तक उपनयन संस्कार और यज्ञोपवीत धारण करने का प्रश्न है, इस बात का कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता कि यह शूद्रों के लिए वर्जित था। बल्कि संस्कार गणपति में इस बात का स्पष्ट प्रावधान है और कहा

1. म्यूर द्वारा उद्धृत संस्कृत टैक्स्ट्स, खंड 1, पृ. 367
2. वी. फासवायल, *इंडियन माइथोलौजी*, पृ. 128-34
3. जायसवाल, इंडियन पॉलिटी, भाग 2, पृ. 17

गया है कि शूद्र उपनयन के अधिकारी हैं।[1]

इस बात से इंकार नही किया जा सकता है कि यद्यपि शूद्र निम्न वर्ग में गिने जाते थे, तथापि मनु से पहले वे समाज में स्वतंत्र नागरिक थे। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में दिए गए निम्नलिखित प्रावधान पर विचार कीजिए :

"जो संबंधी जन (ऐसे) शूद्र का, जो जन्मजात दास नहीं है और जन्म से आर्य हैं, विक्रय करते हैं या उन्हें गिरवी रखते हैं, उनको दो पण का आर्थिक दंड दिया जाए।"

"जो कोई किसी दास को उसका धन लेकर ठगता है अथवा उसे उन विशेषाधिकारों से वंचित करता है जो वह आर्य (आर्यभव) होने के कारण प्रयोग कर सकता है, (उसे) (उसका) आधा आर्थिक दंड दिया जाए, जो किसी को आर्य को दास बनाने पर दिया जाता है।"

"यदि कोई अपेक्षित धन मिल जाने पर किसी दास को मुक्त नहीं करता है, तब उसे बारह पण दंड दिया जाए, किसी दास को अकारण बंदी बना कर रखने पर (संरोधश्चकारणात्) इतना ही दंड दिया जाए।"

"किसी भी ऐसे व्यक्ति की संतति आर्य मानी जाएगी, जिसने अपने आपको दास रूप में बेच दिया है। प्रत्येक दास अपने स्वामी के कृत्यों के बावजूद उसका भी अधिकारी होगा जो उसे उत्तराधिकारी स्वरूप प्राप्त होगी।"

मनु ने शूद्रों को क्यों दबाया?

शूद्रों के संबंध में यह पहेली कोई सरल पहेली नहीं है। यह एक जटिल पहेली है। आर्यों ने हमेशा अनार्यों को आर्य बनाने का प्रयत्न किया। अर्थात उन्हें आर्य संस्कृति का अनुयायी बनाने का प्रयत्न किया। उनमें अनार्यों को आर्य बनाए जाने की इतनी उत्कट इच्छा थी कि उन्होंने अनार्यों को सामूहिक आधार पर आर्य बनाने के लिए एक धार्मिक समारोह की कल्पना की। इस समारोह का नाम व्रात्य स्तोम था। व्रात्य स्तोम के संबंध में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का कथन है:

"जिस संस्कार द्वारा व्रात्यों का शुद्धिकरण किया जाता था, जिसका वर्णन *पंच विंश ब्राह्मण* में किया गया है, वह कम से कम एक रूप में तो वैदिक कालीन अन्य संस्कारों से भिन्न था, अर्थात अन्य संस्कारों में यज्ञ मंडप में केवल एक व्यक्ति और उसकी पत्नी यजमान होते थे, किंतु इस संस्कार में हजारों व्यक्ति यजमान होते थे। इनमें से एक व्यक्ति सबसे अधिक विज्ञ, सबसे अधिक धनवान या सबसे अधिक शक्तिशाली होता था, वह गृहपति के रूप में कृत्य करता था और शेष व्यक्ति उसका अनुकरण करते थे। गृहपति

---

1. मैक्समूलर द्वारा *एनसिएंट संस्कृत लिटरेचर* (1860) में पृ. 207 पर उल्लिखित है।

को अन्य की अपेक्षा अधिक दक्षिणा देनी होती थी।"

"मैं समझता हूं, यह एक ऐसी विधि थी, जिसके माध्यम से एक ही संस्कार कर व्रात्यों को ऋषियों के समाज में सम्मिलित कर लिया जाता था। और ऐसे संस्कारों का आयोजन प्रायः किया जाता था। इस प्रकार झुंड के झुंड खानाबदोश आर्यों को बसाया गया। शुद्ध किये गए व्रात्यों को गृहस्थ बन जाने पर अपने व्रात्य जीवन की संपत्ति अपने साथ रखने की अनुमति नहीं दी जाती थी। उन्हें अपनी संपत्ति उन व्रात्यों के लिए छोड़ देनी पड़ती थी, जो उस समय भी व्रात्य बने रहते थे, अथवा वह मगध देश के तथाकथित ब्राह्मणों को दे दी जाती थी। इस क्षेत्र के बारे में मैंने एक अन्य स्थान पर कहा है कि यहां अधिकांश वे लोग रहते थे जिन्हें ऋषिगण नीच समझते थे।"

"किंतु जब व्रात्यों को स्थाई जीवन में स्वीकार कर लिया जाता था, तब उन्हें समान अधिकार प्राप्त हो जाते थे। ऋषि उनके हाथ का बना भोजन करते थे। उन्हें ऋग, यजुर, साम, तीनों विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी, उन्हें वेदों का अध्ययन करने और उनका अध्ययन कराने, अपने तथा दूसरों के लिए यज्ञ करने की अनुमति दे दी जाती थी, अर्थात वे पूर्ण रूप से समान समझे जाते थे। वे समान ही नहीं माने जाते थे, बल्कि उन्होंने ऋषि जैसी उच्चमत प्रवीणता भी अर्जित की। उन्हें *सामवेद* का और *ऋग्वेद* का रहस्य भी ज्ञापित किया गया। इनमें से कौशितकी नाम एक शुद्धीकृत व्रात्य को *ऋग्वेद* के ब्राह्मणों को संकलित करने की अनुमति दी गई थी। यह संकलप आज भी उसके नाम से जाना जाता है।"

आर्य न केवल अपने ढंग से इच्छुक अनार्यों को अपनी जीवन पद्धति में परिवर्तित कर रहे थे, बल्कि वे अनिच्छुक असुरों को भी परिवर्तित कर रहे थे, जो आर्यों, उनकी यज्ञ-संस्कृति और चातुर्वर्ण्य सिद्धांत और यहां तक कि वे उनके वेदों तक के विरोधी थे, जिनका एक पौराणिक कथा के अनुसार असुरों ने आर्यों से हरण कर लिया था। इस संबंध में विष्णु द्वारा हिरण्यकश्यप नामक असुर का वध कर उसके पुत्र प्रहलाद की इस कारण रक्षा करना कि प्रहलाद आर्य संस्कृति में दीक्षित होना चाहता था, जबकि हिरण्यकश्यप इसके विरुद्ध था, एक उल्लेखनीय उदाहरण है। अनार्यों को आर्य संस्कृति में परिवर्तित करने और उन्हें अधिकार प्रदान करने के और भी कई उदाहरण हैं। शूद्रों के विरुद्ध विरोधी दृष्टिकोण क्यों अपनाया गया? शूद्र को आर्य संस्कृति में पूर्णतः क्यों सम्मिलित किया गया और पूर्ण अधिकार दिया गया और क्योंकर बहिष्कृत और अधिकार वंचित किया गया? इस पहेली का, निषादों के साथ जो व्यवहार किया गया, उससे कुछ हल निकलता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में पांच जनजातियों का उल्लेख हुआ है। उनका विभिन्न शीर्षकों में वर्णन है, जैसे पंच कृष्ट्यः, पंच क्षित्यः, मनुष्यः, पंच चार्ण्यः, पंच जनः, पंचजन्म जैसे पंचभूम, पंच जात।

इस बात पर मतभेद है कि इन शब्दों का क्या अर्थ है? *ऋग्वेद* के भाष्यकार सायणाचार्य का कथन है कि ये चार वर्णों और निषादों के द्योतक हैं। *विष्णु पुराण* में निषादों की उत्पत्ति के विषय में निम्न कथा आती है–

'7. सुनीता नामक कन्या का विवाह अंग के साथ हुआ, जो मृत्यु की पहली पुत्री थी और उससे वेन का जन्म हुआ।'

8. मृत्यु का यह पुत्र जो अपने नाना को मिले शाप से ग्रस्त था, जन्म से ही दुष्ट था, जैसे यह उसकी प्रकृति हो।

9. जब श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा वेन राज पद पर प्रतिष्ठित किया गया तब उसने पृथ्वी पर यह घोषणा करवाई कि कोई भी यज्ञ न करे, न दान दे और न नैवेद्य अर्पित करें। मेरे अतिरिक्त कोई भी यज्ञ की आहुति लेने योग्य नहीं है? ' मैं सर्वदा के लिए यज्ञ का स्वामी हूं।'

10. तब सभी ऋषि आदरपूर्वक राजा के पास गए और उन्होंने उससे विनम्रतापूर्वक समझाते हुए कहा–

11. हे राजन्! हम जो कहते हैं, उसे सुनिए।

12. हम दीर्घ सत्र नामक यज्ञ कर हरि की पूजा करेंगे, जो देवताओं के अधिपति हैं ओर जो सभी यज्ञों के स्वामी हैं, इस यज्ञ से आपके साम्राज्य को, आपको और आप की प्रजा को उच्चतम लाभ होगा। आप सुख से रहें। आपको इस यज्ञ में भाग लेना होगा।

13. विष्णु जो यज्ञों के स्वामी हैं, इस पूजा से हमारे द्वारा संतुष्ट किए जाने पर आपको आपकी इच्छानुसार सभी फल प्रदान करेंगे। जिन राजाओं के राज्य में हरि, जो यज्ञों के स्वामी हैं, का पूजन कर आदर किया जाता है, उनको सभी वस्तुएं जो वे चाहते हैं, प्रदान करते हैं, ' वेन ने उत्तर दिया– मुझसे अधिक श्रेष्ठ कौन है? मेरे अतिरिक्त कौन है, जिसकी अराधना की जाए? हरि नाम का यह व्यक्ति कौन है जिसे आप यज्ञ का स्वामी कहते हैं? ब्रह्मा, जनार्दन, रुद्र, इंद्र, वायु, यम, रवि, अग्नि, वरुण, धात्रि, पूषण, पृथ्वी, चन्द्रमा–सभी और अन्य देवता जो शाप देते और आर्शीवाद देते हैं, राजा में विद्यमान हैं क्योंकि वह सभी देवताओं से मिलकर बना है। आप इसे जानते हुए मेरे आदेश के अनुसार कार्य कीजिए। ब्राह्मणों, आप न तो कोई दान दें, न पूरा करें और न बलि दें।

14. जिस प्रकार पत्नियों का परम कर्तव्य अपने-अपने पतियों की आज्ञा का पालन करना है, उसी प्रकार आपको मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए। ऋषियों ने उत्तर दिया, ' हे महाराज, हमें अनुमति दीजिए, धर्म की हत्या न होने दीजिए, यह सारा संसार पूजा-अर्चना का परिष्कृत रूप है।'

15. जब धर्म का नाश होता है, तब उसके साथ सारे संसार का नाश हो जाता है। जब वेन ने इस प्रकार ऋषियों द्वारा प्रताड़ित और संबोधित किए जाने पर भी अपनी अनुमति नहीं दी, तब सभी मुनि असंतुष्ट हो कर क्रुद्ध हो चिल्लाने लगे, 'मार डालो, इस पापी को मार डालो।'

16. यह नीच कर्म करने वाला व्यक्ति जो ईश्वर की, जो आदि और अनंत परमेश्वर की निंदा करता है, पृथ्वी पर राज्य करने योग्य नहीं है। इस प्रकार कहकर मुनियों ने इस राजा को अपने हाथों में कुश लेकर शाप दिया, जो ईश्वर की निंदा करने और अन्य पाप कर्मों के लिए पहले से ही शाप-ग्रस्त था। इसके बाद मुनियों ने अपने चारों ओर धूल उड़ती देखी और जो लोग उनके पास खड़े थे, उनसे वे, जो कुछ हुआ, उसके बारे में बोले।

17. उन्हें बताया गया कि इस राज्य में जहां कोई राजा नहीं है, लोग त्रस्त होने के कारण डाकू बन गए हैं और दूसरों की संपत्ति छीनने लगे हैं।

18. यह धूल उन डाकुओं के कारण उड़ रही हैं, जो आवेश में आकर भाग रहे हैं और दूसरे व्यक्तियों की संपत्ति लूट रहे हैं। तब सभी मुनियों ने एक-दूसरे से परामर्श कर राजा की जांघ को रगड़ा जो निःसंतान था, जिससे एक पुत्र का जन्म हुआ जो लकड़ी के जले हुए कुंदे के समान था, जिसकी मुखाकृति चपटी थी और जो कद में बहुत ही छोटा था।

19. यह व्यक्ति व्यथित होकर ब्राह्मणों से बोला, 'मेरे लिए क्या आज्ञा है।' उन्होने उससे कहा, बैठ जाओ (निषीथ) और इससे वह निषाद बन गया।

20. इससे निषादों का जन्म हुआ, जो विन्ध्यपर्वत पर रहते हैं और अपने क्रूर कर्मों के लिए कुख्यात हैं।

21. इस प्रकार राजा का पाप उसके शरीर को त्याग कर बाहर आया और इस प्रकार निषादों का उत्पत्ति हुई, जो वेन की क्रूरता की संतान हैं।'

निषादों की उत्पत्ति के बारे में यह एक पौराणिक उल्लेख है, किंतु यह ऐतिहासिक तथ्य भी है। इससे यह प्रमाणित होता है कि निषाद निम्न वर्गीय और आदिम जातियां थीं, जो विन्ध्य पर्वत पर जंगलों में रहती थी। ये क्रूर तथा दुष्ट लोग थे, अर्थात जो आर्य संस्कृति के विद्वान थे। उन्होंने अपनी उत्पत्ति के संबंध में एक पौराणिक आख्यान गढ़ लिया और अपने-आपको आर्य संप्रदाय से जोड़ दिया। यह सब कुछ इसलिए किया गया कि निषादों को आर्यों के दल से, न कि आर्यों के समाज से जोड़ लेने के लिए प्रमाण मिल सकें। अब कहीं भी निषादों को नीच, असंस्कृत और विदेशी जनजाति कहकर कोई रोक नहीं लगाई जाती। प्रश्न यह है कि शूद्रों पर सारी रोक क्यों लगाई जाती है जो सुसंस्कृत थे और आर्य थे?

13

नारी और प्रतिक्रांति

डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को इस लेख की एक ऐसी प्रति उपलब्ध हुई, जिस पर शीर्षक 'दि वूमेन एंड दि काउंटर-रिवोल्यूशन' (नारी और प्रतिक्रांति) दिया हुआ है। इस लेख की दूसरी प्रति भी कमेटी को उपलब्ध हुई है, लेकिन उसका शीर्षक है ' दि रिडिल आफ दि वूमेन' (नारी एक पहेली)। कमेटी के सदस्यों का विचार है कि इस लेख को ' रिडिल्स इन हिंदूइज्म' (हिंदू धर्म की पहेलियां) शीर्षक से आगामी अंग्रेजी प्रकाशन के बजाय प्रस्तुत खंड में शामिल किया जाए, तो उचित होगा–संपादक

कहा जा सकता है कि मनु शूद्रों के प्रति जितना अनुदार था, स्त्रियों के प्रति भी उसके विचार उतने ही अनुदार थे। स्त्रियों के प्रति हीन विचारों से वह आरंभ करता है। मनु घोषणा करता है:

2.213. इस संसार में स्त्रियों का स्वभाव पुरुषों को मोहित करता है। इस कारण बुद्धिमान जन स्त्रियों के बीच सुरक्षित नहीं रहते।

2.214. क्योंकि स्त्रियां इस संसार में केवल मूर्ख को ही नहीं, बल्कि विद्वानों को भी पथभ्रष्ट करने में और उन्हें काम और क्रोध का दास बना देने में सक्षम हैं।

2.215. कोई किसी की माता, बहन या पुत्री के साथ एकांत में न बैठे क्योंकि इंद्रियां शक्तिशाली होती हैं और विद्वान को भी अपने वश में कर लेती हैं।

9.14. स्त्रियां रूप की अपेक्षा नहीं करतीं, न उनका ध्यान आयु पर रहता है, वह सोचकर कि (यह ही पर्याप्त है कि) वह पुरुष है, सुंदर या कुरुप के साथ संभोग कर बैठती हैं।

2.15 इस संसार में उनकी चाहे जितनी भी रक्षा क्यों न की जाए, पुरुषों के प्रति काम-भावना, अपनी चंचल प्रकृति और अपनी स्वभाविक हृदयहीनता के कारण वह अपने पति के प्रति निष्ठारहित हो जाती हैं।

9.16 उनका ऐसा स्वभाव जानकर, जो ब्रह्मा ने उन्हें अपनी सृष्टि के समय दिया है, प्रत्येक मनुष्य को उनकी रक्षा के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए।

9.17 मनु ने स्त्रियों की सृष्टि करते समय इनमें (अपनी) शैया, (अपने) स्थान और (अपने) आभूषणों के लिए प्रेम, वासना, क्रोध, बेईमानी, ईर्ष्या और दुराचरण निहित किया है।

स्त्रियों के प्रति मनु के ये नियम अकाट्य हैं। स्त्रियां किसी भी परिस्थिति में स्वतंत्र नहीं हैं। मनु के मतानुसार :

9.2 स्त्रियां उनके परिवारों के पुरुषों द्वारा दिन-रात अधीन रखी जानी चाहिएं और यदि वे अपने को विषयों में आसक्त करें तो उन्हें अपने नियंत्रण में अवश्य रखें।

9.3 स्त्री की रक्षा उसके बचपन में उसका पिता करता है, युवावस्था में उसका पति, जब उसका पति दिवंगत हो जाता है, वृद्धावस्था में उसके पुत्र (उसकी रक्षा करते हैं)। स्त्री कभी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है।

9.5 स्त्रियों की रक्षा विशेषकर दुष्प्रवृत्ति से की जानी चाहिए जो चाहे जितनी भी नगण्य (क्यों न प्रतीत हों), क्योंकि यदि उनकी रक्षा नहीं की गई तो वे दोनों परिवारों (पिता तथा पति के) क्लेश का कारण बन जाती है।

9.6 वर्णो का उत्तम धर्म समझते हुए, दुर्बल पतियों को भी अपनी पत्नी की रक्षा करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

5.147 लड़की को, नवयुवती को या वृद्धा को भी अपने घर में भी कोई काम स्वतंत्रतापूर्वक नहीं करना चाहिए।

5.148 स्त्री को बचपन में अपने पिता, युवावस्था में अपने पति और जब उसका पति दिवंगत हो जाए तब अपने पुत्रों के अधीन रहना चाहिए, स्त्री को कभी भी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए।

5.149 स्त्री को अपने पिता, पति या पुत्रों से अपने को अलग करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए, इनको त्याग कर वह दोनों परिवारों (उसका अपना परिवार और पति का परिवार) को निंदित कर देती है।

स्त्री को अपने पति को छोड़ देने का अधिकार नहीं मिल सकता।

9.45 पति अपनी पत्नी के साथ एक इकाई है। इसका तात्पर्य यह है कि स्त्री एक बार विवाहित होने के बाद, कोई विच्छेद नहीं हो सकता।

बहुत से हिंदू यहीं रुक जाते हैं, जैसे विवाह-विच्छेद के बारे में मनु के नियम का

यही सार-तत्व हो और इसे आदर्श कहते रहते हैं। वह यह सोचकर अपने विवेक पर पर्दा डाल देते हैं की कि मनु ने विवाह को संस्कार की तरह माना है और इसलिए उसने विच्छेद की अनुमति नहीं दी। यह बात निश्चय ही सत्य से कोसों दूर है। मनु के विच्छेद-नियम का बिल्कुल भिन्न उद्देश्य था। यह पुरुष को स्त्री से बांध देने की बात नहीं, बल्कि यह स्त्री को पुरुष से बांध देने और पुरुष को स्वतंत्र रखने की बात थी, क्योंकि मनु पुरुष को अपनी पत्नी को त्याग देने से नहीं रोकता। वस्तुतः वह उसे अपनी पत्नी को छोड़ देने की ही अनुमति नहीं, बल्कि उसे बेच देने की भी अनुमति देता है। वह पत्नी को स्वतंत्र न होने देन के लिए नियम बनाता है। देखिए मनु क्या कहता है:

9.46 बेचने और त्याग देने से कोई स्त्री अपने पति से मुक्त नहीं होती।

इसका अर्थ यह है कि कोई स्त्री बेचे या त्याग दिए जाने से किसी दूसरे व्यक्ति की, जिसने उसे खरीद लिया है या त्याग देने के बाद प्राप्त किया है, वैध पत्नी नहीं हो सकती। अगर यह असंगत नहीं है तो कुछ भी असंगत नहीं हो सकता। लेकिन मनु अपने नियम के परिणामस्वरूप होने वाले न्याय या अन्याय के बारे में चिंतित नही था। वह स्त्री को उस स्वत्रता से वंचित कर देना चाहता था, जो उसे बौद्ध काल में थी। वह यह जानता था कि स्त्री द्वारा अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने या शूद्र के साथ विवाह करने की उसकी इच्छा होने से वर्ण-व्यवस्था नष्ट हो गई थी। मनु स्त्री की स्वतंत्रता से क्रुद्ध था और उसे रोकने में उसने उसकी स्वतंत्रता से उसे वंचित कर दिया।

संपत्ति के मामले में पत्नी का स्थान मनु द्वारा दास के स्तर पर लाकर पटक दिया गया।

8.416. पत्नी, पुत्र और दास, इन तीनों के पास कोई संपत्ति नहीं हो; वे जो संपत्ति अर्जित करें, वह उसकी होती है, जिसकी वह पत्नी या पुत्र या दास है।

अगर वह विधवा हो जाए, तब मनु उसके लिए निर्वाह-व्यय की अनुमति देता है और अगर उसका पति अपने परिवार से अलग था, तब उसे उसके पति की संपत्ति में से विधवा को भूसंपत्ति का अधिकार देता है लेकिन मनु उसे संपत्ति पर अधिकार की अनुमति नहीं देता।

मनु के नियमों के अधीन स्त्री को शारीरिक दंड दिया जा सकता है और मनु पति को अपनी पत्नी को मारने-पीटने की अनुमति देता है:

8.299. स्त्री, पुत्र, दास और सहोदर यदि अपराध करें तब रस्सी से या बांस की छड़ी से मारना चाहिए।

अन्य परिस्थितियों में मनु स्त्री का स्थान शूद्र के स्थान के समान मानता है। वेद

का अध्ययन मनु द्वारा उसे उसी प्रकार निषिद्ध है जिस प्रकार शूद्र को।

2.66. स्त्री के लिए भी सभी संस्कारों का किया जाना जरूरी है और वे किए जाने चाहिए। लेकिन ये वेदमंत्रों के बिना किए जाने चाहिए।

9.18. स्त्रियों को पढ़ने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए उनके संस्कार वेद मंत्रों के बिना किए जाते हैं। स्त्रियों को वेद जानने का अधिकार नहीं है इसलिए उन्हें धर्म का कोई ज्ञान नहीं होता। पाप दूर करने के लिए वेद मंत्रो का पाठ उपयोगी है। चूंकि स्त्रियां वेद मंत्रों का पाठ नहीं कर सकतीं, वे उसी प्रकार अपवित्र हैं, जिस प्रकार असत्य अपवित्र होता है।

ब्राह्मण धर्म के अनुसार, यज्ञ करना धर्म का सार है, फिर भी मनु स्त्रियों को यज्ञ करने की अनुमति नहीं देता। मनु निर्देश देता है:

11.36. स्त्री वेद विहित दैनिक अग्निहोत्र नहीं करेगी।

11.37. यदि वह करती है, तब वह नरक में जाएगी।

मनु स्त्रियों को ब्राह्मण, पुरोहितों की सहायता व उनकी सेवा ग्रहण करने से वर्जित करता है, जिससे वह यज्ञ कर्म न कर सकें।

4.205. ब्राह्मण उस यज्ञकर्म में दिए गए भोजन को ग्रहण न करें, जो किसी स्त्री द्वारा किया गया हो।

4.206. जो यज्ञ कर्म स्त्रियों द्वारा किए जाते हैं, वे अशुभ और देवताओं को अस्वीकार्य होते हैं। अतः उसमें भाग नहीं लेना चाहिए।

स्त्रियों को कोई बौद्धिक कार्य नहीं करना चाहिए। उनको स्वतंत्र इच्छा नहीं करनी चाहिए, न ही उन्हें अपने विचारों में स्वतंत्र होना चाहिए। वह कोई अन्य धर्म, जैसे बौद्ध धर्म स्वीकार नहीं कर सकतीं। यदि वह आजीवन उसका पालन करती हैं, तब उन्हें जल का तर्पण नहीं किया जाएगा, जो अन्य मृतकों के लिए किया जाता है।

अंत में जीवन के उस आदर्श को भी देखिए, जो मनु स्त्रियों के लिए निर्धारित करता है। इसे उसी के शब्दों में कहना उचित होगा:

5.151. वह आजीवन उसकी (पति की) आज्ञा का अनुपालन करेगी जिसे उसका पिता या उसका भाई अपने पिता की अनुमति से उसे सौंप देगा, और जब वह दिवंगत हो जाए तब वह उसके श्राद्ध आदि कर्म का उल्लघंन नहीं करेगी।

5.154. चाहे पति सदाचार से हीन हो, या वह अन्य में आसक्त हो या वह सद्‌गुणों से हीन हो, तो भी पतिव्रता स्त्री के द्वारा पति देवता के समान पूजित होता है।

5.155. स्त्री पति से पृथक कोई यज्ञ, कोई व्रत या उपवास न करे यदि स्त्री अपने पति का अनुपालन करती है, तब वह इस कारण ही स्वर्ग में पूजित होती है।

अब उन विशिष्ट सूत्रों पर ध्यान दीजिए जो उस आदर्श के मानों आधार हैं, जिसे मनु स्त्रियों के लिए प्रस्तुत करता है :

5.153. जिस पति ने किसी स्त्री को अपनी पत्नी के रूप में पवित्र मंत्रों के उच्चारण के बाद वरण किया है, वह उसके लिए ऋतुभिन्न-काल में भी नित्य ही इस लोक में तथा परलोक में सुख देने वाला होता है।

5.150. उसे सर्वदा प्रसन्न, गृह कार्य में चतुर, घर के बर्तनों को स्वच्छ रखने में सावधान तथा खर्च करने में मितव्ययी होना चाहिए।

अब जरा, मनु के समय से पूर्व नारी की जो स्थिति थी, उससे इसकी तुलना तो कीजिए। *अथर्ववेद* से यह स्पष्ट है कि नारी को अपने उपनयन का अधिकार प्राप्त था। कहा गया है कि नारी ब्रह्मचर्य की अवस्था पूरी करने के बाद विवाह के योग्य हो जाती है। श्रौत सूत्र से यह स्पष्ट है कि नारी वेद मंत्रों का अनुपाठ कर सकती थी और उसे वेदों का अध्ययन करने के लिए शिक्षा दी जाती थी। पाणिनि की *अष्टाध्यायी* से इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि नारियां गुरुकुलों में जाती थी और वेदों की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन करती थीं और वे मीमांसा में प्रवीण होती थीं। पतंजलि के *महाभाष्य* का कहना है कि नारियां शिक्षक होती थीं और बालिकाओं को वेदों का अध्ययन कराती थीं। धर्म, आध्यात्म और तत्व मीमांसा के कठिन से कठिन विषयों पर पुरुषों के साथ नारियों के शास्त्रार्थ करने के प्रसंग भी कम नहीं मिलेंगे। जनक और सुलभ, याज्ञवल्क्य और गार्गी, याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी तथा शंकराचार्य और विद्याधरी के बीच शास्त्रार्थ की घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि मनु के पूर्व नारियां शिक्षा और ज्ञान के उच्च शिखर पर पहुंच चुकी थीं।

मनु से पूर्व नारी को बहुत सम्मान दिया जाता था, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। प्राचीन काल में राजाओं के राज्याभिषेक के समय में जिन स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी, उनमें रानी भी होती थी। राजा दूसरों की भांति रानी को भी वर प्रदान करता था।[1] राज्याभिषेक के पूर्व चयनित राजा केवल रानी की ही नहीं वरन् वह नीची जाति की अपनी अन्य पत्नियों की भी स्तुति करता था।[2] इसी प्रकार वह राज्याभिषेक के बाद अपने प्रमुख शासनाधिकारियों की पत्नियों का भी अभिवादन करता था।[3]

---

1. जायसवाल–इंडियन पोलिटी, भाग 2, पृ. 16
2. वही, पृ. 17
3. वही, पृ. 82

कौटिल्य के युग में नारी बारह वर्ष की अवस्था में और पुरुष सोलह वर्ष की अवस्था में वयस्क माने जाते थे।[1] यही आयु विवाह की आयु मानी जाती थी। बौद्धायन के गृह सूत्र में कहा गया है कि कन्या वयःसंधि के बाद विवाह योग्य हो जाती है[2] और विवाह के समय जब वह रजःस्वला हो, तब प्रायश्चित कर्म का विशेष विधान किया गया है।

कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में स्त्री-पुरुष के संभोग के लिए आयु के संबंध में कोई नियम नहीं है। इसका कारण यह है कि विवाह वयःसंधि की अवस्था के बाद होता था। उनकी अधिक चिंता ऐसी घटनाओं को लेकर थी, जिनमें वर-वधू का विवाह हो जाता है और यह बात छिपा ली जाती है कि उन्होंने विवाह से पहले किसी दूसरे के साथ संभोग किया था, या रजःस्वला वधू संभोग कर चुकी है। पहली स्थिति के संबंध में कौटिल्य कहते हैं:[3]

'यदि किसी व्यक्ति ने अपनी पुत्री का विवाह यह बताए बिना कर दिया है कि उसकी पुत्री का किसी अन्य व्यक्ति से शारीरिक संबंध था, तब उस पर न केवल आर्थिक दंड निर्धारित किया जाए, बल्कि उसे शुल्क और स्त्री धन भी लौटाना होगा। यदि कोई पुरुष यह बताए बिना किसी कन्या से विवाह करता है कि उसके किसी अन्य नारी से शारीरिक संबंध थे तो वह न केवल उक्त आर्थिक दंड का दुगना धन दंड स्वरूप देगा, बल्कि जो शुल्क और स्त्री धन उसने वधू को दिया है, वह भी जबत हो जाएगा। दूसरे मामले में कौटिल्य[4] का नियम इस प्रकार है:

'यदि कोई व्यक्ति अपनी समान जाति और श्रेणी की ऐसी नारी से संभोग करता है जो पहली बार रजःस्वला होने के बाद तीन वर्ष से अविवाहित है, तो उसका यह कर्म अपराध नहीं है। इसी प्रकार यदि कोई अपनी जाति से भिन्न जाति की ऐसी नारी के साथ संभोग करता है जो पहली बार रजःस्वला होने के बाद तीन वर्ष से अविवाहित है और उसके पास आभूषणादि नहीं हैं, तब यह कर्म कोई अपराध नहीं है।'

मनु के विपरीत कौटिल्य एक विवाह-प्रथा की व्यवस्था करता है। पुरुष कुछ ही परिस्थितियों में दूसरा विवाह कर सकता है। कौटिल्य ने इसकी शर्तें बताई हैं जो निम्नलिखित हैं :[5]

'यदि कोई नारी (जीवित) बालक को जन्म नहीं दे पाती है, या जिसके पुत्र नहीं

1. शाम शस्त्री–*कौटिल्य का अर्थशास्त्र*, पृ. 175
2. बौद्धायन, 1.7.22
3. शाम शास्त्री–*कौटिल्य का अर्थशास्त्र*, पृ. 222
4. वही पृ. 259
5. जायसवाल–इंडियन पोलिटी, भाग 2, पृ. 16

है, अथवा कोई स्त्री बांझ है, तो उसका पति दूसरा विवाह करने से पूर्व आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करे। यदि कोई नारी मृत बालक को जन्म देती है तो उसे दस वर्षों तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि वह केवल पुत्रियों को ही जन्म देती है तो उसे 12 वर्ष तक प्रतीक्षा करनी होगी। तब यदि वह पुत्र की कामना करता हो तो वह दूसरा विवाह कर सकता है। इस नियम के उल्लंघन पर उसे स्त्री को न केवल शुल्क और उसका स्त्री-धन देना होगा और आर्थिक क्षतिपूर्ति करनी होगी, बल्कि उसे राज्य को 24 पण दंड स्वरूप भी देने होंगे। अपनी पत्नियों को अनुपातिक क्षतिपूर्ति और समुचित वृत्ति देने के बाद वह कितनी ही स्त्रियों से विवाह कर सकता है, क्योंकि स्त्री का जन्म पुत्रोत्पत्ति के लिए होता है।'

मनु के विपरीत कौटिल्य के युग में नारी अपने पति के साथ परस्पर वैर और घृणा होने के कारण विवाह-विच्छेद कर सकती थी।

' जो नारी अपने पति से घृणा करती है, वह उस पति की इच्छा के विरुद्ध अपना विवाह संबंध नहीं तोड़ सकती। वह पति भी अपनी इच्छा से अपनी स्त्री की इच्छा के बिना उसका परित्याग नहीं कर सकता। परंतु परस्पर वैर होने पर विवाह–विच्छेद होता है। यदि एक पुरुष अपनी पत्नी से खतरा अनुभव करता है और उससे विवाह विच्छेद करना चाहता है तो वह उसे वह संपत्ति देगा, जो उसे नारी के विवाह के अवसर पर प्राप्त हुई थी। यदि कोई नारी अपने पति से खतरा अनुभव करती है और उससे विवाह-विच्छेद करना चाहती है तो उसका अपनी संपत्ति पर कोई अधिकार शेष नहीं रहेगा। प्रत्येक पत्नी अपना विवाह-विच्छेद कर सकती है, यदि उसका पति दुश्चरित्र है।

'जिस नारी को अनिश्चित काल तक भरण-पोषण मिलने का अधिकार है, उसे उसकी आवश्यकतानुसार या उसकी आय के अनुपात में अधिक आवश्यकतानुसार अन्न और वस्त्र उपलब्ध कराए जाएं। यदि यह अवधि जिसमें ये वस्तुएं और इसके अलावा धन-राशि का 1/10 भाग भी दिया जाना सीमित है, तो धन का एक निश्चित भाग जो भर्ता की आयु के अनुपात में निश्चित किया गया हो, वह उस नारी को दिया जाए, बशर्ते उसे शुल्क (जो उसे उसके पति को पुनर्विवाह की अनुमति के कारण देय है) स्त्री धन और क्षतिपूर्ति की राशि नहीं दी गयी हो। यदि वह अपने श्वसुर-कुल के किसी व्यक्ति के संरक्षण में रहना चाहती है, अथवा वह स्वतंत्र रहना आरंभ कर देती है, तब उसके भरण-पोषण के लिए उसके पति पर दावा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार भरण-पोषण का निर्धारण होता है।'

कौटिल्य के समय में किसी नारी अथवा विधवा के पुनर्विवाह पर कोई प्रतिबंध नहीं था।

' यदि कोई नारी अपने पति की मृत्यु के बाद धर्मपरायण जीवनयापन करना चाहती

है, तो वह तुरंत न केवल अपनी स्थाई निधि और स्त्री धन को प्राप्त करेगी, बल्कि देय शुल्क बकाया भी प्राप्त करेगी। यदि इन दोनों को प्राप्त करने के बाद वह पुनर्विवाह कर लेती है, तो उस नारी को इन दोनों को (उनके मुल्य पर) ब्याज सहित लौटाना होगा। यदि वह दूसरा विवाह करना चहती है, तो उसको पुनर्विवाह के समय वह सब दिया जाएगा, जो उसे उसके श्वसुर या उसके पति अथवा दोनों ने दिया था। नारियां कब पुनर्विवाह कर सकती हैं, यह अपने-अपने पतियों के साथ बिताए गए दीर्घ समय के बारे में स्पष्ट किया जाएगा।

'यदि कोई विधवा अपने श्वसुर द्वारा चुने गए पुरुष के बजाय किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह करती है, तो वह उस संपत्ति से वंचित हो जाएगी, जो उसे अपने श्वसुर अथवा मृत पति से प्राप्त हुई होगी।

'जब कोई नारी किसी जाति (नातेदार) से पुनर्विवाह करती है, तब उस पति के जाति (नातेदार) उसके पुराने श्वसुर को वह सब संपत्ति लौटा देंगे जो उस नारी की अपनी होती थी। जो किसी नारी को न्यायतः अपने संरक्षण में लेता है, वह उसकी संपत्ति का भी संरक्षण करेगा। जो नारी पुनर्विवाह करती है, वह अपने मृत पति की संपत्ति पर अधिकार करने में सफल नहीं होगी। धर्मपरायण जीवन व्यतीत करती है, तो उसे ऐसा अधिकार होगा। कोई भी नारी पुत्र या पुत्रों सहित (पुनर्विवाह करने के बाद) अपनी संपत्ति (स्त्री धन) का स्वेच्छापूर्वक उपयोग करने में स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि उसकी संपत्ति उसके पुत्रों को प्राप्त होगी।

'यदि कोई नारी पुनर्विवाह के पश्चात इस तर्क पर अपनी संपत्ति लेना चाहे कि उसे अपने पुत्रों का भरण पोषण करना है जो उसने अपने पूर्व पति से जन्मे थे, तो उसे वह संपत्ति उनके नाम करनी होगी। यदि किसी नारी के कई पुत्र हों और वे कई पतियों से उत्पन्न हुए हों, तो वह अपनी संपत्ति पर वैसे ही अधिकार कर सकती है, जैसे कि वह उसे अपने पतियों से प्राप्त हुई हो। जो नारी पुनः विवाह करती है, वह उस संपत्ति को भी अपने पुत्रों के नाम करेगी, जो उसे पूर्ण अधिकार सहित प्राप्त हुई है।

'जो बांझ विधवा अपने मृत पति में आस्था रखती है, वह अपने गुरु के संरक्षण में रहकर आजीवन अपनी संपत्ति का उपभोग कर सकती है, जिससे उसे उन आपदाओं का सामना न करना पड़े, जो नारियों को संपत्ति के संबंध में झेलनी पड़ती हैं। उसकी मृत्यु पर उसकी संपत्ति, उसके दायदा को प्राप्त होगी। यदि उसका पति जीवित है और पत्नी की मृत्यु हो गई है, तो उस नारी के पुत्र और पुत्रियां आपस में संपत्ति का विभाजन करेंगे। यदि पुत्र नहीं है तो वह संपत्ति उसकी पुत्रियों को मिलेगी। यदि पुत्री भी न हो, तो उसका पति वह संपत्ति (शुल्क) प्राप्त करेगा जो उसने अपनी पत्नी को दिया हो और उसके संबंधी उस सामग्री को प्राप्त करेंगे जो उन्होंने दान अथवा दहेज के रूप में उसे

दी थी। इस प्रकार नारी की संपत्ति के निर्धारण की व्यवस्था की गई है।

'शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ण की जो पत्नियां हैं और जिनके संतान उत्पन्न नहीं हुई हैं वे क्रमशः एक, दो, तीन और चार वर्ष तक प्रतीक्षा करें क्योंकि उनके पति अल्प समय के लिए परदेश गए हुए हैं और जिन्होंने बच्चों को जन्म दिया हो, वे अपने अनुपस्थित पति की एक वर्ष से अधिक समय तक प्रतीक्षा करें। यदि उन्हें भरण पोषण की राशि दी गई हो तो उन्हें उक्त अवधि से दुगने समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए यदि उन्हें भरण-पोषण की व्यवस्था नहीं की गई है, तो उनके संपन्न जाति (नातेदारों) को उनका भरण-पोषण चार से आठ वर्ष तक करना चाहिए। तब परिजन को चाहिए कि वह उनसे उस संपत्ति को वापस लेकर विवाह के लिए मुक्त कर दें, जो उन्हें विवाह के अवसर पर प्रदान की गई थी। यदि पति ब्राह्मण है और वह परदेश में अध्ययन कर रहा है, तो उसकी पत्नी को जिसके कोई बच्चा नहीं है, उसकी प्रतीक्षा दस वर्ष तक करनी चाहिए। किंतु यदि उसके बच्चे हैं, तो बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करे। यदि कोई पति राजा का कर्मचारी है तो उसकी पत्नी, उसकी आजीवन प्रतीक्षा करे और यदि उसने किसी सवर्ण (अर्थात दूसरा पति जो उसी गोत्र का है जिसका पूर्व पति था) से संतान को जन्म दिया है, जिससे उसका (नारी का) वंश समाप्त होने से बच जाए, तो वह नारी ऐसा करने से निंदा की पात्र नहीं होगी। यदि अनुपस्थित पति की पत्नी के पास भरण-पोषण नहीं है और उसके संपन्न जाति (नातेदारों) ने उसकी उपेक्षा कर दी है तो उस पुरुष के साथ अपना पुनर्विवाह कर सकती है, जिसे वह पसंद करती है तथा जो उसका भरण-पोषण कर सकता हो, उसे कष्टों से मुक्ति दिला सकता हो।'

यहां मनु के विपरीत विवाहिता नारी को आर्थिक स्वाधीनता सुनिश्चित की गई थी। यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पत्नी की स्थाई निधि और उसके भरण पोषण के संबंध में दी गई व्यवस्था से स्पष्ट है, जो इस प्रकार है :

' जिसे नारी की संपत्ति कहा जाता है, उसमें जीविका के साधन (वृत्ति) या आभूषण (अवघ्य) शामिल है। जीविका के जिन साधनों का मूल्य दो हजार से अधिक है, वह (उसके नाम) स्थाई निधि हैं। आभूषणों की कोई सीमा नहीं है। यदि कोई पत्नी संपत्ति का उपयोग अपने पुत्र, अपनी पुत्र-वधू और स्वयं पर करती है और जबकि पति ने उसके भरण-पोषण का कोई प्रबंध न किया हो, तब वह किसी अपराध की भागी नहीं होगी। प्राकृतिक आपदा, व्याधि और अकाल के समय खतरों से बचने के लिए और दान-दक्षिणा के लिए पति भी उस संपत्ति का उपयोग कर सकता है। जिस दंपति के जुडवां बच्चे हुए हों, वह यदि परस्पर सहमति से इस संपत्ति का उपयोग करें, तो इनमें से किसी के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं होगी। तब भी किसी शिकायत को स्वीकार नहीं किया जाएगा, जब इस संपति का उपयोग तीन वर्ष तक उन लोगों ने किया हो, जिनका विवाह पहली चार पद्धतियों के

अनुसार हुआ हो, किंतु गंधर्व विवाह और असुर विवाह होने पर यह संपत्ति ब्याज सहित लौटानी होगी। राक्षस और पिशाच विवाह के संदर्भ में यह संपत्ति चोरी की संपत्ति समझी जाएगी।

'जिस नारी को अनिश्चित-काल तक भरण-पोषण मिलने का अधिकार है, उसे उसकी आवश्यकता के अनुसार अन्न और वस्त्र या भर्ता की आयु के अनुपात में हो तो अधिक आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराए जाएं। यदि वह अवधि, जिसमें वस्तुएं और इसके अलावा धनराशि का 1/10 भाग भी दिया जाना है) सीमित है तब धन का एक निश्चित भाग जो भर्ता की आय के अनुसार निश्चित किया गया हो, तो वह उस नारी को दिया जाए, बशर्ते उसे शुल्क जो उसे उसके पति की अनुमति के अनुसार देना है स्त्री धन क्षतिपूर्ति की राशि नहीं दी गई है। यदि वह अपने श्वसुर कुल के किसी व्यक्ति के संरक्षण में रहना चाहती है अथवा वह स्वतंत्र रहना आरंभ कर देती है, उसके भरण-पोषण के लिए उसके पति पर दावा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार भरण-पोषण का निर्धारण होता है।'

क्या यह आश्चर्यजनक नहीं लगता कि कौटिल्य के समय में कोई पत्नी अपने पति के विरुद्ध प्रताड़ना और मानहानि होने पर अदालत में जा सकती थी।

संक्षेप में, मनु से पहले नारी स्वतंत्र थी और पुरुष की समान भागीदार थी। मनु ने उसे पदावनत क्यों किया?

भाग II

बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स

डा. बाबा साहेब अम्बेडकर सोर्स मैटिरियल पब्लिकेशन कमेटी को 'बुद्ध और कार्ल मार्क्स' शीर्षक मूल अंग्रेजी निबंध की तीन प्रतियां बिखरे हुए टंकित पृष्ठों में मिली थीं, जिनमें से दो प्रतियों में स्वयं बाबा साहेब की लिखावट में संशोधन किए हुए थे। कमेटी द्वारा इन संशोधनों को अच्छी प्रकार देख-परख कर इस लेख में शामिल कर लिया गया है। निम्नलिखित आठ उपशीर्षकों के अंतर्गत इस लेख को प्रस्तुत किया जा रहा है:

1. बुद्ध का सिद्धांत
2. कार्ल मार्क्स का मौलिक सिद्धांत
3. मार्क्सवादी सिद्धांत का अस्तित्व
4. बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स के बीच तुलना
5. साधन
6. साधनों का मूल्यांकन
7. किसके साधन अधिक प्रभावोत्पादक व अमोघ है?
8. राज्य की शिथिलता

—संपादक

14

बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स

कार्ल मार्क्स तथा बुद्ध में तुलना करने के कार्य को कुछ लोगों द्वारा एक मजाक माना जाए, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। मार्क्स तथा बुद्ध के बीच 2381 वर्ष का अंतर है। बुद्ध का जन्म ई.पू. 563 में हुआ था और कार्ल मार्क्स का जन्म सन् 1818 में हुआ। कार्ल मार्क्स को एक नई विचारधारा व नए मत–राज्य शासन का व एक नई आर्थिक व्यवस्था का निर्माता माना जाता है। इसके विपरीत बुद्ध को एक ऐसे धर्म के संस्थापक के अलावा और कुछ नहीं माना जाता, जिसका राजनीति या अर्थशास्त्र से कोई संबंध नहीं है। इस निबंध के शीर्षक 'बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स' से ऐसा आभास होता है कि यह इन दोनों व्यक्तियों के बीच समानता को बताने वाला है या विषमता को दर्शाने वाला है। इन दोनों के बीच समय का बहुत बड़ा अंतराल है। उनके विचार-क्षेत्र भी अलग–अलग हैं। अतः इस शीर्षक का अजीब सा प्रतीत होना अवश्यंभावी है। मार्क्सवादी इस पर आसानी से हंस सकते हैं और मार्क्स तथा बुद्ध को एक समान स्तर पर लाने का मजाक व हंसी उड़ा सकते हैं। मार्क्स बहुत आधुनिक और बुद्ध बहुत पुरातन हैं। मार्क्सवादी यह कह सकते हैं कि उनके गुण की तुलना में बुद्ध केवल आदिम व अपरिष्कृत ही ठहर सकते हैं। फिर, ऐसे दो व्यक्तियों के बीच क्या समानता या तुलना हो सकती है? एक मार्क्सवादी बुद्ध से क्या सीख सकता है? बुद्ध एक मार्क्सवादी को क्या शिक्षा दे सकते हैं? फिर भी इन दोनों के बीच तुलना आकर्षक तथा शिक्षाप्रद है। इन दोनों के अध्ययन तथा इन दोनों की विचारधारा व सिद्धांत में मेरी भी रुचि है। इस कारण इन दोनों के बीच तुलना करने का विचार मेरे मन में आया। यदि मार्क्सवादी अपने पूर्वाग्रहों को पीछे रखकर बुद्ध का अध्ययन करें और उन बातों को समझें जो उन्होंने कहीं हैं और जिनके लिए उन्होंने संघर्ष किया, तो मुझे यकीन है उनका दृष्टिकोण बदल जाएगा। वास्तव में उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि बुद्ध की हंसी व मजाक उड़ाने का निश्चय करने के बाद वे उनकी प्रार्थना करेंगे। परंतु इतना कहा जा सकता है कि उनको यह महसूस होगा कि बुद्ध की शिक्षाओं व उपदेशों में कुछ ऐसी बात है, जो ध्यान में रखने के योग्य और बहुत लाभप्रद हैं।

बुद्ध का सिंद्धात

बुद्ध का नाम सामान्यतः अहिंसा के सिद्धांत के साथ जोड़ा जाता है। अहिंसा को ही उनकी शिक्षाओं व उपदेशों का समस्त सार माना जाता है। उसे ही उनका प्रारंभ व अंत समझा जाता है। बहुत कम व्यक्ति इस बात को जानते हैं कि बुद्ध ने जो उपदेश दिए, वे बहुत ही व्यापक हैं, अहिंसा से बहुत बढ़ कर हैं। अतएव यह आवश्यक है कि उनके सिद्धांतों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जाए। मैने त्रिपिटक का अध्ययन किया। उस अध्ययन से मैंने जो समझा, मैं आगे उसका उल्लेख कर रहा हूं:

1. मुक्त समाज के लिए धर्म आवश्यक है।
2. प्रत्येक धर्म अंगीकार करने योग्य नहीं होता।
3. धर्म का संबंध जीवन के तथ्यों व वास्तविकताओं से होना चाहिए, ईश्वर या परमात्मा या स्वर्ग या पृथ्वी के संबंध में सिद्धांतों तथा अनुमान मात्र निराधार कल्पना से नहीं होना चाहिए।
4. ईश्वर को धर्म का केंद्र बनाना अनुचित है।
5. आत्मा की मुक्ति या मोक्ष को धर्म का केंद्र बनाना अनुचित है।
6. पशुबलि को धर्म का केंद्र बनाना अनुचित है।
7. वास्तविक धर्म का वास मनुष्य के हृदय में होता है, शास्त्रों में नहीं।
8. धर्म के केंद्र मनुष्य तथा नैतिकता होने चाहिए। यदि नहीं, तो धर्म एक क्रूर अंधविश्वास है।
9. नैतिकता के लिए जीवन का आदर्श होना ही पर्याप्त नहीं है। चूंकि ईश्वर नहीं है, अतः इसे जीवन का नियम या कानून होना चाहिए।
10. धर्म का कार्य विश्व का पुनर्निर्माण करना तथा उसे प्रसन्न रखना है, उसकी उत्पत्ति या उसके अंत की व्याख्या करना नहीं।
11. कि संसार में दुख स्वार्थों के टकराव के कारण होता है, और इसके समाधान का एकमात्र तरीका अष्टांग मार्ग का अनुसरण करना है।
12. कि संपत्ति के निजी स्वामित्व से अधिकार व शक्ति एक वर्ग के हाथ में आ जाती है और दूसरे वर्ग को दुख मिलता है।
13. कि समाज के हित के लिए यह आवश्यक है कि इस दुख का निदान इसके कारण का निरोध करके किया जाए।

14. सभी मानव प्राणी समान हैं।

15. मनुष्य का मापदंड उसका गुण होता है, जन्म नहीं।

16. जो चीज महत्वपूर्ण है वह है उच्च आदर्श, न कि उच्च कुल में जन्म।

17. सबके प्रति मैत्री का साहचर्य व भाईचारे का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए।

18. प्रत्येक व्यक्ति को विद्या प्राप्त करने का अधिकार है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए ज्ञान विद्या की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी भोजन की।

19. अच्छा आचरण-विहीन ज्ञान खतरनाक होता है।

20. कोई भी चीज भ्रमातीत व अचूक नहीं होती। कोई भी चीज सर्वदा बाध्यकारी नहीं होती। प्रत्येक वस्तु छानबीन तथा परीक्षा के अध्यधीन होती है।

21. कोई वस्तु सुनिश्चित तथा अंतिम नहीं होती।

22. प्रत्येक वस्तु कारण–कार्य संबंध के नियम के अधीन होती है।

23. कोई भी वस्तु स्थाई या सनातन नहीं है। प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील होती है। सदैव वस्तुओं में होने का क्रम चलता रहता है।

24. युद्ध यदि सत्य तथा न्याय के लिए न हो, तो वह अनुचित है।

25. पराजित के प्रति विजेता के कर्तव्य होते हैं।

बुद्ध का संक्षिप्त रूप में यही सिद्धांत है। यह कितना प्राचीन, परंतु कितना नवीन है। उनके उपदेश कितने व्यापक तथा कितने गंभीर हैं।

कार्ल मार्क्स का मौलिक सिद्धांत

आईए, अब हम कार्ल मार्क्स द्वारा मौलिक रूप से प्रस्तुत मूल सिद्धांत का विवेचन करें। इसमें संदेह नहीं कि मार्क्स आधुनिक समाजवाद या साम्यवाद का जनक है। परंतु उसकी रुचि केवल समाजवाद के सिद्धांत को प्रतिपादित व प्रस्तुत करने मात्र में ही नहीं थी। यह कार्य तो उससे बहुत पहले ही अन्य लोगों द्वारा कर दिया गया था। मार्क्स की अधिक रुचि इस बात को सिद्ध करने में थी कि उसका समाजवाद वैज्ञानिक है। उसका जिहाद पूंजीपतियों के विरुद्ध जितना था, उतना ही उन लोगों के विरुद्ध भी था, जिन्हें वह स्वप्नदर्शी या अव्यवहारिक समाजवादी कहता था। वह उन दोनों को ही पसंद नहीं करता था। इस बात पर इसलिए ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि मार्क्स अपने समाजवाद के वैज्ञानिक स्वरूप को सबसे अधिक महत्व देता था। जिन सिद्धांतों को मार्क्स

ने प्रस्तुत किया, उनका उद्देश्य कुछ और नहीं, केवल उसके इस दावे व विचारधारा को स्थापित करना था कि उसका समाजवाद वैज्ञानिक प्रकार का था, स्वप्नदर्शी व अव्यावहारिक नहीं।

वैज्ञानिक समाजवाद से कार्ल मार्क्स का यह अभिप्राय था कि उसका समाजवाद अपरिहार्य तथा अनिवार्य प्रकार का था और समाज उसकी ओर अग्रसर हो रहा है तथा उसकी गति को आगे बढ़ने से कोई चीज नहीं रोक सकती। मार्क्स के इस दावे व विचारधारा को सिद्ध करना है, जिसके लिए उसने मुख्य रूप से परिश्रम किया।

मार्क्स की अवधारणा निम्नलिखित प्रमेयों पर आधारित है :

1. दर्शन का उद्देश्य विश्व का पुनर्निमाण करना है, ब्रह्मांड की उत्पत्ति की व्याख्या करना नहीं।
2. जो शक्तियां इतिहास की दिशा को निश्चित करती है, वे मुख्यतः आर्थिक होती हैं।
3. समाज दो वर्गों में विभक्त है—मालिक तथा मजदूर।
4. इन दोनों वर्गों के बीच हमेशा संघर्ष चलता रहता है।
5. मजदूरों का मालिकों द्वारा शोषण किया जाता है। मालिक उस अतिरिक्त मूल्य का दुरुपयोग करते हैं, जो उन्हें अपने मजदूरों के परिश्रम के परिणामस्वरूप मिलता है।
6. उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण, अर्थात व्यक्तिगत संपत्ति का उन्मूलन करके शोषण को समाप्त किया जा सकता है।
7. इस शोषण के फलस्वरूप श्रमिक और अधिकाधिक निर्बल व दरिद्र बनाए जा रहे हैं।
8. श्रमिकों की इस बढ़ती हुई दरिद्रता व निर्बलता के कारण श्रमिकों की क्रांतिकारी भावना उत्पन्न हो रही है और परस्पर विरोध वर्ग–संघर्ष के रूप में बदल रहा है।
9. चूंकि श्रमिकों की संख्या स्वामियों की संख्या से अधिक है, अतः श्रमिकों द्वारा राज्य को हथियाना और अपना शासन स्थापित करना स्वाभाविक है। इसे उसने 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही' के नाम से घोषित किया है।
10. इन तत्वों का प्रतिरोध नहीं किया जा सकता, इसलिए समाजवाद अपरिहार्य है।

मुझे आशा है, मैंने उन विचारों का सही उल्लेख किया है जो मार्क्सवादी समाज के मूल आधार हैं।

मार्क्सवादी सिद्धांत का अस्तित्व

बुद्ध तथा मार्क्स की विचारधाराओं की आपस में तुलना करने से पहले इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि मार्क्सवादी सिद्धांत के मौलिकसंग्रह में सेकितना अस्तित्व रह गया है। इतिहास द्वारा कितनी बातों को असत्य प्रमाणित कर दिया गया है और उसके विरोधियों द्वारा कितना निरर्थक कर दिया है।

मार्क्सवादी सिद्धांत को उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में जिस समय प्रस्तुत किया गया था उसी समय से इसकी काफी आलोचना होती रही है। इस आलोचना के फलस्वरूप कार्ल मार्क्स द्वारा प्रस्तुत विचारधारा का काफी बड़ा ढांचा ध्वस्त हो चुका है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मार्क्स का यह दावा कि उसका समाजवाद अपरिहार्य है, पूर्णतया असत्य सिद्ध हो चुका है। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही सर्वप्रथम 1917 में, उसकी पुस्तक *दास कैपिटल,* समाजवाद का सिद्धांत, के प्रकाशित होने के लगभग सत्तर वर्ष के बाद सिर्फ एक देश में स्थापित हुई थी। यहां तक कि साम्यवाद, जो कि सर्वहारा वर्ग की तानाशाही का दूसरा नाम है, रूस में आया तो यह किसी प्रकार के मानवीय प्रयास के बिना किसी अपरिहार्य वस्तु के रूप में नहीं आया था। वहां एक क्रांति हुई थी और इसके रूस में आने से पहले भारी रक्तपात हुआ था तथा अत्याधिक हिंसा के साथ वहां सोद्देश्य योजना करनी पड़ी थी। शेष विश्व में अभी भी सर्वहारा वर्ग की तानाशाही के आने की प्रतीक्षा की जा रही है। मार्क्सवाद का कहना है कि समाजवाद अपरिहार्य है, उसके इस सिद्धांत के झूठे पड़ जाने के अलावा सूचियों में वर्णित अन्य अनेक विचार भी तर्क तथा अनुभव, दोनों के द्वारा ध्वस्त हो गए हैं। अब कोई भी व्यक्ति इतिहास की आर्थिक व्याख्या को ही इतिहास की केवल एकमात्र परिभाषा स्वीकार नहीं करता। इस बात को कोई स्वीकार नही करता कि सर्वहारा वर्ग को उत्तरोत्तर कंगाल बनाया गया है और यही बात उसके अन्य तर्क के संबंध में भी सही है।

कार्ल मार्क्स के मत में जो बात बच रहती है, वह बची-खुची आग की तरह है जो मात्रा में तो बहुत थोड़ी, लेकिन बहुत ही महत्वपूर्ण होती है—अग्नि के एक पतंगे व अवशेष के समान है। इस रूप में मेरे विचार में ये चार बातें हैं :

1. दर्शन का कार्य विश्व का पुनर्निर्माण करना है, विश्व की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण देने या समझाने में अपने समय को नष्ट करना नहीं।
2. एक वर्ग का दूसरे वर्ग के साथ स्वार्थ व हित का टकराव व उनमें संघर्ष का होना है।
3. संपत्ति के व्यक्तिगत स्वामितत्व से एक वर्ग को शक्ति प्राप्त होती है और दूसरे वर्ग को शोषण के द्वारा दुख पहुंचाया जाता है।
4. समाज की भलाई के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत संपत्ति का उन्मूलन करके, दुख का निराकरण किया जाए।

बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स के बीच तुलना

जो मार्क्सवादी सिद्धांत अस्तित्व में है, उससे कुछ बातों को लेकर अब बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स के बीच तुलना की जा सकती है।

पहली बात पर बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स में पूर्ण सहमति है। उनमें कितनी अधिक सहमति है, इस बात को दर्शाने के लिए मै नीचे बुद्ध तथा पोत्तपाद नामक ब्राह्मण के बीच हुए वार्तालाप के एक अंश को उद्धृत करता हूं–

'इसके बाद उन्हीं शब्दों में पोत्तपाद ने बुद्ध से निम्नलिखित प्रश्न पूछे :

1. क्या संसार शाश्वत नहीं है?

2. क्या संसार सीमित है?

3. क्या संसार असीम है?

4. क्या आत्मा वैसी ही है, जैसा शरीर है?

5. क्या आत्मा एक वस्तु है और शरीर दूसरी?

6. क्या सत्य को पा लेने वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद फिर जन्म लेता है?

7. क्या वह न तो पुनः जन्म लेता है, न मृत्यु के बाद फिर रहता है?

और प्रत्येक प्रश्न का बुद्ध ने एक ही उत्तर दिया, जो इस प्रकार था :

11. 'पोत्तपाद यह भी एक विषय है, जिस पर मैंने कोई मत प्रकट नहीं किया है।'

28. 'परंतु बुद्ध ने उस पर कोई मत प्रकट क्यों नहीं किया है?'

(क्योंकि) 'ये प्रश्न उपयोगी नहीं हैं। उनका संबंध धर्म से नही है, यह सही आचरण के लिए भी सहायक नहीं है, न अनासक्ति, न लालसा व लोभ से शुद्धिकरण, न शांति, न हृदय की शांति, न वास्तविक ज्ञान, न अंतर्ज्ञान की उच्चतर अवस्था, न निर्वाण में सहायक है। अतएव, यही कारण है कि मैं इसके संबंध में कोई विचार प्रकट नहीं करता।'

दूसरी बात के संबंध में मैं नीचे बुद्ध तथा कौशल-नरेश प्रसेनजित के बीच हुए वार्तालाप से एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूं:

'इसके अतिरिक्त राजाओं के बीच, कुलीनों के बीच, ब्राह्मणों के बीच, गृहस्थों के बीच, माता तथा पुत्र के बीच, पुत्र तथा पिता के बीच, भाई तथा बहन के बीच, साथियों तथा साथियों के बीच सदा संघर्ष चलता रहता है।'

यद्यपि ये शब्द प्रसेनजित के हैं, परंतु बुद्ध ने इस बात से इंकार नहीं किया कि यह समाज का सही चित्र प्रस्तुत करता है।

जहां तक वर्ग-संघर्ष के प्रति बुद्ध के दृष्टिकोण का संबंध है, अष्टांग मार्ग का उनका सिद्धांत इस बात को मान्यता देता है कि वर्ग–संघर्ष का अस्तित्व है और यह वर्ग-संघर्ष ही है, जो दुख व दुर्दशा का कारण होता है।

तीसरे प्रश्न के संबंध में मैं बुद्ध तथा पोत्तपाद के वार्तालाप में से उक्त यह अंश उद्धृत करता हूं:

'फिर वह क्या है, जिसका आप महानुभाव ने निश्चय किया है।'

'पोत्तपाद', मैंने यह स्पष्ट किया है कि दुख तथा कष्ट का अस्तित्व है। वे विद्यमान रहते हैं।'

मैंने यह समझाया है कि दुख का मूल व उत्पत्ति क्या है। मैंने यह भी स्पष्ट किया है कि दुख का अंत क्या है, मैंने यह भी स्पष्ट किया है कि वह कौन-सा तरीका है, जिसके द्वारा व्यक्ति दुख का अंत कर सकता है।

30. 'और बुद्ध ने उसके संबंध में यह कथन क्यों किया?'

'पोत्तपाद, क्योंकि वह प्रश्न उपयोगी है, वह धर्म से संबंधित है, वह सही आचरण, अनासक्ति, लालसा व लोभ से त्राण, शांति, हृदय की शांति, वास्तविक ज्ञान, पथ की उच्चतर अवस्था और निर्वाण में सहायक है। इसलिए पोत्तपाद यही कारण है कि मैंने उसके संबंध में कथन किया है।'

यहां शब्द यद्यपि भिन्न हैं, परंतु उनका अर्थ वही है। यदि हम यह समझ लें कि दुख का कारण शोषण है, तब बुद्ध इस विषय में मार्क्स से दूर नहीं हैं। व्यक्तिगत संपत्ति के प्रश्न के संबंध में बुद्ध तथा आनंद के बीच वार्तालाप के निम्नलिखित उदाहरण से पर्याप्त सहायता मिलती है। आनंद द्वारा पूछे गए एक प्रश्न का उत्तर देते हुए बुद्ध ने कहा :

'मैंने कहा है कि धन-लोलुपता संपत्ति के स्वामित्व के कारण होती है। यह ऐसा किस प्रकार है, इस बात को आनंद, इस प्रकार समझा जा सकता है। जहां पर किसी प्रकार की संपत्ति व अधिकार नहीं है, वह चाहे किसी व्यक्ति के द्वारा या किसी भी वस्तु के लिए हो, वहां कोई संपत्ति या अधिकार न होने के कारण संपत्ति की समाप्ति या अधिकार की समाप्ति पर क्या कोई धनलोलुप या लालची दिखाई पड़ेगा?'

'नहीं, प्रभु।'

'तब आनंद, स्वामित्व के आधार, उसकी उत्पत्ति, दुराग्रह का प्रश्न ही कहां होता?'

31. 'मैंने कहा कि दुराग्रह स्वामित्व का मूल है। अब आनंद वह ऐसा किस प्रकार व क्यों है? इसे इस प्रकार समझना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति में किसी वस्तु के संबंध में, वह चाहे जो हो, किसी प्रकार की कोई भी आसक्ति नहीं है तो क्या ऐसा होने पर आसक्ति के अंत होने पर अधिकार या संपत्ति का आभास होगा?'

'नहीं होगा, प्रभु।'

चौथी बात के संबंध में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। भिक्षु संघ के नियम इस विषय में सर्वोत्तम प्रमाण हैं। नियमों के अनुसार एक भिक्षु केवल निम्नलिखित आठ वस्तुओं को ही व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में रख सकता है। इनसे अधिक नहीं। ये आठ वस्तुएं इस प्रकार हैं:

1.2.3. प्रतिदिन पहनने के लिए तीन वस्त्र (त्रिचीवर),

4. कमर में बांधने के लिए एक पेटी (कटिबांधनी),

5. एक भिक्षापात्र,

6. एक उस्तरा (वाति),

7. सुई-धागा, और

8. पानी साफ करने की एक छलनी या छन्ना (अलक्षाधक)।

इसके अलावा एक भिक्षु के लिए सोने या चांदी को प्राप्त करना पूर्णतया निषिद्ध है, क्योंकि इससे यह आशंका होती है कि सोने या चांदी से वह उन आठ वस्तुओं के अलावा, जिनको रखने की उसे अनुमति है, कुछ और वस्तुएं खरीद सकता है।

ये नियम रूस में साम्यवाद में पाए जाने वाले नियमों से बहुत अधिक कठोर हैं।

साधन

अब हम साधनों पर आते हैं। साम्यवाद जिसका प्रतिपादन बुद्ध ने किया, उसे कार्यान्वित करने के लिए साधन भी निश्चित थे। इन साधनों को तीन भागों में रखा जा सकता हैं:

भाग एक– पंचशील का आचरण। बुद्ध ने एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया। यह उन समस्याओं की कुंजी है, जो उनके मन में बार-बार उठा करती थीं।

नए सिद्धांत का आधार यह है कि यह सारा संसार कष्टों और दुखों से भरा हुआ है। यह एक ऐसा तथ्य था जिस पर न केवल ध्यान देना आवश्यक था, बल्कि मुक्ति की किसी भी योजना में इसे प्रथम स्थान देना था। इस तथ्य को मान्य कर बुद्ध ने इसे अपने सिद्धांत का आधार बनाया।

उनका कहना था कि उक्त सिद्धांत को यदि उपयोगी होना है, तो कष्ट तथा दुख का निवारण हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

इस कष्ट तथा दुख के कारण क्या हो सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध ने यह पाया कि इसके कारण केवल दो हो सकते हैं।

मनुष्य के कष्ट तथा दुख उसके अपने ही दुराचरण के फलस्वरूप हो सकते हैं। दुख के इस कारण का निराकरण करने के लिए उन्होंने पंचशील का अनुपालन करने का उपदेश दिया।

पंचशील में निम्नलिखित बातें आती हैं :

1. किसी जीवित वस्तु को न ही नष्ट करना और न ही कष्ट पहुंचाना।
2. चोरी, अर्थात दूसरे की संपत्ति को धोखाधड़ी या हिंसा द्वारा न हथियाना और न उस पर कब्जा करना।
3. झूठ न बोलना।
4. तृष्णा न करना।
5. मादक पदार्थों का सेवन न करना।

बुद्ध का मत है कि संसार में कुछ कष्ट व दुख मनुष्य का मनुष्य के प्रति पक्षपात है। इस पक्षपात का निराकरण किस प्रकार किया जाए? मनुष्य के प्रति मनुष्य के पक्षपात का निराकरण करने के लिए बुद्ध ने आर्य अष्टांग मार्ग निर्धारित किया। इस अष्टांग मार्ग के तत्व इस प्रकार हैं :

1. सम्यक दृष्टि, अर्थात अंधविश्वास से मुक्ति।
2. सम्यक संकल्प जो बुद्धिमान तथा उत्साहपूर्ण व्यक्तियों के योग्य होता है।
3. सम्यक वचन अर्थात दयापूर्ण, स्पष्ट तथा सत्य भाषण।
4. सम्यक आचरण अर्थात शांतिपूर्ण, ईमानदारी तथा शुद्ध आचरण।
5. सम्यक जीविका अर्थात किसी भी जीवधारी को किसी भी प्रकार की

क्षति या चोट न पहुंचाना।

6. अन्य सात बातों में सम्यक् परिरक्षण।

7. सम्यक स्मृति अर्थात एक सक्रिय तथा जागरूक मस्तिष्क, और

8. सम्यक समाधि अर्थात जीवन के गंभीर रहस्यों के संबंध में गंभीर विचार।

इस आर्य : अष्टांग 'मार्ग का उद्देश्य पृथ्वी पर धर्मपरायणता तथा नयायसंगत राज्य की स्थापना करना तथा उसके द्वारा संसार के दुख तथा विषाद को मिटाना है।

सिद्धांत का तीसरा अंग निब्बान का सिद्धांत है। निब्बान का सिद्धांत आर्य 3 अष्टांग मार्ग के सिद्धांत का अभिन्न अंग है। निब्बान के बिना : अष्टांग : मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती।

निब्बान का सिद्धांत यह बताता है कि अष्टांग मार्ग की प्राप्ति के मार्ग में कौन-कौन सी कठिनाइयां आती हैं।

इन कठिनाइयों में से मुख्य कठिनाइयां दस हैं। बुद्ध ने उनको आसव, बेड़ियां या बाधाएं कहा है।

प्रथम बाधा अहम् का मोह है, जब तक व्यक्ति पूर्णतया अपने अहम में रहता है, प्रत्येक भड़कीली चीज क़ा पीछा करता है, जिनके विषय में वह व्यर्थ ही यह सोचता है कि वे उसके हृदय की अभिलाषा की तृप्ति व संतुष्टि कर देंगी, तब तक उसको आर्य मार्ग नहीं मिलता। जब उसकी आंखें इस तथ्य को देखकर खुलती हैं कि वह इस असीम व अनंत का एक बहुत छोटा-सा अंश है, तब वह यह अनुभूति करने लगता है कि उसका व्यक्तिगत अस्तित्व कितना नश्वर है, तभी वह इस संकीर्ण मार्ग में प्रवेश कर सकता है।

दूसरी बाधा संदेह तथा अनिर्णय की स्थिति है। जब मनुष्य अस्त्तिव के महान रहस्य, व्यक्तित्व की नश्वरता को देखता है तो उसके अपने कार्य में भी संदेह तथा अनिर्णय की स्थिति की संभावना होती है, अमुक कार्य किया जाए या न किया जाए, फिर भी मेरा व्यक्तित्व अस्थाई नश्वर है, ऐसी कोई चीज प्रश्न क्यों बन जाती है जो उसे अनिर्णायक, संदेही या निष्क्रिय बना देती है। परंतु वह चीज जीवन में काम नहीं आएगी। उसे अपने शिक्षक का अनुसरण करने, सत्य को स्वीकार करने तथा संघर्ष की शुरुआत करने का निश्चय कर लेना चाहिए, अन्यथा उसे और आगे कुछ नहीं मिलेगा।

तीसरी बाधा संस्कारों तथा धर्मानुष्ठानों की क्षमता पर निर्भर करता है। किसी भी उत्तम संकल्प से वह चाहे जितना दृढ़ हो, किसी चीज की प्राप्ति उस समय तक नहीं होगी, जब तक मनुष्य कर्मकांड से छुटकारा नहीं पाएगा। जब तक वह इस विश्वास से मुक्त नहीं होगा कि कोई बाह्य कार्य, पुरोहिती शक्ति तथा पवित्र धर्मानुष्ठान से उसे

हर प्रकार की सहायता मिल सकती है। जब मनुष्य इस बाधा पर काबू पा लेता है, केवल तभी यह कहा जा सकता है कि वह ठीक धारा में आ गया है और अब देर-सवेर वह विजय प्राप्त कर सकता है।

चौथी बाधा शारीरिक वासनाएं हैं। पांचवीं बाधा दूसरे व्यक्तियों के प्रति द्वेष व वैमनस्य की भावना है। छठी भौतिक वस्तुओं से मुक्त भावी जीवन के प्रति इच्छा का दमन है, और सातवीं भौतिकता से मुक्त संसार में भावी जीवन के प्रति इच्छा का होना है। आठवीं बाधा अभिमान है, और नवीं दंभ है। ये वे कमजोरियां हैं, जिन पर मनुष्य के लिए विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है और जिनके लिए विशेष रूप से श्रेष्ठ व्यक्ति उत्तरदायी हैं। यह उन लोगों के लिए निंदा की बात है, जो अपने-आप से कम योग्य तथा कम पवित्र हैं।

दसवीं बाधा अज्ञानता है। यद्यपि अन्य सब कठिनाइयों व बाधाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है, फिर भी यह बनी ही रहेगी, बुद्धिमान तथा अच्छे व्यक्ति के शरीर में कांटे के समान चुभती रहेगी। यह मनुष्य की अंतिम तथा सबसे बड़ी शत्रु है।

आर्य अष्टांग मार्ग का अनुसरण करके इन बाधाओं पर विजय प्राप्त करना ही निब्बान है। आर्य अष्टांग मार्ग सिद्धांत यह बताता है कि मनुष्य का मन की कौन–सी स्थिति व मनोवृत्ति का परिश्रमपूर्वक पोषण करना चाहिए। निब्बान का सिद्धांत उस प्रलोभन या बाधा के विषय में बाताता है, जिस पर यदि व्यक्ति आर्य अष्टांग मार्ग का अनुसरण करना चाहता है तो उन पर गंभीरतापूर्वक विजय प्राप्त करनी चाहिए। नवीन सिद्धांत का चौथा भाग परिमिता का सिद्धांत है। परिमिता का सिद्धांत एक व्यक्ति के दैनिक जीवन में दस गुणों का आचरण करने के लिए प्रेरित करता है। वे दस गुण इस प्रकार है।

(1) पन्न, (2) शील, (3) नेक्खम, (4) दान, (5) वीर्य, (6) खांति (शांति), (7) सच्च, (8) अधित्थान, (9) मेत्त, और (10) उपेक्खा।

पन्न या बुद्धि वह प्रकाश है जो अविद्या, मोह या अज्ञान के अंधकार को हटाता है। पन्न के लिए यह अपेक्षित है कि व्यक्ति अपने से अधिक बुद्धिमान व्यक्ति से पूछकर अपनी सभी शंकाओं का समाधान कर ले, बुद्धिमान लोगों से संबंध रखे और विभिन्न कलाओं और विज्ञान का अर्जन करे, जो उसकी बुद्धि विकसित होने में सहायक हों। शील नैतिक मनोवृत्ति अर्थात.बुरा न करने और अच्छा करने की मनोवृत्ति, गलत काम करने पर लज्जित होना है। दंड के भय से बुरा काम न करना शील है। शील का अर्थ है, गलत काम करने का भय। नेक्खम संसार के सुखों का परित्याग है।

दान का अर्थ अपनी संपत्ति, रक्त तथा अंग का उसके बदले में किसी चीज

की आशा किए बिना, दूसरों के हित व भलाई के लिए अपने जीवन तक को भी उत्सर्ग करना है।

वीर्य का अर्थ है, सम्यक प्रयास। आपने जो कार्य करने का निश्चय कर लिया है, उसे पूरी शक्ति से कभी भी पीछे मुड़कर देखे बिना करना है।

खांति (शांति) का अभिप्राय सहिष्णुता है। इसका सार है कि घृणा का मुकाबला घृणा से नहीं करना चाहिए क्योंकि घृणा, घृणा से शांत महीं होती। इसे केवल सहिष्णुता द्वारा ही शांत किया जाता है।

सच्च (सत्य) सच्चाई है। बुद्ध बनने का आकांक्षी कभी भी झूठ नहीं बोलता। उसका वचन सत्य होता है। सत्य के अलावा कुछ नहीं होता।

अधित्थान अपने लक्ष्य तक पहुंचने के दृढ़ संकल्प को कहते हैं।

मेत्त (मैत्री) सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति की भावना है, चाहे कोई शत्रु हो या मित्र, पशु हो या मनुष्य, सभी के प्रति होती है।

उपेक्खा अनासक्ति है, जो उदासीनता से भिन्न होती है। यह मन की वह अवस्था है, जिसमें न तो किसी वस्तु के प्रति रुचि होती है, परिणाम से विचलित व अनुतेजित हुए बिना उसकी खोज व प्राप्ति में लगे रहना ही उपेक्खा है।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह इन गुणों को अपनी पूर्ण सामर्थ्य के साथ अपने व्यवहार में अपनाए। इन पर आचरण करे। यही कारण है कि इन्हें परिमिता (पूर्णता की स्थिति) कहा जाता है। यही वह सिद्धांत है, जिसे बुद्ध ने संसार में दुख तथा क्लेश की समाप्ति के लिए अपने बोध व ज्ञान के परिणामस्वरूप प्रातिपादित किया है।

स्पष्ट है कि बुद्ध ने जो साधन अपनाए, वे स्वेच्छापूर्वक अनुसरण करके मनुष्य की नैतिक मनोवृत्ति को परिवर्तित करने के लिए थे।

साम्यवादियों द्वारा अपनाए गए साधन भी इसी भांति स्पष्ट, संक्षिप्त तथा स्फूर्तिपूर्ण हैं। ये हैः (1) हिंसा, और (2) सर्वहारा वर्ग की तानाशाही।

साम्यवादी कहते हैं कि साम्यवाद को स्थापित करने के केवल दो साधन हैं, पहला है हिंसा। वर्तमान व्यवस्था को भंग करने व तोड़ने के लिए इससे कम कोई भी कार्य या योजना पर्याप्त नहीं होगी। दूसरा साधन है, सर्वहारा वर्ग की तानाशाही। नई व्यवस्था को जारी रखने के लए उससे कम कोई चीज पर्याप्त नहीं होगी।

स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध तथा कार्ल मार्क्स में क्या समानताएं हैं तथा क्या विषमताएं है। अंतर व विषमता साधनों के विषय में है। साध्य दोनों में समान हैं।

साधनों का मूल्यांकन

अब हमें साधनों के मूल्यांकन का विवेचन करना चाहिए। हमें इस बात को देखना चाहिए कि किसके साधन श्रेष्ठ तथा दीर्घ काल तक ठहरने व स्थाई बने रहने वाले हैं। किंतु दोनों ओर कुछ भ्रातियां हैं। उनको स्पष्ट करना आवश्यक है।

हिंसा को लीजिए। जहां तक हिंसा का संबंध है,हिंसा का नाम सुनते ही उसके विचार से बहुत से लोगों को कंपकंपी आ जाएगी। परंतु यह केवल भावुकता है। हिंसा का पूर्णतया त्याग नहीं किया जा सकता। यहां तक कि गैर-साम्यवादी देशों में भी हत्यारे को फांसी पर लटकाया जाता है। क्या फांसी पर लटकाना हिंसा नहीं है? गैर-साम्यवादी देश एक-दूसरे के साथ युद्ध करते हैं। युद्ध में लाखों लोग मारे जाते हैं। क्या यह हिंसा नहीं है? यदि एक हत्यारे को इसलिए मारा जा सकता है, क्योंकि उसने एक नागरिक को मारा है, उसकी हत्या की है, यदि एक सिपाही को युद्ध में इसलिए मारा जा सकता है, क्योंकि वह शत्रु-राष्ट्र से संबंधित है, तो यदि संपत्ति का स्वामी स्वामित्व के कारण शेष मानव-जाति को दुख पहुंचाता है, तो उसे क्यों नहीं मारा जा सकता? संपत्ति के स्वामी के लिए उसके पक्ष में बचाव करने का कोई कारण नहीं है। व्यक्तिगत संपत्ति को परमपावन क्यों माना जाना चहिए?

बुद्ध हिंसा के विरुद्ध थे। परंतु वह न्याय के पक्ष में भी थे और जहां पर न्याय के लिए बल प्रयोग अपेक्षित होता है, वहां उन्होंने बल प्रयोग करने की अनुमति दी है। यह बात वैशाली के सेनाध्यक्ष सिंहा सेनापति के साथ उनके वार्तालाप में भलीभांति सोदाहरण समझाई गई है। इस बात को जानने के बाद कि बुद्ध अहिंसा का प्रचार करते हैं, सिंहा उनके पास गया और उनसे पूछा:

> "भगवन अहिंसा का उपदेश देते व प्रचार करते हैं क्या भगवन एक दोषी को दंड से मुक्त करने व स्वतंत्रता देने का उपदेश देते व प्रचार करते हैं? क्या भगवन यह उपदेश देते हैं कि हमें अपनी पत्नियों, अपने बच्चों तथा अपनी संपत्ति को बचाने के लिए, उनकी रक्षा करने के लिए युद्ध नहीं करना चाहिए? क्या अहिंसा के नाम पर हमें अपराधियों के हाथों कष्ट झेलते रहना चाहिए। क्या तथागत उस समय भी युद्ध का निषेध करते है, जब वह सत्य तथा न्याय के हित में हो?"

बुद्ध ने उत्तर दिया:

"मैं जिस बात का प्रचार करता हूं व उपदेश देता हूं, आपने उसे गलत ढंग से में समझा है। एक अपराधी व दोषी को दंड अवश्य दिया जाना चाहिए। और एक निर्दोष व्यक्ति को मुक्त व स्वतंत्र कर दिया जाना चाहिए। यदि एक दंडाधिकारी एक

एक अपराधी को दंड देता है, तो यह दंडाधिकारी का दोष नहीं है। दंड का कारण अपराधी का दोष व अपराध होता है। जो दंडाधिकारी दंड देता है, वह न्याय का ही पालन कर रहा होता है। उस पर अहिंसा का कलंक नहीं लगता। जो व्यक्ति न्याय तथा सुरक्षा के लिए लड़ता है, उसे अहिंसा का दोषी नहीं बनाया जा सकता। यदि शांति बनाए रखने के सभी साधन असफल हो गए हों, तो हिंसा का उत्तरदायित्व उस व्यक्ति पर आ जाता है, जो युद्ध को शुरु करता है। व्यक्ति को दुष्ट शक्तियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करना चाहिए। यहां युद्ध हो सकता है। परंतु यह स्वार्थ की या स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों की शर्तों के लिए नहीं होना चाहिए।"

इसमें संदेह नहीं कि हिंसा के विरुद्ध अन्य ऐसे आधार भी हैं, जिन पर प्रो० जॉन डिवी द्वारा बल दिया गया है। जिन लोगों का यह तर्क है कि साध्यों की सफलता साधन को उचित सिद्ध करती है, तो यह नैतिक रूप से एक विकृत सिद्धांत है, उनसे डिवी ने यह ठीक ही पूछा है कि यदि साध्य नहीं, तो फिर साधनों को कौन-सी चीज उचित सिद्ध करती है? केवल साध्य ही साधनों को उचित सिद्ध कर सकता व न्यायोचित ठहरा सकता है। बुद्ध कदाचित इस बात को स्वीकार कर लेते हैं कि यह केवल साध्य ही है, जो साधनों को उचित सिद्ध करता है। इसके अलावा और क्या चीज उचित सिद्ध कर सकती है। और उन्होंने यह कहा होता कि यदि साध्य हिंसा को उचित ठहराता है, तो प्रत्यक्ष उपस्थित की पूर्ति साध्य के लिए हिंसा एक उचित साधन है। यदि बल -प्रयोग साध्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन होता, तो वह निश्चय ही संपत्ति के स्वामियों को बल का प्रयोग करने की छूट न देते। इससे पता चलता है कि साध्य के लिए उनके साधन भिन्न थे। प्रो० डिवी ने कहा है कि हिंसा बल-प्रयोग का केवल एक दूसरा नाम है और यद्यपि बल का प्रयोग सृजनात्मक उद्देश्यों के लिए किया जाना चाहिए, परंतु शक्ति के रूप में बल-प्रयोग तथा हिंसा के रूप में बल–प्रयोग के बीच अंतर समझाना आवश्यक है। एक साध्य की उपलब्धि में अन्य अनेक साध्यों का विनाश शामिल होता है, जो उस साध्य से अभिन्न होते हैं, जिसे नष्ट करने का प्रयास किया जाता है। बल-प्रयोग को इस प्रकार नियमित करना चाहिए कि वह अनिष्टकर साध्य को नष्ट करने की प्रक्रिया में यथासंभव अधिक से अधिक साध्यों की रक्षा कर सके। बुद्ध की अहिंसा उतनी निरपेक्ष नहीं थी, जितनी जैन मत के संस्थापक महावीर की अहिंसा थी। उन्होंने केवल शक्ति के रूप में बल–प्रयोग की अनुमति दी होगी। साम्यवादी हिंसा का प्रतिपादन एक निरपेक्ष सिद्धांत के रूप में करते हैं। बुद्ध इसके घोर विरोधी थे।

जहां तक तानाशाही का संबंध है, बुद्ध इसका बिल्कुल समर्थन नहीं करते। वह लोकतंत्रवादी के रूप में पैदा हुए थे और लोकतंत्रवादी के रूप में ही मरे। उनके समय

में चौदह राजतंत्रीय राज्य थे और चार गणराज्य थे। वह शाक्य थे और शाक्यों का राज्य एक गणराज्य था। उन्हें वैशाली से अत्यंत अनुराग था, जो उनका द्वितीय घर था, क्योंकि वह एक गणराज्य था। उन्होंने महानिर्वाण से पूर्व अपना वर्षावास वैशाली में व्यतीत किया था। अपने वर्षावास के पूरा हो जाने के बाद उन्होंने वैशाली को छोड़कर कहीं और जाने का निश्चय किया, जैसी उनकी आदत थी। कुछ दूर जाने के बाद, उन्होंने मुड़कर वैशाली की ओर देखा और फिर आनंद से कहा, 'तथागत वैशाली के अंतिम बार दर्शन कर रहे हैं।' उससे पता चलता है कि इस गणराज्य के प्रति उनका कितना लगाव व प्रेम था।

वह पूर्णतः समतावादी थे। भिक्षु और स्वयं बुद्ध भी मूलतः जीर्ण-शीर्ण-वस्त्र (चीवर) पहनते थे। इस नियम को इसलिए प्रतिपादित किया गया था, ताकि कुलीन वर्ग के लोगों को संघ में शामिल होने से रोका जा सके। बाद में जीवक नामक एक प्रसिद्ध वैद्य ने अनुनय कर बुद्ध को थान से निर्मित वस्त्र को स्वीकार करने के लिए सहमत कर लिया। बुद्ध ने मूल नियम को तुरंत बदल दिया और उसे सब भिक्षुओं के लिए भी लागू कर दिया।

एक बार बुद्ध की मां महाप्रजापति गौतमी ने, जो भिक्षुणी संघ में शामिल हो गई थीं, सुना कि बुद्ध को सर्दी लग गई है। उन्होंने उनके लिए एक गुलूबंद तैयार करना तुरंत शुरू कर दिया। इसे पूरा करने के बाद वह उसे बुद्ध के पास ले गईं और उसे पहनने के लिए कहा। परंतु उन्होंने यह कहकर इसे स्वीकार करने से इंकार कर दिया कि यदि यह एक उपहार है, तो उपहार समूचे संघ के लिए होना चाहिए, संघ के एक सदस्य के लिए नहीं। उन्होंने बहुत अनुनय-विनय की, परंतु उन्होंने (बुद्ध ने) उसे स्वीकार करने से इंकार कर दिया, वह बिल्कुल नहीं माने।

भिक्षु संघ का संविधान सबसे अधिक लोकतंत्रात्मक संविधान था। वह इन भिक्षुओं में से केवल भिक्षु थे। अधिक से अधिक वह मंत्रिमंडल के सदस्यों के बीच एक प्रधानमंत्री के समान थे। वह तानाशाह कभी नहीं थे। उनकी मृत्यु से पहले उनको दो बार कहा गया कि वह संघ पर नियंत्रण रखने के लिए किसी व्यक्ति को संघ का प्रमुख नियुक्त कर दें। परंतु हर बार उन्होंने यह कहकर इंकार कर दिया कि धम्म संघ का सर्वोच्च सेनापति है। उन्होंने तानाशाह बनने और तानाशाह नियुक्त करने से इंकार कर दिया।

साधनों का मूल्य क्या है? किसके साधन अंततः श्रेष्ठ तथा स्थाई हैं?

क्या साम्यवादी यह कह सकते हैं कि अपने मूल्यवान साध्य को प्राप्त करने में उन्होंने अन्य मूल्यवान साध्यों को नष्ट नहीं किया है? उन्होंने निजी व्यक्तिगत संपत्ति को नष्ट किया है। यह मानकर कि यह एक मूल्यवान साध्य है, क्या साम्यवादी यह कह सकते हैं कि उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया में उन्होंने अन्य मूल्यवान साध्यों को नष्ट नहीं किया है? अपने साध्य व लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने कितने लोगों की हत्या की है?

क्या मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं है? क्या वे संपत्ति को उसके स्वामी का जीवन लिए बिना उससे नहीं ले सकते?

तानाशाही को लीजिए। तानाशाही का साध्य व लक्ष्य क्रांति को एक स्थाई क्रांति बनाना होता है। यह एक मूल्यवान साध्य है। परंतु क्या साम्यवादी यह कह सकते है। कि इस साध्य को उपलब्ध करने के लिए उन्होंने अन्य मूल्यवान साध्यों को नष्ट नहीं किया है? तानाशाही के बारे में यह कहा गया है कि इसमें स्वतंत्रता और संसदीय सरकार का प्रायः अभाव होता है, अर्थात दोनों व्याख्याएं पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। स्वतंत्रता का अभाव तो संसदीय सरकार में भी होता है, क्योंकि कानून का अभिप्राय होता है, स्वतंत्रता का अभाव। इसी में तानाशाही तथा संसदीय सरकार का अंतर निहित है। संसदीय सरकार में प्रत्येक नागरिक को अपनी स्वतंत्रता पर सरकार द्वारा थोपे गए बंधनों की आलोचना करने का पूरा अधिकार होता है। संसदीय सरकार में आपके कुछ कर्तव्य तथा कुछ अधिकार होते है। आपका कर्तव्य है कि आप कानून का पालन करें और यह अधिकार हैं कि उसकी आलोचना करें। तानाशाही में आपका केवल कर्तव्य होता है कि आप कानून का पालन करें, परंतु आपको उसकी आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं होता है।

किसके साधन अधिक प्रभावोत्पादक व अमोघ हैं

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि किसके साधन अधिक टिकाऊ तथा स्थाई हैं। हमें बल प्रयोग तथा नैतिक प्रवृत्ति पर आधारित सरकार के बीच चयन करना होगा।

बर्क ने कहा है कि बल–प्रयोग स्थाई साधन नहीं हो सकता। अमरीका के साथ सहमति के संबंध में उसने यह अविस्मरणीय चेतावनी दी थी:

> "महादेय, पहले मुझे यह बात कहने की अनुमति दीजिए कि एकमात्र बल का प्रयोग केवल अस्थाई होता है। यह कुछ समय के लिए किसी को वश में ला सकता है, परंतु यह उसे पुनः वश में करने की आवश्यकता को समाप्त नहीं करता। और किसी भी ऐसे राष्ट्र पर शासन नहीं किया जा सकता जिस पर बार-बार विजय के लिए चढ़ाई करनी पड़े।"
>
> "मेरी अगली आपत्ति इसकी अनिश्चितता के संबंध में है। बल-प्रयोग का परिणाम हमेशा आतंक नहीं होता और युद्ध–सामग्री विजय नहीं होती। आप साधन-विहीन हैं, क्योंकि समझौता असफल होने पर बल बना रहता है। परंतु यदि बल-प्रयोग असफल हो जाए, तो समझौते की कोई आशा नहीं रहती। शक्ति तथा सत्ता कभी कभी दया से भी प्राप्त की जा सकती है। परंतु अशक्त तथा पराजित हिंसा के द्वारा उसकी कभी भीख नहीं मांगी जा सकती।
>
> "बल–प्रयोग के बारे में मेरी अगली आपत्ति यह है कि आप अपने लक्ष्य को

अपने ही प्रयत्नों से धूल-धूसरित कर देते हैं, जो आप उसे अक्षत बनाने के लिए करते हैं। आपने जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पहले संघर्ष किया था, वह आपको पुनः मिल तो जाता है, लेकिन वह इस कारण तुच्छ, गलित, अपशिष्ट और छीनी हुई वस्तु सरीखा होता है।"

बुद्ध ने भिक्षुओं को अपने एक प्रवचन में न्यायसंगत शासन तथा कानून के शासन के बीच अंतर दर्शाया है। भिक्षुओं को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा:

(2) बंधुओं, बहुत समय पहले स्त्रात्रय (स्ट्रांग टायर) नामक एक प्रभुसत्ता संपन्न अधिपति था। वह एक ऐसा राजा था, जो धर्मपरायणता से शासन करता था। वह पृथ्वी की चारों दिशाओं का स्वामी, विजेता तथा अपनी जनता का रक्षक था। उसके पास दिव्य चक्र था। वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर परमाधिकार पूर्वक रहता था। उसने इस पर विजय प्राप्त की थी, साहस से नहीं, तलवार से नहीं, बल्कि धर्मपरायणता से।

(3) अब बंधुओं, बहुत वर्षों के बाद, सैंकड़ों वर्षों के बाद, मनु के हजार वर्षों बाद, राजा स्त्रात्रय ने किसी व्यक्ति को आदेश दिया और यह कहा कि 'महोदय, आप यह देखें कि दिव्य चक्र थोड़ा-सा धस गया है, वह अपने स्थान से नीचे की ओर सरक गया है। इसके विषय में आप मुझे आकर बताइए।'

सैंकड़ों वर्षों के बाद वह अपने स्थान से सरक गया। इसे देखने के बाद वह व्यक्ति राजा स्त्रात्रय के पास गया और कहा– 'महाराज, यह सच मानिए कि दिव्य चक्र धंस गया है, वह अपने स्थान से सरक गया है।'

बंधुओं, राजा स्त्रात्रय ने अपने बड़े राजकुमार को बुलाया और उससे इस प्रकार कहा : 'प्रिय पुत्र, देखो, मेरा दिव्य चक्र थोड़ा-सा धंस गया है। वह अपने स्थान से सरक गया है। मुझे यह बताया गया है कि चक्र को घुमाने वाले राजा का दिव्य चक्र जब धंस या झुक जाएगा, वह अपने स्थान से सरक जाएगा, तब वह राजा और अधिक समय तक जीवित नहीं रहेगा। मैंने मानव-जीवन के सब सुख व आनंद भोग लिए हैं, अब ईश्वरीय आनंद की खोज करने का समय है। प्रिय पुत्र, आओ, तुम महासागर से घिरी इस पृथ्वी का कार्यभार संभालो। परंतु मैं अपने सिर व दाढ़ी का मुंडन कराकर तथा पीले वस्त्र पहनकर घर को छोड़कर यहां से गृह-विहीन हो जाऊंगा।'

इस प्रकार, बंधुओ, राजा स्त्रात्रय ने उपयुक्त ढंग से अपने बड़े पुत्र को सिंहासन पर बिठा दिया। अपने सिर तथा दाढ़ी का मुंडन कराया, पीले वस्त्र पहने और वह उसी समय गृह-विहीन हो गया। जब वह राजा संन्यासी होकर चला गया, 'तब

उसके सातवें दिन दिव्य चक्र भी लुप्त हो गया।

(4) तब कोई व्यक्ति नए राजा के पास गया और उसे बताया, महाराज, आप यह सच मानिए, दिव्य चक्र वास्तव में लुप्त हो गया है।'

इसके बाद, बंधुओं, वह राजा इस बात को सुनकर शोक संतप्त, दुखी एवं विक्षुब्ध हो गया। वह संन्यासी राजा के पास गया और उसको यह बताया : 'महाराज, यह सही जानिए कि दिव्य चक्र लुप्त हो गया है।'

'और उस नए अभिषिक्त राजा के यह कहने पर, संन्यासी राजा ने उत्तर दिया—प्रिय पुत्र, तुम अब इस बात पर दुखी मत हो कि दिव्य चक्र लुप्त हो गया है, और न इस बात पर विषाद करो, क्योंकि प्रिय पुत्र, दिव्य चक्र तुम्हारी कोई पैतृक संपत्ति नहीं है। परंतु, प्रिय पुत्र, चक्र प्रवर्तक बनने का प्रयत्न करो (संसार में सच्चे राजाओं ने अपने लिए जो आदर्श, कर्तव्य स्वयं निर्धारित किए है, तुम उन आदर्शों के अनुसार कार्य करो)। फिर हो सकता है कि अगर तुम चक्र प्रवर्तक राजा के श्रेष्ठ कर्तव्य कर रहे होंगे, तब चंद्र पर्व के दिन जब तुम स्नान कर सबसे ऊपर वाले छज्जे पर चंद्र दर्शन के लिए जाओ, तब दिव्य चक्र अपने सहस्त्रों अरो, चक्रनाभि तथा अपने संपूर्ण अवयवों के साथ पूर्ण रूप में प्रकट हो जाएगा।'

(5) 'किंतु महाराज, चक्र-प्रवर्तक राजा का आर्य श्रेष्ठ कर्तव्य क्या है?'

'प्रिय पुत्र, यह कर्तव्य यह है कि आदर्श, सत्य तथा धर्मपरायणता के नियम को सामने रख उसको सम्मान, सत्कार तथा आदर प्रदान कर, उसके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर, श्रद्धापूर्वक स्वयं आदर्श बन, आदर्श को अपना स्वामी मानकर, अपनी जनता, सेना विद्वान वर्ग के लोगों, सेवकों तथा आश्रितों, ब्राह्मणों तथा ग्रहस्थों नगर तथा ग्रामवासियों धार्मिक लोगों तथा पशु पक्षियों को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए और उनकी अच्छी प्रकार से रखवाली तथा देख–रेख करनी चाहिए। तुम्हारे समूचे राज्य में कोई भी काम गलत व अनुचित नहीं होना चाहिए और तुम्हारे राज्य में जो भी व्यक्ति निर्धन है, उसको धन दिया जाए।

'और, प्रिय पुत्र, तुम्हारे राज्य में धार्मिक व्यक्ति, स्वस्थ व्यक्ति तथा सहिष्णु व्यक्ति, और स्वार्थहीन व्यक्ति और आत्म रक्षा करने वाला व्यक्ति, जब समय–समय पर तुम्हारे पास आए और वह पूछे कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है, क्या अपराध है और क्या नहीं, क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, सुख–दुख के लिए अंततोगत्वा कौन सी कार्यप्रणाली सफल होगी? जब वह उक्त प्रकार के प्रश्न करे, तब तुम्हें उसकी बात सुननी चाहिए और तुम्हें उनको बुराई व पाप से रोकना चाहिए और उनको जो अच्छे काम हैं, करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। प्रिय

पुत्र, संसार के राजा का यह ही आर्य कर्तव्य है।'

अभिषिक्त राजा ने कहा, 'ऐसा ही होगा।' उसने आज्ञा का पालन करते हुए राजा के श्रेष्ठ कर्तव्य का पालन किया। इस प्रकार आचरण करते हुए वह चंद्र पर्व पर, स्नान कर, अनुष्ठान करने के लिए सबसे ऊपरी छज्जे पर गया, तो दिव्य चक्र अपने सहस्त्रों अरों (स्पोक्स), चक्रनाभि तथा अपने संपूर्ण अवयवों सहित प्रकट हुआ। उसे देखकर राजा के मन में आया, 'मुझे यह बताया गया है कि जिस राजा के समक्ष ऐसे अवसर पर यदि दिव्य चक्र स्वयं पूर्ण रूप में प्रकट होता है, तो वह राजा चक्र प्रर्वतक प्रभुता संपन्न राजा हो जाता है। मैं भी संसार का सर्व-प्रभुत्व संपन्न राजा बन सकता हूं।'

(6) इसके बाद बंधुओ, वह राजा अपने स्थान से उठा और उसने अपने एक कंधे से वस्त्र हटाकर अपने बाएं हाथ में एक घड़ा लिया और अपने दाएं हाथ से चक्र पर जल छिड़का और यह कहा, 'हे दिव्य चक्र! आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।'

फिर बंधुओ, दिव्य चक्र पूर्व दिशा की ओर बढ़ा और इसके बाद वह चक्र प्रर्वतक राजा उसके पीछे-पीछे, उसके साथ उसकी सेना, अश्व, रथ तथा हाथी और मनुष्य गए। जिस भी स्थान पर, बंधुओं, वह चक्र रुका, उसी स्थान पर, वह राजा युद्ध में विजयी हुआ। उस राजा ने तथा उसके साथ उसकी चतुरंगिनी सेना ने वहीं अपना आवास बनाया। इसके बाद उस प्रदेश के अन्य प्रतिद्वंद्वी राजा उस चक्रवर्ती राजा के पास आए और उससे कहा, 'आइए, हे महान राजन। आपका स्वागत है, यहां सब कुछ आपका है, हमें शिक्षा दीजिए।'

उस चक्रवर्ती राजा एवं योद्धा ने इस प्रकार कहा, 'आप किसी प्राणी की हत्या नहीं करेंगे। जो आपको नहीं दिया गया है, आप उसे नहीं लेंगे। आप इच्छाओं के गलत व अनुचित कार्य नहीं करेंगे। आप झूठ नहीं बोलेंगे। आप कोई मादक पेय नहीं पिएंगे। आप अपनी संपत्ति व अधिकारों का उसी प्रकार प्रयोग न करें, जैसा कि आप अभ्यस्त हैं।'

(7) इसके बाद, बंधुओं, दिव्य चक्र पूर्वी महासागर में डुबकी लगाकर बाहर निकला और फिर दक्षिण प्रदेश की ओर बढ़ा (और यहां सब कुछ उसी प्रकार, वैसा ही हुआ जैसा पूर्व प्रदेश में हुआ था)। और उसी भांति दक्षिणी महासागर में डुबकी लगाकर दिव्य चक्र पुनः बाहर निकला और पश्चिम प्रदेश की ओर आगे बढ़ा और फिर उत्तरी प्रदेश की ओर बढ़ा, और वहां भी वही सब बातें हुई, जो दक्षिणी तथा पश्चिम प्रदेश में हुई थीं।

इसके बाद जब दिव्य चक्र संपूर्ण पृथ्वी पर, महासागर की सीमा तक विजय

पताका फहराता हुआ घूम चुका, तो वह राजसी नगर में वापस आया और रुक गया, ताकि उसे चक्र-प्रवर्तक राजा के आंतरिक कमरों में प्रवेश द्वार पर न्याय कक्ष के सामने स्थित करने के संबंध में विचार किया जा सके, जिससे वह विश्व के अधिपति, प्रभुसत्ता संपन्न राजा के आंतरिक कमरों के सामने अपने गौरव के साथ चमकता रहे।

(8) और बंधुओ, एक दूसरा राजा भी चक्र प्रर्वतक हुआ, और तीसरा और चौथा राजा, और पांचवां तथा छठा, और सातवां राजा एक विजेता योद्धा बहुत सालों बाद, कई सौ सालों के बाद, हजारों सालों के बाद, किसी व्यक्ति को यह कहकर आदेश देता है कि 'यदि आपको यह दिखाई पड़े कि दिव्य चक्र नीचे धंस गया है, अपने स्थान से खिसक गया है, तो मुझे आकर बताओ।'

'बहुत अच्छा, महाराज।' उस मनुष्य ने उत्तर दिया। इस प्रकार बहुत सालों के बाद, कई सौ सालों के बाद, हजारों सालों के बाद एक व्यक्ति ने देखा कि दिव्य चक्र धंस गया है, वह अपने स्थान से खिसक गया है। ऐसा देखकर वह वीर राजा के पास गया और उसको बताया। फिर उस राजा ने वैसा ही किया, जैसा कि स्त्रात्रय ने किया था। और राजा के संन्यासी हो जाने के सातवें दिन दिव्य चक्र लुप्त हो गया।

फिर कोई व्यक्ति राजा के पास गया और उससे जाकर कहा। वह राजा चक्र के लुप्त हो जाने पर दुखी हुआ और शोक से पीड़ित हुआ। परंतु वह राजा प्रभुसत्ता संपन्न, अधिपति के श्रेष्ठ कर्तव्य के संबंध में पूछने के लिए संन्यासी राजा के पास नहीं गया, बल्कि अपने विचार से ही, निशंक होकर जनता पर अपना शासन चलाता रहा। लोगों पर उसका शासन पहले शासन से अलग प्रकार का था। प्रभुसत्ता संपन्न राजा के आर्य श्रेष्ठ कर्तव्य का पालन करने वाले, पूर्ववर्ती राजाओं के शासन में वे जिस प्रकार से समृद्धिशाली थे, उस प्रकार इस राजा के शासन में समृद्ध नहीं रहे।

फिर, बंधुओ, मंत्री तथा दरबारी, वित्त अधिकारी, रक्षक व पहरेदार, द्वारपाल तथा धर्मिक अनुष्ठान करने वाले, सभी व्यक्ति मिलकर राजा के पास आए और उससे इस प्रकार बोले :– 'हे राजन, आप अपनी जनता पर शासन अपने विचारों के अनुसार करते हैं जो उस शासन-विधि से भिन्न है, जिस विधि से आपके पूर्ववर्ती राजा, आर्य (श्रेष्ठ) कर्तव्य का पालन करते हुए किया करते थे, अतः आपके इस शासन में आपकी जनता समृद्ध नहीं है। अब आपके राज्य में मंत्री तथा दरबारी, वित्त अधिकारी, रक्षा तथा अभिरक्षक एवं धार्मिक अनुष्ठान करने वाले हम दोनों तथा अन्य लोग हैं, जिन्हें प्रभुसत्ता-संपन्न राजा के आर्य (श्रेष्ठ) कर्तव्य का ज्ञान व जानकारी है। हे राजन, आप उसके संबंध में हमसे पूछिए। आपके पूछने पर हम उसे आपको बताएंगे।'

(9) इसके बाद, बंधुओ, उस राजा ने मंत्रियों तथा उन सभी शेष लोगों को

एक साथ बिठाया, उनसे प्रभुसत्ता-संपन्न शूरवीर राजा के श्रेष्ठ कर्तव्य के सबध में पूछा और उन्होंने उसे बताया। जब उसने उनकी बात सुन ली तो उसने उनको उचित सावधानी तथा निगरानी व अभिरक्षा प्रदान की, परंतु उसने दीनहीन व असहाय लोगों को धन प्रदान नहीं किया और चूंकि यह नहीं किया गया, इसलिए दरिद्रता व निर्धनता व्यापक रूप में फैल गई।

इस प्रकार जब निर्धनता भरपूर व प्रचुर मात्रा में फैल गई, तो किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति की चीज उठा ली, जो उसे दूसरे व्यक्ति ने नहीं दी थी। उसे लोगों ने पकड़ लिया और राजा के सामने प्रस्तुत किया। उन्होंने राजा से कहा, ' हे महाराज, इस व्यक्ति ने वह चीज उठा ली है जो उसे नहीं दी गई थी और ऐसा करना चोरी है।'

इस बात को सुनकर राजा ने उस व्यक्ति से इस प्रकार कहा: 'क्या यह सच है कि जो चीज तुम्हें किसी व्यक्ति ने नहीं दी, तुमने उसे उठाया है। क्या तुमने वह काम किया है, जिसे लोग चोरी कहते हैं।' 'महाराज, यह सच है।' 'लेकिन क्यों?' महाराज, मेरे पास जीवन-यापन के लिए कुछ नहीं है', तब राजा ने उस व्यक्ति को धन दिया और उससे कहा, 'इस धन से तुम अपने' आपको जीवित रखो। अपने माता–पिता अपने बच्चों तथा पत्नी का पालन–पोषण करो। और अपना कारोबार व धंधा चलाओ।' 'महाराज, ऐसा ही होगा,' उस मनुष्य ने उत्तर दिया।

(10) अब एक दूसरे व्यक्ति ने चोरी करके दूसरे व्यक्ति की वह चीज उठा ली, जो उसे नहीं दी गई थी। उसे लोगों ने पकड़ लिया और राजा के सामने लाए। उन्होंने राजा को बताया, 'महाराज इस व्यक्ति को जो चीज नहीं दी गई थी, उसे इसने चोरी से उठा लिया है।' और राजा ने वही बात कही एवं उसी प्रकार किया भी, जिस प्रकार उसने पहले व्यक्ति को कहा था और उसके लिए किया था।

(11) अब बंधुओ, लोगों ने सुना, कि जिन लोगों ने चोरी से उन वस्तुओं को उठाया जो उनको नहीं दी गई थीं, उन लोगों को राजा धन दे रहा है, और इस बात को सुनकर उन्होंने सोचा कि हम भी उन चीजों को चोरी से उठा लें, जो हमें नहीं दी गई हैं।

अब फिर किसी व्यक्ति ने वैसा किया। उसे उन्होंने पकड़कर राजा के समक्ष उस पर आरोप लगाया। राजा ने पहले की भांति उससे पूछा, 'तुमने चोरी क्यों की?' 'क्योंकि महाराज, मैं अपना जीवन–यापन नहीं कर सकता।'

तब राजा ने सोचा कि यदि मैं हमेशा ऐसे किसी भी व्यक्ति को धन देता रहूंगा, जिसने चोरी से उस वस्तु को उठा लिया है जो उसे नहीं दी गई थी, तो चोरी

में वृद्धि होगी। अब मुझे इसे अंतिम रूप से रोकना होगा और उसे समुचित दंड देना होगा, उसका सिर कटवा देना चाहिए।

अतः उसने अपने व्यक्तियों से कहा, 'देखो, इस आदमी की बाहों को इसकी कमर के पीछे एक मजबूत रस्सी से बांध दो, उसमें गांठ दे दो, इसके सिर का मुंडन करके गंजा बना दो, इसे सड़कों पर, चौराहों पर ढौल बजाते हुए घुमाओ, इसे दक्षिण द्वार से बाहर लेकर नगर के दक्षिण की ओर ले जाओ। इस कार्य पर अंतिम रोक लगा दो। इसे भारी दंड दो, इसका सिर काट दो'। उन लोगों ने उत्तर दिया, 'महाराज (ऐसा ही हो)', और उसके आदेश का पालन किया।

(12) बंधुओं, अब लोगों ने सुना कि जो लोग दूसरों की चीज चोरी से उठाते हैं जो उनको नहीं दी गई है, तो उन्हें मृत्यु-दंड दिया जाता है। इस बात को सुनकर उन्होंने सोचा, अब हमें भी तेजधार वाली तलवारें उनके लिए स्वयं तैयार करनी चाहिए जिनकी हम वस्तु उठाते हैं, जो हमें नहीं दी गई– वे उसे जो कुछ कहें–हमें उनको रोकना होगा। उनको भारी दंड देना होगा और उनके सिर काटने होंगे।

अतः उन्होंने तेजधार वाली तलवारें तैयार करा लीं और वे ग्राम, कस्बों तथा नगर को लूटने तथा राजमार्ग पर लूटपाट करने के लिए निकल पड़े। जिन लोगों को लूटते थे, उनके सिर काट कर उनको मार डालते थे।

(13) इस प्रकार बंधुओं, दीन–हीनों को वस्तुएं व समान न दिए जाने से निर्धनता फैल गई, निर्धनता से हिंसा बढ़ी और फैली। हिंसा के बढ़ने से जीवन का विनाश सामान्य बात हो गई। हत्याओं की संख्या में वृद्धि होने से उन प्राणियों व व्यक्तियों के जीवन की अवधि भी सामान्यतया समाप्त हो गई।

अब बंधुओं, कुछ बुजुर्गों में से किसी ने दूसरे व्यक्ति की कोई चीज चुराकर उठा ली जो उसे नहीं दी गई थी, और उस पर भी अन्य लोगों के समान आरोप लगाया गया और उसे भी राजा के समक्ष लाया गया। राजा ने उससे पूछा कि 'क्या यह सच है कि तुमने चोरी की है।' उसने उत्तर दिया, 'नहीं, हे राजन, वे जान-बूझकर झूठ बोल रहे हैं।'

(14) इस प्रकार दीन–हीनों व दरिद्रों को समान वस्तुएं न दिए जाने से निर्धनता फैली...चोरी...हिंसा...हत्या... सामान्य हो गई। फिर किसी व्यक्ति ने राजा से कहा, 'हे राजन, अमुक व्यक्ति ने चोरी से वह वस्तु उठा ली है जो उसे नहीं दी गई थीं, और इस प्रकार उसकी बुराई की।'

(15) और बंधुओ, इसलिए, दीन–हीनों, दरिद्रों को वस्तुएं व माल न दिए जाने से निर्धनता फैली, उसका विस्तार हुआ, चोरी, हिंसा, हत्या, झूठ, बुराई करना आदि

जैसी बातें प्रचुर मात्रा में बढ़ गईं।

(16) झूठ बोलने से जार कर्म में वृद्धि हुई

(17) इस प्रकार दीन-हीनों, दरिद्रों को माल व वस्तुएं न दिए जाने के कारण निर्धनता....., चोरी... हिंसा... हत्या... झूठ... चुगलखोरी... अनैतिकता फैली, उसका विस्तार हुआ।

(18) बंधुओ, उनके बीच तीन चीजों में वृद्धि हुई। ये थीं, कोटुम्बिक व्यभिचार, अनियंत्रित लालच तथा विकृत लोभ।

इसके बाद, इन तीन चीजों की वृद्धि से माता तथा पिता के प्रति पुत्रोचित श्रद्धा-भक्ति का अभाव, पवित्र व्यक्तियों के प्रति धार्मिक निष्ठा का अभाव व कुल के प्रधान के प्रति आदर व सम्मान का अभाव हो गया।

(19) बंधुओ, एक समय आएगा, जब उन मानवों के वंशजों के जीवन की अवधि दस वर्ष की हो जाएगी। इस जीवन-अवधि वाले मानवों में पांच वर्ष की कुमारियां विवाह योग्य आयु की हो जाएंगी। ऐसे मानवों में इस प्रकार की रुचियों (स्वाद), जैसे घी, मक्खन, तिल का तेल, चीनी, नमक का लोप हो जाएगा। ऐसे मानवों में कुदरुसा अनाज सर्वोत्तम किस्म का भोजन होगा। इसलिए उस समय कुदरुसा ऐसे किस्म का अनाज होगा, जैसे आजकल चावल (भात) और दाल आदि हैं। ऐसे मानवों के बीच आचार के दस नैतिक आचरणों का बिल्कुल लोप हो जाएगा। और कार्य के दस अनैतिक मार्ग अत्यधिक प्रचलित हो जाएंगे, ऐसे मानवों के बीच नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं होगा, उनमें नैतिकता बहुत कम रह जाएगी, ऐसे मानवों के बीच, बंधुओ, जिन लोगों में पुत्र-भाव तथा धार्मिक निष्ठा का अभाव होगा, और जो अपने कुल के प्रधान के प्रति सम्मान नहीं दिखाएंगे, उन लोगों को उसी तरह की आदर श्रद्धा तथा प्रशंसा प्रदान की जाएगी, जैसी श्रद्धा तथा प्रशंसा आज पुत्र-भाव वाले, पावन मनोवृत्ति वाले तथा कुल के प्रधान को आदर करने वाले व्यक्तियों को प्रदान की जाती है।

(20) बंधुओ, ऐसे मानवों में माता या माता की बहन (मौसी), मां की भाभी (मामी), गुरु की पत्नी या पिता की भाभी जैसे (आदरपूर्ण विचार जो अंतर्विवाह के लिए बंधन स्वरूप होते हैं) नहीं होंगे। संसार भेड़-बकरियों-मुर्गे-मुर्गियों, सुअरों, कुत्तों और गीदड़ों की तरह स्वच्छंद संभोग में लिप्त हो जाएगा।

बंधुओ, ऐसे मानवों में माता में अपने बच्चे के प्रति, बच्चे में अपने पिता के प्रति, भाई में भाभी के प्रति, भाई में बहन के प्रति, बहन में भाई के प्रति पारस्परिक शत्रुता, दुर्भावना, वैर-भाव, हत्या करने तक के क्रोधपूर्ण विचार नियम बन जाएंगे।

जैसा कि एक खिलाड़ी उस खेल के प्रति महसूस करता है, जिसे वह देखता है, उसी प्रकार से वे भी महसूस करेंगे।

जब नैतिक बल असफल हो जाएगा और उसके स्थान पर पाशविक बल आ जाएगा तब क्या होगा, संभवतः यह उस स्थिति का सबसे उत्तम चित्र है। बुद्ध यह चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति नैतिक रूप में इतना प्रशिक्षित होना चाहिए कि वह स्वयं ही धर्मपरायणता व न्यायसंगतता का प्रहरी हो जाए।

राज्य की शिथिलता या समाप्ति

साम्यवादी स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि एक स्थाई तानाशाही के रूप में राज्य का उनका सिद्धांत उनके राजनीतिक दर्शन की कमजोरी है। वे इस तर्क का आश्रय लेते हैं कि राज्य अंततः समाप्त हो जाएगा। दो ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उन्हें उत्तर देना है। राज्य समाप्त कब होगा? जब वह समाप्त हो जाएगा, तो उसके स्थान पर कौन आएगा? प्रथम प्रश्न के उत्तर में कोई निश्चित समय नहीं बता सकते। लोकतंत्र को सुरक्षित रखने के लिए भी तानाशाही अल्पावधि के लिए अच्छी हो सकती है, और उसका स्वागत किया जा सकता है लेकिन तानाशाही अपना काम पूरा कर चुकने के बाद लोकतंत्र के मार्ग में आने वाली सब बाधाओं तथा शिलाओं को हटाने के बाद तो स्वयं समाप्त क्यों नहीं हो जाती? क्या अशोक ने इसका उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया था? उसने कलिंग के विरुद्ध हिंसा को अपनाया। परंतु उसके बाद उसने हिंसा का पूर्णतया परित्याग कर दिया। यदि आज हमारे विजेता केवल अपने विजितों को ही नहीं, बल्कि स्वयं को भी शस्त्र-विहीन कर लें, तो समस्त संसार में शांति हो जाएगी।

साम्यवादियों ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया है। जब राज्य समाप्त हो जाएगा तो उसके स्थान पर क्या आएगा, इस प्रश्न का किसी भी प्रकार कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया, यद्यपि यह प्रश्न कि राज्य कब समाप्त होगा, कि अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्या इसके बाद अराजकता आएगी? यदि ऐसा होगा तो साम्यवादी राज्य का निर्माण एक निरर्थक प्रयास है। यदि इसे बल-प्रयोग के अलावा बनाए नहीं रखा जा सकता, और जब उसे एक साथ बनाए रखने के लिए बल-प्रयोग नहीं किया जाता और यदि इसका परिणाम अराजकता है, तो फिर साम्यवादी राज्य से क्या लाभ हैं।

बल–प्रयोग को हटाने के बाद जो चीज इसे कायम रख सकती है, वह केवल धर्म ही है। परंतु साम्यवादियों की दृष्टि में धर्म अभिशाप है। धर्म के प्रति उनमें घृणा इतनी गहरी बैठी है कि वे साम्यवादियों के लिए सहायक धर्मों तथा जो उनके लिए सहायक नहीं हैं, उन धर्मों के बीच भी भेद नहीं करेंगे। साम्यवादी ईसाई मत के प्रति अपनी घृणा को बौद्ध धर्म तक ले गए हैं। उन्होंने इन दोनों के बीच अंतर की जांच करने का भी कष्ट नहीं किया। साम्यवादियों ने ईसाई मत के विरुद्ध दुहरे आरोप लगाए हैं। ईसाई

मत के विरुद्ध उनका प्रथम आरोप यह था कि वह लोगों को परलोक के प्रति सजग तथा इस लोक में दरिद्रता भोगने के लिए बाध्य करता है। जैसा कि बौद्ध धर्म की उक्तियों से देखा जा सकता है, ऐसा आरोप बौद्ध धर्म के विरुद्ध नहीं लगाया जा सकता।

ईसाई धर्म के विरुद्ध साम्यवादियों द्वारा दूसरा जो आरोप लगाया जाता है, उसे बौद्ध धर्म के विरुद्ध नहीं लगाया जा सकता। इस आरोप को संक्षेप में इस प्रकार कहा जाता है कि धर्म जनता के लिए अफीम है। यह आरोप ईसा के पर्वत प्रवचन (सरमन आन दि माउंट) पर आधारित है, जो *बाईबिल* में मिलता है। यह निर्धन, दरिद्र तथा दुर्बल के लिए स्वर्ग के द्वार खोलता है। बुद्ध के उपदेश में पर्वत प्रवचन नहीं मिलता। उनकी शिक्षा व उपदेश धन व संपत्ति अर्जित करने से संबंधित है। मैं नीचे उनके द्वारा इस विषय में उनके एक शिष्य अनाथपिंडक को दिए गए प्रवचन का उल्लेख कर रहा हूं।

एक बार अनाथपिंडक उस स्थान पर आया, जहां पर बुद्ध ठहरे हुए थे। वहां आकर उसने उनको प्रणाम किया और एक ओर आसन ग्रहण किया और उनसे पूछा, 'क्या भगवन, यह बताएंगे कि गृहस्थ के लिए कौन-सी बातें स्वागत योग्य, सुखद तथा स्वीकार्य हैं, परंतु जिन्हें प्राप्त करना कठिन है।'

बुद्ध ने इस प्रश्न को सुनकर कहा:

> इनमें प्रथम विधिपूर्वक धन अर्जित करना है। दूसरी बात यह देखना है कि आपके संबंधी भी विधिपूर्वक ही धन-संपत्ति अर्जित करें। तीसरी बात है, दीर्घकाल तक जीवित रहो और लंबी आयु प्राप्त करो।
>
> गृहस्थ को इन चार चीजों की प्राप्ति करनी है जो कि संसार में स्वागत योग्य, सुखकारक तथा स्वीकार्य हैं, परंतु जिन्हें प्राप्त करना कठिन है, चार अवस्थाएं भी हैं जो इनसे पूर्ववर्ती हैं। वे हैं, श्रद्धा, शुद्ध आचरण, स्वतंत्रता और बुद्धि।
>
> शुद्ध आचरण दूसरे का जीवन लेने, अर्थात हत्या करने, चोरी करने, व्यभिचार करने, झूठ बोलने तथा मद्यपान करने से रोकता है।
>
> स्वतंत्रता ऐसे ग्रहस्थ का गुण होती है, जो धनलोलुपता के दोष से मुक्त, उदार, दानशील, मुक्तहस्त, दान देकर आनंदित होने वाला, और इतना शुद्ध हृदय का हो कि उसे उपहारों का वितरण करने के लिए कहा जा सके।
>
> बुद्धिमान कौन है?
>
> वह जो यह जानता है कि जिस गृहस्थ के मन में लालच, धन लोलुपता, द्वेष, आलस्य, उनींदापन, निद्रालुता, अन्यमनस्कता तथा संशय है और जो कार्य करना चाहिए, उसकी उपेक्षा करता है, और ऐसा करने वाला प्रसन्नता तथा सम्मान से वंचित रहता है।
>
> लालच, कृपणता, द्वेष, आलस्य तथा अन्यमनस्कता तथा संशय मन के कलंक

हैं। जो गृहस्थ मन के इन कलंकों से छुटकारा पा लेता है, वह महान बुद्धि, प्रचुर बुद्धि एवं विवेक, स्पष्ट दृष्टि तथा पूर्ण बुद्धि व विवेक प्राप्त कर लेता है।

अतएव, न्यायपूर्ण ढंग से तथा वैध रूप से धन प्राप्त करना, भारी परिश्रम से कमाना, भुजाओं की शक्ति व बल से धन संचित करना, तथा भौहों का पसीना बहाकर परिश्रम से प्राप्त करना, एक महान वरदान है। ऐसा गृहस्थ स्वयं को प्रसन्न तथा आनंदित करता है और हमेशा प्रसन्नता व हर्ष से परिपूर्ण रहता है तथा अपने माता-पिता, पत्नी तथा बच्चों, मालिकों और श्रमिकों, मित्रों तथा सहयोगियों, साथियों को भी प्रसन्नता तथा प्रफुल्लता से परिपूर्ण रखता है।

रूसी विचारक ऐसी स्थिति में, जब बल नहीं रहता, साम्यवाद को बनाए रखने के लिए अंतिम सहायता के रूप में बौद्ध धर्म की ओर ध्यान देते नहीं प्रतीत होते।

रूसी विचारक अपने साम्यवाद पर गर्व करते हैं, परंतु वे यह भूल जाते हैं कि सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि बुद्ध ने, जहां तक संघ का संबंध है, उसमें तानाशाही–विहीन साम्यवाद की स्थापना की थी। यह हो सकता है कि वह साम्यवाद बहुत छोटे पैमाने पर था, परंतु वह तानाशाही-विहीन साम्यवाद था, वह एक चमत्कार था जिसे करने में लेनिन असफल रहा।

बुद्ध का तरीका अलग था। उनका तरीका मनुष्य के मन को परिवर्तित करना, उसकी प्रवृत्ति व स्वभाव को परिवर्तित करना था, ताकि मनुष्य जो भी करे, वह उसे स्वेच्छा से बल-प्रयोग या बाध्यता के बिना करे। मनुष्य की चित्तवृत्ति व स्वभाव को परिवर्तित करने का उनका मुख्य साधन उनका धम्म (धर्म) था तथा धम्म के विषय में उनके सतत उपदेश थे। बुद्ध का तरीका लोगों को उस कार्य को करने के लिए वे जिसे पसंद नहीं करते थे, बाध्य करना नहीं था, चाहे वह उनके लिए अच्छा ही हो। उनकी पद्धति मनुष्यों की चित्तवृत्ति व स्वभाव को बदलने की थी, ताकि वे उस कार्य को स्वेच्छा से करें, जिसको वे अन्यथा न करते।

यह दावा किया गया है कि रूस में साम्यवादी तानाशाही के कारण आश्चर्यजनक उपलब्धियां हुई हैं। इससे इंकार नहीं किया जा सकता। इसी कारण मैं यह कहता हूं कि रूसी तानाशाही सभी पिछड़े देशों के लिए अच्छी व हितकर होगी। परंतु स्थाई तानाशाही के लिए यह कोई तर्क नहीं है। मानवता के लिए केवल आर्थिक मूल्यों की ही आवश्यकता नहीं होती, उसके लिए आध्यात्मिक मूल्यों को बनाए रखने की आवश्यकता भी होती है। स्थाई तानाशाही ने आध्यात्मिक मूल्यों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वह उनकी ओर ध्यान देने की इच्छुक भी नहीं है। कार्लाइल ने राजनीतिक अर्थशास्त्र को 'सुअर दर्शन' की संज्ञा दी है। कार्लाइल का कहना वास्तव में गलत है, क्योंकि मनुष्य की भौतिक सुखों के लिए तो इच्छा होती ही है। परंतु साम्यवादी दर्शन समान रूप से

गलत प्रतीत होता है क्योंकि उनके दर्शन का उद्देश्य सुअरों को मोटा बनाना प्रतीत होता है, मानों मनुष्य सुअरों जैसे हैं। मनुष्य का विकास भौतिक रूप के साथ-साथ आध्यात्मिक रूप से भी होना चाहिए। समाज का लक्ष्य एक नवीन नींव डालने का रहा है, जिसे फ्रांसीसी क्रांति द्वारा संक्षेप में तीन शब्दों में – भ्रातृत्व, स्वतंत्रता तथा समानता–कहा गया है। इस नारे के कारण ही फ्रांसीसी क्रांति का स्वागत किया गया था। वह समानता उत्पन्न करने में असफल रही। हम रूसी क्रांति का स्वागत करते हैं, क्योंकि इसका लक्ष्य समानता उत्पन्न करना है, परंतु इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि समानता लाने के लिए समाज में भ्रातृत्व या स्वतंत्रता का बलिदान किया जा सकता। भ्रातृत्व या स्वतंत्रता के बिना समानता का कोई मूल्य व महत्व नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये तीनों तभी विद्यमान रह सकती हैं, जब व्यक्ति बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करे। साम्यवादी एक ही चीज दे सकते हैं, सब नहीं।

हिंदू जिसे धर्म कहते हैं, वह सामाजिक आदेशों और निषेधों का पुलिंदा है।... धर्म का मूल्यांकन सामाजिक मानदंडों से किया जाना चाहिए, जो सामाजिक आचार-विचारों पर आधारित हैं।

—भीमराव अम्बेडकर

भाग III

पुस्तक योजना

'वाट ब्राह्मिन्स हैव डन टू हिंदूज?' (ब्राह्मणों ने हिंदुओं के लिए क्या किया है?) शीर्षक पुस्तक मुद्रित रूप में है। अन्य सभी योजनाएं टाईप की हुई हैं।

15

पुस्तक-योजना

संख्या - 1

रिवोल्यूशन एंड काउंटर-रिवोल्यूशन इन एनसिएंट इंडिया
(प्राचीन भारत में क्रांति तथा प्रतिक्रांति)

विषय-सूची

पुस्तक 7 दि प्रेजेंट एज इज दि एज आफ काउंटर-रिवोल्यूशन
(वर्तमान युग प्रतिक्रांति का युग)

पुस्तक—1

भाग 1 **दि एज आफ सोसल कनफ्लिक्ट**
(सामाजिक संघर्ष का युग)

अध्याय 1 दि इंडो ईरानियन्स
(भारत ईरानी)

अध्याय 2 दि आर्यन्स वर्सेज नागाज
(आर्य बनाम नागा)

अध्याय 3 आर्य वर्सेज ब्राह्मिन्स
(आर्य बनाम ब्राह्मण)

अध्याय 4 दि अटेम्प्ट टू रिकंसीलिएशन
(सामंजस्य के लिए प्रयास)

पुस्तक—2

दि राइज आफ इनक्एलिटी
(असमानता का उदय)

अध्याय 1 राइज आफ ब्राह्मेन्डम
(ब्राह्मणवाद का उदय)

अध्याय 2 इनफेलीबिलिटी आफ दि वेदाज
(वेदों का अमोघत्व)

अध्याय 3 ग्रेडेड इनइक्एलिटी दि एसेंस आफ चतुर्वर्ण
(चातुर्वर्ण्य का सार श्रेणीगत असमानता)

पुस्तक—4

भाग 1 कौजेज आफ काउंटर-रिवोल्यूशन
(प्रतिक्रांति के कारण)

अध्याय 1 रेजीसाइड और दि बर्थ आफ काउंटर–रिवोल्यूशन
(राजद्रोह अथवा प्रतिक्रांति का जन्म)

अध्याय 2 मनुस्मृति और दि गोस्पल आफ कांडटर–रिवोल्यूशन
(मनुस्मृति अथवा प्रतिक्रांति का सिद्धांत)

भाग 2 दि सोसल इफेक्ट्स आफ काउंटर-रिवोल्यूशन
(प्रतिक्रांति के सामाजिक प्रभाव)

अध्याय 1 डेफीकेशन आफ दि ब्राह्मण
(ब्राह्मण की देवता के रूप में प्रतिष्ठा)

अध्याय 2 दि इंस्टालेशन आफ दि ब्राह्मिन्स एज रूलर्स
(ब्राह्मण की शासक के रूप में स्थापना)

अध्याय 3 दि सप्रेशन आफ दि शूद्राज
(शूद्रों का दमन)

अध्याय 4 दि डिग्रेडेशन आफ वीमेन
(नारी का अपकर्ष)

भाग 3 दि स्ट्रगल बिटविन रिवोल्यूशन एंड काउंटर-रिवोल्यूशन
(क्रांति तथा प्रतिक्रांति के बीच संघर्ष)

अध्याय 1 :
अध्याय 2 :
अध्याय 3 :
अध्याय 4 :

भाग 4 : सोसल इफेक्ट्स आफ रिवोल्यूशन
(क्रांति के सामाजिक प्रभाव)

अध्याय 1 :
अध्याय 2 :
अध्याय 3 :
अध्याय 4 :

भाग 5 : दि ट्रम्फ आफ काउंटर-रिवोल्यूशन
(प्रतिक्रांति की विजय)

अध्याय 1 :
अध्याय 2 :
अध्याय 3 :
अध्याय 4 :

भाग 6 : दि प्रेजेंट इज दि एज आफ काउंटर-रिवोल्यूशन
(वर्तमान युग-प्रतिक्रांति का युग)

अध्याय 1 :
अध्याय 2 :
अध्याय 3 :
अध्याय 4 :

भाग 7 : कांस्टीट्यूशन आफ काउंटर-रिवोल्यूशन
(प्रतिक्रांति की रचना)

अध्याय 1 :
अध्याय 2 :
अध्याय 3 :
अध्याय 4 :

संख्या - 2

वाट दि ब्राह्मिन्स हैव डन टू दि हिंदूज
(ब्राह्मणों ने हिंदुओं के लिए क्या किया)

भाग 1 दि मेंकिंग आफ दि हिंदू सोसाइटी
(हिंदू समाज का निर्माण)

अध्याय 1 दि ग्रोथ आफ हिंदू रिलीजन
(हिंदू धर्म का विकास)

अध्याय 2 हिंदूइज्म एंड इट्स सिमबल्स
(हिंदू धर्म और उसके प्रतीक)

अध्याय 3 दि रौक आन विच इट इज बिल्ट
(वह चट्टान जिस पर इसका निर्माण हुआ)

भाग 2 दि रिडल्स आफ हिंदूइज्म
(हिंदू धर्म के रहस्य)

अध्याय 4 सुप्रीमेसी आफ दि ब्राह्मण
(ब्राह्मण की सर्वश्रेष्ठता)

अध्याय 5 दि फाल आफ दि शूद्र
(शूद्र का पतन)

अध्याय 6 दि डिग्रेडेशन आफ वीमेन
(नारी का अपकर्ष)

अध्याय 7 बीफ-ईटिंग वर्सेज वेजीटेरिएनिज्म
(गोमांस भक्षण बनाम शाकाहार)

अध्याय 8 वेदाज वर्सेज वेदांत
(वेद बनाम वेदांत)

अध्याय 18 दि डिबेसमेंट आफ मैन
(मनुष्य के चरित्र का पतन)

अध्याय 19 दि डिग्रेडेशन आफ रिलीजन
(धर्म का अपकर्म)

अध्याय 20 दि डार्कनिंग आफ दि माइंड
(बुद्धि पर परदा)

अध्याय 21 दि डैडनिंग आफ कांसेंस
(विवेक-हीनता)

अध्याय 22 दि डेप्रीसिएशन आफ लाइफ
(जीवन का ह्रास)

अध्याय 23 दि डैथ नेल आफ डेमोक्रेसी
(लोकतंत्र के लिए मृत्यु का द्वार)

भाग 5 ब्राह्मिन्स एंड एडमिनिस्ट्रशन
(ब्राह्मण तथा प्रशासन)

अध्याय 24 ब्राह्मिन्स एंड एडमिनिस्ट्रेशन
(ब्राह्मण तथा प्रशासन)

अध्याय 25 ब्राह्मिन्स एंड पोलिटिक्स
(ब्राह्मण तथा राजनीति)

अध्याय 26 (ब्राह्मिन्स एंड लेबर)
(ब्राह्मण तथा श्रमिक)

भाग 6 ब्राह्मिन्स वर्सेस हिंदूज
(ब्राह्मण बनाम हिंदू)

अध्याय 27 वाट एल्स दि हिंदूज
(हिंदुओं का रोग)

अध्याय 28 दि ब्रिटिश एंड ब्राह्मिन्स
(ब्रिटिश तथा ब्राह्मण)

अध्याय 29 दि रेमेडी फार दि डिजीज
(रोग का इलाज)

नोटः यह पुस्तक योजना मुद्रित रूप में मिली। शेष टंकित रूप में हैं।

सं. 3

कैन आई बी ए हिंदू?
(क्या मैं हिंदू हो सकता हूं?)

सिमबल्स आफ हिंदूइज्म
(हिंदुत्व के प्रतीक)

1. सिमबल्स रिप्रेजेंट दि सोल आफ ए थिंग
(एक वस्तु की आत्मा के परिचायक प्रतीक)

2. सिमबल्स आफ क्रिश्चिएनिटी
(ईसाई धर्म के प्रतीक)

3. सिमबल्स आफ इस्लाम
(इस्लाम के प्रतीक)

4. सिमबल्स आफ जैनिज्म
(जैन धर्म के प्रतीक)

5. सिम्बलस आफ बुद्धिज्म
(बौद्ध धर्म के प्रतीक)

6. वाट इज हिंदूज्म; अनडिफाइनेबिल समथिंग
(हिंदुत्व क्या है; कुछ अनिर्वचनीय)

7. वाट आर दि सिमबल्स आफ हिंदूइज्म
(हिंदुत्व के प्रतीक क्या हैं)

तीन

1 कास्ट
(जाति)

2 कल्ट्स
(सम्प्रदाय)

1 राम

2 कृष्ण

(3) शिव

(4) विष्णु

3 सर्विस आफ सुपरमैन
(महामानव की सेवा)

संख्या-4

इंडिया एंड कम्युनिज्म
(भारत तथा साम्यवाद)

भाग 1 दि प्रि-रिक्वेजिट्स आफ कम्यूनिज्म
(साम्यवाद की पूर्वापेक्षाएं)

अध्याय 1 दि बर्थ प्लेस आफ कम्युनिज्म
(साम्यवाद का जन्म-स्थान)

अध्याय 2 कम्युनिज्म एंड डेमोक्रेसी
(साम्यवाद तथा लोकतंत्र)

अध्याय 3 कम्युनिज्म एंड सोसल आर्डर
(साम्यवाद तथा सामाजिक व्यवस्था)

भाग 2 इंडिया एंड प्रि-रिक्वेजिट्स आफ कम्यूनिज्म
(भारत तथा साम्यवाद की पूर्वापेक्षाएं)

अध्याय 4 दि हिंदू सोसल आर्डर
(हिंदू समाज व्यवस्था)

अध्याय 5 दि बेसिस आफ दि हिंदू सोसल आर्डर
(हिंदू समाज व्यवस्था का आधार)

अध्याय 6 इंपेंडीमेंट्स टू कम्युनिज्म एराइजिंग फ्राम दि सोसल आर्डर
(साम्यवाद के लिए सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न बाधा)

भाग 3 वाट दैन शैल वी डू?
(फिर हम क्या करें?)

1 मार्क्स एंड दि यूरोपियन सोसल आर्डर
(मार्क्स तथा यूरोपियन सामाजिक व्यवस्था)

2 मनु एंड दि हिंदू सोसल आर्डर
(मनु तथा हिंदू समाज व्यवस्था)

संख्या-5

भगवत्गीता पर निबंध

विषय–सूची

निबंध 1 *वाट मेड अर्जुन एग्री टू फाइट?*
(अर्जुन युद्ध के लिए कैसे तैयार हुआ?)

(1) वाज इट बिकौज कृष्ण मैट हिज ओबजैक्शन्स?
(क्या कृष्ण द्वारा उसकी आपत्तियों का निराकरण करने के कारण)
(अथवा)

(2) बिकौज आफ दि कमांड आफ कृष्ण
(कृष्ण के आदेश के कारण)

निबंध 2 वाट डज दि भगवत्गीता टीच?
(भगवत्गीता क्या शिक्षा देती है?)

(1) डज इट टीच सांख्य योग?
(क्या यह सांख्य योग की शिक्षा देती है?)

(2) डज इट टीच ध्यानयोग
(क्या यह ध्यानयोग की शिक्षा देती है?)

(4) डज इट टीच भक्तियोग
(क्या यह भक्तियोग की शिक्षा देती है?)

(5) कनक्लूजन
(निष्कर्ष)

निबंध 3 वाज गीता ए पार्ट आफ दि ओरीजिनल महाभारत?
(क्या गीता मूल महाभारत का एक अंग है?)

(1) गीता एंड उद्योग पर्व
(गीता तथा उद्योग पर्व)

(2) दि फर्स्ट मैन्शन आफ गीता इन दि स्ट्रीम आफ संस्कृत लिटरेचर
(संस्कृत साहित्य में गीता का प्रथम उल्लेख)

(3) व्हेन वाज दि भगवत्गीता रिटिन?
(भगवत्गीता कब लिखी गई?)

निबंध 4 व्याई वाज भगवत्गीता रिटिन?
(भगवतगीता क्यों लिखी गई?)

(1) **वाज दि नैसेसिटी सोसल?**
(क्या इसकी आवश्यकता सामाजिक थी?)

(2) वाज दि नैसेसिटी रिलीजियस?
(क्या आवश्यकता धार्मिक थी?)

निबंध 5 गीता एंड बुद्धिज्म
(गीता तथा बौद्ध धर्म)

by

B. R. Ambedkar

Virat Parva

1. The Spies sent by Kauravas to search for the existence of the Pandavas return to Duryodhan and tell him that they are unable to discover them. They ask his permission as to what to do.
— Mh. Virat-Parva. Adhya 25.

2. Duryodhan asks for advice from his advisors. Karna said send other spies. Dushashan said. They might have gone beyond the sea. But search for them. — Ibid - Adhya 26.

3. Drona said the Pandavas are not likely to be defeated or destroyed. They may be living as Tapasis. Therefore send Siddhas and Brahamins as spies — Ibid Adhya 27.

4. Bhishma supports Drona - Ibid. Adhya. 28

5. Kripacharya supported Bhishma and added - Pandavas are great enemies. But wise man does not neglect even small enemies while they are in अज्ञातवास you should go on collecting armies from now.
— Ibid Adhya - 29

6. Then Susharma King of Trigarth raised quite a different subject. He said that Kichaka who was the

डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा अपने हाथ से लिखी "विरा पर्व" पर टिप्पणी तथा 'भगवत गीता' पर उनकी सम्भावित योजना के मुख पृष्ठ की प्रतिकृतियां।

B.R. AMBEDKAR
M.A., Ph.D., D.Sc., LL.D., D.Litt., Barrister-at-Law,
Member, Council of States

26, ALIPORE ROAD,
CIVIL LINES
DELHI
Dated the 12th June, 1956

My dear Rege,

I have returned the Marathi Edition of the Mahabharat. It seems that along with your copies my edition has also ben taken away. Will you kindly send me the Marathi translation of the Adi Parwa by registered post. My work on the Revolution and Counter Revolution has been held up. Treat this as most urgent.

Yours sincerely

B.R. Ambedkar

Shri S. Rege, Librarian,
Siddharth College
Bombay

बीर.आर. अम्बेडकर
एम.ए., पी.एच.डी., डी. एल.सी., एस.एल.डी. डी. लिट, बैरिस्टर-एट-लॉ,
सदस्य, काउंसिल आफ स्टेट्स

26, अलीपुर रोड,
सिविल लाइन्स,
दिल्ली
दिनांक 12 जून, 1956

प्रिय रेगे,

मैने महाभारत का मराठी संस्करण वापस कर दिया है। ऐसा मालूम होता है कि आपकी प्रतियों के साथ मेरी पुस्त्क भी चली गई है। कृपया आदि पर्व का मराठी अनुवाद रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेजने का कष्ट करें। क्रांति तथा प्रतिक्रांति पर मेरा काम रुक गया है। कृपया इसे अत्यंत आवश्यक समझें।

श्री एस. रेगे
पुस्तकाध्यक्ष
सिद्धार्थ कालेज, बंबई

बी.आर अम्बेडकर

श्री.एस.एस रेगे को डा. अम्बेडकर द्वारा लिखे गए पत्र की प्रतिकृति। इससे यह पता चलता है कि क्रांति तथा प्रतिक्रांति पर उनका लेखन कार्य जून, 1956 में चल रहा था।

ग्रंथ-सूची

यहां पर जिन पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की सूची दी गई है, इनमें लेखक द्वारा उल्लिखित रचनाएं भी सम्मिलित हैं। प्रकाशनों के संबंध में विस्तृत ब्यौरे का पता बंबई विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से लगाया गया है। फिर भी कुछ पुस्तकों के संबंध में ब्यौरे इस खंड के विमोचन से पहले प्राप्त नहीं हो सके।

एडम्स, डी.एस. : *थियोलोजी* (हेस्टिंग्ज एन्साइक्लोपीडिया आफ *रिलीजन एंड एथिक्स*, खंड 12)

एडल्फी : *दि नेमेसिस आफ इनइफेक्टिव रिलीजन* (1914)

अल्तेकर, अनंत सदाशिव : *सोरसिज आफ हिंदू धर्म इन इट्स सोसियो–रिलीजस आस्पेक्ट* (प्रका. शोलापुर इंस्टिच्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन) लेख का शीर्षक: 'दि पोजीशन आफ स्मृतीज एज ए सोर्स आफ धर्म' –काणे मैमोरियल वाल्यूम।

अम्बेडकर, डा. बी.आर. : *एनिहिलेशन आफ कास्ट्स* (न्यू बुक कम्पनी, बंबई–1936) *कास्ट्स इन इंडिया* (इंडियन एंटीक्वैरी, खंड 17, 19, 1917, पृ. 81-95)

–*हू वर दि शूद्राज?* (थैकर एंड कम्पनी, रैम्पार्ट रो, बंबई 1, प्रथम संस्करण, 1947)

बेन्स, सर जे.ए. : *सेन्सस आफ इंडिया रिपोर्ट* (1881)

बौधायन : *गृह्य सूत्र*

बीयर्ड : *फ्रीडम इन पोलिटिकल थौट (इन 'फ्रीडम–इट्स मीनिंग,* संपादक रुथ नंदा किशन)

बेलवल्कर : श्रीपद कृष्ण : वेदांत फिलासफी (बसु–मलिक लेक्चर्स–कलकत्ता विश्वविद्यालय); (पूना 1929 प्रथम भाग)

बर्गसां : टू सोर्सेज आफ मोरेलिटी

भंडारकर, सर रामकृष्ण गोपाल: वैष्णनिज्म, सैविज्म एंड माइनर रिलीजियस सिस्टम (एन्साइक्लोपीडिया आफ इंडो-आर्यन रिसर्च)

(स्ट्रेन्सबर्ग, कार्ल जे,ट्रुबनर 1913)

भट्टाचार्य, जोगेन्द्र नाथ : हिंदू कास्टस् एंड सैक्ट्स (कलकत्ता, थैकर स्पिंक एंड कंपनी, 1886)

ब्लूमफील्ड, मौरिस : *दि रिलीजन आफ दि वेदः दि एनसिएंट रिलीजन आफ इंडिया* (न्यूयार्क, जी.पी, पुटनम्स संस, 1908)

ब्लंट, ई.ए.एच. : दि कास्ट्स सिस्टम आफ नार्दर्न इंडियाः संयुक्त प्रांत आगरा एंड अवध के विशेष संदर्भ सहित, (लंदन, हम्फ्री नीलफोर्ड 1931)

बर्नोफ : ल, इंट्रोडक्शन अल हिस्ट्री आन बुद्धिज्म इंडियन

बोटलिंग्क : इंट्रोडक्शन टू भगवत्गीता (इंडियन एंटीक्वैरी, 1908, सप्लीमेंट)

बौधायन : गृह्य सूत्र

बुद्धिराजा, एस.डी. : भगवत्गीता

क्राउले : ट्री आफ लाइफ

क्राउले एंड टुफ्ट्स : इवोल्यूशन एंड एथिक्स

दफ्तरी, केशव लक्ष्मण : धर्मरहस्य

दाते, यशवंत रामकृष्ण : स्वाध्याय, पत्रिका (प्रथम वर्ष, डबल नंबर)

डिवी, जॉन : डेमोक्रेसी एंड एजूकेशन (न्यूयार्क, मैकमिलन, 1916)

डोनाल्ड,ए मैकेन्जी : बुद्धिज्म इन प्रि-क्रिश्चियन ब्रिटेन (लंदन, ब्लैकी एंड सन, 1928)

इगलिंग, जुलियस : शतपथ ब्राह्मण – भाग 1 से 5 (लंदन सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट सिरीज, आक्सफोर्ड, 1885)

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका : ग्यारहवां संस्करण, खंड 26,

फास्बोल, वी. : इंडियन माइथोलोजी।

गेट, सर एडवर्ड : सेंसस आफ इंडिया रिपोर्ट (1911)

गार्बे, रिचार्ड्स : इंट्रोडक्शन टू दि भगवत्गीता, अनु. डी मैकिचन (बंबई वि.वि., बंबई, 1918)

हैमिल्टन : ए न्यू एकाउंट आफ दि ईस्ट इंडीज (1744)

हजारा : क्रोनोलोजी आफ पुरान्स।

होपकिन्स, ई, बाशबर्न : दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया

(न्यूयार्क, चार्ल्स स्क्रिबनर्स सन, 1901)

– हिस्ट्री आफ दि रिलीजन (न्यूयार्क, दि मैकमिलन एंड कं, 1916)

– दि रिलीजन्स आफ इंडिया

– हिस्ट्री आफ दि रूलिंग रेसेज।

हक्सले, टामस एच. : इवोल्यूशन एंड एथिक्स (लंदन, मैक्मिलन एंड कं, 1903)

इबटसन डेंजिल : पंजाब सेंसस रिपोर्ट, 1881 (लाहौर, पंजाब सरकार 1881)

: पंजाब कास्ट्स (लाहौर, पंजाब सरकार 1916)

इन्स, सी.ए. : गजटियर आफ मलाबार एंड ऐजेंगो डिस्ट्रिक्ट (खंड 1)

जैक्स : मारल्स एंड रीलिजन (हिब्बर्ट जर्नल, खंड 19)

जेकोबी : दि डेट्स आफ दि फिलोसोफिकल सूत्राज आफ दि ब्राह्मणाज़ (दि जर्नल आफ दि अमरीकन ओरियंटल सोसाइटी, खंड 31, 1911)

जायसवाल : मनु एंड याज्ञवल्क्य

काले, त्रयंबक गुरुनाथ : पुराण निरीक्षण (मराठी) (पनवेल)

काणे, पांडुरंग वामन : ए ब्रीफ स्कैच आफ दि पूर्व मीमांसा सिस्टम (बंबई 1924)

–हिस्ट्री आफ धर्म शास्त्र

केर्न, एच. : मैनुअल आफ इंडियन बुद्धिज्म, स्ट्रेंन्सबर्ग, 1896

कोसांबी, धर्मानंद : हिंदू संस्कृति आणि अहिंसा (मराठी) (बंबई, 1935)

लास्की, हैराल्ड जे. : लिबर्टी इन दि माडर्न स्टेट (लंदन, जार्ज एलन एंड अनविन लि., 1930)

लाज, ए. सी. : नैचुरल थियोलोजी

लायल, सर एल्फ्रेड : एशियाटिक स्टडीज – रिलीजन एंड सोसायटी (लंदन, जान मरे, 1907)

मैने, हेनरी जेम्स : एंशियंट ला (लंदन, जे.एम. डेंट एंड संस, 1861)

मेरिटेन जेक्विस : दि कांवक्वेस्ट आफ फ्रीडम इन 'फ्रीडम – इट्स मीनिंग', लेखक रुथ नंदा किशन)

मैक्स मूलर : सांइस एंड रिलीजन (रायल इस्टिट्यूशन, 1870)

(लंदन, लोंगमैन्स ग्रीन एंड कं., 1882)

: लैक्चर आन दि ग्रोथ आफ रिलीजन, हिब्बर्ट लैक्चर्स, 1878 (लंदन, 1878)

: महापरिनिब्बान सुत्त

: एनसिएंट संस्कृत लिटरेचर, 1860

मेधातिथि : कमेंट्री आन मनु, संपा. विश्वनाथ नारायण माडलिक, (बंबई 1886)

मिल. जे. एस. : यूटिलिटेरियनिज्म एंड लिबर्टी, रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट, (लंदन 1954)

माडर्न रिव्यू : (जुलाई 1912)

मूर, एडवर्ड : हिंदू पेनथियन (लंदन, प्रथम संस्करण, डब्ल्यू, ओ. लेखक सिंपसन, 1810)

: हिंदू इन्फेंटिसाइड (लंदन 1911)

म्यूर : व्हाइट यजुर्वेद (ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, लंदन, ट्रब्नेर एंड कं., 57 एंड 59, लुडगेट हिल, 1873, सैकिंड एडिशन)

निकोलस, एम. पी. : फ्राक नीत्शे डाउन टू हिटलर (लंदन, विलियम हाज एंड कं., 1938)

नीत्शे, एफ. डब्ल्यू. : *एंटीक्राइस्ट*, जर्मन से अनु. एच.एल. मेनकर द्वारा (टोरेंस, दि नूनटाइड प्रेस, 1880)

दस स्पेक जरथुस्त्र; अनुवादक थामस कामम (न्यूयार्क, मैकमिलन एंड कं., 1905)

पार्टिजर : एनसिएंट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन

प्लोमैन, मैक्स : दि नेमेसिस आफ इनइफैक्चुअल रिलिजन (एडेल्फी 1941)

प्राट : बुद्धिज्म

प्रज्ञानेश्वर यति : चातुर्वर्ण्य

-उपनयन, प्रिंगले पैटिशन : फिलोसोफी आफ रिलीजन

-स्टडीज इन फिलोसोफी आफ रिलीजन

(आक्सफोर्ड, मुनरोज इनसाइक्लोपीडिया आफ एजूकेशन, 1930)

राधाकृष्णन, सर्वपल्ली : इंडियन फिलोसोफी, खंड 1 तथा 2 (न्यूयार्क, मैकमिलन, 1923)

राजवाडे, वी.के. : आर्टिकल आन भगवत्गीता (भंडारकर मैमोरियल वाल्यूम)

राइड्स, डेविड्स टी. डब्ल्यू. : बुद्धिज्म, सोसाइटी फार प्रोमोटिंग क्रिश्चियन
: नालेज (लंदन, नारथम्बरलैंड एवेन्यू डब्ल्यू. सी.,1886)

रीकन किमूर : ए हिस्टोरिकल स्टडी आफ दि टर्म्स–हीनयान एंड महायान, एंड दि ओरिजन आफ महायान बुद्धिज्म (कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1927)

सरकार, बी.के. : दि पोजिटिव बैकग्राउंड आफ हिंदू सोशियोलोजी

सातवलेकर, एम.डी. : पुरषार्थ वाल्यूम (खंड 3)

सील बृजेन्द्रनाथ : दि पोजिटिव साईंसिज आफ दि एनसिएंट हिंदूज

सेन, सुरेन्द्रनाथ : अर्ली कैरियर आफ कान्होजी आंग्रे एंड अदर पेपर्स

शाम शास्त्री : मैमोरियल वाल्यूम्सः कौटिल्याज अर्थशास्त्र

शंकराचार्य : अपोजीशन टू कृष्णाइज्म

शास्त्री, हरप्रसाद : मैमोरियल वाल्यूमस (संपा. नरेन्द्र नाथ लॉ), बुद्धिस्टिक स्टडीज, संपा. बी, सी. लॉ

स्मिथ, राबर्टसन : दि रिलीजन आफ दि सेमाइट्स (1927)

स्मिथ, विन्सेंट ए. : अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया (आक्सफोर्ड 1924)

स्टिफेंस : कमेंट्री आन दि लॉ आफ इंग्लैंड (15वां संस्करण, खंड 4)

टेलर, ए.ई. : *दि फेथ आफ ऐ मोरेलिस्ट*, गिफोर्ड लेक्चर्स, 1926-27 (लंदन, 1930)

तेलंग, के.टी. : भगवत्गीता (संपा. एफ. मैक्स मूलर, आक्सफोर्ड 1882)

तिलक, बी.जी. : गीता रहस्य (अंग्रेजी अनुवाद)

ट्रेवल्स आफ (1) अलबरूनी, (2) डुबार्ट बारबोसा, और (3) मैगस्थनीज

उटगीकर, एन. बी. : गारवेज इंट्रोडक्शन टू दि भगवत्गीता (जर्मन से अनुवाद, बंबई 1918)

वैद्य, सी.बी. : हिस्ट्री आफ मेडिवल हिंदू इंडिया, 3 खंडों में (पूना 1921)

रिडिल आफ दि रामायण (बंबई, राधाबाई आत्माराम सगून, 1906)

वर्थेमा, लुडोविको डि : ट्रेवल्स आफ (हकियट सोसाइटी)

वीरेश्वरानंद स्वामी : ब्रह्म सूत्र (अद्वैत आश्रम, 1936)

वेबर अलब्रेच्ट : हिस्ट्री आफ इंडियन लिट्रेचर, अनु. जान मान तथा थियोडोर जैचरे

(लंदन, केगन पाल, ट्रुबनर एंड कं. लि, 1878-1892)

विलियम जैक्सन, ए. वी : *हिस्ट्री आफ इंडिया*, खंड 2 (लंदन 1906)

विल्सन : *एसेज आन संस्कृत लिटरेचर*, खंड 3

विंटरनित्ज : *हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर* (अंग्रेजी अनुवाद)

अन्य पुस्तकें : *ऐतरेय ब्राह्मण, निरूक्त, नारद-स्मृति, महाभारत, रामायण, भगवत्गीता, हरिवंश, याज्ञवल्क्य स्मृति, मिताक्षरा।*

अनुक्रमणिका